प्रकाशक —
भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनॉट सरकस,
नई दिल्ली।

प्रथम संस्करण जुलाई १९५४

मूल्य ७)

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनॉट सरकस
नई दिल्ली

कथानक का आधार-विषय

राजनीति मे लैफ्टिस्ट (वाम पक्षीय) भले ही 'पार्लियामेन्टरी सिस्टम' की उपज हो, वास्तव में वामपक्षीय विचार-धारा के लोग तो मानव इतिहास के आदि काल से चले आ रहे हैं। जब से मनुष्य ने अपनी निज की, समाज की तथा ससार की समस्याओ पर विचार करना आरम्भ किया है, तब से ही दो प्रमुख विचार मनुष्य के मन को आन्दोलित करते रहे हैं। वर्तमान और भविष्य, ये उन दो विचारधाराओ की धुरी रहे हैं।

केवल वर्तमान की ओर ध्यान रखने वाले लैफ्टिस्ट (वामपक्षीय) रहे हैं। उनका दृष्टि-क्षेत्र सदा जन्म से मरण तक सीमित रहा है। राजनीति मे सभी लैफ्टिस्ट सामयिक सफलता को ही मुख्य मानते हैं। प्राय राजनीतिक लैफ्टिस्ट, जब सीमित काल में सफलता नही पा सकते, तो क्रान्ति की माग करने लगते हैं। उनको सफलता में देरी असह्य हो जाती है। सफलता प्राप्त करने के लिये समय अल्प होने के कारण, वे उचित और अनुचित उपायो का विचार भी छोड बैठते हैं।

इसके विपरीत राईटिस्ट (शुद्ध विचारधारा के मानने वाले) वर्तमान जीवन को विराट् जीवन का एक बहुत छोटा भाग मानते हैं। इनका दृष्टि-क्षेत्र विशाल, दूर तक फैला हुआ और गम्भीर होता है। उनको सफलता प्राप्त करने के लिये घबराहट, उतावली, निराशा नही होती। वे क्रान्ति को आवश्यक और लाभदायक नही मानते और न ही वे सफलता प्राप्त करने मे अनुचित उपाय प्रयोग करना उचित समझते हैं। निज की, समाज की अथवा ससार की उन्नति उपादेय मानते हुए भी, उसको झूठ, दगा अथवा पाप के मार्ग से प्राप्त करने में हानि मानते हैं।

यह है सिद्धातात्मक भेद वामपक्ष और दक्षिण पक्ष में। वाममार्ग मत, मजहब के क्षेत्र में लेफ्टिज्म (वाम पक्ष) है। मजहब मनुष्य के निज

के आचरण के तथा व्यक्ति और समाज के आचरण के विषय की बात बताता है। मनुष्य क्या है ? इसका आदि अंत कहा है ? संसार के साथ इसका क्या सम्बन्ध है ? मनुष्य, समाज और व्यक्ति के अधिकारों में सीमा कहा है ? इन सब और इसी प्रकार की अनेकों अन्य बातों में विवेचना करने के समय, जो मनुष्य जीवन को जन्म से मरण तक ही मानते हैं, न इसके पहले कुछ था, न इसके पश्चात् कुछ रहने को है, अर्थात् संसार के बहते पानी पर एक बुदबुदा मात्र ही यह है, वे वाम मार्ग के अनुयायी माने जाते हैं। इन के दृष्टिकोण में एक विशेषता यह आ जाती है कि वे जो कुछ भी शरीर के भोग हैं, उनको ही प्रमुख मानते हैं और उनके भोगने के लिये एक अल्प समय ही अपने पास समझते हैं।

इनके विपरीत शुद्ध विचारधारा मानने वाले शरीर को गौण मान आत्मा को अपना एक मुख्य अंग मानते हैं। आत्मा को अमर मानते हैं और एक जन्म के कर्मों का फल अगले और अगले जन्म तक चलने वाला मानते हैं। उनके लिये किसी दुस्तर से दुस्तर कार्य-साधन में भी, न तो उतावली की आवश्यकता होती है, न ही अनुचित उपायों के प्रयोग की। वे जन्म के पश्चात् जन्म तक, किसी भले कार्य के फलीभूत होने की प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनके लिये मरण, जीवन के अधिष्ठाता आत्मा के अंत का सूचक नहीं। यह तो केवल जीर्ण वस्त्र बदलना मात्र है।

इनको आधार बना कर इस पुस्तक की रचना की गयी है।

इस सब लिखने का क्या लाभ होगा, इसका मूल्याकन लेखक नहीं कर सकता। यह तो पाठकों के अधीन है।

जहा तक उपन्यास का सम्बन्ध है, सब पात्र और स्थान काल्पनिक हैं। उपन्यास होने से रोचकता का ध्यान रखा गया है और इस अर्थ किसी बात में कहीं अतिशयोक्ति हो गयी हो तो क्षम्य है।

—गुरुदत्त

नास्तिक्य

: १ :

पतितपावनी गंगा के तट पर बसी हुई मोक्षदायिनी काशी, जहा जन्म भर के पापो से पीडित नर-नारी मरने से पूर्व अपने आत्मा की शान्ति के लिये आते है और जहा वेदो के प्रकाण्ड विद्वानो तथा कर्मकाण्डियो की परस्परा-सी चल पड़ी है, वहा चार्वाक जैसे वामपक्षीय नास्तिक का पथ भी चल पडा था। चार्वाक के परशिष्य नाकेश जैसे, एक विपरीत विचारधारा के पोषक होते हुए भी राज्य-परिषद् के सदस्य बन दीपक और परछाई की कहावत चरितार्थ करते थे।

महाराज शूरसेन की राज्य सभा में प्रत्येक विद्वान् का मान होता था और भिन्न-भिन्न विचारो के विचारक स्थान पाते थे। जहां आस्तिक कर्मवादी और पुनर्जन्म पर विश्वास रखने वाले महाराज के दक्षिण हाथ की ओर बैठते थे वहा नाकेश इत्यादि विद्वान् महाराज के वाम हाथ की ओर आसन पाते थे। इसी कारण इनका नाम वामपक्षीय पड़ गया था।

नाकेश इत्यादि पडितो ने वाममार्गीय नाम स्वीकार भी कर लिया था। वह इस कारण नहीं, कि उनको राज्य सभा में महाराज के बायें हाथ की ओर स्थान मिलता था, प्रत्युत इस कारण कि वे अपने मार्ग अर्थात् अपनी विचारधारा को सुन्दर, सुखप्रद और सुगम मानते थे।

महाराज शूरसेन की राज्य-परिषद् की एक विशेष बैठक हो रही थी। इसका विशेष प्रयोजन था। नगरपाल ने एक अपराधी को मृत्यु दड दिया था और उस के सम्बन्धियो ने महाराज के समक्ष क्षमा-याचना की थी। इस याचना को सुनने के लिये ही यह परिषद् बुलायी गयी थी।

सभा में महाराज शूरसेन उच्च सिंहासन पर विराजमान थे और उनके

दक्षिण हाथ की ओर कुछ नीचे आसनो पर महामात्य वीरभद्र, न्यायपति पडित चतुरग, नगरपच श्री केशव और सेनापति राजन विद्यमान थे। महाराज के वाम हाथ की ओर महापडित नाकेश, प्रजा-प्रतिनिधि शूद्रक, करनायक शूलाग और महिलाशिरोमणि प्रेक्षा देवी बैठी थीं। इनके अतिरिक्त निम्न कोटि के कई अन्य विद्वान् भी विराजमान थे।

अपराधी एक ब्राह्मण बालक था। उन्नीस बीस वर्ष की आयु का, ब्रह्मचारी के पीत वर्ण वस्त्र पहिने, नग्न शिर, चुटकी को बडी सी गाठ दिये, ओजस्वी मुख और लम्बे कद वाला। वह सभाभवन के मध्य में खडा था। उसके पीछे चार सैनिक रक्षार्थ खडे थे। अपराधी के सम्बन्धी भवन में एक ओर थे। उनके सामने नगरपाल एक चौकी पर कुछ पत्र, पत्रक अथवा पुस्तकें रखे खडा था। सामने अपराधी के पीछे कुछ अंतर पर कई नागरिक सम्मानयुक्त मुद्रा में थे।

महाराज की आज्ञा पा नगरपाल ने झुक कर नमस्कार किया। पश्चात् उच्च स्वर में कहा, "जय काशीराज की।"

इस घोषणा के पश्चात् अपराधी के सम्बन्धियो में से एक वृद्ध ने, "महाराज की जय हो" कह कर आशीर्वाद दिया। इस पर महाराज ने नगर पाल को सम्बोधित कर पूछा, "इस बालक ने क्या किया है ?"

"महाराज ! इसने गुरु-पत्नी से सभोग किया है और हमारे शास्त्र के विधानानुसार इस अपराध का दड चिता में अपराधी को जीवित जला देना है।"

महाराज ने बालक के सुकुमार मुखको देखा तो उसके अपराधी होने में सदेह करते हुए पूछा, "बालक ! क्या यह सत्य है ?"

"सत्य है महाराज ! मैं इस नीच कर्म के करने का अपराधी हू।"

"तुम को मृत्यु दड मिला है । जानते हो ?"

"हा महाराज ! जानता हू।"

"तुम क्या चाहते हो ?"

"मैं इस दड के शीघ्र दिये जाने की प्रार्थना कर रहा हू।"

"क्यो ?"

"इस पतित शरीर से मुक्ति पाना चाहता हू। इसको भस्म कर देना चाहता हूं। इससे इस पवित्र नगरी के वायुमडल को दूषित करना नहीं चाहता।"

"तो यह क्षमा-याचना किसने की है ?"

सभा-मंडप में एक ओर खड़े बालक के सम्बन्धियो में से एक वृद्ध ब्राह्मण ने आगे बढ, हाथ जोड कर कहा "महाराज! भगवान् आपको चिरजीव रखे। इस याचना को करने वाला, करबद्ध यह वृद्ध ब्राह्मण सम्मुख उपस्थित है।"

"क्षमा किये जाने में क्या युक्ति है ?"

"प्रथम, बालक का अपराध इतना नहीं जितना इससे सहवास करने वाली स्त्री का है। वह भोग और विलास-क्रिया से परिचित थी। उसको इस विषय में बालक का पथप्रदर्शन करना तथा उसको इस मार्ग पर चलने का प्रलोभन देना उचित नहीं था। स्त्री तीस वर्ष की आयु की होकर इस विषय में पर्याप्त अनुभव रखती होगी।

"अतएव बालक इस कार्य में एक गौण अपराधी होने से क्षमा का भागी है।

"द्वितीय, यह बालक इस वृद्ध और इस समीप खडी वृद्धा की एकमात्र सन्तान है। यह हमारी वृद्धावस्था का एक मात्र आश्रय है। इसको दड देने से हम निर्दोष दडित हो जावेंगे। यह वृद्ध ब्राह्मण अपनी विद्या और ज्ञान से काशी के नागरिको की सेवा करता रहा है। अपनी सेवाओ के उपलक्ष में इस बालक के जीवन दान की याचना करने आया है।

"तृतीय, बालक न्यून वयस्क है, सुन्दर है, युवा है, मेधावी है, शास्त्र और समाज की सेवा के योग्य है। इस कारण दया का भागी है।"

महाराज ने ब्राह्मण की युक्तिया सुन कहा, "किसी अन्य को कुछ कहना है ?"

ब्राह्मण के समीप खड़ी वृद्धा ब्राह्मणी ने घुटने टेक माथा भूमि पर

रख, रुदन करते हुए कहा, "मेरे पुण्य कर्मों का फल, जिनमे मुझ को ब्राह्मण जन्म मिला है, महाराज को लगे। मेरे इस पवित्र जन्म में किये सब श्रेष्ठ कर्मों के फल के महाराज भागी हो। मेरा बेटा मुझ को मिल जाये।"

महाराज आसन से उठ खडे हुए और बोले, "देवी उठो! तुम्हारे साथ न्याय होगा। दया के लिये भगवान् ने प्रार्थना करो। वह दयालु है, दयानिधि है, कृपासागर है।"

ब्राह्मण ने अपनी अर्धांगिनी को उठाया। उसके सिर पर हाथ फेरा और ढाढस बधाते हुए कहा, "प्रिये! अधीर मत हो। इस पवित्र काशी में अन्याय नहीं हो सकता, साथ ही यह न्याय दयायुक्त भी होगा।"

ब्राह्मणी सिसकिया भरती हुई उठी और अपनी दयनीय अवस्था को छुपाने के लिये ब्राह्मण के पीछे होकर खडी हो गयी।

महाराज शूरसेन ने नगरपाल से पूछा, "इस बालक से सहवास करने वाली को क्या दड मिला है?"

"महाराज! हमारे राज्य में स्त्रियों की दड देने का विधान नहीं है। उनको अपने पतियो के हाथ में ही रखा जाता है और वही उनके दड का विधान करते है।"

"ऐसा क्यो है? क्या वे राज्य की नागरिका नहीं है?"

"है महाराज! परन्तु यह प्रश्न तो महामात्य जी से अथवा न्यायपति से होना चाहिये। सेवक व्यवस्था नहीं दे सकता और न ही किसी व्यवस्था पर समालोचना कर सकता है।"

"वीरभद्र।" महाराज ने महामात्य से पूछा, "स्त्रियो के लिये यह पृथक् विधान क्यो है?"

"भगवान वैदिक सस्कृति में स्त्रियो को पति के अधीन रहने का आदेश है। इस बधन के प्रतिकार में विधान ने उनको सुविधा दी है कि उनके गुण-दोष देखने का अधिकार भी उनके पति को होना चाहिये। पति अपनी

पत्नी का अंतरंग साथी होने से अपने व्यवहार में अधिक न्याययुक्त होगा। ऐसा माना गया है।"

"महापडित नाकेश इस विषय में हमको क्या सम्मति देते है।" महाराज ने अपने बायें हाथ की ओर घूम कर पूछा।

"क्षत्रिय-कुलप्रवर ! यह बालक अपराधी नहीं है । इसने कोई अपराध नही किया। भोग स्त्री-पुरुष का स्वभाविक कर्म है । इसके लिये किसी को प्राणदड न्यायोचित नहीं है ।"

"परतु पडित ! यह दड सभोग के कारण नहीं है। गुरु-पत्नी से सम्भोग दडनीय है। अपनी विवाहिता पत्नी से सम्भोग वैध है ।"

"परन्तु महाराज ! वेश्यायों से सम्भोग, पत्नी से अतिरिक्त होते हुए भी, दडनीय नहीं है ।"

"ठीक है, परन्तु वे किसी की भार्या नहीं होतीं। साथ ही गुरु-पत्नी माता तुल्य होने से वर्जित है ।"

"यह बंधन मनुष्य निर्मित है। यह धर्म नहीं है। अधर्म तो वह कर्म होता है, जो प्रकृति से मनुष्य के न करने के लिये बना हो। जैसे, मनुष्य का अग्नि में कूद जाना अथवा मात्रा से अधिक खाना अधर्म है।"

"न्यायपति इस विषय में क्या कहते है।"

"धर्म, अधर्म की व्याख्या जो महा पडित नाकेश ने की है, वह मनुष्य के प्राकृत धर्म की है। मनुष्य के कुछ सामाजिक धर्म भी है। इस बालक ने समाज से नियत धर्म का उल्लंघन किया है । इस कारण यह दंड का भागी है।"

महाराज ने पुनः नाकेश की ओर देखा। उसने हार न मानते हुए कहा, 'जब समाज कोई नियम ऐसा बना दे जो प्रकृति के नियमो के विरुद्ध हो तो समाज अपराधी है, न कि प्रकृति की पुकार सुनने वाला मनुष्य।"

"प्रकृति की पुकार क्या है ?"

"पुरुष-स्त्री में सम्भोग प्रकृति से नियत कृत्य है। प्रकृति ने इसकी सीमा

बाधी है। यह सीमा अरुचि, थकान, आयु और जाति है। जाति से मेरा अभिप्राय गधा, घोडा कुत्ता इत्यादि है।"

"यह ठीक है।" न्यायपति का कहना था, "परन्तु समाज में सुव्यवस्था रखने के लिये भी कुछ कर्मो की सीमा बाधी गई है। गुरु पत्नी से सम्भोग इस सीमा से बाहर है। माता तथा भगिनी से भी सम्भोग वर्जित है।"

"क्यो वर्जित है?"

"समाज में दुर्व्यवस्था रोकने के लिये।"

महाराज ने इस वाद-विवाद को रोकते हुए कहा, "महा पडित नाकेश के कथन में सत्य है या नहीं, यह मेरे अथवा इस सभा के विचार का विषय नहीं। नाकेश पडित चाहते है कि प्रचलित धर्म-व्यवस्था बदल दी जावे। उनका कहना है कि धर्म-व्यवस्था केवल प्रकृति के नियमों के आधार पर होनी चाहिये। इसको स्वीकार अथवा अस्वीकार करना धर्मशास्त्रियो का काम है। हम इस सभा में धर्मशास्त्र के अनुकूल ही राज्यकार्य चलाने के लिये बैठे है। अतएव मुझ को आप मन्त्रीगण सम्मति दें कि प्रचलित धर्म-शास्त्र के अनुसार नगरपाल की यह प्राणदड की आज्ञा न्यायसगत है अथवा नहीं?"

नाकेश ने महाराज से विनीत भाव में कहा, "महाराज! न्याय वह है जो लोकहित में हो। इस दड के देने से कौन लोकहित सिद्ध होगा?"

इस पर महाराज का कहना था, "यह विषय दया करने के समय विचार कर लिया जावेगा।"

न्यायपति ने कहा, "जहा तक न्याय का प्रश्न है, नगरपाल की आज्ञा यथोचित है। इस समय प्रश्न केवल क्षमा याचना का उपस्थित है। इस अपराधी को क्षमा करने के अर्थ, जनता में इस प्रकार के अपराध करने को प्रोत्साहन देना होगा। इस कारण क्षमा प्रदान नहीं करनी चाहिये।

"क्षमा के अतिरिक्त प्रार्थी दया की याचना भी कर रहा है। अपराध क्षमा के योग्य नहीं है। बालक तथा बालक के माता-पिता दया के भागी

हो सकते हैं। इस का निर्णय महाराज स्वय अपने अतरात्मा की प्रेरणा से ही कर सकते हैं।"

इस समय महाराज ने पुन. बालक के वृद्ध पिता से पूछा, "ब्राह्मण देवता ! तुमने इस विषय में और कुछ कहना है क्या ?"

"महाराज आप भगवान् का अवतार हैं। इस वृद्ध तथा वृद्धा पर दया करिये।"

महाराज ने अपनी आज्ञा सुना दी, "नगरपाल की आज्ञा न्यायोचित है। अपराध किया हुआ क्षमा नहीं हो सकता। दया भगवान के हाथ में है। उससे प्रार्थना करो।"

इतना कह काशीराज शूरसेन अपने आसन से उठ खडा हुआ। यह इस बात का सकेत था कि सभा समाप्त हो गयी है। यह देख वृद्धा चीख मार, अचेत हो गिर पड़ी। महाराज ने प्रतिहार को आज्ञा दी, "इस देवी को आतुरालय में ले जाओ।"

यह आज्ञा दे महाराज अपने निवासभवन को चले गये।

अपराधी बदी गृह में लेजाया जाने लगा तो पडित नाकेश उसके पास आकर खडा हो गया। ब्राह्मण कुमार की ओर देखकर पूछने लगा, "क्या नाम है बालक ?"

"मनोज, भगवन् !"

"महाराज की आज्ञा सुनी है ?"

"मैं उनका आभारी हूं।"

"क्या मिल रहा है, तुमको, इससे ?"

"इस पतित कलेवर से छुट्टी।"

नाकेश मुस्कराया और यह कहता हुआ, "तुम इस योग्य हो हो," चल पडा।

नाकेश जब सभाभवन से बाहर निकलने लगा तो एक युवक पूर्ण कौशेय वस्त्र पहिने, तथा पावों में बहुत ही कोमल चर्म की पादुका पहिने, सम्मुख आ खडा हुआ। वह हाथ जोड कर बोला, "भगवन् ! दर्शन की चिर-

सचित अभिलाषा पूरी हुई है। अवन्ति के कुमार का प्रणाम स्वीकार हो।"

"आप श्रीमान् कुमार देव हैं? नाम और ख्याति तो सुनी है। कैसे आना हुआ है?"

"तीर्थाटन के लिये घर से निकला था। काशी में पहुचा तो भारत के विख्यात विद्वान्, महर्षि चार्वाक के परशिष्य श्रीमान् नाकेश के दर्शन के बिना, तीर्थयात्रा का फल सशित मान, निवासस्थान पर गया था।

"द्वार पर खडी सुन्दरी से पता चला कि महा-पडित राज्य-सभा में पधारे हैं। सभा का प्रयोजन जानने पर, काशी के न्याय का स्तर जानने के लिये, एक पथ दो काज की कहावत सार्थक करने, यहा चला आया हू।"

इस समय नाकेश सभाभवन से निकल कर बाहर पथ के तट पर खडे एक रथ के समीप पहुच गया था। यह रथ नाकेश का था। सारथि तरुण अश्वों की लगाम पकडे खडा था। राज्यभवन के बाहर भारी भीड खडी थी। खडे हुओ के मुख पर ब्राह्मण बालक के क्षमा न किये जाने के कारण भारी शोक छाया हुआ था। नाकेश, उनकी ओर ध्यान दिये बिना, रथ तक पहुचा और कुमार से बोला, "श्रीमान रथ में पधारें और ब्राह्मण का आतिथ्य स्वीकार करें। केवल दर्शन तो मूर्खों के लिये होता है। आपसे तो अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध का सौभाग्य प्राप्त होना चाहिये।"

"सेवक इस अपार कृपा के लिये कृतज्ञ होगा।"

इस पर पडित नाकेश रथ पर सवार हो गया और कुमार को अपने समीप बैठा कर सारथि से बोला, "निवास गृह पर चलो।"

सारथि के रथ पर बैठते ही रथ हवा से बातें करने लगा और पलक की झपक में पडित नाकेश के निवास स्थान पर जा खडा हुआ। रथ के द्वार पर पहुचते ही वह खुल गया। दो अति सुन्दर युवतिया हाथो में गुलाब की पखुडियो से भरी टोकडिया लिये हुए निकल आयीं और पडित तथा कुमार के द्वार में प्रवेश करते ही, पथ पर बिखेरने लगीं। पडित बिना इस ओर ध्यान दिये कुमार को साथ लिये हुए उन पुष्प पखुडियो पर चलता हुआ भवन में एक कुसुम उद्यान में जा पहुचा।

पडित नाकेश के भवन में प्रवेश करते ही कुमार ने अनुभव किया कि वहा की वायु भाति-भाति की सुगन्धि से भर रही है । द्वार के भीतरी उद्यान में कुसमित पेडो की शोभा से तो वह चकित रह गया । उद्यान के प्रवेश पर, एक जंगली जाति के पुरुष की सर्वथा नग्न मूर्ति, हाथ में भाला लिये खड़ी दिखाई दी । कुमार की दृष्टि उधर गयी तो पडित ने मुस्करा कर कहा, "यह इस उद्यान का प्रहरी है। इस मूर्ति को यवन देश के प्रसिद्ध मूर्तिकार फरऊन ने बनाया है । इसके लिये मुझको दो सहस्र स्वर्ण मुद्रा व्यय करनी पड़ी थीं ।"

कुमार ने एक क्षण तक उस मूर्ति को देखा और कहा, "भगवन् ! इसमें क्या सौन्दर्य है ?"

"यह गोड जाति के एक वीर का सर्वथा प्रतीक है । उस जाति की प्रत्येक विशेषता, इस मूर्ति में अंकित है । नीचा मस्तक, चपटी नाक, कृष्ण-वर्ण, छोटी-छोटी आखें, झुके हुए कधे, लम्बी टागें और छोटी-छोटी परन्तु चपल भुजाए, अर्थात् उस जाति की सब बातें मूर्तिकार ने बहुत यत्न से यहा सत्य बना दी हैं। "

"यह किसी कुरूप पुरुष की सत्य मूर्ति हो सकती है, परन्तु इस कुरूपता का निरूपण करने के लिये मूर्तिकार ने अपनी कला का और शक्ति का अपव्यय नहीं किया है क्या ?"

"तुम अपने विचार से ठीक कहते हो कुमार ! परन्तु प्रकृति जैसी है उसको वैसा ही दिखा सकना कला का एक मुख्य उद्देश्य है । तुम आदर्शवादी हो। मैं प्रकृति में विचरने वाला जीव हू। तुम प्राप्त को निकृष्ट समझ त्याग करते हो, मैं भविष्य की चिन्ता न कर वर्तमान को लम्बे-लम्बे घूँट भर पीता हू।"

अभी बात समाप्त नहीं हुई थी कि दोनो वाटिका में जा पहुचे । घास के मैदान थे। पुष्पो की क्यारियां थीं। बीच-बीच में छोटी-छोटी पुष्करणिया बनी थीं, जिनमें जलप्रपात बहुत बारीक-बारीक फुआर फेंक रहे थे । घास के मैदानो में पुष्पित लताओ के निकुंज बने थे।

कुमार को वह मैदान बहुत पसन्द आया। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी और बहुत आनन्द अनुभव किया। पंडित ने उसके मन के भावों को अनुभव कर अनुमान लगा कर पूछा, "श्रीमान् विश्राम यहां करेंगे अथवा गृह के भीतर ?"

"जहां आप को रुचिकर हो।"

"तो पधारिये।" नाकेश कुमार को एक निकुंज में ले गया। वहां पत्थर की चौकियों पर मखमल के गद्दे लगे थे। पंडित ने कुमार को एक पर बैठने का संकेत किया और एक दूसरे पर स्वयं बैठ गया। बैठते हुए पंडित ने पूछा, "श्रीमान् क्या पान करेंगे सुरा, माधवी अथवा आसव ?"

"भगवन्! मैं तीर्थाटन करने आया हूं। इससे इन वस्तुओं का त्याग किये हुए हूं। साथ ही मुझ को मद्य पान में रुचि नहीं है। न ही यह हमारे यहां पीनी उचित समझी जाती है।"

"ठीक है। हम दोनों के दृष्टिकोण में भेद है। देखो कुमार! तुम गंगा में स्नान करते हो अपने पाप धोने के लिये और मैंने गंगाजल से सींच कर इस मनोहर उद्यान का सृजन किया है। तुम इसके जल का पूजन करते हो, मैं इससे माधवी प्रस्तुत कर पान करता हूं। तुम को इससे शीतलता मिलती है जिससे इन्द्रियां कुण्ठित हो संसार का स्वाद भूल जाती हैं और मैं इससे उत्तेजना प्राप्त करता हूं जिससे संसार का स्वाद मन भर कर पाता हूं।"

कुमार इस महापंडित की युक्तियां और मनोद्‌गार सुन कर चकित रह गया। इस समय एक अति सुन्दर युवति, सुन्दर आभरण पहिने, आई। नाकेश ने उसका परिचय कराया।

"यह मेरी धर्मपत्नी है। यह गन्धर्व देश के एक प्रकाण्ड विद्वान् सुमतिदेव की सुपुत्री मंदाकिनी देवी है और मेरी विचारधारा को श्रेष्ठ मानती है।"

"देवी," नाकेश ने अतिथि का परिचय कराया, "आप हैं अवन्ति के वर्तमान महाराज पालक देव के कनिष्ठ भ्राता कुमारदेव। तीर्थाटन करते

हुए काशी पधारे हैं। यहा आने पर इस क्षुद्र ब्राह्मण को दर्शन देने की कृपा की है ।"

मदाकिनी ने मुस्कराते हुए हाथ जोड नमस्कार किया और कहा, "अतिथिवर ! इस गृह की प्रत्येक वस्तु सेवा के लिये उपस्थित है ।" "आर्य," उसने अपने पति की ओर देखकर पूछा, "पूज्य अतिथि के मनोरजन के लिये क्या आयोजन किया जाये ?"

"जैसी श्रीमान् की रुचि हो। ये मद्यपान नहीं करते। इस कारण इनके जलपान के लिये शुद्ध गगा जल आवे । ये तीर्थाटन पर घर से निकले है। इस कारण निरामिष भोजन परसा जावे। सुन्दरिया नृत्य तो करें परन्तु इनको छूए नहीं। संगीत में शुद्ध साम वेद गान हो। आज पूर्णिमा है। रात्रि को जल विहार हो। अपना वजरा तैयार रहे। इनको गगा दर्शन मे मोक्ष मिलेगा। मुझको कथित स्वर्ग का स्वाद, इसी लोक में प्राप्त होगा।"

मदाकिनी ने मुस्कराते हुए कहा, "जैसे आर्य आज्ञा करें। इस पर भी इतना तो निवेदन कर देना ठीक रहेगा कि समाज की कृत्रिम श्रृंखलाओं में बधे हुए मानव को इस प्रकार झकझोरने से मुक्त नहीं किया जा सकता। इसको तो प्यार से, कोमल थपकिया देकर, नींद से जगाने की आवश्यकता है। एकदम झटका देकर जगाने से तो हृदय की गति भी रुक सकती है।"

"तुम इनको नहीं जानतीं मंदाकिनी देवी ! ये बहुत शूरवीर हैं। तीन वर्ष में तीन बार अवन्ति पर हुए आक्रमण को विध्वस करने वाली शूर सेना के ये शूर सेनापति रहे हैं। इनके भाई महाराज पालकदेव तो केवल भक्त व्यक्ति हैं। प्रात से सायं तक उपनिषदो की कथा सुना करते हैं। भोजन से पूर्व एक सहस्र मुद्रा नित्य दान करते हैं। आधी रात तक भगवत् भजन करते हैं। राज्य कर्म के लिये तो उनके पास समय ही नहीं। मन्त्री एक अन्य भक्त हैं। सब काम चौपट करते रहते हैं । इस दुर्व्यवस्था को देख मल्ल राज्य वाले आक्रमण करते हैं परन्तु कुमार सेनापति की चतुराई और शौर्यता के सम्मुख परास्त हो लौट जाते हैं।"

"परन्तु आर्य, जो लोहे से लडते हैं वे कोमलागो की लता समान मृदुल भुजाओं का वन्धन तोड नहीं सकेंगे । समुद्र में तैरने वाले, प्राय चुल्लू भर जल में डूब जाते हैं। इन पर दया करो भगवन् !"

इस विवाद को सुन कुमार हस पडा। एकाएक उसका ध्यान मदाकिनी के अभी तक खडे होने पर गया। उसने देखा कि वहा पर कोई तीसरा आसन नहीं है । इससे उसने खडे हो कर कहा, "क्षमा करें देवी जी ! आप आसन ग्रहण करें।"

"ओह ! मै तो भूल ही गया था।" पडित नाकेश ने उसको अपनी जाघ पर बैठने का सकेत कर दिया। मदाकिनी लपक कर पडित जी की वायीं जघा पर बैठ गयी।

कुमार विस्मय से दोनो का मुख देखता रह गया। पडित जी ने कह दिया, "श्रीमान् के विस्मय करने की कोई आवश्यकता नहीं । आपने कभी चित्रों में पार्वती को शिव जी की गोदी में बैठे नहीं देखा गया ?"

कुमार की पुन हसी निकल गयी। उसने कहा, "मै कहने वाला था कि देवी जी के मेरे आतिथ्य की चिन्ता करने से मेरा हृदय उनका अत्यत आभारी है परन्तु मै आज मध्यान्ह पश्चात् यहा से प्रस्थान करने वाला हू। मैं यह सब वैभव और ऐश्वर्य देख कर वहुत प्रसन्न हुआ हू। रात को सम्भवत इसकी पराकाष्ठा देखने को मिलती। इस पर भी यदि महापडित नाकेश इसका रहस्य वता दें तो मै उसको समझ कर देखने से अधिक सतोष प्राप्त कर सकूंगा।"

पडित ने प्यार से मदाकिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "रहस्य सरल है। इसके समझने के लिये वहुत वेद-शास्त्र पढने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति के अध्ययन ने एक नवीन मार्ग हमारे सामने उपस्थित किया है। इस मार्ग का वीज रूप में दर्शन महामुनि कणाद ने अपने वैशेषिक शास्त्र में कराने का यत्न किया है । उस वीज का विकास हो कर वृक्ष रूप में यह वाम मार्ग आप के सामने उपस्थित है । इतना सुन्दर, सुलभ और रसमय मार्ग अन्य कहीं नहीं है ।

"जीव प्रकृति की एक विशेष अवस्था का नाम है । जैसे चांद के बढ़ने-घटने से ज्वार उठता है, वैसे ही मनुष्य जीवन-निर्माण के समय उस पर नक्षत्रो का प्रभाव पडता है। जिस ऋतु में, जिस घड़ी में और नक्षत्र में बीजारोपण होता है, उस में मनुष्य के शरीर और बुद्धि पर उनका प्रभाव पडता है और वैसा ही मनुष्य बन जाता है । इसमें न किसी पूर्व जन्म की आवश्यकता है न पूर्व जन्म के फल की।

"न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिका ।
नैव वर्णाश्रमादीना क्रिया फल दायिका ॥

"जब पूर्व जन्म नहीं तो भविष्य के जन्म की भी आवश्यकता नहीं। यह संसार और उसमे यह जन्म ही सब कुछ है । इसी को सुखमय बनाने में यत्न करना कर्त्तव्य है ।

"सब लोग एक ही परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होते। इस कारण सब एक समान सफल नहीं हो सकते। इस पर भी जो इस जीवन को सुखमय बनाने में सलग्न हो जाते है, वे अपनी शक्तियो का अधिक से अधिक लाभ उठा कर अधिक से अधिक सुख संचय करते है। भावी जन्म न किसी ने देखा है न इसका प्रमाण है । यह कुछ चतुर जनो ने ससार को मूर्ख बनाने के लिये एक अति रहस्यमय गल्प का निर्माण किया है ।

"इह लोकात् परो नान्य. स्वर्गोऽस्ति नरका न च ।
शिवलोकादयो मूढै कल्पयन्तेऽन्ये प्रतारकैः ॥

"श्रीमान् समझे है कुछ ?"

"श्रवण किया है । मनन करूंगा और यदि समझ पाया तो कार्यान्वित करने में लग जाऊंगा।"

"एक ब्राह्मण का आशीर्वाद श्रीमान् के साथ है ।"

पश्चात् कुछ विचार कर पंडित नाकेश ने कहा, "एक वस्तु और दिखाता हू। शायद वह श्रीमान् की सेवा के योग्य हो सके।"

. ३

इतना कह पडित ने आवाज दी, "कोई है ?"

इससे निकुज के बाहर कुछ हलचल हुई और पडित ने दूसरी आवाज़ दी, श्वेताग को बुलाओ और आहार लाओ।"

एक युवति आई और मदाकिनी देवी के लिये तया एक अन्य व्यक्ति के लिये आसन लगा गयी। एक अन्य सेविका आयी और कुमार, नाकेश और इन दो आसनों के सामने चौकिया लगा गयी। मदाकिनी पडित जी की गोदी से उतर कर एक आसन पर बैठ गयी। इस समय एक अति सुन्दर बीस-बाईस वर्ष का सुडौल युवक निकुज के द्वार पर आकर, खड़ा हो गया। नाकेश ने उसको देख कर आवाज दी "श्वेताग, आओ! अतिथि अवन्ति के महाराज के भाई कुमार देव हैं। प्रणाम करो।"

"प्रणाम महाराज।" हाथ जोड रिक्त आसन पर, युवक बैठ गया। इस समय नाकेश ने नव आगन्तुक का परिचय दिया, "यह मेरा पुत्र श्वेताग है। वैशेषिक दर्शन का विद्वान् और राजनीति का कुशल विद्यार्थी है। गुरु के साथ हिमाचल पर्वत पर घूमने के लिये गया हुआ था। वहा अनेकानेक ऋषि-आश्रमों में विद्वानो की सगत से लाभ उठा अभी-अभी लौटा है। हमारी विचारधारा को भली भाति समझता है। मेरी अभिलाषा है कि इसकी सेवाओं से किसी उन्नत राज्य को लाभ पहुचे। मैं इसके लिये आपसे प्रार्थना करता हू कि इसको अपने राज्य में कार्य करने का अवसर दीजिये।"

कुछ समय तक कुमार इस प्रस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता रहा। पश्चात् बोला, "अवन्ति राज्य आप की इस भेंट के लिये आपका धन्यवाद करेगा। अन्तिम निर्णय तो अवन्ति के महाराज के हाथ में ही है। इस पर भी आप यदि इसको मेरे साथ चलने की अनुमति दें तो जहा मैं इसके लिये आपका कृतज्ञ रहूगा वहा इसकी उन्नति के लिये पूर्ण प्रयत्न करूगा।"

नाकेश ने श्वेतांग की ओर देख कर पूछा, "क्या विचार है ?"

"मुझ को अवन्ति के लिये अपनी सेवायें देने में अति हर्ष होगा और मैं तुरत चलने के लिये तैयार हूं।"

जब भोजन परसा गया और सब इस को ग्रहण करने लगे तो कुमार ने अपने मन में उठ रहे संशयों का समाधान करना चाहा। उसने पूछा, "श्वेतांग मंदाकिनी देवी के पुत्र प्रतीत नहीं होते।"

"नहीं! इसकी माता अब नहीं है।"

"तो यह आपका दूसरा विवाह है?"

इस प्रश्न पर नाकेश और मंदाकिनी दोनों हंस पड़े। इस हंसी पर कुमार विस्मय में उनका मुख देखता रह गया। इस पर भी उसके विस्मय का निवारण किसी ने नहीं किया। बात बदलने के लिये श्वेतांग ने पूछ लिया, "तो श्रीमान् कब लौट रहे हैं।"

"अवन्ति? मैं अभी तो अयोध्या जी, पश्चात् नैमिषारण्य, वहां से मुक्तेश्वर, हरिद्वार और फिर बद्रिकारण्य में अनेकानेक तपस्वियों और मुनियों के दर्शन करते हुए मथुरा वृन्दावन होते हुए उज्जैयिनी एक वर्ष तक पहुंचने का विचार रखता हूं।"

"क्या लाभ होगा इससे श्रीमान्!" नाकेश ने स्वादिष्ट भोजन को चबाते हुए पूछा।

कुमार इसका उत्तर अभी सोच ही रहा था कि श्वेतांग कह उठा, "दो चार जूते घिस जायेंगे। दस-बीस सहस्र स्वर्ण मुद्रायें कल्पना के जगत् में रहने वालों में बंट जायेंगी। अमूल्य जीवन का एक वर्ष व्यर्थ में व्यतीत हो जावेगा और तब तक मल्ल राज्य वाले पुनः आक्रमण की तैयारी पूर्ण कर लेंगे।"

कुमार श्वेतांग के इस व्यंगपूर्ण कथन को सुन कुछ कहने ही वाला था कि मंदाकिनी ने तिरछी दृष्टि से कुमार की ओर देखते हुए कहा, "प्रतीत होता है कि श्रीमान् का हृदय अभी किसी मृगनयनी की उलझन में उलझा नहीं।"

कुमार का मुख इस उलहाने से लाल हो गया। इस पर नाकेश ने कहा, "शायद श्रीमान् का चुनाव अभी अल्पवयस्क है, और उसके सज्ञान होने की प्रतीक्षा में तीर्थाटन कर रहे हैं।"

'ऐसी कोई बात नहीं भगवन्! मैंने दृढ निश्चय कर रखा है कि पैंतीस वर्ष की आयु तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। आपके आशीर्वाद से बीसियो सुन्दरिया अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिये उद्यत है, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा की अवधि में अभी पाच वर्ष और है।"

"तो ब्रह्मचारी जी महाराज!" मदाकिनी ने अपने सौंदर्य की पूर्ण शोभा कुमार पर प्रकट करते हुए कहा, "तो उन बीसियो सुन्दरियो को सुहाग से वचित रखने का पाप भी तो वहन करना पडेगा। कितनी ही उनमें तडप तडप कर अपना कलेवर जीर्ण कर चुकेगी।"

"उन बेचारियो पर मुझ को दया आती है।" नाकेश ने हसते हुए कहा।

"और आपको क्या मिलेगा महाराज?" श्वेताग ने गम्भीर और आदर-युक्त भाव में कहा, "युवावस्था का एक तिहाई भाग व्यर्थ की आदर्शवादिता में व्यतीत हो जावेगा। सभव है कि सयम की अति हो जाने पर आप किसी रोग में ग्रस्त हो जावें और शेष दो-तिहाई युवावस्था उस रोग से पीडित अवस्था में व्यतीत करने में विवश हो जावें।"

कुमार इस सभावना से चिन्ता अनुभव करने लगा, इस कारण वह चुप रहा और उसने किसी को उत्तर नहीं दिया। इस पर नाकेश ने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उसने कहा, "मुझ को बहुत प्रसन्नता होगी यदि महाराज आज की रात यहा मेरा आतिथ्य स्वीकार करें।"

"मै आपका बहुत धन्यवाद करता हू। परन्तु जब तक मेरे मन में निर्णय नहीं हो जाता कि मेरा मार्ग क्या है तब तक तीर्थाटन के व्रत को भग करने का विचार नहीं रखता।"

पश्चात् कुछ विचार कर कुमार ने कहा, "यदि श्वेताग इतने लम्बे भ्रमण पर मेरे साथ नहीं जा सकता तो आज से एक वर्ष पश्चात् वह उज्जैयिनी में निसकोच आ सकता है।"

४

कुमार जब नाकेश के गृह से अपने ठहरने के स्थान पर पहुचा तो वह अपने ब्रह्मचर्य के व्रत पर संदेह करने लगा था। उसके मन पर सबसे अधिक प्रभाव राजसभा में महाराज शूरसेन के एक सुकुमार बालक को जीवित चिता पर जलाने की आज्ञा देने का हुआ था। वह इस भयानक आज्ञा को स्मरण कर काप उठता था। इसके साथ-साथ श्वेताग के कटाक्षो ने भी अपना काम किया था। श्वेताग का कहना था कि वह सयम के अति हो जाने पर किसी रोग में ग्रस्त हो सकता है और शेष जीवन किसी रोग पीडा में व्यतीत करना पड़ेगा। यह एक और भयानक संभावना थी, जिसको वह सहन नहीं कर सका।

मध्याह्न में उसके मनमें विचार आया कि जिस स्त्री ने ब्राह्मण बालक को इस घोर दंड का भागी बनाया है उसकी और उसके पति की अवस्था को जानना चाहिये। क्या यह उचित नहीं कि वह स्वय महाराज के सामने उपस्थित हो अपने अपराध को स्वीकार कर बालक को मुक्त कर देने की प्रार्थना करे ? इस विचार के आते ही कुमार अपने दो भृत्यो को साथ ले मनोज के गुरु का निवास स्थान ढूंढता हुआ वहा जा पहुचा।

पडित भृगुदेव, यह मनोज के गुरु का नाम था, के घर पहुच कर कुमार देव ने देखा कि गृह के बाहर एक प्रौढ़ अवस्था का ब्राह्मण सिर से नगा, आखो से आंसू बहाता हुआ भूमि पर बैठा है। उसके समीप कुछ अन्य लोग तथा विद्यार्थी शोकातुर बैठे थे। कुमार उनको इस प्रकार बैठे देख विस्मय में कुछ अतर पर खड़ा रह गया। उसे खडा देख एक विद्यार्थी अपने स्थान से उठा और उसके समीप आकर पूछने लगा, "श्रीमान् ! किस प्रयोजन से पधारे है ?"

"पडित भृगुदेव से मिलने आया हूं।"

"पडित जी वह बैठे है। इस समय शोकातुर है। क्या कार्य है उनसे आपका ?"

"शोक का कारण क्या हुआ है ?"

"तो आप नहीं जानते ? शायद आप परदेसी है ?"

"क्या नहीं जानता ? मैं अवन्ति का रहने वाला हूँ।"

"तभी ! काशी में तो यह बात विख्यात हो चुकी है। माता जी से एक विद्यार्थी का अनुचित सम्बन्ध हो गया था। वह विद्यार्थी देश के नियमानुसार मृत्युदंड का भागी हुआ है और माता जी अपने को इस कृत्य से इतना अपमानित अनुभव करने लगी थीं कि उन्होने अपने ऊपर तैल डालकर अपनी हत्या कर ली है।"

कुमारदेव इस समाचार से चकित रह गया। वह मन में विचार कर रहा था कि इस स्त्री के पति ने अवश्य इससे घृणा की होगी तभी वह आत्म हत्या करने पर विवश हुई होगी। इस पूर्ण घटना पर मनन करता हुआ वह अपने पथागार, जहा वह ठहरा हुआ था, लौट आया।

आज की घटनाओं और नाकेश तथा श्वेताग के कथन ने उसको अपने भावी जीवन पर विचार करने पर विवश कर दिया।

कुमारदेव के रथ अयोध्या के लिये प्रस्थान करने के लिये तैयार खडे थे। वह अपने निश्चित आयोजन के अनुसार रथ पर बैठ अयोध्या की ओर चल पडा। उसके पीछे तीन रथों पर उसके भृत्य थे। रथ पर बैठा हुआ भी वह उस दिन की घटनाओ पर विचार कर रहा था।

उसको यह बात भली भाति समझ आ रही थी कि नाकेश की विचार-धारा के अनुसार न तो मनोज को दड मिलना चाहिये था और न ही ब्राह्मण स्त्री के लिये आत्महत्या करने की आवश्यकता थी। इस कार्य को एक स्वाभाविक कृत्य मान समाज को इस ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिये था।

इस विचार के आने पर उसको नाकेश पडित की आधारभूत बात स्मरण हो आई। उसने कहा था कि न भूत था न भविष्य होगा, वर्तमान ही सब कुछ है। ससार को सुन्दर, कल्याणमय और दीर्घ बनाना ही एक कर्तव्य है। इसी कारण वह अपने मार्ग को वाममार्ग कहता था। उसका

कहना था, कि उसका मार्ग अति सुन्दर है।

इस विचार ने उसके मन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह अयोध्या जी जा रहा था, परन्तु मन की वर्तमान अवस्था में वह इसकी निस्सारता को अनुभव करने लगा था। वह मन से पूछ रहा था कि इस सब में क्या प्रयोजन है? अध्यात्म ज्ञान के अर्थ ही क्या है, जब आत्मा नाम की कोई वस्तु ही नहीं? जब परलोक ही नहीं, तो साधु-संत-महात्माओं के दर्शन से क्या लाभ होगा?

एका एक उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वह एक व्यर्थ के प्रयास में अपना धन, समय और शक्ति का व्यय कर रहा है। न आत्मा है न परमात्मा। प्रकृति अपने स्वभाव से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हो रही है। प्रकृति जैसी प्रबल शक्ति के मार्ग में बाधा डालने से विपत्ति मोल लेने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

प्रकृति का नियम है कि निकटस्थ मार्ग से लक्ष्य-सिद्धि हो। न्यूनाति न्यून विरोध का मार्ग स्वीकार किया जावे। जब ऐसा ही है तो, उसके मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वह क्यो इस मार्ग का, जो समीपतम नहीं अथवा जो सुगम नहीं, अवलम्बन कर रहा है?

इस सब विचार के स्वभाविक परिणाम स्वरूप यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वह क्या करे? क्या मल्लो को अवन्ति पर अपनी राज्य सत्ता जमाने का अवसर दे दे। महाराज पालकदेव दुर्बल प्रकृति का मनुष्य है। वह युद्ध में विजयी नहीं हो सकेगा। अतएव प्रकृति के नियमानुसार दुर्बल को एक ओर धकेल दिया जाने दे। अथवा वह स्वयं राजसत्ता अपने हाथ में ले ले और मल्लो के भय को सदा के लिये निर्मूल कर दे।

कुछ भी हो, उसको व्यर्थ के तीर्थाटन में समय गंवाना नहीं चाहिये। अपने राज्य में चल कर अपने साथियों के लिये अथवा वहां के वीर बहादुरों के लिये सुख-शान्ति का मार्ग खोल देना चाहिये।

इस विचार के उत्पन्न होते ही उसने सारथि को आज्ञा दे दी, "रथ खड़ा कर दो।"

सारथि ने घोडों की लगाम खेंच ली । रथ रुक गया । पीछे आरहे रथ जब समीप आये, तो वे भी ठहर गये । कुमारदेव ने सारथि से पूछा, "काशी से हम कितनी दूर हैं ?"

"आठ कोस महाराज !"

"अगला पडाव कितनी दूर है ?"

"अभी दस कोस होगा ।"

"तो लौट चलो । हम रात काशी जी में व्यतीत करेंगे ।"

"महाराज क्या बात है ? स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

"मैं सर्वथा स्वस्थ हू । चिन्ता की कोई बात नहीं । मेरा विचार शीघ्र ही घर लौट चलने का हो गया है ।"

"महाराज, कल मध्याह्न तक अयोध्या जी पहुच जावेंगे । वहा से लौटने का सीधा मार्ग भी है ।"

"मैं वहा जाने में अब कोई लाभ नहीं समझता । लौट चलो ।"

५

काशी वापिस लौटने तक आधी रात जा चुकी थी । पूर्णिमा की चादनी छिटक रही थी । जिस गति से रथ गये थे उस गति से लौटे नहीं । इस कारण पहुचने में अनुमान से अधिक समय लग गया । जब ये लोग काशी में प्रवेश कर रहे थे, एक वृद्ध, हाथ में लाठी लिये तथा एक स्त्री और एक युवक रथों के लिये मार्ग छोड एक ओर हट कर खडे हुए दिखाई दिये । कुमार ने उनको देखा तो ऐसा अनुभव किया कि यह वही वृद्ध है जिसके पुत्र को प्रात राज्य परिषद् ने प्राण दड दिया था । वैसे ही वस्त्र, वह और उसकी स्त्री पहिने हुई थी जैसे राज्यसभा में उपस्थित अपराधी के माता-पिता पहिने थे । कुमार के मन में उनसे पूछने की इच्छा हुई । इस कारण उसने रथ खडे करने की आज्ञा दे दी ।

रथ खडे होते होते कुछ दूर निकल गये थे । अतएव कुमार ने भृत्य भेज उनको बुलाया । सेवक गये और उनको बुला लाये । जब वे रथ के

समीप पहुचे तो कुमार देव ने वालक को भी पहिचान लिया और आश्चर्य प्रकट कर पूछने लगा, "देवता! इस वालक को तो प्राण दंड दिया गया था न?"

"हा महाराज!" सेवको ने कुमार देव का परिचय ब्राह्मण को दे दिया था। ब्राह्मण ने वात समझाते हुए कहा, "काशीराज और महारानी ने इस पर दया कर इसे प्राणदड से मुक्त कर दिया है और देश-निर्वासन की आज्ञा दी है।"

"सत्य? प्रातः सभा में तो कुछ नहीं कहा था।"

"जी हां। तीसरे प्रहर वे महारानी सहित बंदी गृह में पहुचे और मनोज से कहने लगे। 'वालक तुम को जीवन दान दिया जाता है, जिससे तुम अपना जीवन समाज सेवा में लगा सको। तुम को हम दस वर्ष तक देश से निर्वासन की आज्ञा देते हैं। आठ प्रहर के भीतर काशी की सीमा के बाहर चले जाओ।'

"यह वालक तो शरीर को बदल देना चाहता था, परन्तु जब महाराज ने कहा, उन को हम वृद्धों पर दया आती है तो वालक हमारे लिये जीवित रहने के लिये उद्यत हो गया। महाराज ने इसको किसी दूसरे नगर में जा कर वसने के लिये एक सौ स्वर्ण मुद्रा भी दी है।

"हम तो इसके जीवन से निराश हो गये थे, परन्तु दिन के तीसरे प्रहर यह आया और हमने काशी छोडने की तैयारी कर दी।"

कुमार इस वृत्तान्त को सुन कर अवाक् मुख वैठा रह गया। वह ब्राह्मण और उसके परिवार के लोग नीचे भूमि पर खडे थे। कुमार को चुप देख ब्राह्मण ने हाथ जोड जाने की स्वीकृति मागी।

इस पर कुमार ने कहा, "उज्जयिनी में वसने के लिये चलोगे?"

"यदि आज्ञा हो तो वहां भी चल सकते है।"

"वहा आ जाओ और कुमारदेव सेनापति को पूछ लेना। मैं तुम को वसने में सहायता दूंगा।"

गये तो ब्राह्मण ने उत्तर का मार्ग छोड पश्चिम की ओर मुख कर दिया।

काशी के पथागार में पहुचते समय मध्य रात्रि का घडियाल बजा। उस समय विश्राम करने का निश्चय कर कुमार ने सेवको को विदा कर दिया। स्वय वह बिस्तर पर लेटा लेटा अपने जीवन को सुखमय और शोभनीय बनाने के लिये योजनायें बनाने लगा।

उसने श्वेताग को साथ ले चलने का निश्चय कर लिया। इस अर्थ उसने प्रात काल पुन नाकेश पडित के गृह का द्वार जा खटखटाया। नाकेश को इससे विस्मय नहीं हुआ। उसने द्वार पर आ कुमार का स्वागत किया और भीतर ले जाकर एक सुसज्जित आगार में बैठाया। "तो आप अयोध्या जी नहीं गये ? मै यही आशा करता था।"

कुमार मुस्कुराया और बोला, "आपने इस आशा का परिचय कल नहीं दिया था। इस पर भी आप की बुद्धिमत्ता की मै श्लाघा करता हू। वास्तव में मै नियत समत पर काशी जी से चल पडा था, परन्तु एक तो उस बालक को राज्य परिषद् की ओर से प्राण दड, दूसरे उस बालक की सहवासिनी की आत्महत्या ने मेरे मन में ऐसी उथलपुथल मचाई कि मै पडाव पर पहुचने से पहले ही लौट आया। इन्हीं विचारो में मै रात भर सो नही सका और अब वापिस उज्जयिनी लौट जाने का विचार कर लिया है। जाते समय आपके दर्शन करने और श्वेताग को साथ ले चलने के विचार से ही इस समय आपको कष्ट दिया है।"

"मुझ को आपके विचारों में परिवर्तन का समाचार पा अति प्रसन्नता हुई है। मै तो कल ही यह समझ गया था कि श्वेताग की चुभती हुई युक्तिया अपना प्रभाव उत्पन्न किये बिना नहीं रहेंगी। तो क्या मै अब आशा कर सकता हू कि श्रीमान् एक-दो दिन मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे ?"

"केवल एक ही शर्त पर कि श्वेताग मेरे साथ चलेगा और भगवान् मेरा पथ प्रदर्शन करेंगे।"

"किस विषय में ?" नाकेश ने पूछा।

"मेरे भावी जीवन के विषय में। मै तपस्या से उब गया हू और

श्रब जीवन का लक्ष्य सुख श्रौर शान्ति निश्चय कर उसकी उपलब्धि के लिये यत्न करना चाहता हू।"

"श्वेताग श्राप की सहायता करेगा। समय समय पर मै भी सेवा के लिये उपस्थित रहूगा। श्रापके इस निर्णय के लिये मै श्रापकी सराहना किये बिना नही रह सकता। दृढ़ निश्चय से ससार की कोई वस्तु भी नही, जो प्राप्त न की जा सकती हो।"

इस समय नाकेश के सूचना भेजने पर मदाकिनी श्रौर श्वेताग श्रागये श्रौर वे कुमार देव को श्रभी काशी में देख कर विस्मय करने लगे, "तो श्राप श्रयोध्या जी नहीं गये?" मदाकिनी देवी ने पूछा। पश्चात् उसने नाकेश की श्रोर देख कर कहा, "रात श्राप हमारे यहा होते तो जीवन सफल हो गया समझने लगते। सुरा श्रौर माधवी की यमुना श्रौर गगा बहने लगी थीं। काशीराज भी यहा विराजमान थे। सुख भोग तो वे भी करते हैं, परन्तु जहा हम इसको जीवन का ध्येय मानते हैं वहा वे इसको जीवन की भूल समझते है। ऐसी भूल वे प्रायः करते है श्रौर फिर भूल का शोधन जप सध्या इत्यादि से करते रहते हं।"

कुमार ने देखा कि मदाकिनी की श्राखें श्रभी भी श्रलसाई हुई है। इससे वह श्रनुमान लगा सकता था कि कितने लम्बे लम्बे घूंटो से उसने रात भोग विलास का श्रानन्द पिया है। इसके सर्वथा विपरीत श्वेतांग श्रौर नाकेश सतर्क श्रौर सजग थे। इस विषमता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वह उत्सुक था, परन्तु नाकेश ने बात बदल दी। उसने श्वेताग को सम्बोधन कर कहा, "श्वेतांग! महाराज कुमारदेव तुम को श्रपने साथ उज्जयिनी ले जाने के लिये श्राये हैं। ये श्रपने जीवन में कुछ कर दिखाने के लिये वहा जा रहे हैं। श्रौर तुम से उसमें सहायता चाहते है।"

"मैं श्रीमान् की सेवा के लिये तत्पर हू। कब चलना होगा?"

उत्तर कुमार ने दिया, "शीघ्रातिशीघ्र, जब श्राप चल सकें।"

नाकेश ने पुन कहा, "श्रीमान, दो दिन तक हमारा श्रातिथ्य स्वीकार कर रहे है। तब तक तुम श्रपनी तैयारी कर लो।"

कुमार देव की आयु तीस वर्ष की हो चुकी थी और इस भावना के आश्रय कि उस ने पैंतीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहना है, वह अनेको प्रलोभनो से वचता चला आया था। उसका यह कहना सत्य था कि अनेको सुन्दरियें उससे विवाह करने को उद्यत थी परन्तु वह ब्रह्मचर्य की महिमा पर मोहित, विवाह टालता चला आता था। नाकेश की जीवन-मीमासा ने उसके व्रत भग करने में युक्ति उपस्थित कर दी। वह हिम आच्छादित पर्वत के शिखर पर पहुचा तो नाकेश ने पर्वत के चरणो में सुन्दर हरी भरी घाटी का दर्शन करा दिया। उसको समझ में आगया कि शिखर की शीत में ठिठुरने में लाभ नहीं। नीचे सुख-सुविधा सम्पन्न घाटी में चलना चाहिये। उसके फल फूलो से भरे उद्यानो में रमण करना चाहिये। वहा की सुरभित उष्ण वायु का स्वाद लेना चाहिये। वह शिखर से वादी की ओर चल पडा। वह चला तो फिसल गया। दो राते जो उसने नाकेश के निवास स्थान पर व्यतीत कीं वे उसमें भारी अतर उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुई।

रात व्यतीत हो जाने के पश्चात् जब वह सोकर उठता तो ऐसा अनुभव करता जैसे वह एक विराट स्वप्न से जगा है। उस स्वप्न में वास्तविकता और स्थायी कुछ भी नहीं होता था। इस पर भी जब तक वह स्वप्न रहता था वह इतना सुख और आनन्द अनुभव करता था कि उससे बाहर होने पर वह वियोग अनुभव करने लगता था और पुन उसको प्राप्त करने के लिये लालायित रहता था। इस काल में उसको पूजा-पाठ और भक्ति-भावना की विचित्र व्याख्या मिली। वह अनुभव करने लगा कि सुख-वासना पर मन केन्द्रित करना कितना सुगम है ? पलक की झपक में दो दिन व्यतीत होगये।

एक बार तो वहा से विदा होने मे उसके हृदय में टीस उठी, किन्तु यह विचार कर कि वह शीघ्र ही अपने नगर मे पहुच अपने जीवन के इस नवीन अध्याय को चालू करने वाला है, उसको सतोष हुआ था। श्वेताग और कुमार एक ही रथ पर बैठ दिनों के पीछे दिन, भावी योजनाओं पर विचार करते हुए पश्चिम की ओर चलते गये।

श्वेतांग ने उसको बताया, "सुख और शाति चाहिये, परन्तु इनकी

प्राप्ति के लिये साधनो की आवश्यकता होती है और साधन जुटाने के लिये किसी न किसी को मेहनत करनी पड़ती है । जो मेहनत करेगा उसको कष्ट होगा और कष्ट करने वाले को न सुख मिलेगा न शान्ति ।

"इस कारण सुख प्राप्ति का रहस्य है दूसरों को कार्य पर लगाना और उनके मन में ऐसी भावना उत्पन्न कर देना कि वे कष्ट भोगने में भी सुख अनुभव करने लगें। इस कर सकने का नाम ही राज्य कला है ।"

इस भूमिका के साथ उज्जयिनी की राज्य-व्यवस्था पर विचार विनिमय होने लगा ।

: ६ :

उज्जयिनी भारत में विज्ञान की राजधानी थी। ज्योतिष, भूगोल, भूगर्भ विद्या, रसायन इत्यादि अनेक प्रकार के विज्ञानो के विद्वानो का वह केन्द्र था। घडी, पल, मुहूर्त्त इत्यादि जैसे यहा के विद्वान् निश्चय करते थे, वैसे पूर्ण ससार में माननीय होते थे । देश, विदेश से विद्वान् लोग यहां पढने आते थे और उच्च कोटि की विद्या यहा से प्राप्त कर जाते थे।

यह नगरी विशाल भवनो और गगनभेदी मन्दिर-कलशो के लिये विख्यात थी। अवन्ति राज्य धनधान्य से भरपूर और सुख-सम्पदा से सम्पन्न था। सुखी जनता नित्य ज्ञान, ध्यान की वृद्धि में लीन, नये आविष्कारो के करने में यत्नशील रहती थी।

महाराज पालकदेव और उनसे पूर्व उनके पिता की यह इच्छा रहती थी कि अवकाश का समय, जो विज्ञान में उन्नति के कारण जनता को मिल रहा था, धर्म, कर्म और परमात्मा की उपासना में व्यतीत हो। इसके लिये राज्य की ओर से वडे-वडे यज्ञ, सत्र, कथा, कीर्तन होते रहते थे। महाराज पालकदेव ने अपने काल में दो महान धार्मिक सम्मेलन भी बुलाये थे, जिनमें उन्होंने पूर्ण परिचित ससार से विद्वानो को आमन्त्रित किया था। इन अवसरो पर वृहद् यज्ञ कर अपना सर्वस्व दान कर दिया था। महल खाली कर दिये थे। अपनी पत्नी तथा राजकुमार के साथ न्यूनतम वस्त्र पहिन शेष सब लोक-हित, विज्ञानोन्नति और ब्राह्मणो के पालन-पोषण के लिये दे

दिया था। राज्य-भवनो को भी लोक-हित कार्यों में लगा अपने निवास के लिये नये भवन बनवाये थे।

महाराज पालकदेव की धर्मनिष्ठा और सत्यभावना न केवल अवन्ति राज्य के भीतर विख्यात थी, प्रत्युत देश-देशान्तर में भी इसकी धूम थी। जो वस्तु विस्मयजनक थी वह, धन का सेना और दुर्गों पर व्यय न होकर भी मल्लों के तीन आक्रमणो का विफल किया जाना था। सब धन मन्दिरों और विज्ञान-भवनो पर व्यय हो रहा था।

नियमित सेना बहुत कम थी, परन्तु पूर्ण जनता राज्यभक्त थी और आक्रमण के समय सब लडने-मरने पर तैयार हो जाते थे। कुमारदेव के नेतृत्व में, यह छोटी सी सेना प्रजा की सहायता से मल्ल राज्य की भारी सेना को परास्त कर कीर्तिलाभ कर चुकी थी। इससे कुमारदेव की राज्य में बहुत महिमा थी। पालकदेव भी अपने छोटे भाई का बहुत मान करता था। इस कारण जब वह तीर्थ से, समय से पूर्व, लौट आया तो सबको चिन्ता हुई कि कहीं वह बीमार न हो गया हो। महाराज पालकदेव ने सुना तो तुरत अपने महामात्य को उसके भवन में भेज कर समाचार मगवाया।

कुमारदेव एक पृथक् भवन में रहता था। यह भवन विशालता में और सौन्दर्य में महाराज के भवन से कुछ ही कम था। कुमार देव यद्यपि अविवाहित था तो भी इस भवन में रणवास था, जो अभी तक खाली पडा था। इसके आगार, इनमें बसने वालो की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके अन्य भागो में सेना के कुछ कर्मचारी रहते थे।

महामात्य कुमारदेव का समाचार लेने गया और उसने आकर बताया, "महाराज कुमारदेव सब प्रकार से स्वस्थ हैं और दो-तीन दिन तक विश्राम करने के पश्चात् सेवा में उपस्थित होंगे। महाराज! "

महामात्य कहता-कहता रुक गया। उसको अपना वाक्य समाप्त किए बिना ही चुप करते देख महाराज ने पूछा, "चुप क्यों कर गए महामन्त्री!"

"महाराज! क्षमा चाहता हूँ। बात साधारण है। उसमें किसी प्रकार

का वैचित्र्य नहीं। कुछ खटकी इस कारण है कि यह सब अवन्ति के लिए नवीन है। महाराज कुमारदेव कई वस्तुए अपने साथ लाये है। वे वस्तुएं अवन्ति में निकृष्ट मानी जाते है।"

महाराज पालकदेव चिन्ता अनुभव करने लगे थे और व्याकुलता से पूछने लगे, "हां! हा! बताओ महामात्य! कैसी वस्तुए है जो यहाँ उपादेय नहीं मानी जातीं और कुमारदेव कष्ट कर अपने साथ ले आये है?"

काशी से चार्वाकीय पडित, वैशाली से कुशल माघवी-निर्माता, लक्ष्मणपुर मे नर्तकियाँ और यवन देश के मूर्तिकार।"

"हमारे देश में इन वस्तुओं का अभाव था। सो कुमारदेव पूरा कर रहे है। इसमें विस्मय करने की बात कुछ नहीं।"

"ठीक है महाराज! परन्तु तीर्थयात्रा पर गए व्यक्ति के लिए ये वस्तुए लेकर लौटना अवश्य आश्चर्यजनक है। ये मन की एक अवस्था की सूचक है, जो उस मार्ग की ओर आह्वान करती है, जो हमारे यहा अनुसरणीय नहीं।"

"महामात्य! मैं तुम्हारी दूरदर्शिता की सराहना करता हूं। परन्तु उन सभावित दुर्घटनाओ को, जिनकी तुमको आशका है, घटने से रोकने के उपाय करो। तुम अवन्ति को और यहां के गणमान्य जनो को रुई में लपेट कर नहीं रख सकते। आस-पास के देशो में चल रहे चलन से अस्पृश्य कैसे रख सकोगे इनको?

"देखो! कल मैं कुमारदेव से भेंट करूगा। पश्चात् उसके मन के रोग का निदान कर चिकित्सा कराने का यत्न करूगा।"

अगले दिन महाराज पालकदेव कुमार के प्रासाद में जा पहुचे। कुमारदेव अभी सोकर नहीं उठा था। रात तीसरे प्रहर तक नाच-रग और मद्यपान होता रहा था। इससे कुमार प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न अपने शयनागार में पड़ा था।

पूर्ववत् महाराज जब उसके शयनागार में जाने लगे तो एक युवति शयनागार के द्वार पर मार्ग रोक कर खडी हो गई। महाराज के साथ आये

कर्मचारियों ने उस युवति को कहा, "मार्ग छोडो देवी ! ये सेनापति के ज्येष्ठ भ्राता अवन्ति अधिपति महाराज पालकदेव हैं।"

"मुझको आज्ञा है कि किसी को भी भीतर न जाने दूं।" युवती ने झुक कर नमस्कार करते हुए कहा।

"धन्य हो देवी ! हम तुम से अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुम्हारी इस कर्त्तव्य परायणता पर हम तुमको पुरस्कृत करते हैं। यह लो," इतना कह महाराज ने अपने गले मे एक मुक्ताहार निकाल कर युवति को भेंट स्वरूप दे दिया। युवति ने हार हाथ मे ले झुक कर प्रणाम कर दिया।

"अच्छा तो जाओ। अपने प्रभु से हमारे आने की सूचना कर दो। हम बाहर के आगार में भाई की प्रतीक्षा करते हैं।"

युवति ने पुन झुक कर प्रणाम किया। महाराज बाहर एक आगार में बैठ गये। वहा एक अति सुन्दर युवक को आगे बढ कर आशीर्वाद देते देख,समझ गये कि काशी से कुमार के साथ आया चार्वाकीय पडित यही है। इस पर भी महाराज ने पूछा, "हमने आप को पहिले यहा नहीं देखा ?"

"महाराज ठीक कह रहे हैं।" श्वेताग ने आदर से सम्मुख खडे-खडे कहा, "मै कल ही इस नगर में आया हूँ और पहिली वार ही महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मै महर्षि चार्वाक के परशिष्य श्री महापडित नाकेश का आत्मज हूँ।"

"हम अवन्ति का सौभाग्य मानते है कि आप यहा पधारे है। महापण्डित नाकेश का नाम आज भारत-खड में विख्यात है। उनके पुत्र का मैं यहां स्वागत करता हू। आइये पधारिये।" महाराज ने एक रिक्त स्थान की ओर सकेत करते हुए कहा।

श्वेताग रिक्त स्थान पर बैठ गया और बोला, "उज्जयिनी के विद्वानों के पालक अवन्ति महाराज की यदि कृपा रही तो कुछ काल यहा रह कर अनुभव लाभ करने की इच्छा रखता हू।"

"काशी के महापडित के सपुत्र अवन्ति के विद्वानो की जब इतनी प्रशसा करते है, तो ऐसे राज्य का महान सेवक होने का मै अभिमान कर सकता हू।

पडित श्वेताग को उज्जयिनी के एक शिष्ट नागरिक होने का अधिकार प्राप्त हो। यह मेरी आज्ञा है ।"

श्वेतांग को पालक देव में उच्च कोटि की सभ्यता, सौजन्य और सुहृदयता का परिचय मिला। इससे उसके मन में उस सब योजना पर, जो वह मार्ग में कुमारदेव के साथ बनाता हुआ आया था, दुःख अनुभव होने लगा। परन्तु यह स्मरण कर कि ससार में सबल और योग्य लोगो के लिये ही स्थान है, वह अपना मन कडा कर अपने कृतज्ञता के उद्‌गारो को दबाने लगा। रात कुमारदेव ने उससे कहा था कि वह अवन्ति में नवीन युग आरम्भ करना चाहता है, जिससे मनुष्य मात्र में आत्मनिर्भरता का विकास हो। कोई किसी के अधीन न हो और सब को ससारिक सुख और वैभव प्राप्त हो। वह चाहता था कि उज्जयिनी को भारत का सर्वश्रेष्ठ नगर बना दे जिसके दर्शन मात्र के लिये ससार भर के लोग आवें। कुमार-देव ने श्वेताग को अपना प्रधानमंत्री बनाना निश्चय किया था और श्वेताग ने कुमार देव को अवन्ति का राज्य दिलाने का वचन दिया था।

रात भर वह इस क्रान्ति के लिये योजनायें बनाता रहा था और अब महाराज पालकदेव से मिल कर उसका विचार इस विषय में शिथिल पड़ने लगा था, परन्तु अपने पिता के वचन स्मरण कर वह पुन अपने मन को कठोर बनाने लगा।

उसके पिता का सिद्धात था, कि मनुष्य अन्य सब प्राणियो की भाति अपने शारीरिक सुख-सुविधा के लिये प्रयत्न करता है। यदि किसी की चिकनी चुपडी बातो का अर्थ उस सुख-सुविधा को छीनने का हो, तो उसका विरोध करना ही चाहिये ।

इस प्रकार अपने मन को सुदृढ कर उसने पुन महाराज से वार्तालाप आरम्भ कर दिया, "आप जैसे श्रीमान् की सेवा के लिये मुझ को शिक्षा दी गयी है। मैंने राजनीति और लोक-नीति का अध्ययन किया है। इसी कारण श्रीमान् कुमारदेव मुझ को साथ लाये है।"

"अहोभाग्य है हमारी इस नगरी के। मै आपको राज्य-परिषद् में

पधारने का निमत्रण देता हू और यदि वहा का कार्य आपको रुचिकर हुआ तो उसमें आपको स्थान मिल जावेगा।"

"यह सब श्रीमान् कुमारदेव महाराज की इच्छा पर निर्भर है।"

इस समय कुमारदेव अलसाई आखों के साथ वहा आ उपस्थित हुआ। कुमार देव ने महाराज के चरण-स्पर्श किये और महाराज ने उसको उठा कर गले से लगा लिया।

"कुमार!" महाराज ने कहा, "शीघ्र लौट आये हो। स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

"हां दादा! काशी में इन के पिता महापडित नाकेश से मिलने का सौभाग्य मिला और उनके सद्-उपदेश से मेरे मन को यह प्रेरणा मिली कि तीर्थयात्रा से अधिक उपकारी कार्य करने को यहा पर है। मुझको उज्ज-यिनी को सुन्दर और सब प्रकार से सुखदायिनी बनाना है। मैंने अपनी यात्रा में अनेकों नगर देखे हैं और उनको देख उज्जयिनी बहुत घटिया प्रतीत हुई है। वहा के नागरिकों के वस्त्र, भूषण, गृह और नगर के सार्वजनिक भवन, आगार और वहा की सार्वजनिक सस्थायें देख मेरे मन में ईर्ष्या होने लगी है। मेरे मन में आया कि इस यात्रा में आयु व्यर्थ खोने के स्थान पर यहां कार्य करना अधिक लाभकारी होगा।"

७

महाराज को कुमारदेव की बातों में कोई दोष प्रतीत नहीं हुआ। उसकी सद्भावना पर विश्वास कर, उसके देशोन्नति के लिये चिन्ता करने से महाराज को सतोष ही अनुभव हुआ। इस कारण कुमारदेव के तीर्थयात्रा से लौट आने पर राज्य में एक भारी उत्सव मनाने का आदेश दे दिया।

महारानी पद्मावती से महाराज ने जब महामात्य की आशका का वर्णन किया तो महारानी का कहना था कि कुमार का विवाह शीघ्र होना चाहिये। उसके लिये भारत-खड में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ढूंढनी चाहिये। तब ही वह वेश्याओं के मोह-जाल से छुटकारा पा सकेगा। अन्यथा ब्रह्म-चर्य भग हुए मनुष्य की अवस्था अति हीन और पतित हो जानी स्वाभाविक है।

महाराज ने इस बात को समझा और इसके लिये राज्य-परिषद् का अधिवेषन बुला लिया। इस परिषद् में महारानी पद्मावती भी उपस्थित थी।

कुमार सेनापति होने के अधिकार से राज्य-परिषद में आया था। महाराज पालकदेव के विशेष निमंत्रण पर श्वेतांग को भी उसमें बुलाया गया।

विचार-विनिमय उत्सव से आरम्भ हुआ। महाराज का आशय तो बहुत साधारण था। उनका कहना था कि एक बृहद् यज्ञ किया जावे। ब्राह्मणो के लिये भोजन-वस्त्र, दान-दक्षिणा इत्यादि का प्रबन्ध किया जावे। विद्वानो को सत्कारार्थ उपाधियां प्रदान की जावें और जनसाधारण के लिये खेल, तमाशे और भोजन का प्रबन्ध हो।

राज्य-परिषद् ने महाराज की योजना की सराहना की, परन्तु कुमारदेव ने इसमें अपना सुझाव, जो वह घर से ही विचार कर लाया था, बताया। उसने कहा, "यज्ञ तो यहां सदैव होते हैं। बडे-बडे यज्ञ भी यहा कई हो चुके हैं। उनपर इतना खर्च हो जाता है कि राज्य कोष में एक रजत भी नहीं रहती। इससे देशोन्नति की योजनायें चल नहीं सकीं। इस कारण मै यज्ञ करने को पसन्द नहीं करता।"

इस पर महामात्य सुदर्शन का प्रश्न था, "क्या सेनापति यज्ञ को देशोन्नति नहीं समझते ?"

"मुझको इसमें कोई लाभ की बात प्रतीत नही होती। सैंकडो मन घी, सहस्रो मन सामग्री और पेट भर खाये हुओ को खाने को खीर, जिन घरो में कपडो के अम्बार लगे हो उनको कौशेय वस्त्र, जिनके पास गौओ की भरमार हो उनको ही और गौएं देना, यह सब व्यर्थ है। इसका कुछ लाभ नहीं है।"

"परन्तु श्रीमान् को यह बात विस्मरण नहीं कर देनी चाहिये कि यज्ञो में सम्मिलित होने से आत्मोन्नति होती है। आत्मा मनुष्य में शक्ति का अधिष्ठाता है। इसके उन्नत हुए बिना, शरीर कुछ भी अर्थ नहीं रखता।"

"आत्मा है। इसका क्या प्रमाण है ? जो है नहीं उसको उन्नति ः कुछ अर्थ नहीं। असत्य वस्तु की उन्नति असत्य ही हो सकती है । इस· लाभ भी असत्य ही होगा। सत्य है यह ससार और ससार है भोजन, वस्त्र सुख, सुरक्षा। इनकी उपलब्धियो में ये यज्ञ साहायक नहीं हो सकते।"

इस विवाद को वद करते हुए महाराज ने कहा, "यह परिपद् इस कार्य के लिये नहीं बनी। इसमें आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व पर विवाद के लिये स्थान नहीं है। राज्य परिषद् तो उन निर्णयो को मानेगी जो विद्वान् लोग इन विषयो पर देंगे। रहा आगामी उत्सव का कार्यक्रम। यह उत्सव कुमार के सम्मानार्थ मनाया जा रहा है। इस कारण इसमें कुमार की रुचि के अनुसार ही कार्य होना चाहिये।" इस आज्ञा के पश्चात् अब किसी को कहने को कुछ नहीं रहा था। पूर्व प्रथा के अनुसार इस उत्सव पर एक लक्ष स्वर्ण व्यय करने का निश्चय किया गया।

इस समय श्वेताग ने कहा, "यदि मुझ को कुछ कहने की स्वीकृति दी जावे तो मै यह निवेदन करना चाहता हू कि इस उत्सव का प्रबध श्रीमान् सेनापति जी को स्वय करने को दे दिया जावे। अन्य किसी का इसमें हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये।"

"हम को यह स्वीकार है।" महाराज का कहना था।

इस समय महारानी पद्मावती ने कुमार के विवाह का प्रस्ताव कर दिया। इस प्रस्ताव पर महामात्य ने कहा, "लडकी ढूढने का कार्य आरम्भ होना चाहिये।"

"लडकी तो है, परन्तु उसको स्वीकार कौन करेगा ?"

"राज्य-परिषद्।" महामात्य का कहना था।

"इस विषय में मैं स्वतत्रता चाहता हू।" कुमार का आग्रह था।

महाराज ने इस समय फिर सुझाव दिया। "शास्त्र से स्वयवर का अधिकार लडकी को होता है। परन्तु प्रथा से राज्य परिवार के सदस्यों का विवाह राज्य-परिषद् के अधीन हो गया है।

इसके उत्तर में कुमार ने कहा, "मैं अपनी स्वतन्त्रता के नाते यह अधिकार अपने अधीन रखना चाहता हूं।"

न्यायाधीश प्रबोध ने महाराज पालकदेव के मत का समर्थन किया। उसने कहा, "कुमार को अपनी अर्धांगिनी निर्वाचित करने का अधिकार मिलना चाहिये, परन्तु इनकी पत्नी का आदर-सत्कार और मान-मर्यादा का तो राज्य-परिषद् ही निश्चय कर सकती है। यदि राज्य-परिषद् को कुमार-देव की पत्नी, किसी कारण से ठीक समझ न आयी तो उसको महारानी का पद नहीं मिल सकेगा। साथ ही सेनापति का पद किसी अन्य को देने की बात भी हो सकती है।"

श्वेतांग ने इस समय पुन वार्तालाप में भाग लिया और कहा, "न्यायाधीश महोदय का कहना यथार्थ है। यदि सेनापति अपना विवाह अपनी इच्छा से करना चाहते हैं तो उनका अधिकार नहीं रह जाता कि अपनी पत्नी को बिना राज्य-परिषद् की स्वीकृति के महारानी की पदवी से अलंकृत करें। परन्तु यह बात तो विवाह के पश्चात् देखी जावेगी। अभी तो विवाह के लिये लडकी का निर्वाचन करना है। महारानी जी जिस लडकी के लिये कह रही हैं उसको श्रीमान् कुमारदेव जी की स्वीकृति के लिये लावें।"

इस प्रकार कुमारदेव के तीर्थयात्रा से लौटने का उत्सव होना तो निश्चय हो गया परन्तु विवाह की बात स्थगित हो गयी। कुमारदेव ने उत्सव की तैयारी के लिये श्वेतांग को नियुक्त कर दिया।

उत्सव की विधि निश्चित हुई और कार्यक्रम बन गया। इस उत्सव से अवन्ति में नवीन युग का आरम्भ हुआ और इसमें वे बातें करने का निश्चय हुआ जो सैकड़ों वर्षों से इस राज्य में नहीं हुई थीं।]

कार्यक्रम की घोषणा हो गई। एक दिन कुमार देव प्रजा-परिषद् का उत्सव करेंगे और प्रजागण कुमार को भेंट देंगे। उसी दिन मध्याह्न पश्चात् कुमार देव की सवारी निकलेगी जिसमें सेना का प्रदर्शन होगा।

सायकाल नगर की सजावट होगी और लोग दीपमाला करेंगे । स्थान-स्थान पर नृत्य और सगीत के प्रदर्शन होगे ।

एक सप्ताह पूर्व से उज्जयिनी के विज्ञान भवन में अवन्ति के शिल्पियो से निर्मित विशेष वस्तुओं का प्रदर्शन होगा । सर्वोत्तम वस्तु निर्माण करने वाले को पुरस्कार दिया जावेगा । इसी प्रकार उस उत्सव में नृत्य और सगीत की प्रतियोगिता होगी और उच्च कोटि का नृत्य तथा सगीत करने वालो को पुरस्कार दिये जावेंगे ।

इस प्रकार पूर्ण कार्यक्रम में भगवद् भजन, दान-दक्षिणा, पूजा, यज्ञ, उपासना अथवा वेद-शास्त्रों के विद्वानो का नाम तक नहीं था । कार्यक्रम की तैयारी आरम्भ हो गयी । जो वस्तु अवन्ति में उपलब्ध नहीं थी उसके लिये विदेशों में लिखा गया, दूत भेजे गये और भारी पुरस्कारो का प्रलोभन दे कर वे वस्तु मगवायी गयीं ।

इस तैयारी के साथ-साथ श्वेताग ने अवन्ति और भारत-खण्ड के अन्य भागो से कलाकारों, शिल्पकारों और व्यापारियो के प्रतिनिधियो को वुला कर, इस उत्सव का महत्व और उससे उनको लाभ होने की वात वतायी । वह कहता था, "परस्पर प्रतियोगिता होगी, जिससे आपके व्यवसाय में उन्नति होगी और आपको लाभ होगा ।"

जौहरियो को भूषण, ताम्बे और पीतल के वर्तन वालों को अपने वर्तन, यन्त्रादिक वनाने वालों को यन्त्र, स्वादिष्ट भोजन वनाने वालो को मिठाई प्रदर्शनी में लाने को कहा गया । इसी प्रकार जीवन में प्रयोग के प्रत्येक पदार्थ वनाने वालो को इस उत्सव में आकर अपने कला-कौशल का प्रदर्शन करने के लिये वुलाया गया ।

सेनानायको को अपने वीर युवा सैनिकों को ला कर खेल-कूद तथा वाण चलाने की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये कहा गया ।

जैसे वर्षो से सूख रहे घास में एक चिन्गारी सव को प्रचण्ड अग्नि में लिप्त कर लेने की सामर्थ्य रखती है, वैसे ही जीवनोपयोगी वस्तुओं और ललित कलाओं में प्रतियोगिता की वात भी लोगों ने ग्रहण कर ली ।

जब स्वार्थ सिद्धि की आशा मन में बन जाये तब मनुष्य में जो स्फूर्ति आती है वह अवन्ति की जनता में सूखे जंगल में आग के समान फैल गयी। घर-घर में यह चर्चा चल पड़ी। जनता में असीम उत्साह और प्रसन्नता दौड़ गयी।

महाराज पालक देव और महारानी पद्मावती को भी इसमें कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं हुई। केवल महामात्य सुदर्शन को इस योजना में छिद्र दिखाई दिये। उसने महाराज के समक्ष अपने सदेहों को उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "महाराज! जब से श्रीमान् के परिवार का राज्य इस देश में स्थापित हुआ है, तब से ही राज्य के प्रत्येक कार्य में परमात्मा को मुख्य मान उससे ही कार्यारम्भ किया जाता रहा है। हम आस्तिक हैं और प्रत्येक कार्य में भगवान् को ही कारण मानते हैं। इससे प्रत्येक शुभ कार्य में उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और प्रत्येक अशुभ कार्य में भगवान के कोप की शान्ति के लिये प्रार्थना करते हैं।"

"ठीक है महामात्य! यह तो तुम इस कार्य-क्रम में अभाव की बात कह रहे हो न? इसमें कोई बुराई की बात तो नहीं है।"

"वह भी है महाराज! आप के स्वर्गीय पितामह ने अवन्ति में मद्यपान और मद्य निर्माण का निषेध किया हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश में मद्य बनाने वाले ही नहीं रहे थे। अब पडोस के राज्यो से मद्यनिर्माता बुला कर उनसे बनाई मद्य में भी प्रतियोगिता होगी।"

"सब देशो में यह पी जाती है। इसी कारण आज वर्षों हुए मैंने इस के पीने में निषेध की आज्ञा वापिस ले ली थी। इस पर भी इसके पीने और बनाने वाले पैदा नहीं हुए थे। अब भी निर्मित मद्य में प्रतियोगिता इस के प्रसार में सहायक नहीं होगी। एक व्यक्ति मद्य पीता तब है, जब उसके मन में विकार उत्पन्न हो जाता है। हमें जनता के मन में विकार उत्पन्न होने नहीं देना चाहिये।"

"परन्तु महाराज, जब कुमारदेव स्वयं स्वाद ले-ले कर यह निर्णय देंगे कि कौन सा मद्य पुरस्कार पाने योग्य है तो लोग पीयेंगे। यदि आज

तक पीने की प्रथा इस राज्य में नहीं चली तो वह इसलिये कि राज्य परिवार के लोग इसको छूते तक नहीं थे।"

"यही तो मैं कह रहा हू कि मद्य-निर्माण के विषय में प्रतिबन्ध से कुछ लाभ नहीं होगा। यदि मद्य पीने की प्रथा के प्रसार को रोकना है तो कुमार देव को समझाओ कि इसके पीने से हानि होगी।"

महामात्य को उत्सव के विषय में और भी बहुत सी बातें कहनी थीं, परन्तु जब उसने देखा कि महाराज उसकी बात समझने का यत्न ही नहीं कर रहे तो चुप कर रहा।

८

कला-कौशल के प्रदर्शन के लिये एक विशाल व्यवसाय गृह निर्माण किया गया, जिस में एक सौ से ऊपर आगार थे। उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ प्रदर्शन के लिये रखे गये थे।

जहा उस व्यवसाय-गृह में पदार्थ-प्रदर्शन का भाडा लिया जाता था वहा उनकी बिक्री से पदार्थ लाने वाले को लाभ भी होता था। इस बिक्री पर भी राज्य कर लेता था। इसका परिणाम यह हो रहा था कि जहा पीतल-ताम्बे के बर्तन, सोने-चान्दी के भूषण, सोने चादी से काढ़े गये वस्त्र, स्त्रियों के आभरण, तलवार, भाले और अन्य प्रकार के शस्त्रास्त्र खूब बिक्री किये जा रहे थे, वहा मद्य और मास के पकवान, सुन्दर सुडोल गाय, भैंस, बकरी, अश्व तथा हाथी की बिक्री भी हो रही थी। सबसे अधिक आकर्षण वहा था जहा दास और दासियो का क्रय होता था।

एक अन्य गृह में नृत्य और सगीत की प्रतियोगिता का प्रबन्ध कर दिया गया था, एक खुले मैदान में खेल-कूद, मल्लयुद्ध तथा धनुष-बाण चलाने इत्यादि का प्रदर्शन हो रहा था। यहा न केवल कलाकारो और मल्लयुद्ध इत्यादि में भाग लेने वालो से शुल्क लिया जा रहा था, प्रत्युत प्रतियोगिताओं को देखने वालों से भी शुल्क लिया जाता था।

उत्सव को देखने के लिये देश-देशान्तर से धनी-मानी लोग आये थे।

ये लोग प्रदर्शनी से सामान भी क्रय कर रहे थे। इस प्रकार उत्सव में जहां खर्चा हो रहा था वहा भारी आय भी हो रही थी।

इस सब व्यवसाय का आरम्भ तो परिषद् के उत्सव से एक सप्ताह पहिले ही हो गया था। व्यवसाय भवन के उद्‌घाटन करने के लिये उस दिन सायकाल कुमारदेव और श्वेताग नियुक्त परीक्षक समिति के साथ प्रदर्शनी देखने गये । कुमार ने स्वयं कई वस्तुए क्रय कीं, जिससे व्यवसाय-गृह में विक्रय आरम्भ हो गया।

कुमारदेव ने एक विशेष प्रकार का धनुष-बाण खरीदा । बहुत सुन्दर सोने-चान्दी के काम की जाजमें खरीदीं और दो विदेश से आयी हुई लडकिया खरीदी ।

निश्चित दिन प्रात.काल प्रजा सभा हुई और उसमें कुमार ने प्रजा से भेंट स्वीकार की। सभा के आरम्भ में उसने एक छोटा-सा भाषण दिया जिस में उसने प्रजागणों को बताया कि वह अपने राज्य में नवीन युग का श्रीगणेश कर रहा है। वह ऐसा प्रयत्न कर रहा है जिससे प्रजा में व्यवसाय की वृद्धि हो। सब लोग धन-धान्य सम्पन्न हो और सब सुख और शान्ति का भोग करें। उसने आशा प्रकट की कि प्रजा उसको सहयोग प्रदान करेगी।

उसी दिन मध्याह्न में कुमारदेव की सवारी निकली । इससे पहिले महाराज की सवारियो में सदैव सहस्रो ब्राह्मण वेदपाठ करते हुए जाते थे। इस सवारी में ब्राह्मणों का चिन्ह मात्र भी नहीं था । वेदगान के स्थान में पाच सौ से ऊपर नर्तकिया और नट अपने करतब दिखाते हुए सवारी के साथ साथ जा रहे थे ।

सायंकाल राज्य के दो सौ मुख्य-मुख्य व्यक्तियो को एक भोज पर आमन्त्रित किया गया था। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेठी और कर्मकार सब प्रकार के लोग आमन्त्रित थे। सबको पृथक्-पृथक् परन्तु एक ही बड़े आगार में स्थान दिया गया था। आगार की दीवार के साथ भोज में सम्मिलित होने वालो के लिये आसन लगाये गये थे और मध्य में एक चौकोर खुला स्थान रिक्त रखा गया था। इसके एक ओर एक ऊंचे स्थान पर कुमार-

देव विराजमान थे। उसके दाहिनी ओर श्वेताग था और वांई ओर अन्य मित्र थे। दो लडकिया, जिनको कुमारदेव प्रदर्शनी से क्रय कर लाया था, उसके पांव के समीप बैठी थीं। नगर के लोग इन नवीन बातो को देख-देख कर चकित हो रहे थे। सब उन सुन्दर लडकियो को प्रश्नभरी दृष्टि से देख रहे थे। लडकियां कुमारदेव के मुख पर देख रही थीं।

कुमारदेव के दाहिनी ओर ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। बाई ओर वैश्य समाज के लोग थे और शूद्र सामने थे।

कुमारदेव के सकेत पर भोजन परसा जाने लगा। यह काम स्त्रियां कर रही थीं। स्वच्छ वस्त्र पहिने वे पक्तियो में भोज्य पदार्थो को लिये हुए आयीं और सब के सम्मुख सोने-चान्दी के बर्तनों में परसने लगीं। कुमार देव ने खाना आरम्भ किया तो सब खाने लगे। केवल कुछ ब्राह्मण लोग थे, जो चुपचाप अपने सामने रखे भोज्य पदार्थो को देख रहे थे और खा नहीं रहे थे।

इसके साथ पीने के लिये मद्य वितरण होने लगी। यह ठीक था कि मद्य की गंध सुगन्धियुक्त थी और यदि वह बताया न जाता कि यह मद्य है तो बहुतों को पता भी न चलता। ब्राह्मण वर्ग में एक सुखदर्शन नाम का गणित का प्रकाण्ड विद्वान् वहा बैठा था। उसने भी भोजन को हाथ नहीं लगाया था। वह चुपचाप उसको देख रहा था। कुछ अन्य ब्राह्मण थे जिन्होने भोजन तो किया, परन्तु मद्य पान नहीं किया। क्षत्रिय लोग और वैश्य वर्ग के लोग तो बहुत मजे में खा और पी रहे थे। शूद्र वर्ग वालो ने मद्य पान पर बहुत जोर दिया। उनको मद्य घर पर बनाने और पीने का स्वभाव था, परन्तु घर की बनी मद्य में न तो वह स्वाद होता था और न ही वह सुगन्ध जो इस मद्य में थी। अतएव उन पर मटके पर मटके खाली होने लगे थे।

इस समय वे लडकिया जो कुमारदेव के चरणो में बैठी थीं, उसको मद्य पिलाने लगीं। ज्यो ज्यो मद्य सिरको चढने लगी, लोग जी खोल कर बातें करने लगे। निश्चित योजना के अनुसार इस समय भोजन करने

वालों के मध्य में रिक्त स्थान पर गणिकायें नृत्य के लिये आ गयीं। मृदंग, वीणा, भेरी, दुंदुभि इत्यादि वाद्य वजाने वाले आकर अपने-अपने वाद्यों के साथ बैठ गये। उज्जयिनी की मिरिका नर्तकी का नृत्य आरम्भ हुआ।

नत्य का शीर्षक था "नमस्कार" और इसको नाचने वाली नें बहुत ही कुशलता से निभाया। उत्सव के प्रधान व्यक्ति को नमस्कार करने के पश्चात् भगवान् की वदना हुई। इस नृत्य के पश्चात् नर्तकी रिक्त स्थान के बीचों-बीच बैठ गयी और एक लोक-गीत गाने लगी।

उसने गाया,

"मत जैयो रे बालम,
मधु मास आया।
मैं विरह की मारी बेचारी
तोरे दरस भिखारी, दुखियारी
बैठ रहियो रे,
मधु मास आया।

इस गीत के पश्चात् पुन उसका एक नृत्य हुआ। इस बार नृत्य का शीर्षक था, "चली आ रही मदमाती, यौवन भार लिये।" युवा अवस्था की मस्ती में एक स्त्री कैसे निर्लज्ज हो कर ससार में विचरती है, यह नृत्य का आशय था। इसमें वस्त्र पहिनने और अपनी लज्जा और शील को ढकने की भी सुध न रहने का दृश्य जब उपस्थित किया गया तो दर्शकों के हृदय प्रज्वलित हो उठे। सबको ऐसा प्रतीत होने लगा कि साक्षात् कामदेव उस सभा के बीच खडा हुआ सब पर काम-बाणों की वर्षा कर रहा है। मद्य से उत्तेजित कुछ लोग तो सभ्य समाज की सीमा उल्लंघन करने पर उद्यत हो गये। कुमारदेव अपने चरणों में बैठी लडकियों से कलोल करने लगे। कुछ आमंत्रित गण भोजन वितरण करने वाली औरतों से नोक झोक करने लगे।

इस समय पडित सुखदर्शन, जिसने न तो एक ग्रास भोजन किया था

श्रौर न ही एक बूंद मद्य ली थी, श्रपने स्थान से उठ खडा हुश्रा श्रौर हाथ ऊचा कर बोला, "ठहरो।"

सब विस्मय में पडित की श्रोर देखने लगे। नाचने वाली ठहर कर उसका मुख देखने लगी। मृदग-वीणा श्रादि वाद्यो के बजाने वाले रुक गये। भोजन वितरण करने वाली सुन्दरिया श्रपना काम बद कर पडित के मुख की श्रोर देखने लगीं। जब सब उस की श्रोर देखने लगे तो उसने कुमारदेव को सबोधन कर कहा, "श्रीमान्! मै व्यवस्था देता हू, कि इस निर्लज्जता के प्रदर्शन को बद किया जावे।"

कुमार ने समझा कि पडित मात्रा से श्रधिक पी गया है, इस कारण यह धृष्टता कर रहा है। इस श्रर्थ वह हस कर इस बात को टालने लगा। पडित ने कुमार देव के हसने का श्राशय समझ कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमान् समझ रहे है कि मैने मात्रा से श्रधिक मद्य पी कर कुछ श्रविचार-शीलता की है। मै श्रीमान् को विश्वास दिलाना चाहता हू कि ऐसी कोई बात नहीं। मैने एक बूंद भर भी मद्य का पान नहीं किया। मै पूर्णरूप से श्रपने कथन को समझता हुश्रा यह कहता हू कि इस सभा को समाप्त कर दो। जितना कुछ हुश्रा है उसको ही पचाने का यत्न करो। कहीं श्रजीर्ण हो गया, तो कष्ट हो जायगा।"

श्रब कुमारदेव गम्भीर हो गया। उसने श्राखें फाड-फाड कर उस पडित की श्रोर देखा। बात उसकी समझ में नहीं श्रायी। इस कारण उसने पूछा, 'क्या मै श्रीमान् पडित महोदय का नाम जान सकता हू?"

"सुखदर्शन गणनाचार्य। मार्तण्ड-भवन का श्रधिष्ठाता, शनि की गति का दर्शन करने वाला श्रौर श्रवन्ति के प्रसिद्ध परिवार वात्सायन में उत्पन्न, पूर्ण भारत के ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जाता हू।"

"यह ठीक है भगवन्! परन्तु श्राप को व्यवस्था देने का श्रधिकार किसने दिया है? श्राप प्रकृति के उन खिलौने, सूर्य, चन्द्रादि को देख-देख कर श्रपना चित्त प्रसन्न किया करिये। श्रापको राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप करने का श्रधिकार नहीं है।"

"मैं राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप नहीं कर रहा। यह राज्य-कार्य नहीं है। यह भ्रष्टाचार है। इसका सम्बन्ध जनता के आचार-विचार से है। हम लोग जो ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता हैं वे भारतीयो के सस्कारो की रक्षा करने का अधिकार रखते हैं।"

अभी भी कुमारदेव ने इस बात को हसी में उडा देने का यत्न किया और कहा, "आज इस सभा में, इस सभा काल के लिये हम आपके इस अधिकार को वापिस लेते हैं। यदि आप को यह स्वीकार नहीं तो आप सभा के बाहर जाकर जो इच्छा हो करिये।"

"श्रीमान्!" पडित सुखदर्शन ने अति विनम्र भाव से कहा, "यह अधिकार श्रीमान् ने नहीं दिया। वह अधिकार मुझ को मेरी शिक्षा और ज्ञान ने दिया है। जो वस्तु आप ने दी नहीं, उसको आप वापिस ले भी नहीं सकते। आप को मानने अथवा न मानने का तो अधिकार है, परन्तु एक ब्राह्मण द्वारा दी गई व्यवस्था को न मानने के परिणामो का भी ज्ञान आप को होना चाहिये।"

"तो तुम मुझ को श्राप दे दोगे?"

"श्राप देने की प्रथा नहीं रही भगवन्! श्राप के स्थान पर राज-दड की प्रथा चल पड़ी है और वह श्राप से भी भयानक बात है। श्रीमान्. . . .।"

कुमारदेव अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और सुखदर्शन को बीच में ही रोक कर कहने लगा, "राजदंड तो. . . . .।"

परन्तु इससे आगे वह कह नहीं सका। श्वेताग ने समीप आ उसको कहने से रोकते हुए बोला, "ब्राह्मण देवता! तुम्हारी व्यवस्था एक प्राचीन काल की बात हो गयी है। अब युग-परिवर्तन हो गया है, इस कारण हम को विश्वास है कि तुम्हारे इस व्यवहार को प्रजा मानव-स्वतत्रता पर आघात मानेगी और तुम्हारी व्यवस्था को निस्तेज कर देगी। अब तुम यहा से चले जावो और राज्य-दड का द्वार खटखटाओ।"

सुखदर्शन ने कुमार के मुख पर क्रोध की लालिमा देखी तो वहां से

चला जाना ही उचित समझा। जब सुखदर्शन उस भवन से निकला तो प्राय ब्राह्मणवर्ग उसके साथ बाहर चला गया।

ब्राह्मणो के चले जाने के पश्चात् क्षत्रिय वैश्य और शूद्र रह गये। इनमें से प्राय ब्राह्मण-कोप से घबरा रहे थे। इनमें से बहुत से उठ कर ब्राह्मणों के पीछे जाने वाले थे, परन्तु श्वेताग ने परिस्थिति को सम्भाल लिया। उसने सब को सम्बोधन कर कहा, "अवन्तिनिवासियो ! जो लोग हमारे इस उत्सव में नहीं बैठना चाहते उनको हम बलपूर्वक बाध कर यहा रखना नहीं चाहते। हा, इतना बता देना चाहते है कि आज का यह उत्सव और इसमें हो रहा कार्यक्रम राज्य सभा में स्वीकार होने के पश्चात् किया जा रहा है। इस कारण किसी को भयभीत होकर यहा से जाने की आवश्यकता नहीं। हमारा अधिकार है कि जिस प्रकार से भी चाहें हम अपना मनोरजन कर सकते है। इस अधिकार पर केवल एक ही सीमा है। वह यह कि अपना मनोरजन करते समय हम को दूसरो की मानसिक स्वतंत्रता छीननी नहीं है। अतएव जो जाना चाहते है वे जा सकते है। जो नहीं जाना चाहते, उनको यह विदित होना चाहिये कि ब्राह्मण देवता की व्यवस्था अथवा श्राप कुछ प्रभाव नहीं रखते।"

श्वेतांग के इस वक्तव्य से लोग शान्तचित्त हो पुन खाने-पीने लगे और ज्यो-ज्यों मादकता बढती गई अधिक और अधिक अनाचार होने लगा।

बहुत रात गये तक उत्सव चलता रहा। पश्चात् बहुत से लोग अशक्त हो जाने से अपने-अपने घर नहीं लौट सके और सो गए अथवा अचेत हो पड़े रहे। जो गये वे नगर में कुमारदेव की विशालहृदयता और स्वतन्त्र प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशसा करते गए।

पडित सुखदर्शन कुमारदेव के भोज से लौट कर शान्त नहीं रहा। उसने अगले दिन महाराज के सम्मुख एक प्रार्थनापत्र उपस्थित कर दिया। उसमें उसने लिखा कि कुमारदेव पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जावे और उसे उचित दड दिया जावे।

महाराज पालक देव को सब सूचना मिल चुकी थी। प्रदर्शनी में पांच सौ से ऊपर दास-दासियों का विक्रय हुआ था और उनमें से सब से पहिली दो दासियां स्वयं कुमारदेव ने क्रय की थीं। पिछली रात भोज में हुए वाद-विवाद का समाचार भी महाराज के पास पहुंच चुका था। महाराज ने सुखदर्शन से प्रार्थनापत्र लिया और उसको यह आश्वासन दिया कि प्रार्थना पर राज्य-परिषद् में विचार होगा।

: ६ :

श्वेतांग भी सतर्क था। वह रात के वाद-विवाद के परिणामों पर विचार कर रहा था। उसको समझ आ रही थी कि वह समय, जिसके लिये वह तैयारी कर रहा था, आ पहुंचा है।

श्वेतांग में एक गुण था कि वह अपनी शक्ति से अधिक व्यसन में नहीं फंसता था। यही कारण था कि वह सदैव सतर्क और सचेत रहता था।

रात उसने भी मदिरा पान की थी, परन्तु उत्सव की समाप्ति पर वह अपने निवास स्थान पर गया तो उसके भृत्यों ने उसके स्नान के लिये उष्ण जल तैयार किया हुआ था। उससे स्नान कर वह एक प्रहर तक नींद ले कर उठा तो वह कार्य में लग जाने के लिये स्वस्थ तथा सबल था।

उसने उत्सव में ब्राह्मणों के विद्रोह पर विचार किया और उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए गुप्तचर नगर में और राज्य-भवन में भेज दिये। उनसे उसको सुखदर्शन के महाराज के पास पहुचने और महाराज के आश्वासन का समाचार मिल गया। इसके परिणामों पर विचार कर श्वेतांग ने इसके उत्तर में योजना बना ली और कुमारदेव से, उस पर स्वीकृति लेने के लिये, भेंट करने चल पड़ा।

कुमारदेव बहुत दिन चढ़ने पर जागा और स्नानादि से निवृत्त हो जब बाहर आया तो उसने पूर्ण समस्या और उस पर अपना सुझाव उसके सम्मुख रख दिया। श्वेतांग का सुझाव था कि राज्य-परिषद् में इस प्रश्न के उपस्थित होने पर उनको झगड़ा कर बाहर निकल आना

चाहिये और पश्चात् अपनी योजना को कार्य रूप में लाने का यत्न करना चाहिये ।

"इसके लिये तैयारी पूर्ण हो चुकी है क्या ?"

"आप आज्ञा करिये तो मै अपनी योजना को एक सूत्र से पकड कर इसको अत तक खेंच सकता हू ।"

"तो हो जावे । नित्य की खच-खच समाप्त हो ।"

"राज्य-परिषद् में मै नहीं जा सकूंगा । वहा झगडा आपको ही अतिम परिणाम तक पहुचाना होगा । नगरसेठ यादव और कर्मकारो के पच मोहन राज्य-परिषद् में आपका साथ देंगे ।"

इस समय अल्पाहार के लिये कुमारदेव को सूचना मिली । उसने श्वेताग से पूछा, "मित्र ! अभी अल्पाहार हुआ है या नहीं ?"

"अभी नहीं महाराज ! आप से इस विषय में स्वीकृति लेने की आवश्यकता थी ।"

"तो आओ । अल्पाहार हमारे साथ ही कर लो । पूर्ण योजना को एक बार फिर विचार कर लेंगे और समझ लेंगे । मेरी दोनों क्रीतदासिया भी अल्पाहार पर आ रही हैं । दोनों बहुत अच्छी हैं । हम उन दोनो से प्रसन्न हैं ।"

श्वेताग अल्पाहार पर जाने के लिये तैयार हो गया । उसने महाराज के पीछे-पीछे जाते हुए पूछा, "दोनों में कौन अच्छी लगी है महाराज ?"

"मेरी तो अभी भी वही सम्मति है, जो उनको क्रय करने के समय थी । छोटी अधिक सुन्दर है । लम्बी कुछ अधिक चतुर प्रतीत होती है ।"

श्वेताग मुस्कुराया और चुप रहा । दोनों आहार गृह में पहुचे तो दोनो दासिया वहा पहिले ही विद्यमान थीं । वे पहिले तो पडित श्वेताग को आता देख घबरायीं, परन्तु कुमारदेव के कहने पर कि वह उनका मत्री है और अल्पाहार उनके साथ लेगा, निश्चिन्त हो गयीं । कुमारदेव ने कहा, "मैंने इनके अपने नाम रखे हैं । यह किरण है , जो तुम ने पसन्द की थी और जिसको मैंने अच्छा समझा था, रेखा होगी ।"

श्वेताग फिर मुस्कुराया और किरण के माथे पर एक क्षण के लिये

चढ़ी त्योरी को देख समझ गया कि किरण को रेखा से मुकाविला पसन्द नहीं।

कुमार अल्पाहार के लिये अपने आसन पर बैठा तो दोनो लड़किया उसके दोनो ओर बैठ गयीं और श्वेताग किरण के साथ बैठ गया। जब अल्पाहार परसा जा रहा था, श्वेतांग ने अपनी पूर्ण योजना पुन: दुहरा दी और इसमें उस भाग को, जो कुमारदेव ने निभाना था, भली भाति वर्णन कर दिया।

कुमारदेव का कहना था, "मित्र आज यह महान् कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिये।"

"श्रीमान् को दृढता धारण करनी पड़ेगी। शेष सब तैयार है।"

इस समय अल्पाहार परसा गया और कुमार ने आरम्भ किया तो वे भी खाने लगे। खाते हुए कुमारदेव रेखा से बातें करने लगा। रेखा पूछने लगी थी, "कैसी योजना की बात हो रही है महाराज ?"

"मै आज महाराज वनने का प्रयत्न करूगा ?"

"सत्य ?"

"हा।"

"तो मै आज पटरानी वनूंगी ?"

"मैंने तो तुम को वचन दिया ही है, परन्तु यह आज तो नहीं हो सकेगा। तुम्हारे पटरानी वनने से पूर्व अन्य कई बातें करनी पड़ेंगी। उनमें समय लगेगा।"

जव ये दोनो इस प्रकार अपना भावी कार्यक्रम वना रहे थे, श्वेताग किरण से, जो उसके समीप वैठी थी, बातें करने लगा। उसने वात आरम्भ करने के लिये पूछा, "देवी! तुम इस स्थान पर कुछ अधिक सुखी प्रतीत नहीं होती ?"

किरण ने इस प्रश्न पर आश्चर्य प्रकट करते हुए श्वेताग के मुख पर देखा। पश्चात् कहा, "भद्र! सुख और दु:ख तुलनात्मक वस्तु हैं। मैं, यहा आने से पूर्व जहा थी, वहा वहुत आनन्द में थी। यहा मैं वहुत सुखी हू।"

श्वेतांग इस दासी के इस प्रकार मानने पर कि वह कुमार के रणवास में क्लेश अनुभव करती है, चकित रह गया। इस कारण उसने बात और आगे चला दी। उसने पूछा, "कहां रहती थीं देवी जी, पहिले ?"

"मैं देवलोक की रहने वाली हू। मेरे माता-पिता ने मुझको उनके पास दे दिया था, जिनसे महाराज ने मुझको क्रय किया है। उनका नाम उत्ताल बाबा है। उन्होंने ही मुझ को शिक्षा-दीक्षा दी है।"

"तो तुम्हारा मन यहा आनन्दित नहीं है ?"

"मुझ को यहा कोई कष्ट नहीं है।"

श्वेतांग मुस्कुराया और कहने लगा, "मैं, जितना देवी समझती है, उससे अधिक बुद्धि रखता हू। शायद देवी भूल गयी है कि उसके क्रय किये जाने के समय क्या हुआ था ?"

"नहीं! मैं उस दिन की बात को भूल नहीं सकती। पर मैं आज तक नहीं समझ सकी कि श्रीमान् ने मुझमें क्या देखा था ? महाराज ने तो मुझ को पसन्द नहीं किया था। श्रीमान् ने ही उनको मेरे क्रय करने के लिये आग्रह किया था।"

"तो देवी जानना चाहती है कि मैंने उस समय क्या देखा था ? मुझको वह बताने में किंचित् मात्र भी सकोच नहीं। मैंने देवी में अद्वितीय सौन्दर्य देखा था। देवी की आखो में एक अलौकिक आभा देखी थी। मैं समझता था कि यह अद्वितीय वस्तु अवन्ति के भावी राजा के घर में होनी चाहिये। इस कारण मैंने आपको प्राप्त करने का आग्रह किया था।"

किरण का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसको छुपाने के लिये उसने दूध का पात्र उठा कर पीना आरम्भ कर दिया। अपने मन को काबू कर उसने दूध का पात्र सामने चौकी पर रखते हुए श्वेतांग के मुख पर देखा और पश्चात् मुख मोड कर कुमार को देखा। दोनों में अतर का अनुभव कर उसको पुन उस दिन की बात स्मरण हो आयी। उसको स्मरण कर उसकी आंखों में चमक दौड़ गयी। उसने पंडित की ओर कुछ झुक कर कहा, "एक बात कहूं ? मन में रख सकेंगे ?"

"क्या ?"

"जब आपने मेरी आखों में यह सब कुछ देखा तो आपने मुझ को अपने लिये क्यों नहीं क्रय कर लिया ?"

"मै स्त्रियो को मोल लेने में विश्वास नहीं रखता।"

"तो किस बात में विश्वास रखते है ?"

"उन पर विजय प्राप्त पाने में।"

"बलपूर्वक ?"

"नहीं अपने गुणो से।"

किरण गम्भीर विचार में पड गयी। उसने चुपचाप आहार लेना आरम्भ कर दिया। श्वेताग अपने कथन का प्रभाव उसके मुख पर देखना चाहता था। इस कारण उसकी ओर देख कर उसके मनको पढ़ने का यत्न करता रहा।

किरण ने अपने मन के सतुलन को ठीक कर पुनः बात आरम्भ कर दी। इस समय उसकी आखो में शरारत भरी प्रतीत होती थी। उसने कहा, "जब आप मुझ को देख कर चले गये थे तो मुझ को ऐसा समझ आया था कि आप सेनापति हैं, और वे आपके मोदी। इस कारण उनके आपको आगे जा कर रेखा की प्रशसा करते देख मै क्रोध से भर गयी थी।"

श्वेतांग यह सुन हस पडा। फिर कुछ गम्भीर हो बोला, "ससार में बहुत कुछ ऐसा है, जैसा हम देख नहीं सकते।"

किरण को, अपने मन के भावो को इस प्रकार स्वीकार करने पर श्वेताग के मन में एक नवीन भावना जागृत हो उठी। वह अब चुपचाप आहार करता रहा। किरण अपने मन में श्वेतांग के सौन्दर्य पर मनन करती रही।

: १० :

अल्पाहार से निपट कर श्वेतांग ने तुरत अपनी योजना पर कार्य आरम्भ कर दिया। उसने सेठ राघव और पंच मोहन को बुला भेजा।

साथ ही उसने सेनानायको को सेनापति के नाम पर बुला लिया। जब ये सब आ गये तो उनको कुमारदेव के पास ले गया। वहा उनसे पूर्ण योजना कह दी। अपने इस काम में कारण बताते हुए श्वेताग ने कहा, "सेनापति के इस उत्सव के कारण महामात्य सुदर्शन उनसे ईर्षा करने लगा है। उसको इनकी ख्याति बढती देख इनसे द्वेष हो गया है। इस कारण वह इन को बदी बना कर मार्ग से बाहर कराने के लिये योजना बना रहा है। महाराज पालकदेव इस समय महामात्य की बात पर विश्वास कर उसकी योजना मानने ही वाले हैं। यदि सेनापति बदी बना लिया गया तो राज्य दुर्बल हो जायेगा और उस समय कहीं फिर बाहर से कोई आक्रमण हुआ, तो राज्य की रक्षा कर सकनी असम्भव हो जावेगी।"

यह कथा सुन सब, विशेष रूप में सेनानायक, क्रोध से लाल-पीले होने लगे। इस पर श्वेताग ने बताया, "अवन्ति की भलाई और रक्षा के लिये यह आवश्यक हो गया है कि महामात्य को मार्ग से एक ओर कर दिया जावे। कठिनाई महाराज की ओर से उत्पन्न होगी।"

इस पर सेठ राघव ने कह दिया, "देश महाराज से ऊचा नहीं है, क्या?"

सेनानायको ने कह दिया, "हम तो सेनापति के अधीन हैं। हम उनकी आज्ञा का पालन करेंगे। देश के लिये यदि महाराज को भी मार्ग से हटाना पडे तो हम तैयार हैं।"

इस प्रकार बात निश्चय हो गयी और योजना पर विचार हो गया।

इस समय महाराज पालकदेव का एक सदेश आया कि श्वेताग उत्सव का पूर्ण विवरण और आय-व्यय का ब्योरा लेकर महामात्य सुदर्शन के पास उपस्थित हो। श्वेताग इस प्रकार की आज्ञा की आशा ही कर रहा था। इस कारण वह आय-व्यय के कागज-पत्र लेकर महामात्य से मिलने चल पडा।

महामात्य ने श्वेताग को अपने सामने अपने से कुछ नीचे आसन पर बैठा कर बुलाने का प्रयोजन वर्णन कर दिया। उसने कहा, "आपने उत्सव में आय-व्यय का पत्रक बनाया है क्या?"

"हा श्रीमान् !" इतना कह श्वेतांग ने उचित वृत्तान्तपत्र महामात्य के सम्मुख रख दिया।

महामात्य ने उस पर साधारण दृष्टिपात कर पूछा, "इसमें आय भी की गयी है क्या ?"

"जी, तीन लाख स्वर्ण मुद्रा की आय हुई है। अभी प्रदर्शनी कुछ दिन और चलेगी। इससे आय और बढ़ने की आशा है।"

"श्वेतांग महोदय ! उत्सव में आय करने का विचार नहीं था। ऐसी प्रथा यहां नहीं थी।"

"यह श्री सेनापति जी की आज्ञा से हुआ है।"

"परन्तु इसमें आपने उनको सुझाव दिया है। ऐसा सुझाव देकर आपने ठीक नहीं किया।"

"सुझाव मेरा अवश्य है, परन्तु उनकी आज्ञा के बिना कुछ नहीं हुआ। मेरा विश्वास है कि इसमें हानि नहीं हुई।"

"जनता का धन एकत्रित होकर अशुभ कामों में लग गया है।"

"धन एकत्रित करने के लिये कोई विवश करने वाला उपाय प्रयोग में नहीं लाया गया। रहा इसका अशुभ कामों में व्यय होना, इस विषय में मेरा आपसे मतभेद है।"

"आपको औरतों के क्रय-विक्रय का कार्य नहीं कराना चाहिये था।"

"इस विषय पर हमने बहुत विचार किया है और बहुत सी बातों का विचार कर ही यह किया था। हमारा विचार है कि इससे स्त्रियों में सौन्दर्य बढ़ाने की इच्छा होगी। सुन्दर स्त्रियां धनवानों के घरों में पहुंच जायेंगी, और जिनको सुन्दर स्त्रियां नहीं मिल सकेंगी, वे धन-उपार्जन करने का यत्न करेंगे। इन सब बातों से समाज सुन्दर और धनसम्पन्न होगा और साथ ही राज्य को अधिक कर मिलेगा। व्यवसाय-गृह में इसी व्यवसाय से राज्य को सबसे अधिक कर मिला है।"

"कुछ भी हो, स्त्रियों का क्रय-विक्रय इस राज्य में नहीं होता था।"

"तो अब होने लगेगा।"

"महाराज इसको पसन्द नहीं करते ।"

"परन्तु जनता ने तो इसको बहुत पसन्द किया है। पाच सौ दास दासियो में, जो यहा आयी थीं, चार सौ से अधिक बिक गयी है। उनमें सबसे अधिक मूल्य, एक लडकी का, सेनापति महाराज ने दिया है ।"

"अब यह व्यवसाय-गृह कब तक खुला रहेगा ?"

"जब तक सेनापति महाराज आज्ञा करेंगे ।"

"कल के भोज पर जो धन व्यय किया गया है वह उत्सव के कोष में से ही है न ?"

"जी ।"

"परन्तु जो कुछ वहा हुआ है वह हमारे राज्य की नीति के विरुद्ध है ।"

"यह सम्भव है। परन्तु श्रीमान् सेनापति जी महाराज का विचार है कि इस नीति से भी जनता को सुख और राज्य को धन का लाभ होगा। देखिये भगवन् ! यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है कि दिन भर के परिश्रम के पश्चात् मनोरजन प्राप्त करे। नृत्य, सगीत, ललित-कलायें तथा मद्यपान और स्वादिष्ट भोजन तृप्ति कारक होते है । शारीरिक सुख मनुष्य को पहुचाना परम उपकार है ।"

"मनोरजन वासनामय व्यवहार से ही हो सकता है क्या ?"

"मनोरजन और वासना पर्याय वाचक शब्द है। दोनो में भेद नहीं।"

"ऐसा हमारे राज्य के विद्वान् नहीं मानते। मनोरजन मन का विषय है। वासना इन्द्रियो का। जो बात मन को आनन्दित करे, परन्तु इन्द्रियों को उत्तेजित न करे, वह मनोरजन हमारे राज्य में श्रेष्ठ माना जाता है । जब मनोरजन का ध्येय इन्द्रियों को उत्तेजित कर वासना की ओर ले जाने वाला हो, तब यह नीच माना जाता है और वर्जित है ।"

"ऐसा करना और हो सकना अस्वाभाविक है । मनुष्य जब अपने व्यवहार को अस्वाभाविक बनाता है तो वह भ्रम में फस, पतन की ओर जाता है।"

"परन्तु पण्डित श्वेताग ! स्वभाव वह है जिसके करने का अभ्यास हो

जावे। यह कोई स्थिर बात नहीं। मनुष्य का स्वभाव बनाया जा सकता है। जैसा वह बन जाता है वैसा करना ही स्वाभाविक हो जाता है। इस कारण हमारे राज्य में मनुष्य में वासनामय स्वभाव न बनने देना उचित माना जाता है।"

श्वेतांग निरुत्तर होता जा रहा था। इस कारण उसने कह दिया—"आप जैसा उचित समझते हैं वैसा आदेश श्रीमान् सेनापति जी को दे दीजिये। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो उनका सेवकमात्र हूँ। जहां तक राज्य-कार्य का सम्बन्ध है, वह आप जानें आप की प्रजा।"

महामात्य ने कहा, "महाराज की आज्ञा है कि यह व्यवसाय-आगार आज से बंद हो। उत्सव समाप्त समझा जावे और उस प्रकार का भोज, जैसा रात को हुआ है, अवन्ति में पुनः न हो।"

"यह आज्ञा श्रीमान् कुमारदेव जी को मिलनी चाहिये।"

महामात्य इस उत्तर की आशा करता था। इस कारण उसने आज्ञा लिख कर तैयार रखी थी। श्वेतांग के इतना कहने पर उसने लिखित आज्ञा उसको दे दी।

श्वेतांग ने उठ कर प्रणाम किया और बाहर निकल आया। वह सीधा कुमारदेव को इस आज्ञा की सूचना देने चल पड़ा। कुमार के भवन में पहुंच उसको विदित हुआ कि वे महाराज से मिलने गये हैं। महाराज का प्रतिहार उनको बुला कर ले गया है। श्वेतांग का माथा ठनका। उसने समझा कि यह पंडित सुखदर्शन की व्यवस्था का परिणाम है। उसने अपने निजी आगार में जाकर एक पत्र उपसेनापति को लिख दिया। उसमें उसने लिखा कि, "मध्याह्न के समय हुई वार्तालाप के अनुसार कार्य करने का अवसर आगया है। आप सब सेनानायकों को कह कर तैयार रहने की आज्ञा भेज दें। शायद पूर्ण सेना की आवश्यकता पड़ेगी।" मैं अभी नहीं कह सकता कि सेनापति जी महाराज की रक्षा के लिये किस सीमा तक जाना पड़े। हमको प्रत्येक बात के लिये तैयार रहना चाहिये।

यह आज्ञा भेज वह सीधा महाराज पालकदेव के भवन में जा

पहुचा । प्रतिहारो से पता चला कि वहा राज्य परिषद् बैठी है और पडित सुखदर्शन के प्रार्थना पत्र पर विचार हो रहा है । श्वेताग को अपने सदेह का समर्थन प्रतीत हुआ । उसने एक पत्र पर अपना नाम लिखकर प्रतिहार द्वारा सेठ यादव के पास भेज दिया। सेठ यादव और पच मोहन भी राज्य-परिषद् के सदस्य थे। यह पत्र सकेत था कि भीतर बैठे हुए समझ जावें कि सेना उनका समर्थन करेगी।

राज्य-परिषद में वाद-विवाद बहुत उग्र रूप में चल रहा था। महामात्य श्वेताग को आज्ञा दे कर सीधा परिषद् में पहुचा। वहा सब सदस्य उपस्थित थे ।

११

कुमारदेव जब परिषद में उपस्थित हुआ तो महामात्य अभी नहीं पहुचा था । इस कारण उसको प्रतीक्षा करनी पडी। कुमारदेव ने कहा भी कि उसको नृत्य और सगीत प्रतियोगिता में जाना है, परन्तु महाराज ने कह दिया, "इस समय महामात्य इस सभा के विषय पर ही श्वेताग के साथ बातचीत कर रहे हैं। "

सेठ यादव ने कहा, "इस अवस्था में मेरा महाराज से विनम्र निवेदन है कि इस सभा को कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया जाय । महामात्य को जब अवकाश हो, हम आ जावेंगे।"

"आज का विचार्य विषय आज के व्यवहार से ही सम्बन्ध रखता है। इस कारण उस पर आज ही विचार होना चाहिये ।"

विवश सब बैठे रहे । महामात्य के आने पर बात उपस्थित की गयी। महामात्य ने सुखदर्शन पडित का पत्र पढ़ कर सुनाया और उस पर महाराज की आज्ञा जो महामात्य द्वारा श्वेतांग को भेजी गयी थी, सुना दी।

इस आज्ञा को सुन सेठ यादव ने कहा, "जब आज्ञा ही हो चुकी है तब इस पर विचार करने का क्या प्रयोजन है ?"

महामात्य का उत्तर था, "आज्ञा दी गयी है उत्सव के भावी कार्य-क्रम को रोकने के लिये। उत्सव पर एक लाख स्वर्ण मुद्रा से अधिक व्यय हो चुका है और राज्य-परिषद् के निर्णय के अनुसार यह उत्सव एक दिन के लिये था। इस कारण जो कुछ आज हो रहा है अथवा आगे और होने वाला है वह परिषद् के निर्णय के विरुद्ध है। यदि अनाधिकार चेष्टा हुई तो उसके लिये दण्ड दिया जावेगा।"

इसका उत्तर कुमारदेव ने दिया, "उत्सव का प्रबन्ध मुझ को करने के लिये दिया गया था। राज्य कोष से एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा व्यय करने का अधिकार मिला था। इस उत्सव के कार्य क्रम से लाभ की कुछ आशा नहीं थी। मैंने व्यय से अधिक लाभ कर दिया है और दिन-प्रति-दिन व्यय से अधिक लाभ होता जा रहा है। इस कारण उत्सव को कुछ दिन और लम्बा करने से लाभ ही होगा और इसके रोकने में कोई लाभ नहीं।

"रही पिछली रात के भोज की अवैधानिकता की बात? मैं समझता हू कि प्रजा की पसन्द ही विधान है। इस कारण उत्सव का पूर्ण कार्य और उसमें भोज का कार्य-क्रम प्रजा से पसन्द किये जाने के कारण पूर्ण रूप में वैधानिक है।"

न्यायाधीश प्रबोध ने विधान के विषय में अपनी सम्मति दी, "विधान के अर्थ प्रजा की रुचि नहीं है। विधान देश और जाति के हित के लिये विद्वानो से बनाये नियमो को कहते हैं। हमारे देश में लग भग एक सौ वर्ष पूर्व वर्तमान धर्मशास्त्र की स्थापना हुई थी। उस समय देश भर के आचार्यों ने यहा आकर यहां की विशेष परिस्थिति का अध्ययन कर इस शास्त्र को लिखा था। तब से वह विधान के रूप में चला आता है। उसमें साधारण सामयिक अदल-बदल राज्य-परिषद् करती रही है, परन्तु ये अदल-बदल स्थायी नहीं माने गये और सिद्धान्त की बातो में अदल-बदल नहीं हुए।

"उन विधान में एक नियम यह भी है कि स्त्रियो का क्रय-विक्रय नहीं होगा। स्त्रियों को विवाह से अथवा बिना विवाह के अपनी इच्छा से

किसी भी पुरुष के साथ सम्बन्ध करने की स्वतत्रता है। सतान के उत्तराधिकारी होने के लिये माता-पिता का विधिवत् विवाह होना आवश्यक है ।

"स्त्रियो का अवन्ति में जो क्रय-विक्रय हुआ है वह धर्म विरुद्ध हुआ है।"

इस पर नगर-सेठ यादव ने कहा, "आज से सौ वर्ष पूर्व की व्यवस्था इस चतुर्मुखी उन्नति के काल में करना प्रजा के साथ अन्याय है । मै आपको नगर की अवस्था बताता हू। उत्सव के अवसर पर उज्जयिनी में पाच लक्ष नर-नारी आये थे । उनमें एक लक्ष से ऊपर विदेशीय थे । प्रत्येक व्यक्ति ने यदि दस स्वर्ण मुद्रा भी व्यय की गई मान ली जावें, तो उज्जयिनी के व्यापारी वर्ग को विदेशियो से दस लक्ष स्वर्ण मुद्रा और अपने देश वालो से चालीस लक्ष स्वर्ण मुद्रा लाभ हुआ है। इस प्रकार इस उत्सव से देश सम्पन्न हुआ है ।

"इस उत्सव में लगभग तीन सौ सुन्दर स्त्रिया विदेशो से यहा लाकर अपना ली गयी है। उनसे सुन्दर सन्तान होगी जो अवन्ति की शोभा बढावेगी ।

"यह कारण है कि अवन्ति की प्रजा इस उत्सव से बहुत प्रसन्न है । उनकी माग है, ऐसे उत्सव प्रति वर्ष किये जाया करें।"

पच मोहन ने भी अपनी सम्मति दे दी। उसने कहा, "मै नगर भर में घूम-घूम कर अपने वर्ग के लोगो से उत्सव के विषय में पूछता रहा हूँ। मुझको एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने उत्सव को नापसन्द किया हो। नगर में एक सहस्र मांसाहार तथा मद्यपान के निःशुल्क वितरणालय सबसे अधिक पसन्द किये गये थे ।

"अब यदि इस उत्सव के आयोजक को किसी भी प्रकार का दड दिया गया तो प्रजा रुष्ट हो जावेगी।"

कुमारदेव ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी, "किसी भी देश की रीड की हड्डी उस देश की सेना है । सेना मेरे आयोजन से अति प्रसन्न है । इस कारण मैने कोई ऐसी बात नहीं की जो देश-काल के विरुद्ध हो।"

महाराज पालकदेव ने कहा, "मैं समझता हूं कि देश में अभी भी सुबुद्धि का लोप नहीं हुआ। इस कारण यह विषय जनमत के लिये छोड़ दिया जावे। प्रश्न यह है कि क्या विधान-परिवर्तन के पहिले विधान का उल्लघन करना उचित है ?"

सेठ यादव का कहना था, "जब विधान काल की गति के साथ न चले तो विधान तोड़ना ही होता है। कल के उत्सव को नगर-जनो ने सराहा है, यह इस बात का प्रमाण है कि कल की बात सर्वथा वैधानिक है।"

प्रबोध ने पुन अपने विचार प्रकट किये, "यदि विधान-निर्माण का यह ढग है तो मै न्यायाधीश के पद पर रह कर क्या करूंगा ? यह देश रसातल में धस जायेगा और मै इस पाप का भागी नहीं बनना चाहता।

"मेरी सम्मति है कि कल के उत्सव के कर्त्ता को न्यायाधीन कर दिया जावे और जो भी निर्णय न्यायालय करे उसका वह भोग करे। राज्य-परिषद् न्यायालय के निर्णय के पश्चात् दया-क्षमा करने के अधिकारो का प्रयोग कर सकती है।

"यदि राज्य-परिषद् विधान में परिवर्तन चाहे तो इसके लिये आचार्यो की एक समिति बना दी जावे और जैसा वह उचित समझे करे।"

कुमार को यह सम्मति एक प्रकार का अपना अपमान प्रतीत हुई। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "राज्य-परिवार के एक सदस्य के साथ ऐसी बातें मै सुनने के लिये तैयार नहीं हूं।" इतना कह वह सभा के बाहर हो गया। उसके साथ नगर-सेठ यादव और पच मोहन भी सभा से चले गये।

महाराज को कुमारदेव और यादव आदि का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया। महामात्य ने कहा, "महाराज ! यह विद्रोहात्मक प्रवृत्ति राज्य के लिये हितकर नहीं है। इसको आगे बढने से रोकना चाहिये।"

न्यायाधीश ने कहा, "यह बात अब इतनी बढ गयी है कि इससे भारी उपद्रव की सम्भावना है।"

"जो है सो तो है ही। अब इस परिस्थिति में क्या करना चाहिये ?" महाराज का प्रश्न था।

महामात्य का कहना था, "राज्य-परिषद के ग्यारह सदस्यो में से आठ अभी भी उपस्थित हैं। मेरी सम्मति है कि इस उत्सव की बहुत सी बातें अवैधानिक हुई हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उन के करने वाले श्री कुमारदेव और श्वेतांग को न्यायाधीन कर दिया जावे और कुमारदेव तथा श्री यादव और पच मोहन को राज्य-परिषद् का अपमान करने के लिये परिषद् से निकाल दिया जावे।"

राज्य-परिषद् के सदस्यों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया परन्तु न्यायाधीश प्रबोध ने सबको सचेत करने का यत्न किया कि कुमारदेव के सेनापति होने के कारण इस प्रस्ताव को कार्य में लाना इतना सुगम नहीं, जितना कि इसको स्वीकार कर लेना। इस कारण यह भी निश्चय हुआ कि तुरत सेना को समझा कर कुमार देव से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जावे। महाराज पालकदेव ने महामात्य को लेकर सेना के शिविर में जाने का निश्चय कर लिया। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि कुमार और श्वेतांग को शीघ्रातिशीघ्र बंदी बना लिया जावे। इस अर्थ महाराज ने कुमार के भवन में जाना और उनको स्वयं बंदी बनाना निश्चय कर लिया।

: १२ .

कुमारदेव, यादव और मोहन राज्य परिषद् की सभा से बाहर आये, तो श्वेतांग ने सेना को सतर्क रहने की सूचना, जैसे उसने भेजी थी, की बात बता दी। इस पर कुमारदेव ने परिषद् के भीतर की घटना बता कर कहा, "हम को बंदी करने की आज्ञा होने जा रही है। इस कारण तुम शीघ्र मेरी मुद्रा लेकर सेना के शिविर में जाओ और सेना के एक भाग को अपने भवन की रक्षा के लिये, दूसरे भाग को नगर में शान्ति रखने के लिये और तीसरे भाग को महाराज के प्रासाद पर अधिकार करने के लिये भेज दो। शीघ्र करो अधिक समय नहीं मिलेगा। नैनिक कार्यों में विलम्ब हानिकर होता है।"

श्वेतांग इस बात के लिये घर से ही तैयार होकर आया था। उसने एक

लिखित आज्ञापत्र पर कुमारदेव के हस्ताक्षर ले लिये और मुद्रा लेकर रथ पर सवार हो सेना के शिविर को चल दिया।

कुमारदेव, यादव और मोहन को साथ लेकर अपने निवास स्थान पर जा पहुचा। यहा उसने अपने भवनरक्षको को बुला कर आज्ञा दी, "सब शस्त्र धारण कर, इस भवन की रक्षा के लिये तैयार हो जाओ।"

भवन में पहुच कुमार ने यादव और मोहन से कहा, "आप लोग घूम-घूम कर नगर में यह विख्यात करिये कि महाराज पालकदेव ने राज त्याग कर सन्यास ले लिया है और कुमारदेव को राज्य सौंप दिया है। जब तक कुमार शतवीर बड़ा होकर राज्य सभालने के योग्य होगा तब तक कुमारदेव राज्य चलायेगा।"

कुमार भवनरक्षकों को तैयार होने की आज्ञा देकर और यादव तथा मोहन को नगर को भेज, अन्त पुर चला गया। दासियां भवनरक्षको में भाग दौड देख भयभीत हो रही थीं। कुमार जब अन्त पुर में आया तो किरण और रेखा उसके पास आकर पूछने लगीं।

"क्या हो गया है श्रीमान् ?"

"मेरा राज्याभिषेक होने जा रहा है।"

"सत्य ?" किरण ने विस्मय में पूछा, "कब ?"

"उसी की तैयारी हो रही है।"

रेखा ने कुमार देव की बांह पकड़ कर कहा, "अपना वचन स्मरण रखियेगा।"

"हां! हां! स्मरण है।" इतना कह वह अपने शस्त्रागार में चला गया। उसके चले जाने पर किरण ने रेखा से पूछा, "क्या वचन पा गयी हो रेखा बहन ?"

"मैं पटरानी बनूंगी।"

"मैं तुम को बधाई दूंगी। मुझ को इससे बहुत प्रसन्नता होगी।"

"धन्यवाद किरण बहन! मैं तुम को सब प्रकार से सुखी रखने का यत्न करूंगी।"

किरण को इस धन्यवाद की आवश्यकता नहीं थी , वह देख रही थी कि रेखा जैसी मूर्ख दासी पटरानी बन रही है और वह बुद्धि, शिक्षा और योग्यता में अपने को उससे श्रेष्ठ मानती हुई इस विषय में कुछ नहीं कर सकी। उसको उस दिन का दृश्य स्मरण था, जब कुमारदेव श्वेताग के साथ व्यवसाय गृह में उसको क्रय करने गया था।

उत्ताल बाबा अपनी तीन बिक्री के योग्य लडकियो को लिये हुए आगार में बैठा धूम्र पान कर रहा था। वह धूम्र उपकरण से सुगन्धित धूँआ खेंचता और धीरे-धीरे उसको खिडकी से बाहर फेंक रहा था। कुमार और श्वेताग उत्ताल बाबा की दासियों के सामने खडे हुए, तो वह अपने धूम्रपान को छोड हाथ जोड कर नमस्कार कर खडा हो गया। कुमारदेव ने उनको देखा और जब श्वेताग ने उसकी ओर सकेत कर कुछ कान में कहा, तो कुमार ने उसकी ओर देखा और नाक चढा कर सिर हिला दिया। दोनो आगे निकल गये। आगे रेखा का स्वामी उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने रेखा को सम्मुख कर दिखाया। कुमार ने रेखा की ठोडी उठा कर उसका मुख देखा। पश्चात् उसकी भुजाओ की कठोरता को देखा और भाव-ताव कर उसको क्रय कर लिया।

उत्ताल बाबा पुन खिडकी में बैठ धूम्रपान करने लगा था। किरण उसके समीप बैठी थी। उसने धीरे से उससे पूछा, "हमें कल इस नगर से चल देना चाहिये न ?"

उत्ताल बाबा ने धूम्र उपकरण मुख से निकाले बिना ही कहा, "मै भी यही विचार कर रहा हू।"

"देखो न, कुमार ने," वह श्वेताग को सेनापति समझी थी, "मुझ को पसन्द किया था और वह कुरूप गधा उसको दूसरी दूकान में ले गया है।"

"गधो को मेवा पसन्द नहीं आता।" उत्ताल बाबा ने अन्यमनस्क भाव में कहा।

इस समय कुमार और श्वेताग पुन लौट कर किरण के सम्मुख आ खडे हुए। अब रेखा उनके साथ थी। कुमार ने किरण की बाह पकड

कर खड़ा किया। रेखा को उसके साथ खडा कर दिया। किरण रेखा से दो अंगुल ऊंची थी। दोनो को भली भांति देख कुमार ने कहा, "मित्र! तुम कहो तो इसको भी क्रय कर लेता हूँ। इस पर भी मेरी सम्मति में पहिले वाली ही श्रेष्ठ है।"

श्वेतांग किरण की आंखो में देख रहा था। उसने कुमार के कहने का केवल यह उत्तर दिया, "अपनी-अपनी पसन्द है महाराज!"

इस पर कुमार ने किरण को भी क्रय कर लिया।

किरण को प्रासाद में आ कर पता चला कि श्वेतांग तो केवल मन्त्री है और जिसको वह कुरूप सेवक समझती थी वह कुमार सेनापति है। उसने अनुभव किया कि वह अपने जीवन की बाजी हार गयी है। श्वेतांग के साथ अल्पाहार के दिन वह समझी थी कि वह एक बुद्धिमान् विद्वान् है और उसके मन में उसके प्रति सहानुभूति है।

यद्यपि कुमार किरण के व्यवहार से पूर्णत. संतुष्ट था, परन्तु वह अभी तक भी उसके हाथ बिक जाने पर प्रसन्न नहीं हो सकी थी।

इस समय तक लगभग एक सौ भवनरक्षक अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित भवन के द्वार पर एकत्रित हो गये थे और कुमारदेव उनको समझा रहा था, "महामात्य सुदर्शन ने महाराज को भ्रम में डाल कर मेरे विरुद्ध कर दिया है। वह मेरी ख्याति पर ईर्ष्या कर रहा है। इस कारण मुझको बंदी करने की आज्ञा यहां आ रही है।"

भवनरक्षको के नायक ने जयकारा बुला दिया। उसने अपना खड्ग नंगा और ऊंचा कर कहा, "महाराज कुमारदेव की जय हो।"

सबको अपने-अपने स्थान पर नियुक्त कर कुमार देव भीतर गया, तो उसको किरण मार्ग में खड़ी मिली। उसनें पूछा, "कहां से आरही हो किरण देवी!"

"किरण परछांई की भांति महाराज के साथ-साथ घूम रही है।"

"भीतर चल कर बैठो। इसमें हानि होने का डर है।"

"दासी शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित हो श्रीमान् की सेवा में रहना चाहती हूँ।"

कुमार ने खडे होकर किरण की आखों में देखा। उसने उनमें निर्भीकता देख कहा, "मैं वहुत प्रसन्न हू किरण ! परन्तु मेरे जीवन में तुम को शस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं पडेगी।"

"इस भीड के समय श्रीमान् के मत्री कहा भाग गये है ?"

"वह भागा नहीं है देवी ! मेरे ही काम से गया हूँ।"

किरण कुमार के पीछे-पीछे उसके आगार में जा पहुची। वहा एक उच्च आसन पर वैठ कुमार ने किरण से पूछा, "रेखा कहा है ?"

"वुलाऊं महाराज उसे ?"

"हा।"

किरण चली गयी। कुमार ने अपना खड्ग निकाल कर उसकी धार को देखा और उसके तीखेपन पर सतोष अनुभव कर, पुन उसको कवच में रख लिया।

इस समय प्रतिहार भागता हुआ आया और आगार के वाहर से ही बोला, "वडे महाराज आये हैं।"

कुमार इसकी आशा नहीं करता था। इससे अनिश्चितमन खडा रह गया। इस समय महाराज महामात्य के साथ आगार में आ पहुचा। कुमार विना कुछ कहे खडा रहा और उनके कहने की प्रतीक्षा करने लगा। पालकदेव वहा रखे एक आसन पर वैठ गया। कुमार को अपने सामने के आसन पर वैठने को कह, पूछने लगा, "कुमार भैया, तुम वहा से चले क्यों आये थे ? "

"प्रवोध का व्यवहार अपमानजनक था। मैं उसको सहन नहीं कर सका।"

"वहुत विचित्र वात है ? कुमार ! तुम राज्य-परिवार के एक अग हो और तुम ही राज्य-परिषद् का अपमान करने के लिये उद्यत हो जाओ तो कैसे काम चलेगा ? क्या इस राज्य में कोई भी व्यक्ति ऐसा हो सकता

है जो धर्म की अवहेलना करे और उस पर राज्य में विचार भी हो न सके ?"

"पर भैया ! मैंने धर्म की अवहेलना नहीं की।"

"तो फिर न्यायालय में जाने से डरते क्यो हो ?"

"मुझको वहां से न्याय की आशा नहीं है ।"

"तो कहा से न्याय मिल सकता है तुम को ?"

"मैंने वहा का द्वार खटखटाया है।"

"कहा का ?"

"जनता और सेना का।"

"तो तुम विद्रोह करोगे ?"

"यदि आवश्यकता हुई तो वह भी करूंगा।"

"तो करो। जैसा मन करे करो। परन्तु इतना स्मरण रखना कि अपने किये कर्मो के फल से वच नहीं सकोगे। मै तो जा........।"

पालकदेव इससे अधिक नहीं कह सका । कहते-कहते उसको स्मरण आ गया कि कुमार उसका कनिष्ठ भ्राता है । उसके लिये अशुभ कामना करना उचित नहीं। इस कारण वह चुप कर गया। वह उठ खड़ा हुआ और आगार से जाने के लिये तैयार हो गया। इस समय किरण और रेखा वहा आ पहुचीं। वे महाराज को वहा देख ठिठक गयीं। पालकदेव ने उनको देखा और समझा। उसने पूछा, "ये कौन दासियां हैं ?"

"यह," कुमार ने रेखा की ओर देखते हुए कहा, "मेरी पटरानी बनने वाली हैं।"

"और यह ?" पालकदेव ने किरण की ओर देख कर पूछा।

"यह मेरी हृदय की रानी बनेगी।"

महाराज ने किरण को सिर से पाव तक देखा और कहा, "मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ हैं ।"

महाराज द्वार के वाहर ही निकलने वाला था कि श्वेताग सेना के पाच भटों के साथ आ पहुचा। पूर्व इसके कि महाराज कुछ कहे श्वेतांग ने

सैनिको को आज्ञा दी, "श्री सुदर्शन ने ही देश में अव्यवस्था उत्पन्न करने का यत्न किया है । इनको वदी वना लो ।"

सैनिक महामात्य को पकडने के लिये लपके, परन्तु महाराज पालकदेव उसके सम्मुख खडे हो गये और हाथ उठा सैनिकों को रोकते हुए श्वेताग से पूछने लगे, "किस की आज्ञा से यह हो रहा है ?"

"सेनापति की, जिन्होंने देश का शासन अपने अधीन कर लिया है ।"

"क्यों ? किस के कहने से ?"

"जनता की इच्छा से। नगर की वैश्य समाज और कर्मकार वर्ग के नेताओं के कहने से। इन दोनो वर्गो की जनसख्या पूर्ण जनसख्या की दो तिहाई है ।"

"मै इस प्रकार के विद्रोह को सहन नहीं कर सकता। मै यहां का राजा हू और मै आज्ञा देता हू कि सैनिक अपने-अपने शिविरो को लौट जावें।"

श्वेताग ने कहा, "मुझको यह वताते हुए वहुत ही दु ख हो रहा है, परन्तु मै विवश हू । मुझ को सेनापति जी की आज्ञा है कि महामात्य जी को वदी वना लिया जावे और यदि इस कार्य में कोई वाधा डाले तो उसको मार्ग में से काटे की भाति दूर कर दिया जाये । इस कारण मै आज्ञा देता हू कि आप दोनों को वदी कर लिया जाये।"

सैनिकों ने एक क्षण तक कुमार का मुख देखा, परन्तु यह देखा कि वह इस आज्ञा का विरोध नहीं कर रहा है, उन्होने महाराज पालक और महामात्य सुदर्शन दोनों को पकड लिया।

यह देख किरण का मुख विवर्ण हो गया। उसके होठ फडफडाने लगे, परन्तु शीघ्र ही अपने को नियत्रण में कर उसने मुख को वद कर लिया। होठों को कस कर भींच कर अपने को वोलने से रोका।

श्वेताग ने कुमारदेव से पूछा, "महाराज! इनका निवास स्थान कहा-कहा होगा ?"

"यह हमारे सम्मानित अतिथि है। अतएव इसी भवन में इनके ठहरने का प्रवन्ध किया जावेगा।"

इतना कह कुमारदेव ने वंदियों को उसके साथ ले आने का संकेत किया और अपने शयनागार को चल दिया। वहा से एक मार्ग भूगर्भ में जाता था। वह वंदियो को लेकर उस मार्ग में चला गया।

श्वेताग अपने आगार में जाकर आज्ञायें लिखने लगा। जब से वह उज्जयिनी में आया था, तव से ही वह एक ऐसे दिन की तैयारी में लगा था। उसने नगर के सब प्रमुख नागरिको के साथ सम्पर्क वना लिया था। सेना में अनेको से उसका परिचय हो चुका था। घटनायक, नायक, उपसेनापति सव सैनिक पदाधिकारियो से उसने वातचीत कर रखी थी। यही कारण था कि जव चोट करने का समय आया तो वह तैयार था।

राजनीति, जैसी वह पढ़ा था, समय पर चूकने की राय नहीं देती थी। अवसर-प्राप्ति पर जो भावुकता के आवेश में कर्तव्य भूल जाता है, वह राजनीति में कुशल व्यक्ति नहीं माना जाता। उसने महर्षि वाल्मीकि का कथन, 'चातुर्वर्ण्यहितार्थाय कर्त्तव्यं राजसूनुना। नृशसमनृशंस वा प्रजा रक्षणकारणात्। पावनं वा सदोषं वा कर्त्तव्यं रक्षता सता।' पढा था और उस पर मनन किया था।

इस कारण विना किसी प्रकार की शोच शका किये उसने नगर में यह घोषणा करवा दी—"सैनिक दृष्टिकोण से राज्य की भली भाति रक्षा और सर्व साधारण के सुख सुविधा के लिये, अवन्ति के मनोनीत सेनापति श्रीमान् कुमारदेव ने इसको कुछ प्रमादी और अदूरदर्शी व्यक्तियो से वचाने के लिये शासन अपने अधिकार में कर लिया है। इसमें श्रीमान् महाराज पालकदेव ने राज्य के हित के लिये अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उन्होने राज्य अपनी इच्छा से अपने भाई कुमारदेव के हाथ में सौंप दिया है।

"इस कारण यह घोषणा की जाती है कि आज मध्य रात्रि से श्रीमान् कुमारदेव अपने वडे भाई महाराज पालकदेव की आज्ञा से राज्य कार्य चलावेंगे। सव नागरिको को यह आदेश दिया जाता है कि जव तक नवीन राज्य-परिषद् का निर्माण नहीं हो जाता, महाराज कुमारदेव की आज्ञा का पालन करें।"

नगर में स्थान-स्थान पर सैनिक बैठा दिये गये और यह घोषणा नगर के सब चौराहों पर कर दी गयी। यह परिवर्तन इतना एकाएक हुआ कि लोग इसका अर्थ समझ नहीं सके। सब अवाक् एक दूसरे का मुख देखते रह गये।

अगले दिन सूर्योदय के समय इस घोषणा को राज्य भर में प्रसारित कर दिया गया। साथ ही राज्य-परिषद् के निर्माण तक श्वेताग को पूर्णाधिकार से युक्त महामात्य घोषित किया गया।

१३ .

मध्य रात्रि से पूर्व ही महारानी पद्मावती को कुमारदेव की घोषणा का ज्ञान हो गया। एक दासी ने आकर बताया, "महारानी जी! मार्ग तटों पर सैनिक खडे घोषणा कर रहे हैं कि महाराज ने राज्य भार अपने छोटे भाई कुमारदेव को सौंप दिया है।"

महारानी को विश्वास नहीं आया। इस कारण उसने दो अन्य दासियों को भिन्न-भिन्न मार्गों पर भेज इस समाचार के विषय में जाच करने को कहा। शीघ्र ही दोनों लौट आयीं और कहने लगीं, "राज-प्रासाद सैनिकों ने घेर लिया है और यहा से किसी को बाहर जाने नहीं दिया जाता।"

इस समाचार को सुनकर महारानी का मुख विवर्ण हो गया। वे कितनी ही देर तक अवाक् बैठी रहीं। धीरे-धीरे उसको बात समझ आगयी और उसने भवनरक्षक को बुला कर पूछा, "क्या हुआ है?"

"राज्य भवन को सैनिकों ने चारों ओर से घेर लिया है और कह रहे हैं कि महाराज ने राज्य अपने छोटे भाई को सौंप दिया है।"

"यदि यह ठीक भी हो, तो क्या हम बंदी बना लिये गये हैं?"

"मैंने पूछा है, और वे कह रहे हैं, कि महाराज कुमारदेव की आज्ञा ऐसी ही है।"

महारानी पद्मावती अपने लडके शतवीर को शयनागार म देखने गई और उसको गहरी नींद में सोया देख बाहर आ गयी। बाहर आ उसने

एक पत्र कुमारदेव को लिखा, "मैं तुम से स्वयं मिलने के लिये आने वाली थी, परन्तु सैनिको ने मार्ग रोक रखा है । इस कारण इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रहा कि तुमसे कहूं कि यहां आ जाओ और जो कुछ हो रहा है उसका अभिप्राय समझा जाओ।"

चिट्ठी गई और उत्तर श्वेताग के हाथ का लिखा हुआ आया। उत्तर था, "आदरणीय महारानी जी ! महाराज और सेनापति अभी आवश्यक राजकीय बातो के विषय में वार्तालाप कर रहे है। इस कारण दोनो में कोई भी अभी आ नहीं सकता।.भवन के चारो ओर सैनिक बैठाने का अभिप्राय यह है कि राज-परिवार की, विशेष रूप में राजकुमार की रक्षा की जावे। नगर में भारी हलचल होने की संभावना है और इससे राज परिवार को हानि पहुंच सकती है । इस कारण आप भवन में निश्चिन्त होकर रहिये। रक्षा के लिये पर्याप्त सेना भेज दी है ।"

इस पर महारानी पद्मावती ने पुनः लिखा, "मैं तुरंत महाराज और सेनापति से मिलना चाहती हूं। सेनानायक को आज्ञा भेज दी जावे कि वह मुझको आने दे और रोके नहीं।"

उत्तर तुरंत आया, "नगर में भारी उपद्रव हो रहे हैं और मैं आपके भवन से बाहर निकलने को पसन्द नहीं करता। महारज और सेनापति दोनों की यही सम्मति है ।"

महारानी रात भर बैठी महाराज की प्रतीक्षा करती रहीं। सूर्योदय के समय राजकुमार गतवीर उठा तो वह माता की रात भर रोने से फूली आंखें देख विस्मय करने लगा। दस-ग्यारह वर्ष का बालक राजनीतिक चालो को समझ नहीं सका। इस पर भी माता के दुःखी होने को अनुभव करता था, "मां ! पिता जी कहां है ?"

"नहीं मालूम , बेटा !"

"महामात्य से पूछा है ?"

"उनका भी पता नहीं कि वे कहां है ।"

"मैं उनके घर जाकर पूछूं ?" महामात्य राज-भवन के एक पक्ष में

ही रहता था। उसके घर के लोग भी नहीं जानते थे कि वह कहा है।

राजकुमार स्वभाववश भ्रमणार्थ वाहर जाना चाहता था, परन्त उसकी मा ने वांह पकड समीप वैठा कर कहा, "वेटा, तुम वाहर नहीं ज सकोगे।"

"क्यो ?"

"हम वदी है।"

"किस के ?"

"तुम्हारे चाचा के।"

राजकुमार समझ नहीं सका। विवश वहीं वैठ गया। उसका मन भीतर ही भीतर क्रोध से व्याकुल हो रहा था। यह अवस्था अधिक काल तक नहीं रही। एक दासी आयी और वोली, "महाराज कुमारदेव के मत्री श्वेताग आप से भेंट करने आये है।"

"वुलाओ।" पद्मावती ने कहा।

श्वेतांग आया तो उसने झुक कर प्रणाम किया और कहने लगा, "महाराज कुमारदेव ने मुझको एक सदेश देकर भेजा है।"

"कहो।"

श्वेताग खडा था और महारानी सामने आसन पर वैठी उत्सुकता से सुन रही थी। श्वेताग ने कहा, "महाराज कुमारदेव ने मुझको आज्ञा दी है कि मै आपको सूचित कर दूं कि पिछली मध्य रात्रि के काल से अवन्ति के राज्य को उन्होने सम्हाल लिया है। महाराज पालकदेव इस समय महाराज कुमारदेव के गृह में वदी है। इस कारण श्रीमान् कुमारदेव ने पूछा है कि आप प्रासाद में बदी रहना चाहती है या अपने पति के पास ?"

महारानी इस सूचना को सुन कितनी ही देर तक विना कुछ कहे अपने मन में मनन करती रही। इतने काल तक श्वेताग सामने आवर के भाव से खडा रहा। अत में महारानी ने पूछा, "तुम कुमारदेव के एक सेवक मा हो अथवा राज्य में कोई पद रखते हो ?"

"मुझ को महाराज कुमारदेव ने राज्य का महामात्य नियुक्त किया है।"

"तो तुम बताओ कि किस आधार पर राजकुमार ने राज्य अपने हाथ में लिया है ?"

"प्रजा की इच्छा के आधार पर।"

"प्रजा की इच्छा कब जानी गई है ?"

"शूद्र वर्ग और वैश्य वर्ग के नेता मत्री गण महाराज के पदच्युत करने के पक्ष में थे, और इन दोनो वर्गो की जनसख्या राज्य की जनसख्या की तीन-चौथाई है।"

"कैसे जाना कि दोनो वर्ग के लोग राज्यपरिवर्तन के विषय में, अपने नेताओ का समर्थन करते है।"

"इस बात को स्वाभाविक माना गया है।"

"मै समझती हू कि तुम्हारा यह मानना अर्थहीन है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इतनी आवश्यक बात इस प्रकार नहीं मान सकता।"

श्वेताग निरुत्तर हो रहा था इस कारण उसने बात बदल कर कहा, "मै महाराज कुमारदेव के प्रश्न का उत्तर चाहता हू।"

"तुम्हारे कुमारदेव का अधिकार नहीं कि वह अपने बड़े भाई को बदी कर ले और न ही वह मुझ को बंदी होने को कह सकता है।"

"पर आदरणीय महारानी जी !" श्वेताग ने नम्रतापूर्वक कहा, "बदी तो वे और आप है। मैंने तो यह पूछा है कि आप महाराज के साथ रहना चाहती है अथवा पृथक् ?"

"देश का दुर्भाग्य है कि तुम्हारे जैसा तर्कहीन व्यक्ति राज्य में महामात्य पद को ग्रहण करने जा रहा है। बदी किसने किया है ? क्यो किया है ? महाराज ने क्या अपराध किया है जिससे वे बदी है ? इसी प्रकार मेरी बात है। बंदीगृह का प्रश्न तो उठता ही नहीं।"

"मैं तो महाराज की आज्ञा सुनाने आया हूं। आप से तर्क करने नहीं।"

"तो तुम महामात्य नहीं हो ? एक प्रतिहार मात्र हो ? महामात्य तो राज्य में नीति-सचालन करने वाला होता है। महाराज भी विना महामात्य की अनुमति के किसी कार्य को कर नहीं सकता। चले जाओ यहा

से। मूर्ख कहीं के! तुम्हारे महाराज का प्रश्न अनर्गल है और उसका कुछ उत्तर नहीं।"

श्वेताग मूर्ख कहे जाने से क्रोध से लाल मुख हो महारानी जी का मुख देखता रह गया। वहुत कठिनाई से अपने मन पर सयम कर कहने लगा, "मेरा अधिकर नहीं कि मै महारानी जी को राजनीति की शिक्षा दूं। इस पर भी मूर्ख महामात्य की एक वात को आप स्मरण रखें। राजनीति में सवसे वडी युक्ति और सवसे वडा सत्य शक्ति है। शक्तिहीन पुरुष राज्य नहीं कर सकता।"

"परन्तु तुम और तुम्हारे स्वामी कौन-सी शक्ति के अधिकारी वन गये है?

"सेना के।"

"सेना तो राज्य की वस्तु है। यह तो इसकी वाहरी शत्रुओ से रक्षा के लिये होती है। देश के भीतर राजा और राजा में यह शक्ति का रूप नहीं रखती। इस को भ्रम में डाल यदि तुम इसका प्रयोग करोगे तो घोर पाप के भागी होगे और पाप पापी पर ही विनाशकारी प्रभाव रखता है।"

श्वेताग महारानी की युक्तियो के आगे साप की भांति सटपटा रहा था। उसने अपने गुरुजनों से सीखा था कि राजनीति में कठिनाई के समय अपने मन के सतुलन को ठीक रखना सवसे वडा गुण है। इस कारण उसने अपने क्रोध को मन ही मन पी लिया और कहा, "तो फिर आपके लियें वदी-गृह का निर्णय भी हम ही करें?"

महारानी ने उत्तर देने के स्थान वहा से उठ जाना उचित समझा। वह उठी और विना श्वेताग की वात का उत्तर दिये दूसरे आगार में चली गयी।

शतवीर माता के पास वैठा था। वह क्रोध और घृणा से भरा हुआ श्वेताग की ओर देख रहा था। जव वह जाने लगा तो राजकुमार ने कहा, "ए! ए! ठहरो।"

श्वेतांग जहा था वहा ही ठहर गया और मुस्कुराते हुए बालक की ओर देखने लगा। शतवीर ने कहा, "ठहरो, मै तुम से युद्ध करूगा। तुम्हारे.

पास तुम्हारा खड्ग नहीं है क्या ? कैसे महामात्य हो तुम ? अपना खड्ग भी नहीं रखते ? एक प्रतिहार से ले लो और लड़ो।"

"तुम मुझ से युद्ध क्यों करना चाहते हो, राजकुमार ?"

"तुम ने महारानी जी का अपमान किया है।"

"मैंने अपनी जानकारी में तो अपमान नहीं किया। यदि राजकुमार इसको भी अपमान समझते हैं तो मैं क्षमा चाहता हूं। मेरा ऐसा करने का किंचित्मात्र भी विचार नहीं था।"

"तो तुम मुझ से लड़ोगे नहीं ? तुम भीरु हो।"

श्वेतांग बालक की बातें सुन हंसने लगा। शतवीर उसके हंसने का अर्थ न समझ विस्मय में उसका मुख देखने लगा। श्वेतांग उसके मन में उठ रहे संशयों का अनुमान लगा कर उनको दूर करने के लिये कहने लगा, "वीर बालक, तुम्हारी आयु अभी बहुत कम है। तुम्हारा ज्ञान भी बहुत न्यून है। मेरी राय मानो। वाद-विवाद छोड़ मुझ से पढ़ने आया करो। दश वर्ष पढ़ने के उपरान्त, यदि तुम चाहोगे तो मैं तुम से युद्ध करूंगा।

"जाओ अपनी माता जी के पास बैठो। अभी तुम्हारी आयु राज्य कार्य समझने की नहीं है।"

7

से। मूर्ख कहीं के ! तुम्हारे महाराज का प्रश्न अनर्गल है और उसका कुछ उत्तर नहीं।"

श्वेतांग मूर्ख कहे जाने से क्रोध से लाल मुख हो महारानी जी का मुख देखता रह गया। बहुत कठिनाई से अपने मन पर संयम कर कहने लगा, "मेरा अधिकार नहीं कि मैं महारानी जी को राजनीति की शिक्षा दूँ। इस पर भी मूर्ख महामात्य की एक बात को आप स्मरण रखें। राजनीति में सबसे बड़ी युक्ति और सबसे बड़ा सत्य शक्ति है। शक्तिहीन पुरुष राज्य नहीं कर सकता।"

"परन्तु तुम और तुम्हारे स्वामी कौन-सी शक्ति के अधिकारी बन गये हैं?

"सेना के।"

"सेना तो राज्य की वस्तु है। यह तो इसकी बाहरी शत्रुओं से रक्षा के लिये होती है। देश के भीतर राजा और राजा में यह शक्ति का रूप नहीं रखती। इस को भ्रम में डाल यदि तुम इसका प्रयोग करोगे तो घोर पाप के भागी होगे और पाप पापी पर ही विनाशकारी प्रभाव रखता है।"

श्वेतांग महारानी की युक्तियों के आगे साँप की भाँति सटपटा रहा था। उसने अपने गुरुजनों से सीखा था कि राजनीति में कठिनाई के समय अपने मन के संतुलन को ठीक रखना सबसे बड़ा गुण है। इस कारण उसने अपने क्रोध को मन ही मन पी लिया और कहा, "तो फिर आपके लिये बंदी-गृह का निर्णय भी हम ही करें?"

महारानी ने उत्तर देने के स्थान वहाँ से उठ जाना उचित समझा। वह उठी और बिना श्वेतांग की बात का उत्तर दिये दूसरे आगार में चली गयी।

शतवीर माता के पास बैठा था। वह क्रोध और घृणा से भरा हुआ श्वेतांग की ओर देख रहा था। जब वह जाने लगा तो राजकुमार ने कहा "ए! ए! ठहरो।"

श्वेतांग जहाँ था वहाँ ही ठहर गया और मुस्कुराते हुए बालक की ओर देखने लगा। शतवीर ने कहा, "ठहरो, मैं तुम से युद्ध करूँगा। तुम्हारे

पास तुम्हारा खड्ग नहीं है क्या ? कैसे महामात्य हो तुम ? अपना खड्ग भी नहीं रखते ? एक प्रतिहार से ले लो और लडो।"

"तुम मुझ से युद्ध क्यो करना चाहते हो, राजकुमार ?"

"तुम ने महारानी जी का अपमान किया है।"

"मैंने अपनी जानकारी में तो अपमान नहीं किया। यदि राजकुमार इसको भी अपमान समझते है तो मैं क्षमा चाहता हूं। मेरा ऐसा करने का किंचित्मात्र भी विचार नही था।"

"तो तुम मुझ से लड़ोगे नहीं ? तुम भीरु हो।"

श्वेतांग वालक की वातें सुन हसने लगा। शतवीर उसके हसने का अर्थ न समझ विस्मय में उसका मुख देखने लगा। श्वेतांग उसके मन में उठ रहे सशयो का अनुमान लगा कर उनको दूर करने के लिये कहने लगा, "वीर वालक, तुम्हारी आयु अभी वहुत कम है। तुम्हारा ज्ञान भी वहुत न्यून है। मेरी राय मानो। वाद-विवाद छोड मुझ से पढने आया करो। दश वर्ष पढने के उपरान्त, यदि तुम चाहोगे तो मैं तुम से युद्ध करूगा।

"जाओ अपनी माता जी के पास वैठो। अभी तुम्हारी आयु राज्य कार्य समझने की नहीं है।"

7

स्वार्थपरता

: १ :

श्वेतांग ने सेना के बल पर अवन्ति में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उस क्रान्ति के विरोधी तत्वों को उसने मार्ग से कांटे की भांति दूर हटा दिया। महाराज पालकदेव तथा महारानी पद्मावती बंदी कर लिये गये। पंडित सुखदर्शन और उसके साथ बीस के लगभग अन्य ब्राह्मण बंदी बना नाराट् नाम के दुर्ग में भेज दिये गये। शतवीर को आचार्य वामदेव के पास पढ़ने के बहाने भेज दिया गया और प्रबोध न्यायाधीश को महाराज कुमारदेव का अपमान करने के लिये प्राणदण्ड दिया गया।

जनता में उक्त कार्यों से ऐसा आतंक बैठा कि किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में जनता को प्रसन्न रखने के लिए, तीर्थाटन से लौटने के उपलक्ष में हो रहे उत्सव को लम्बा कर दिया गया। लोग नाच-रंग में लीन रहे और उस अन्याय को भूल गये, जो राज्य के कुछ नागरिकों के साथ किया गया था।

कुमारदेव का राज्य भली प्रकार स्थापित हो गया। जहां सेना मन-मानी करने का अवसर पाने से प्रसन्न थी, वहां जनता डर से भयभीत चुप थी। नगर का वैश्य वर्ग आय में वृद्धि के कारण संतुष्ट था और शूद्र वर्ग मद्य-मांस के सुलभ हो जाने से मस्त था।

किरण और रेखा कुमार की अति प्रिय दासियां थीं। जहां रेखा कुमार की वासना-तृप्ति के अधिक योग्य थी, वहां किरण अपनी योग्यता, बुद्धि और कार्य पटुता से कुमार के मन पर अधिक और अधिक प्रभाव जमा रही थी।

राज्य-परिवर्तन के दो-तीन दिन पीछे कुमार किरण के आगार में जाकर कहने लगा, "किरण! तुम पर भरोसा किया जा सकता है क्या?"

"अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्या करू, महाराज ! परीक्षा कर देख लीजिये ।"

"तुम जानती हो कि मेरे बड़े भाई इसी भवन में वंदी है। मैं समझता हू कि उनकी देख भाल साधारण दास-दासियो के हाथ में न दे कर, तुम्हारे हाथ में रखूं तो ठीक रहेगा। महामात्य उनका प्रवन्ध कर रहे हैं, परन्तु मेरी इच्छा है कि उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो। मैंने तुम को सभ्य और सुशील पाया है। रेखा से भी अधिक। इस कारण यह कठिन कार्य तुम को देना चाहता हू।"

किरण मन में विचार करती थी कि पालकदेव का वंदी किया जाना अन्याय है। कुमार ने उसको भी अपने अन्याय में भागीदार वनाना चाहा है। इस पर भी वह ना नहीं कर सकी।

उसको महाराज कुमारदेव से रोप था। वे रेखा को पटरानी वनाने वाले थे और वह समझती थी कि रेखा फूहड, मूर्ख और अशिक्षित है। वह अपने को सव प्रकार से उससे श्रेष्ठ मानती थी।

श्वेताग ने उसकी एक वार प्रशसा की थी। इस कारण पिछले दस वारह दिन से, जव से वह क्रय कर भवन में लायी गयी थी, श्वेताग से सम्पर्क स्थापित करने का यत्न कर रही थी, परन्तु इसका वह अवसर नहीं पा सकी थी।

आज कुमारदेव ने जव उसको अपने भाई की देखभाल का कार्य दिया, तो वह अपने को विश्वास पात्र सिद्ध करने के लिये मन लगा कर इस कार्य में लग गयी।

उसने भूगर्भ आगारो की तालिया ले लीं और अपनी निज की एक सेविका मघोका, को लेकर पालकदेव को देखने चली गयी।

कुमारदेव के अपने शयनागार में पूर्व की दीवार में एक द्वार था। उस द्वार को सदैव ताला लगा रहता था। द्वार खोल सीढ़िया थीं, जो भूमि के नीचे को जाती थीं। वीस सीढ़ियां उतरने के पश्चात् एक मार्ग था और उस मार्ग के दोनों ओर कई आगार थे। इनमें से एक आगार में महामात्य सुदर्शन

और दूसरे में पालकदेव बद्ध थे। प्रत्येक आगार में भवन के पिछवाड़े की ओर से प्रकाश और वायु आने को गवाक्ष बने थे और आगार के साथ पायखाना और स्नानागार थे। भवन नदी के किनारे पर बना था और इन आगारों की दीवारें, जिनमें गवाक्ष थे नदी के ऊपर खुलती थीं।

किरण ने पहिले पालकदेव का आगार खोला। बंदी एक चटाई पर आसन जमाये पूजा कर रहा था। इस कारण वह उसकी पूजा समाप्त होने तक वहा खडी रही। महाराज ने आख खोली तो बंदी होने की रात को देखी क्रीतदासियों में से एक को सामने खडा देख विस्मय में उसको देखने लगा।

किरण ने अपना परिचय दिया, "मैंने महाराज के दर्शन किये हैं। अब श्रीमान् कुमारदेव ने मुझको आपकी सेवा तथा यहा का प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त किया है। मैं अब आप से यह जानने के लिये आयी हू कि आप को क्या-क्या वस्तु चाहिये। अभी तक आप को क्या असुविधा रही है।"

"मुझको कुछ नहीं चाहिये। मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।"

"आप रात सोये कहां थे?"

"इस चटाई पर।"

"तो आपको सोने को पलग, बैठने को चौकिया, पूजा के लिये सामान, वस्त्र और भोजन चाहिये। स्नानादि का प्रबन्ध इस स्थान पर है। रात को प्रकाश के लिये दीपक चाहिये।"

पालकदेव चुप रहा। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर किरण ने कहा, "आप को स्वाध्याय के लिये कौन ग्रन्थ चाहियें?"

पालकदेव इस प्रश्न से किरण की ओर विस्मय से देखने लगा। किरण ने पूछा, "क्या आप 'भारत युद्ध इतिहास' का अध्ययन करना चाहेंगे अथवा 'वाल्मीकि रामायण' का पाठ? यदि रुचि हो तो कोई उपनिषद् अथवा ब्राह्मण ग्रन्थ भेज दूं?"

पालकदेव से अब नहीं रहा गया। उसने पूछा, "तुम क्या समझती हो कि मुझको इस अवस्था में कौन ग्रन्थ पढने चाहियें?"

"महाराज अपनी रुचि के अनुसार ही तो कोई कह सकता है। मेरी रुचि तो 'भारत युद्ध इतिहास' की ओर है।"

"तुमने वह ग्रन्थ पढा है क्या ?"

"हा महाराज ! दो वार तो आद्योपांत पढा है।"

"और क्या पढा है तुमने ?"

"वाल्मीकि रामायण भी कई वार पढी है।"

"दोनों में से किस को पसन्द करती हो तुम ?"

"काव्य की दृष्टि से तो 'वाल्मीकि रामायण' श्रेष्ठ है, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'भारत युद्ध इतिहास' एक अमूल्य ग्रन्थ है।"

पालकदेव किरण को एक शिक्षित लडकी देख चकित रह गया। इस कारण उसने पूछा, "देवी ! इतनी विद्वान् होने पर भी तुम वेची गयी हो। इसमें क्या रहस्य है ?"

"कुछ विशेष रहस्य नही महाराज ! मैंने सुना है कि मेरे माता-पिता वहुत निर्धन थे और उत्ताल वावा ने मुझको उन से मोल ले लिया था। तव मै वहुत कम आयु की थी। मुझको अपने माता-पिता का धुंधला सा ज्ञान है। यह शिक्षा मुझको उत्ताल वावा ने दी है। वे स्वय भारी विद्वान् हैं। मेरा सौन्दर्य और मेरे मन की श्रेष्ठता देख उन्होंने मुझको किसी राजा-महाराजा के योग्य दासी वनने के लिये शिक्षा दी है।"

"तो तुम अपने राजा को पा गयी हो ?"

किरण चुप रही। पालकदेव को उस रात की वात याद आ गयी, जव कुमारदेव ने दूसरी दासी को पटरानी वनाने का विचार प्रकट किया था। इस पर महाराज पालकदेव ने कहा, "मुझको यह देख वहुत शोक हो रहा है कि तुम जैसी विदुषी स्त्री क्रीतदासी है।"

"इससे क्या होता है महाराज ! अनेकों स्त्रिया जीवन भर मूर्ख पतियों की सेवा करती रहती हैं। वे कभी उचित मान नहीं पातीं। यह सव भाग्य की वात है कि कोई राजा की सेवा करती है और कोई रंक की।"

पालकदेव किरण के इस कथन से उसके मन में कटुता के होने का

अनुभव करता था। उसको ऐसा अनुभव हुआ कि उससे उचित व्यवहार नहीं हो रहा। इस पर भी उसने कहा, "दासी और पत्नी में अंतर नहीं मानती क्या ?"

"केवल नाम में महाराज।"

"एक छोडी जा सकती है और दूसरी नहीं। क्या यह कम अंतर है ?"

"पुरुष तो दोनों को छोड सकता है। स्त्री किसी भी अवस्था में नहीं छोड सकती। भाग्य से किसी को अच्छा पुरुष मिल जाता है, किसी को कर्म से पशु और नाम से पुरुष।"

पालकदेव के मन में किरण के लिये आदर उत्पन्न हो गया था। वह सोचता था कि यह विदुषी स्त्री उसके बंदी गृह की प्रबन्धिका नियुक्त हुई है। इससे प्रसन्न हो उसने कहा, "देवी! मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि तुम जैसी योग्य प्रबन्धिका से मेरा सम्पर्क हो रहा है। इससे मेरे मन में आशा उत्पन्न हो गयी है कि मेरा बंदी काल भी कुछ अधिक कष्टमय नहीं होगा।"

"मैं आप को सुखी रखने का यत्न करूंगी।"

"क्या महारानी पद्मावती का समाचार मिल सकेगा ?"

"यद्यपि यह बात मेरे कार्य का भाग नहीं है, तो भी मैं महाराज को इस विषय में समाचार लाकर देने का यत्न करूंगी।"

२ :

किरण जब पालकदेव से मिलकर आयी तो उसके मन में एक टीस अनुभव हुई। वह श्वेतांग के व्यवहार को, पालकदेव के बंदी बनाये जाने के दिन देख चुकी थी। उसको कुछ ऐसा भास हुआ था कि भाई-भाई के झगडे में श्वेतांग ही कारण है। साथ ही जिस प्रकार श्वेतांग ने आतंक जमा कर जनता के मन की भावनाओं को दबाया था वह ठीक नहीं समझती थी। बंदियों की सेवा और प्रबन्ध का काम उसको देना और श्वेतांग के हाथ से ले लेना, उसको विचित्र प्रतीत हुआ। उसने यह भी देखा कि अभी तक बंदियों के साथ वैसा व्यवहार नहीं हो रहा जैसा कि अवन्ति के भूतपूर्व महाराज के

साथ होना चाहिये था। इससे उसके मन में जहा श्वेताग के विषय में अच्छे बने हुए विचार विगड रहे थे, वहा कुमारदेव के लिये उसके मन में दया के भाव उत्पन्न हो रहे थे। वह समझती थी कि श्वेताग अपने ईश्वरदत्त सम्मोहिनी प्रभाव के कारण कुमारदेव को भ्रम में फसा रहा है ! वह समझ रही थी कि वदियों का प्रवन्ध उसके हाथ से निकल जाने के कारण वह चिन्तित अवश्य होगा और उसके पास इसका कारण पूछने आयेगा।

उसका अनुमान ठीक निकला। उसी दिन मध्याह्न के भोजन के पश्चात् उसकी दासी मयोका यह सूचना लेकर भीतर आयी कि महामात्यजी भेंट के लिये आये है। किरण वाहर के आगार में आ गयी। श्वेताग वहा वैठा था। वह कुछ चिन्तित था और किरण ने उसका अभिवादन कर पूछा, "क्या आज्ञा है श्रीमान् ?"

"महाराज ने अभी वताया है कि किरण देवी वदी गृह की प्रवन्धिका नियुक्त हुई है।"

"महाराज ने इस विषय में मेरा विश्वास कर मेरा भारी सम्मान किया है।"

"परन्तु यह कार्य वहुत कठिन है। इस में वहुत वडा उत्तरदायित्व है।"

"मै जानती हूं श्रीमान्।"

"पालकदेव के भाग जाने की सम्भावना को भी विस्मरण नहीं किया जा सकता।"

"ठीक है। क्या यही आपकी चिन्ता का विषय है ?"

"जव से मैंने सुना है, तव से ही भारी चिन्ता में हू। अभी नगरनिवासियो के मन में पालकदेव के लिये न केवल मान है, प्रत्युत भक्तिभाव भी विद्यमान है। यदि वे जनता में जा पहुचे तो भयकर प्रतिक्रिया उत्पन्न होने की सम्भावना है।"

"सत्य ही यह ध्यान रखने की वात है, श्रीमान् ! इसको रोकने का उपाय करना महामात्य का काम है।"

"इसी लिये तो आया हूं। महाराज कुमारदेव का राज्य अभी नवीन है।

एक सुकुमार पौदे की भांति इसकी रक्षा होनी चाहिये।"

"तो क्या श्रीमान् देश में शान्ति रखने के उपायो पर मुझ से राय करने आये है ?"

"सो तो नहीं। आपसे तो केवल यह कहने आया हू कि महाराज पालकदेव को भागने नहीं देना। ऐसा होने पर देश में उपद्रव उत्पन्न हो जावेगा।"

"मै यह समझती हू और ऐसी बात को रोकने का पूर्ण यत्न करूंगी।"

"पर प्रश्न तो यह है कि क्या तुम अकेले में कर सकोगी ?"

"आप क्या समझते है कि मै कर सकूंगी अथवा नहीं ?"

"मै समझता हू कि अकेले इतना आवश्यक और कठिन कार्य करना तुम्हारी शक्ति से बाहर है।"

"तो महाराज से कह कर इस काम पर किसी ऐसे की नियुक्ति करवा दीजिये, जो इस कठिन कार्य को कर सकता हो।"

"देखो किरण, महाराज में इतनी योग्यता होती तो बात ही क्या थी ? मैंने उनसे यही बात कही तो बोले, कि मै स्वय देख लूं। देखो न, नियुक्ति तो उन्होंने स्वय की और मै तुमको हटाने पर लगा दिया गया हू। यही तो अयोग्य व्यक्तियो का काम है।"

"पर मै पूछती हू कि ऐसे अयोग्य को आपने राज-गद्दी पर बैठाया क्यो ?"

श्वेताग इस बात को सुन कर खिलखिला कर हस पड़ा। किरण इस हसी का कारण नहीं जान सकी। किरण को प्रश्नभरी दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए पा, श्वेतांग ने अपनी हसी का कारण बता दिया, "तो आप नहीं जानतीं। मेरा हित कुमारदेव के महाराजा बनाने में था।"

"तो मुझको बंदियों के प्रबन्ध करने के कार्य से हटाने में भी आपका हित है क्या ?"

"यह कार्य आपका नहीं है। स्त्रियो को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।"

"अच्छी बात," किरण ने कहा और उठ खड़ी हुई। श्वेताग तो बदी-

गृह की ताली लेने आया था। इस कारण किरण के मान जानेपर भी विना ताली दिये जाते देख बोला, "देवी ! वदी-गृह की ताली।"

"वह मैं महाराज को लौटाने जा रही हू। आप उनसे जाकर ले लीजिये।"

श्वेताग किरण से हार गया। उसने अनुभव किया कि वह उसके सम्मोहिनी प्रभाव, जिसके लिये वह विख्यात था, में नहीं लाई जा सकी। इस पर उसने अपनी वात वदल दी। उसने कहा, "यदि इन छोटी वातो के लिये महाराज के पास भाग कर जाने लगे तो राज्य कार्य हो चुका। देखो किरण, मैं तुम्हारे विषय में वहुत अच्छे विचार रखता हूं। तुम्हारे सौन्दर्य से मै इतना प्रभावित हुआ हू कि मैं तुमको अवन्ति की महारानी वनाने का निश्चय कर चुका हू। यह सव कुछ मैं इस अभिप्राय से ही कर रहा हू। तुम मेरे साथ सहयोग दोगी तो तुमको भी लाभ होगा और मुझको भी। मैं महाराज कुमारदेव जैसे व्यक्ति को तुम्हारे हित में करने के लिये ही तुम्हारा सहयोग चाहता हू।"

"मैं आप की वहुत आभारी हू। आपने मुझ पर कृपा कर इस महान् व्यक्ति के साथ वाध दिया है और अव आपने मुझको महारानी वनाने के लिये इन महान् महानुभाव को अवन्ति का महाराज वना दिया है। अव यह सव आयोजन मुझ को महारानी वनाने के लिये है। आपका मैं धन्यवाद करती हू। मेरा रोम-रोम आप के अहसान के नीचे दवा हुआ है। आप विश्वास रखें कि यदि मैं पटरानी वन गयी तो आपके इन सव शुभ प्रयासों को स्मरण रखूंगी।"

श्वेताग समझ गया कि किरण उस पर व्यग कस रही है। वह अभी इस व्यग का उत्तर सोच ही रहा था कि किरण ने फिर कहना आरम्भ कर दिया, "श्रीमान् जी ! देखिये, जव आप लोग मेरा क्रय कर रहे थे मैं आप को तो महाराज समझी थी और उनको आपका भृत्य। मैं तो अव भी मन में यही चिन्तन करती रहती हू कि कहीं यह उलट पुलट हो जाये तो मुझको कितनी प्रसन्नता होगी। रात के समय जव वे मुझको अपनी दृढ़ भुजाओ में पीस रहे

होते है तो मैं आप के कोमल आलिंगन के लिये लालायित रहती हू।"

यह किरण का अंतिम प्रहार था जो श्वेताग सुन फडक उठा। अब तो उसको पहिली बात भी सत्य और हृदय से कही गयी समझ आने लगी। इस सब बात ने उसके मस्तिष्क मे एक आधी उत्पन्न कर दी। वह समझ गया कि किरण ने उसको एक मार्ग का निर्देश किया है। इससे उसने अपना ढग बदला। उसने कुछ समीप हो धीरे से कहा, "देवी! तुमने मेरे मन की बात कही है। परन्तु इस बात को करने का समय नहीं आया। अभी तो पालकदेव को जनता से पृथक् रखने का प्रश्न है। मैं समझता हू कि कुमार देव पालकदेव का भ्राता है। ऐसा समय आ सकता है जब वह स्नेह और दया मे प्रभावित हो भाई को मुक्त कर दे। यही कारण था कि मैं उसको यहा से हटा कर किसी दुर्ग मे बदी रखने के लिये ले जाना चाहता था। इसी कारण तुम से ताली मांगी थी। यह बात महाराज को बताये बिना ही करनी चाहिये।"

"आपका कहना तो ठीक ही है, परन्तु कैदियो को यहा से हटा देने पर महाराज को पता लग जावेगा और उनसे झगडा आरम्भ हो जायेगा। मेरा विचार तो यह है कि महाराज पालकदेव को यहा से हटाया न जाये, परन्तु उन पर देख-भाल अच्छी प्रकार की जाये। मैं वचन देती हू कि मैं इस विषय में कोई कसर उठा न रखूंगी। यदि महाराज ने कभी बदियों को छोडने का विचार भी किया, तो आपको तुरत बता दूंगी।"

श्वेताग को समझ आ गया कि किरण से झगडा करना न लाभप्रद है न ही सम्भव। उसने किरण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा, "मैं देवी का पूर्ण विश्वास करता हूँ।"

इतना कह वह जाने को तैयार हो गया। इस समय किरण ने उसको रोक कर पूछा, "श्रीमान्, महारानी का क्या हुआ।"

"उनको मैंने पूछा था कि वे कहा रहना चाहती है। इस पर उन्हों कहा कि वे बदी नहीं है। वे अपनी इच्छा अनुकूल विचरना चाहती है।"

"उनको भी यहा ही ले आवें तो ठीक नहीं होगा क्या?"

"बात तो ठीक है। अपनी इच्छा से कोई वंदी नहीं बनता। जब तक वंदी हैं तब तक जहा रखा जावे रहना होगा। मैं रात के समय महारानी जी को यहा मंगवा लूंगा।"

अपराह्न में कुमारदेव किरण के आगार में गया तो उसको कपड़े, बिस्तर, पुस्तकें और अन्य मनोरंजन के साधन वहा एकत्रित मिले। उस समय किरण सामान का निरीक्षण कर रही थी। इससे महाराज ने आश्चर्य में पूछा, "यह क्या हो रहा है किरण?"

"महाराज! बंदियो के लिये वस्त्र आदि तैयार कर रही हू।"

"मैंने यह सब कुछ भाई साहब को भेजने के लिये कहा था, परन्तु महामात्य ने कह दिया था कि यदि ये सब सुख-सुविधा उनको देनी है तो फिर वे वंदी ही कैसे हुए।"

"महाराज! उन्होने कोई अपराध नहीं किया, जिस कारण उनको कष्ट दिया जाये। इसमें कोई प्रयोजन नहीं। वंदी रहने मात्र से भी तो दु:ख उनको होता है। मैं यत्न करूगी कि यह भी उनको कम से कम हो।"

"तुम बहुत अच्छी हो किरण। तुम मेरा आशय भली भाति समझ गयी हो। यही कारण है कि मैंने उनको अपने आगारो में रखा है। मैं चाहता हू कि उनको शीघ्र ही छोड दूं। मैं उनसे केवल यह आश्वासन चाहता हू कि वे राज्य छोड किसी तीर्थस्थान पर जा कर रहे। उनके रहने तथा खर्चे का प्रबन्ध कर दूंगा। मैंने यह कार्य तुम को सौंपा है। आशा करता हू कि तुम मेरी इच्छा को समझ कर उसके अनुकूल कार्य करोगी?"

"मैं तो आपकी दासी हू महाराज! जैसे आप कहेंगे वैसा ही करूगी। मैं तो एक भाई के हृदय में दूसरे भाई के प्रति स्नेह की भावना का अनुमान लगा कर ही कार्य करने लगी थी। मुझको विश्वास था कि आप जैसे योद्धा, विशाल हृदय से युक्त ही होंगे। आपको अपने अनुमान से कुछ अधिक ही पाकर मुझे अति हर्ष हुआ है।"

"देखो किरण! हमारे महामात्य भैया से मिलने न पावें। इन दिनो में उन्होने भाई जी से रूखेपन का व्यवहार किया है।"

"ऐसा ही होगा महाराज । आप निश्चिन्त रहें ।"

"एक बात और है । यह रेखा पटरानी बनने की बात कह रही है ।"

किरण इस प्रश्न का अभिप्राय नहीं समझ सकी । उसने बहुत विचार किया, परन्तु उसकी समझ में यह नहीं आया कि यह प्रश्न उससे क्यों किया गया है ? इस पर भी उत्तर न देना वह उचित नहीं समझती थी । उत्तर न देने में भी उसको कुछ कहना ही चाहिये अन्यथा उसके चुप रहने से कुछ भी अर्थ लिये जा सकते हैं । इस प्रकार विचार कर उसने कहा,

"महाराज वह आप की सर्वप्रिय दासी है । उसके विषय में आप मेरी सम्मति माग कर मेरा उचित से अधिक सम्मान कर रहे हैं । इसके लिये कृतज्ञ होते हुए भी मैं यही कहूगी कि यह प्रश्न मेरे से पूछने का नहीं है । यह अपने महामात्य जी से पूछिये ।"

कुमारदेव खिलखिला कर हस पडा और बोला, "इतना कुछ तो मैं पहिले ही जानता हू । मैं तो यह जानना चाहता हू कि यदि तुम रेखा के स्थान पर होती तो क्या चाहती ?"

"मैं पटरानी बनाये जाने के लिये आप से कभी न कहती ।"

"क्यों ?"

"एक क्रीतदासी पटरानी बन जायेगी तो जनता में महारानी के लिये मान कम हो जावेगा । पटरानी जनता के पूजन की वस्तु है ।"

"यदि तुम महामात्य होतीं तो मुझ को क्या करने को कहतीं ?"

"मैं आप को राय देती कि आप रेखा की बात न मानिये ।"

"और यदि तुम मेरे स्थान पर होती तो क्या करती ।"

"यह अति कठिन बात है महाराज ! मैं तो शायद न राजा बनना चाहती और न किसी को पटरानी बनाना चाहती । इस पर भी एक बात तो है कि यदि आपका प्रेम रेखा से बहुत अधिक है तो आपको उसके लिये राज्य त्याग देना चाहिये । आप हैं महाराजा । आपकी प्रियतमा को पटरानी बनना ही चाहिये । वह पटरानी बन नहीं सकती अर्थात् आपके बराबर उठ नहीं सकती, तो महाराज आप ही भूमि पर आ जाइये ।

यह प्रेम की विजय होगी, आने वाली सन्तानें प्रेम के गीत गाती हुई आप का नाम स्मरण किया करेंगी । अभी तक तो इस विषय में राधा का नाम लिया जाता था । भगवान कृष्ण के प्रेम में उसने बहुत कुछ सहा था । भविष्य मे जहा स्त्रियो में राधा प्रेम का प्रतीक मानी जायेगी, वहा पुरुषो में आपका नाम स्मरण हुआ करेगा ।"

"क्या लाभ होगा इससे ? शायद तुम्हारे मन में कोई महत्वाकाक्षा नही है । तभी, तुम इस प्रकार से कहती हो ।"

"नही महाराज ! ऐसी बात नहीं । मेरे मन में भी आकाक्षाए हैं, परन्तु वह ससार में बडा बनने की नही । मैं श्रेष्ठ, उदार, दयावान, सत्य और न्याययुक्त आचरण रखने वाली बनना चाहती हू । यह कोई छोटी बात नही है ।"

कुमारदेव मुस्कुराया और बोला, "तो तुम भी एक भ्रम में फस कर दु ख और कष्ट भोगना चाहती हो ?"

: ३ :

पालकदेव के मन पर किरण के व्यक्तित्व का प्रभाव पड रहा था । अभी उनको बदी हुए कुछ मास ही हुए थे कि वे उससे राज्य-कार्य और आत्मा-परमात्मा के विषय में बातचीत करने लगे थे । इस समय तक महारानी पद्मावती भी वहा आ चुकी थी । किरण उनकी आवश्यकताओं को जानने के लिये नित्य दो बार बंदीगृह मे आती थी । जब यह पूछगीछ समाप्त हो जाती तो पालकदेव उसको बैठा लेते और बाहर के जगत् के विषय में । पूछने लगते । वह सुन कर उनसे अपने मन की बातें करती । इस प्रकार कार्य चलते हुए कई मास व्यतीत हो गये ।

एक दिन जब नित्यप्रति की पूछगीछ समाप्त हो गयी तो पालकदेव ने पूछा, "किरण देवी ! यह अवस्था कब तक चलेगी ?"

"महाराज ! बाहर प्रजा में कुछ दिन तक तो बेचैनी रही, परन्तु अब धीरे-धीरे प्रजा इसको एक अनिवार्य परिस्थिति मान चुप करती जाती

है। साथ ही जनता को शारीरिक सुख और भोग अधिक सुगमता से प्राप्त होने लगे हैं, जिससे वे आपको भूलने जाते हैं। मेरा अनुमान है कि छः मास के पश्चात् लोग आपका नाम भी भूल जायेंगे।"

"तब तो हमको राज्य से हटाये जाने पर शोक नहीं करना चाहिये। हमने प्रजा को सुखी रखने के साथ-साथ धर्मपरायण रखने का यत्न किया था। परिणाम कुछ अच्छा नहीं हुआ।"

"पर आपने राज्य-कार्य अपने स्वार्थ के लिये तो चलाया नहीं था। यदि प्रजा आप को नहीं चाहती, तो आप को कर्त्तव्य से छुट्टी मिल गयी, समझ लेना चाहिये ?"

"तुम हँसी कर रही हो किरण ?"

"नहीं महाराज ! मैं अपने सत्य हृदय से अपने मन की बात बताती हूं। मनुष्य के लिये कर्त्तव्यपालन करना सर्वोपरि है। जब कर्त्तव्य से मुक्ति मिल गयी तो प्रसन्न होना चाहिये। जब मनुष्य कार्य से मोह कर, उससे चिपटा रहना चाहता है तो वह स्वार्थरत होकर पतन को प्राप्त होता है।

"आपका कार्य, राजा के रूप में, इस देश में समाप्त हुआ। यदि प्रजा को आपके कार्य की आवश्यकता होती तो वह इतनी जल्दी आप को भूल न जाती। ऐसी अवस्था में यही मानना पड़ेगा कि आप का कार्य समाप्त हुआ। अब तो आपको अपना परलोक बनाने की ओर ध्यान देना चाहिये।

महारानी पद्मावती समीप बैठी इन दोनों की वार्तालाप सुन रही थी। उससे नहीं रहा गया। महारानी, जो अपने विचारों में लीन प्रतीत होती थी, कहने लगी, "किरण देवी ! यदि बुरा न मानो तो एक बात कहूं ?"

"कहिये महारानी जी !"

"क्रीतदासी होना और ऐसे ज्ञान-ध्यान की बातें करना कहां तक मेल खाता है ?"

किरण का मुख लज्जा से लाल हो गया और उसकी आंखें भूमि की ओर झुक गयीं। उसको चुप देख महारानी समझी कि उसने इस दासी को अपने स्थान पर लेजा कर बैठा दिया है। उसका विचार था कि अब वह अपने से

बड़ों को शिक्षा देने का यत्न नहीं करेगी । वास्तव में महारानी ने किरण के आन्तरिक भावों का अनुमान मिथ्या लगाया था । पालकदेव किरण के भावों का समझने के लिये उसके मुख के उतार-चढ़ाव देख रहा था । उसने देखा कि किरण की मोटी-मोटी आखों में आसु झलक उठे हैं । इनसे उसने बात बदलने के लिये कहा, "महामात्य जी भली भाति है ? किरण !"

किरण ने इस व्यर्थ की बात की ओर ध्यान न देकर अपने आंचल से आखों को पूंछ डाला और आखें नीचे किये धीरे से पूछा, "क्या महारानी जी सत्य ही इस बात का उत्तर चाहती हैं ? मैं तो समझी थी कि शायद आप जैसी बुद्धिमति स्त्री को ऐसे प्रश्नों का उत्तर स्वयं ही सूझ जाता होगा ।"

"मुझ को तो तुम्हारी यह धृष्टता प्रतीत हुई थी ।"

"सो तो नहीं थी । आप महारानी हैं । क्यों ? सौन्दर्य में, शिक्षा में, ज्ञान में और शायद अनुभव में आप मुझ से श्रेष्ठ प्रतीत नहीं होतीं । इस पर भी आप महारानी हैं और मैं क्रीतदासी हूं । इसमें कारण नहीं जानतीं आप क्या ? पूर्व जन्म के कर्मों से ही ऐसा नहीं हुआ क्या ? मैंने अपने बिगड़े भाग्य को इस जन्म में बनाने का यत्न किया है । कहा तक सफलता मिलेगी कह नहीं सकती ।"

"कैसे यत्न कर रही हो ?" पालकदेव ने बात बीच में ही काट कर पूछा ।

"अपने मन, वचन और कर्म से दूसरों की भलाई का यत्न करके । इसमें बाधायें आती हैं और मैं यत्न करती हूं कि उन बाधाओं को पार कर सकूं ।"

"तो देखो !" महारानी ने व्यंग के भाव से कहा, "कुछ हमारे साथ भी भलाई कर दो न ?

"बताइये, क्या चाहती हैं आप ? मेरे बस की बात हुई तो कर दूंगी ।"

"बस की क्यों नहीं है ? चाहो तो कर सकती हो । हम को यहा से निकल जाने दो ।"

किरण महारानी की बात सुन मन में विचारने लगी कि यह औरत

कितनी स्वार्थरत हूं ? इसके मन में यह क्यो नहीं आया कि इसका परिणाम मेरे साथ क्या हो सकता हूं ? इस पर भी वह सोचने लगी कि इनको भाग जाने दे। इस जन्माभिमानी स्त्री को बता दे कि जिनको वह नाच समझती है, वे उससे अधिक विशाल हृदय और निस्वार्थ भावना रखते हुं। कितनी ही देर तक अपने मन में विचार करती रही। पश्चात् उसने गम्भीर हो धीरे से कहा, "अच्छी बात हूं। आज रात आप जा सकेंगी। आप के आगारो का मार्ग कुमारदेव के शयनागार में खुलता है। मैं यत्न करूंगी कि रात को वे अपने शयनागार में न सोवें। यदि मैं उनको इस बात के लिये तैयार कर सकी तो मध्य रात्रि के समय आप के आगार का द्वार खुला रहेगा। यदि द्वार खुला हो तो आप शयनागार से निकल कर भवन के पिछले द्वार में से जाइयेगा। वहा प्रहरी रहेगा। मैं उसके साथ निश्चय कर रखूंगी। जितना धन वह मागेगा, महाराज के शयनागार में उनके पलग के ऊपर पडा होगा।"

इतना बताते हुए किरण का मुख विवर्ण हो रहा था। वह यह कह उठ खडी हुई और विदा होने ही वाली थी कि महारानी ने पूछा, "परन्तु बाहर जाकर हमारा क्या होगा ?"

"मैं इस विषय में कुछ कह नहीं सकती। इस पर भी यह तो निश्चय ही है कि यदि आप महामात्य श्वेताग के गुप्तचरों के हाथ लग गयीं तो चुप चाप परलोक भेज दी जायेंगी और यदि आप किसी धर्मात्मा दयालु के हाथ में गयीं तो वह आपको राज्य के बाहर निकल जाने में सहायता देगा।"

न तो महारानी को और न ही पालकदेव को विश्वास आया कि किरण यह करने का साहस करेगी। इस पर भी पालकदेव यह विचार करता था कि यदि वह बाहर चला जावे तो क्या होगा ? बाहर जाकर क्या कोई सहायता करेगा ? अथवा क्या कोई उसको पुन महामात्य के हाथ में दे देगा ? यदि वे बच कर निकल भी गये तो क्या प्रजा उसको पुन. राजा मानेगी ? उसके मन में किरण के विषय में विचार आया। उसके साथ कैसी बीतेगी, यह विचार कर वह काप उठा। उसके मुख से अकस्मात

निकल गया, "यदि हम बंदीगृह से आलोप हो गये तो किरण फांसी पर लटका दी जावेगी।"

"आप भी बहुत सीधे आदमी हैं। इस क्रीतदासी की आंखों में दो बूंद जल देख आप उस पर विश्वास करने लगे हैं।"

"मैंने तो यह नहीं कहा कि वह द्वार खुला छोड़ ही देगी। मैं तो यह कह रहा था कि यदि हम यहां से भाग निकलने में सफल हो गये तो उसकी हत्या हो जावेगी।"

"मेरे पास इस प्रकार की अनहोनी बात विचार करने को न तो समय है न ही शक्ति। मैं तो कहती हूं कि आप कितना विश्वास करते थे अपने भाई का और कितना कुछ आपने किया है आपने प्रजा के हित में? क्या परिणाम हुआ है उसका? किंचित् मात्र के प्रलोभन में आकर सब प्रेम और भक्ति विलुप्त हो गयी है।"

पालकदेव इस प्रकार के प्रलाप में कुछ लाभ नहीं समझता था। अतीत के विषय में विचार करना व्यर्थ की बात समझ वर्तमान और भविष्य के विषय में विचार करना चाहता था।

उस सायंकाल किरण पुनः आई। बंदियों के रात के भोजन की व्यवस्था कर जब जाने लगी तो महाराज से बोली, "जब मध्य रात्रि के समय जाने लगें तो इस बंदी-आगार का द्वार केवल कुंडे से ही बंद पायेंगे। यदि आप महामात्य सुदर्शन को अपने साथ लेजाना चाहें तो ले जायें।"

प्रातःकाल की किरण की बात से उसको विश्वास नहीं आया था। वह उस समय की बात को भूल गया था, परन्तु अब पुनः किरण को उसी विषय पर बात करते हुए सुन वह गम्भीर हो गया। उसने किरण के मुख की ओर देखा तो उसके मुख पर किसी भी विचार की झलक न पा विस्मय करने लगा। वह अभी उसके मन के भावों को समझने का यत्न कर ही रहा था कि किरण चली गयी।

भोजनादि से निवृत्त हो महाराज ने महारानी से कहा, "एक प्रहर विश्राम कर लो, पीछे रात भर भाग दौड़ करनी पड़ेगी।"

"तो आपको विश्वास है कि हम आज छूट सकेंगे ?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं। प्रातःकाल की किरण की बात भूल गये हो ? उसने कहा था कि भवन के द्वारपाल से वह निश्चय कर रखेगी, परन्तु द्वार के बाहर की बात वह नहीं जानती।"

"परन्तु अब तो वह ऐसे कह गयी है जैसे उसने सब प्रबन्ध पूर्ण कर रखा है।"

"होगा। इस पर भी तुम सो जाओ। इस समय, मैं अपने मन पूर्ण बात पर विचार करना चाहता हूं। अभी सब बात मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट नहीं हुई।"

महारानी पद्मावती समझती थी कि स्वतन्त्रता एक अमूल्य वस्तु है इसकी प्राप्ति के लिये जो कुछ भी किया जावे कम है। इस प्रकार विचार कर वह अपने पलंग पर लेट गई और पालकदेव गम्भीर विचार में लीन हो गया।

: ४

किरण को महारानी पद्मावती का उलाहना कि, "कुछ हम पर भी भलाई कर दो।" असह्य हो उठा। वह जानती थी कि सेनापति के भवन से वे दस पग भी जा नहीं सकेंगे। श्वेतांग के गुप्तचर उनको पकड़ लेंगे और उनका काम समाप्त कर देंगे, परन्तु इस चेतावनी के देने से महारानी को समझ नहीं आया और वह यही समझती रही कि किरण शेखी मारती और वास्तव में वह यह करना नहीं चाहती।

वह यह चाहती थी कि अपनी ओर से सब प्रबन्ध ठीक ढंग से कर दे इस पर भी यदि वे बच न सकें तो उसका कोई दोष न हो। इस कारण उसने न केवल भवन के द्वाररक्षक से निश्चय कर दिया परन्तु भवन के बाहर तीन तीव्रगामी अश्वों का भी प्रबन्ध कर दिया।

बंदियों से निपट कर वह रेखा के आगार में जा पहुंची। रेखा शृंगार कर रही थी। किरण ने मुस्कुराते हुए पूछा, "सखी, कैसी तैयारी हो रही है आज ?"

"देख नहीं रही हो तुम ? महाराज की सेवा के लिये तैयार हो रही हूं।"

"तो उन्होंने विशेष आप से समय निश्चय किया है क्या ?"

"विशेष तो नहीं। पर तुम क्यों पूछ रही हो ?"

"नहीं! कुछ विशेष बात तो नहीं। मुझ को ऐसा समझ आया था कि महाराज को आज मेरी सेवा की इच्छा थी। उन्होंने कहा था कि मैं उनके शयनागार में रहूं।"

रेखा ने व्यंग के भाव से कहा, "तब तो मैं तुमको बधाई देती हूं। पर देखो किरण यदि तुमने पटरानी बनने के लिये कोई चाल चली तो मैं तुम्हारी सब से बड़ी शत्रु हूंगी।"

"पटरानी बनने में क्या मिलेगा मुझको। नहीं सखी! इस बात की तुम चिन्ता न करो।"

रेखा को इस आश्वासन पर भी शान्ति नहीं हुई। वह पूर्ण शृंगार कर और किरण को महाराज से एकान्त में मिलने का अवसर न देने के विचार से, कुमारदेव से मिलने के लिये उसके आगार में जा पहुंची। कुमारदेव महामात्य से मिल कर आया तो बैठक में रेखा को सोलहों शृंगार किये खड़ा देखा। उसने उससे आलिंगन किया और मुख चूमते हुए पूछा, "आज यह तैयारी किस प्रयोजन से है रानी ?"

"आप को रात के भोजन का निमन्त्रण देने आयी हूं।"

"क्या है वहां ?"

"आज श्रीमान् की सेवा के लिये मन व्याकुल हो रहा है।"

कुमार हंस पड़ा। फिर कुछ विचार कर बोला, "तो किरण को भी वहां ही बुला लूं।"

"नहीं महाराज !" रेखा ने लाड में अपनी साड़ी का छोर अपनी उंगली पर लपेटते हुए कहा।

"कितनी अच्छी है बेचारी। कभी कुछ कहती ही नहीं।"

"ठीक है, मैं उसको कब बुरा कहती हूं। मेरा तो केवल यह कहना है

कि मैने आज आप के लिये विशेष प्रबन्ध किया है।"

"अच्छी बात है। एक दिन में क्या अन्तर पड़ जाता है।"

बात तय हो गयी और भोजन के समय रेखा स्वयं आकर महाराज को ले गयी। उसने नगर की एक विख्यात नर्तकी मिरिका को नृत्य के लिये बुलाया हुआ था।

किरण ने अपनी योजना की सफलता का विश्वास कर बंदियो के आगारों के द्वार बाहर से खोल दिये। भूगर्भ मार्ग का द्वार, जो कुमार के शयनागार में खुलता था, खोल कर कुमार के निजी कोष में से पांच सौ स्वर्ण, एक थैली में कुमार के पलंग पर रख एक पत्र भी साथ ही रख दिया। इस पत्र पर तीन अश्वो का चित्र भवन द्वार के बाहर खड़े हुए बना कर रख दिया।

इस प्रकार तैयारी कर वह श्वेतांग के आगार में चली गयी। श्वेतांग उसको देख प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा। किरण उसके सम्मुख बैठ गयी और उसका मुख देखती रही। श्वेतांग ने उसको चुप देख पूछा, "क्या है देवी ?"

"मैं आप से झगड़ा करने आयी हूं।"

"क्यों ?"

"आपने मुझ को इस पशु के हाथ बिकवा कर मुझ से घोर अन्याय किया है।"

"क्या हुआ है आज ?"

"मैं रात-रात भर व्याकुल पड़ी रहती हूं और रेखा के आगार में नित्य नाच-रंग जमा रहता है।"

"मैं जानता हूं, पर क्या कर सकता हूं। मैं तुम से प्रेम करता हूं। यही कारण है कि महाराज को तुम को खरीदने की सम्मति दी थी। यदि तुम स्वीकार करो तो हम इस विषय में एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं।"

"यही तो मैं चाहती हूं, परन्तु एक बात आप को समझ लेनी चाहिये कि एक क्रीतदासी अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी से प्रेम करे तो मृत्यु दंड

की भागी होती हूं। क्या आप इतने शक्तिशाली हो गये हैं कि महाराज की आज्ञा के विरुद्ध मेरी रक्षा कर सकेंगे। मैं उस समय की प्रतीक्षा में हूं जब आप ऐसा कर सकने की शक्ति प्राप्त कर लेंगे।"

"तुम ठीक कहती हो किरण! उस काल के लिये तुम को एक दो वर्ष की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

"तैयार हूं। पर आप विद्वान् हैं, इससे आप से इतनी सहायता चाहती हूं कि कोई औषधि मुझ को ऐसी दें, जो मैं लूं और रात भर शान्ति से सो सकूं।"

"यह तो मैं तुम्हारे लिये कर सकता हूं। कभी-कभी सीमा से अधिक विषय रत होने से नीन्द नहीं आती तो मैं एक वस्तु शराब में मिला कर पिया करता हूं। वह मैं तुम को दे सकता हूं। तुम अपने स्थान पर चलो, मैं तुम को वह, एक प्याला मदिरा में मिला कर, भेज दूंगा। उसके पान से तुम रात भर खूब मजे में सो सकोगी।"

"तो शीघ्र करिये। मैं कई रातें न सो सकने के कारण बहुत दुखी हूं। यदि कुछ दिन और ऐसा ही चलता रहा तो पागल हो जाऊंगी।"

किरण अपने आगार में लौट आयी। वह अभी सोने की तैयारी कर ही रही थी कि रेखा की एक दासी आयी और बोली, "श्रीमान ने यह मद्य आप के लिये भिजवाई है।" इतना कह उसने आंख से संकेत कर दिया।

किरण समझ गयी। एक बात का उसको संदेह था। उसका विचार था कि श्वेतांग ने यह मद्य रेखा की दासी के हाथ क्यों भिजवाई है? इसके हाथ से भिजवा कर कौन नीति की बात की है? इस कारण उसने पूछा, "पर तुम तो रेखा देवी की सेवा में हो न?"

वह दासी मुस्कुराई और झुक कर नमस्कार कर बोली, "दोनों की सेवा में हूं, देवी!" किरण समझी कि रेखा और श्वेतांग से उसका अभिप्राय है। इस कारण अपनी योजना को चालू रखा। उसने आधा प्याला भर मद्य नाली में बहा दी और आधी वहां चौकी पर रख पलंग पर लेट गयी। उसको नींद नहीं आ रही थी। इस पर भी वह सोने का नाटक करती रही।

इस प्रकार रात व्यतीत होने लगी। मध्यरात्रि का घड़ियाल बजा।

उसने ध्यान से सुनना चाहा कि क्या हो रहा है। कोई किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं दिया। इस प्रकार घडी के पश्चात् घडी व्यतीत होने लगी और सेनापति भवन पूर्ण रूप से शान्त रहा। इस पर भी उसे नींद नहीं आयी। ब्रह्म मुहूर्त का घंटा बजा। वह अभी भी जाग रही थी और सोने का बहाना कर रही थी।

दिन पर्याप्त चढ़ आया था, जब उसकी विश्वस्त दासी मयीका भागी हुई आयी और उसको जोर-जोर से हिला कर उठाने लगी। किरण एक दम नहीं उठी। उसने आधी बेहोशी का बहाना कर कहा, "सोने दो मुझे।"

इस समय दासी ने किरण के समीप मुख ले जा कर कहा, "देवी! बंदी-गृह का द्वार खुला है।"

दासी को कई वार यह कहना पडा। तब किरण ने आखें खोलीं और बितर-बितर दासी का मुख देखने लगी। दासी ने फिर धीरे से कहा, "देवी! महाराज के शयनागार में बंदियों का द्वार खुला हुआ है।"

किरण ने आश्चर्य प्रकट कर पूछा, "सत्य?" फिर वह झटका मार कर उठी, परन्तु चक्कर खा कर भूमि पर लोट-पोट हो गयी, मानो वह अभी भी अर्ध अचेतनता की अवस्था में थी। पश्चात् वह सिर को दोनों हाथों में पकड़ कर भूमि पर ही बैठ गयी। कुछ समय तक अपने को सम्हालने का यत्न कर उसने दासी से पूछा, "महाराज कहां है?"

"वे रेखा देवी के आगार में है।"

"तो मुझ को आश्रय दे उठाओ। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मुझ को किसी ने विष दे दिया है। मेरा मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा।"

दासी ने चीख की सी आवाज़ में पूछा, "विष?"

किरण ने चिन्तित भाव में कहा, "चुप रहो। मुझ को महाराज के शयनागार में ले चलो। जल्दी करो। न जाने क्या अनर्थ हो गया है?"

दासी के कंधे पर हाथ रख कर लगड़ाती हुई वह महाराज के शयनागार में पहुंची और भूगर्भ के आगारों के मार्ग का द्वार खुला देख वह वहीं बैठ गयी और सिर धुनने लगी। उसने एक ही दृष्टि में देख लिया कि पलंग पर

मुद्राओं की थैली नहीं है। इस पर वह पुन उठी और दासी को आगार में छोड कर स्वय द्वार में चली गयी और सीढ़ियों से उतर आगारो में जा पहुची। महामात्य सुदर्शन का द्वार बाहर से बद था। कुडा चढ़ा था परन्तु ताला भूमि पर रखा था। पहिले वह पालकदेव के आगार में गयी। उसने समझा कि पालकदेव और महारानी ने महामात्य को साथ लेजाना उचित नहीं समझा। उनके आगार का द्वार भिचा हुआ था परन्तु बाहर से कुडा नहीं लगा हुआ था। ताला-भूमि पर यहा भी पडा था। किरण ने द्वार खोला और महाराज तथा महारानी को चटाई पर आसन जमाये पूजा में बैठे देख अवाक् मुख खडी रह गयी। केवल एक ही क्षण लगा और उसने अपने कार्य का निर्णय कर लिया। उसने बाहर निकल द्वार बद कर कुडा चढाया और ताला लगा दिया। पीछे महामात्य के द्वार को भी ताला लगा भागती हुई बाहर निकल आयी। महाराज के शयनागार में पहुच उसने वहा के द्वार को भी ताला लगाया और दासी से बोली, "भगवान् का धन्यवाद है कि बंदी भागे नहीं। यह कैसे हुआ मैं नहीं जानती। रात रेखा के आगार से कोई सुरभित मद्य मेरे लिये लाया था। मैंने आधा प्याला ही पिया कि मुझ को नींद आने लगी। ऐसी नींद आयी कि मुझको ज्ञान नहीं रहा कि मैं कहा थी। शेष तो तुम ने देखा है। देखो मधोका! किसी से कहना नहीं, व्यर्थ में द्वेष बढेगा।" दासी को चुप रहने पर राजी कर उसने अपने आगार में जा शेष मद्य, जो अभी प्याले में पड़ी थी, दासी के सम्मुख ही उठा कर नाली में फेंक दी।

५

किरण आश्चर्य कर रही थी कि महाराज और महारानी भागे क्यो नहीं? वह विचार कर रही थी कि यदि वे नहीं गये तो स्वर्ण मुद्रा की थैली कहा गई। इस कारण वह यह सब कुछ जानने के लिय बहुत उत्सुक थी। अतएव स्नानादि से निवृत्त हो वह बंदियो को देखने गयी। सबसे पहिले महामात्य के आगार में गयी। वह अपने अल्पाहार की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके आने में देरी हो गयी थी। किरण ने महामात्य से क्षमा याचना की,

"मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इस कारण प्रात जागने में देरी हो गयी थी। परिणाम स्वरूप पूर्ण कार्यक्रम में ही देरी हो रही है। आशा है कि आप क्षमा करेंगे।"

महामात्य सुदर्शन अचम्भे में किरण का मुख देख रहा था। वह समझता था कि वह रात के विषय में कुछ पूछेगी। परन्तु जब उसने कुछ नहीं पूछा तो उसने स्वय ही जानने का यत्न किया। उसने पूछा, "देवी! महाराज के आगार से हो आयी हो क्या?"

"नहीं, अभी नहीं। आपका भोजन हो जाये तो वहा जाऊगी।"

"पहिले वहा भोजन पहुचा दो। उनको कष्ट नहीं होना चाहिये।"

"अच्छी बात है। आप भोजन कर लीजिये। शेष आकर पूछती हू।"

महामात्य मुस्कुरा कर चुप हो रहा। किरण समझ गयी कि कुछ रहस्य की बात अवश्य है। जब वह महाराज पालकदेव के आगार में पहुची तो वे पूजा से उठ वस्त्र पहिन रहे थे। वे किरण को देख खिलखिला कर हस पडे। किरण ने ही पूछना उचित मान प्रश्न कर दिया, "महाराज क्या हुआ था रात को।"

महाराज गम्भीर हो कहने लगे, "एक बात की परीक्षा हो रही थी। वह हो गयी। एक बात का भय लग रहा था, उसका निवारण हो गया।"

"किस बात की परीक्षा कर रहे थे, श्रीमान्! और किस बात का भय था आपको?"

"परीक्षा हो रही थी तुम्हारी, किरण देवी! महारानी कहती थीं कि तुम हम से हसी कर गयी हो, परन्तु जब द्वार खुले देखे, धन भी वहा, जहा तुमने कहा था, पडा पाया, द्वारपाल को भी जाने में सहायक पाया और फिर बाहर अश्व भी तैयार देखे, तो तुम्हारी परीक्षा समाप्त समझी गयी और हम लौट आये।"

"यह क्या किया महाराज आपने? इससे अच्छी रात और नहीं मिल सकेगी।"

"मै इस बात को समझता हू। कितना यत्न किया होगा तुमने! महारानी

जी तुम पर संदेह करने पर लज्जित हैं। तुम्हारे साहस और चतुराई की जितनी भी प्रशंसा की जावे कम है। द्वारपाल भी कहता था कि बाहर जा कर लौट आना भारी भूल है और वह तो तुम से दिया हुआ धन भी वापिस कर रहा था। वह कहता था कि मार्ग में हमको धन की आवश्यकता पड़ेगी। उसने आश्वासन दिया था कि वह राजभक्त है और कभी भी तुम को फसने नहीं देगा। परन्तु किरण मेरी आत्मा नहीं मानी। मैं तुम जैसी स्त्री का बाल भी बांका नहीं होने देना चाहता। यह विचार कर कि तुम्हारे साथ कैसी बीत सकती है, हम लौट आये।"

"इससे महारानी जी को बहुत दुःख हुआ होगा ?"

"हां, परन्तु किरण ! वह दुख लज्जा में बदल गया है। मैं समझती थी कि तुम हमारी हंसी कर रही हो, परन्तु जब सब कुछ ठीक पाया तो मैं विस्मय में अवाक् खड़ी रह गयी। महाराज ने कहा कि हम को तुम्हें फसा कर यहां से भाग नहीं जाना चाहिये। इस पर सिवा वापिस लौट आने के और कोई चारा ही नहीं रहा।"

किरण जब महामात्य सुदर्शन के आगार में गयी, तो उसने कहा, "हमें बंदी गृह में देख तो तुम को शान्ति मिली होगी किरण ?"

"नहीं ! मुझ को आपको यहां देख अति दुःख होता है, परन्तु यह मेरे बस की बात नहीं है। जो कुछ मैं कर सकती थी मैंने किया, परन्तु आपके महाराज ने अपने मुक्त होने के प्रतिकार में अपनी आत्मा का हनन स्वीकार नहीं किया।"

"तुम क्या समझती हो कि हमारे भाग जाने से तुम को कष्ट दिया जाता ?"

"मुझ को बिना भोजन दिये तड़पा-तड़पा कर मार डाला जाता अथवा शिकारी कुत्तों से नुचवा दिया जाता।"

"तब तो हमारा न जाना ही ठीक रहा।"

"यह विचार करना आपका काम था। मैंने तो यत्न कर ही दिया था।"

"किरण देवी ! तुम कितनी अच्छी हो। तुम को तो किसी भद्र पुरुष

की गृहिणी बनना अधिक शोभा देता। वहा तुम सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकती और सुन्दर सभ्य सुशील सन्तान की मा होने का सौभाग्य प्राप्त होता।"

"पर श्रीमान्! क्या सौभाग्य, विना सौभाग्यशाली होने के, मिल सकता है?"

"क्रीतदासी की प्रथा बहुत ही दोषपूर्ण है।"

किरण रात भर जागते रहने के कारण बहुत ही थकावट अनुभव कर रही थी और चिन्ता के अब मिट जाने के कारण शान्ति अनुभव करने मे चुपचाप अपने आगार में गयी और गहरी नींद सो गयी। बहुत दिन गये वह जागी।

अब वह अपने विषय में विचार करने लगी। वह यह अनुभव करते हुए अति दु ख मानती थी कि वह किसी पुरुष की गृहिणी क्यों नहीं बन सकी। शुभ, वीर लक्षण युक्त सन्तान की मां होने की बात से उसके मन में गुदगुदी उत्पन्न होने लगी, परन्तु इसको एक असम्भव स्वप्न मात्र समझ वह मन मसोस कर रह गयी।

इस समय दासी ने आ कर कहा, "महाराज बुला रहे हैं।"

वह उठी और कपडे पहिन महाराज की बैठक में जा पहुची। महाराज के पास श्वेताग बैठा था। महाराज कुमारदेव ने किरण को सामने आसन पर बैठाया और पूछा, "देवी! आज दिन भर कहा रही है।"

"महाराज रात भर किसी की प्रतीक्षा में जागती रही थी। इस कारण दिन में सोने की आवश्यकता अनुभव हुई थी। अभी सोकर जागी ही थी।"

कुमारदेव प्रतीक्षा की बात सुन हस पडा। श्वेताग गम्भीर बना बैठा रहा। उसको गम्भीर देख किरण ने चिन्ता प्रकट करते हुए पूछा, "महामात्य कुछ चिन्तित प्रतीत होते हैं। इसका मेरे से सम्बन्ध है क्या?"

"हा!" श्वेताग ने किरण की आखो में देखते हुए कहा, "मैंने देवी को नींद लाने के लिये सुवासित मद्य भेजी थी। देवी ने आधी पी थी और प्रात जब उठी थीं तो चक्कर खाकर गिर पडी थीं।"

किरण इस सब रहस्य के खुल जाने पर घबड़ाई नहीं । वह यह तो समझ गयी थी कि श्वेताग के गुप्तचरो ने पूर्ण प्रासाद का भेद जाना है। इस पर भी वह नहीं जानती थी कि महामात्य कितना जान गया है। इस कारण चुप थी और अभी और सुनना चाहती थी ।

श्वेताग ने उसको चुप देख फिर पूछा, "तो देवी जी इस पर कुछ और प्रकाश डालना नहीं चाहती ?"

किरण को उत्तर देना पडा। "जब श्रीमान् जी इतना कुछ जानते है तो पूछने की आवश्यकता क्या है ? वह मद्य कहीं से आयी थी। पीते ही मस्तिष्क चक्कर खाने लगा था। मुझको सदेह हो गया तो मैंने वमन कर दिया। प्रात वह मद्य मैंने नाली में फेंक दी जिससे कोई दासी उसको पी न ले। मुझको विश्वास है कि यदि मै वमन न कर पाती तो इस कलेवर से छुट्टी पा जाती। परन्तु मुझको किसी को दंड नहीं दिलवाना। इस कारण चुप हू।"

"यह तो ठीक बात नहीं, किरण देवी ! आप को पूर्ण बात बतानी चाहिये ।"

"जब आपको सब कुछ मालूम है तो आप को यह भी विदित होगा कि आपसे भेजी हुई मद्य में किसने विष मिलाया होगा और क्यों मिलाया होगा ?"

"पर यह तो तुम जानती हो कि मद्य कौन लाया था ?"

"जिसके हाथ आपने भेजी थी ?"

"तुम उसको नहीं जानती क्या ?"

"जानती हू। इसी कारण तो कहती हू कि वही थी जिसके हाथ आपने भेजी थी।"

"और मै कहता हू कि वह नहीं थी। मार्ग में अदला-बदली हो गयी थी।"

"तब भी आप से भेजी दासी तो जानती होगी कि किससे अदला-बदली हुई है और किसके कहने पर हुई है । आप मुझ को इसमें क्यो घसीटते है ?"

"देखो किरण देवी !" महाराज ने कहा, "आज तुमको विष देने का यत्न किया गया है, कल मुझको दिया जा सकता है। इस कारण जो इन हत्यारो को बचाने का यत्न करता है वह भी अपराधी ही माना जावेगा।"

"महाराज ! मैं अभी दास वासियों के नाम नहीं जानती। चेहरे से तो पहचान जाऊगी। इस पर भी मैं तो किसीको फासी दिलवाने के लिये कुछ नहीं कहूगी।"

"यदि तुम मर जाती तो ?"

"तो इस पतित जीवन से मोक्ष प्राप्त कर जाती।"

श्वेतांग हस पडा और बोला, "महाराज ! यह भी मूर्ख आस्तिको की भाति मुक्ति, स्वर्ग और नरक के झगडे में फसी है। इनसे आप आशा नही कर सकते। यह भी धर्मभीरु श्रेणी की प्राणी है और ससार को नीच और अयोग्य मानती है।"

"तो महामात्य, तुम को अपनी जाच जारी रखनी चाहिये।"

महामात्य ने किरण से कहा, "तुम से मैं पृथक मे बातचीत करना चाहता हू। इस कारण एक घडी भर मे तुम्हारे आगारों में आऊगा। अभी तुम जा सकती हो।"

जब किरण चली गयी तो श्वेताग ने महाराज कुमारदेव से कहा, "श्रीमान, मेरा अनुमान है कि किरण ने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया है। इसी कारण वह यह नहीं बताना चाहती कि मद्य किसने ला कर दी थी।"

"पर आत्महत्या मे क्या कारण हो सकता है ?"

"कल रात के पहिले प्रहर मे वह मुझ से मिलने आयी थी। उस समय इसकी आखो मे वासना की तृषा और असतोष की झलक दिखाई देती थी। मुझसे उसने सुवासित मद्य, जिसके पीने से वह सो सके, मागी थी। मैंने वह मद्य उसको अपने एक सेवक के हाथ भेजी। वह सेवक इसकी निजी सेविका के हाथ दे आया। मषोका से मैंने पूछा है। वह कहती है कि मद्य उसको नहीं मिली। प्रात की कथा मैंने आप को बता दी है।"

"मित्र ! इस बात की भली भाति जाच करनी चाहिये। मैं इस प्रकार

को अनियमित बात अपने ही प्रासाद में सहन नहीं कर सकता। रही किरण देवी के असन्तोष की बात। सो मैं उसको आज रात के पीछे छुट्टी दे दूंगा। वह जिस के पास चाहेगी जा सकेगी। मैं रेखा को पसन्द करता हूं। यह ठीक है कि उसकी मुख की आकृति इससे श्रेष्ठ नहीं। इस पर भी वह शरीर से विकसित और गठित इससे अधिक है। मैं उससे प्रसन्न हू। किरण एक कोमल फूल के समान है जो मेरे उद्गार युक्त प्यार को सहन नहीं कर सकती।"

"वह स्वभाव और विद्या से महारानी बनने के योग्य है।"

"तो तुम उससे विवाह कर सकते हो। हम उसको रानी की पदवी से विभूषित कर देंगे।"

"आप उसका मूल्य मुझ से ले लें।"

कुमार ने हसते हुए कहा, "तुम्हारे विचार में वह एक अमूल्य वस्तु है न? इस कारण मैं तुम को उसे बिना मूल्य ही देता हू।"

"आप मेरा आशय नहीं समझे। किरण यद्यपि क्रीतदासी है तो भी वह दुराचारिणी नहीं। वह तब तक मेरे पास नहीं आवेगी, जब तक वैधानिक ढग से मेरी नहीं हो जावेगी।"

"तो हम उससे पूछ कर उसका मूल्य निश्चय करेंगे।"

: ६ :

"किरण!" श्वेताग पूछ रहा था, "भवन के पिछले द्वार पर घोड़े किसके लिये खड़े थे?"

"मुझको नहीं मालूम कि वे घोडे किसके थे?"

"तो तुम नहीं जानती?"

"मैं भवन के बाहर कभी गयी नहीं। भवन में, प्रांगण की पुष्करिणी के समीप बैठने के अतिरिक्त मैं और कहीं नहीं जाती।"

"देखो किरण! कल से तुम्हारा व्यवहार मेरी समझ में नहीं आ रहा। रात को तुम्हारा नींद लाने की औषधि मागने आना, उस मदिरा में विष मिला लेना और फिर उसमें से आधी पी शेष छोड देना। प्रात काल

बच जाने पर शेष मदिरा को नाली में फेंक देना। तुम से बात पूछने पर बताने के स्थान छुपाने का यत्न करना और अब अश्वो की बातो में क्षरने की बातें करने लगना। ये सब क्या है ? तुम ऐसा व्यवहार क्यो करने लगी हो ?"

किरण ने मुस्कुरा कर कहा, "तो आप नहीं समझे क्या ? लीजिये मैं बताती हू।"

दोनो किरण के शयनागार के बाहर बैठक में बैठे बातचीत कर रहे थे। श्वेताग अपने गुप्तचर से यह सूचना पा कि किरण को रात किसी ने विष दे दी थी, जाच कर रहा था। उसने मपीका से पूछा था। मपीका ने केवल इतना बताया था कि उसकी स्वामिनी प्रात रुग्ण थी। जाच करते समय उसको यह पता चल गया था कि महाराज की अश्वशाला के तीन अश्व महाराज का नाम लेकर वहा मगवाये गये थे। वे वहा खडे रहे। महाराज की प्रतीक्षा करते प्रात काल हो गया तो लौट गये। अब किरण बताने लगी तो वह समझा कि रहस्य का उद्‌घाटन हो जायेगा। इससे उत्सुकता से सुनने लगा।

"महामात्य जी, सुनिये। यदि बात पसन्द न हो तो धृष्टता के लिये क्षमा कर दीजियेगा। मैं एक क्रीतदासी हू। महाराज कुमारदेव से क्रय की हुई हू। महाराज के महामात्य मुझ पर सदेह करते हैं और मुझको किसी उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य के योग्य नहीं मानते। उनको मेरी वदियो की देखभाल का काम पसन्द नहीं। किसी कारण से महाराज वदियो की देखभाल का काम महामात्य के अधीन करना नहीं चाहते।

"महामात्य यह समझते हैं कि महाराज के इस अविश्वास में मैं ही कारण हू और वे मुझ को मार्ग का एक काटा मान निकाल देना चाहते हैं। इस कारण मद्य में विष मिला कर भेज दी प्रतीत होती है। मैंने अभी कुछ दिन और जीना है इस कारण पीते-पीते मुझ को सदेह हो गया। मैंने ... छोड दी और बच गयी। केवल रातभर अचेत रही और प्रात को चक्कर आ गया।

"दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से मैं महामात्य से प्रेम करती हूं। महामात्य को फसता देख मैंने निश्चय कर लिया है कि उनको किसी प्रकार हानि होने नहीं दूंगी। जिसको हृदय दिया है उसको फासी पर लटकने नहीं दूंगी।

"महामात्य बहुत चतुर व्यक्ति है। वे विष से मार सकने में असफल हो, मुझको फासी पर लटकवाना चाहते हैं। अब यह अश्वो की बात बना बैठे हैं। मेरा उनसे यह निवेदन है कि अब भी उनको मुझ से भय नहीं करना चाहिये। मेरे उनके प्रति प्रेम में कुछ भी अतर नहीं पडा।"

श्वेताग किरण की मोतियो की भाति लडी में पिरोई कथा को सुन चकित रह गया। वह जानता था कि इस कथा में उसका भाग सत्य नहीं है। इस पर भी वह निश्चय नहीं कर सका था कि किरण ने क्या यह कथा उसके ठगने के लिये बनायी है अथवा उसने भ्रम वश ऐसा समझा ही है। कुछ भी हो, वह उसकी चतुराई पर आश्चर्य करता था। उसको कथा में ढूंढने पर भी छिद्र मिल नहीं रहा था। उसने केवल मात्र यह कहा, "झूठ सत्य से भी सुन्दर और लुभायमान होता है।"

"इसी कारण तो अनेको निरपराध व्यक्ति न्यायाधीश द्वारा फासी चढा दिये जाते हैं।"

श्वेताग इस सतर्कता से दिये उत्तर को सुन हस पड़ा। फिर कुछ सोच वह कहने लगा, "देखो किरण, हम एक दूसरे को भली भाति जानते हैं। इस कारण यदि हम इकट्ठे रह कर चलें तो शीघ्र ही अपने लक्ष्य की सिद्धि पा लेंगे।"

अब हसने की बारी किरण की थी। उसने कहा, "ठहरिये। मैं द्वार बद कर दूं। कहीं कोई सुन लेगा तो महामात्य का सिर फासी के फदे में लटकता दिखायी देगा।" किरण उठ कर द्वार बद करने चली गयी थी, इस कारण उसने महामात्य के मुख पर अपने कथन से उत्पन्न भय के लक्षण नहीं देखे। द्वार बद कर वह महामात्य के सम्मुख बैठ बोली, "मुझको इस भवन में आये कई मास हो चले हैं और अभी तक मुझ को कोई ऐसा नहीं मिला, जिससे मन की बात खोल कर कह सकूं। आप ही मेरे यहां आने में

साधन हुए थे। इस कारण जब आप कहते हैं कि हम इकट्ठे होकर चलें तो आप से बात करने में चित्त करता हूं। इस पर भी मैं अबला हूं और निर्भय अनुभव नहीं करती। इस कारण द्वार बद कर बात धीरे-धीरे करना चाहती हू।"

"देखो सुन्दरी! मैं भी तुम से प्रेम करता हू। तुम्हारे रूप-रग के लिये, तुम्हारे विशाल मस्तक के लिये और उसमें सुलझे हुए मस्तिष्क के लिये तथा तुम्हारे उच्च विचार और शुद्ध भावनाओं के लिये मैं तुम पर मोहित हू। मैं जब भी तुम्हारे विषय में विचार करता हू तो तुम्हारे गुरु उत्ताल बाबा की प्रशसा किये बिना नहीं रहता।"

"यह सब ठीक हो सकता है श्रीमान्, परन्तु इस प्रकार बैठने के अवसर को इन व्यर्थ की बातो में गवाना बुद्धिमत्ता नहीं हो सकती।"

इसके आगे वह कह नहीं सकी। श्वेताग ने उसकी कमर में हाथ डाल उसको अपनी ओर खींच लिया और उससे आलिगन कर उसका मुख चूम लिया। यह सब कुछ उसने इतना अकस्मात् किया कि किरण के पास समय ही नहीं था कि वह इसका विरोध कर सके। किरण को जब श्वेताग के ऐसा करने का ज्ञान हुआ तो उसने यत्न कर अपने को छुडाया और मुस्कुराते हुए कहा, "आपके इस आदर के लिये मैं धन्यवाद करती हूं। परन्तु मैंने द्वार किसी दूसरे प्रयोजन से बद किया है। बताइये आप के जीवन में क्या लक्ष्य है, जिसकी सिद्धि के लिये आप मुझ से सहयोग चाहते हैं?"

"मैं यहा का राज्य अपने हाथ में करना चाहता हू।"

"वह तो इस समय भी है।"

"इस समय कुमारदेव की तलवार सिर पर लटक रही है। दिन रात चिन्ता लगी रहती है कि कहीं यह सिर पर न आ गिरे।"

"पर राज्य मिल जाना और छिन जाना तो भाग्य से होता है। यह यत्न करने से नहीं हो सकता। साथ ही राजा बन जाने पर भी तो जनता के भय की तलवार सिर पर लटकने लगेगी। इस समय तो आपको केवल कुमारदेव को प्रसन्न करना पडता है परन्तु राजा बनने पर तो लक्ष-लक्ष

जनता को प्रसन्न करना पड़ेगा ।"

"जनता को तो अब भी प्रसन्न करना पड़ता है ।"

"इस समय तो जो कुछ आप करते है वह कुमारदेव के नाम पर करते है। कुमारदेव की सेना में ख्याति है और धन-सम्पदा के प्रसार से जनता में भी ख्याति होती जाती है । यदि थोडी सी चतुराई से काम ले तो महाराज को प्रसन्न कर अपना जीवन सुख और शान्ति से व्यतीत कर सकते है ।"

"अभी कल रात ही तो देवी जी ने कहा था कि महाराज की आज्ञा की अवज्ञा करने की शक्ति होनी चाहिये ।"

"इसके अर्थ यह कैसे हो गये कि आप स्वयं राजा बन जायें ?"

"मैंने यही समझा था ।"

"मुझ को आपकी समझ पर दया आती है । मेरा अभिप्राय तो यह था कि आप महाराज को अपनी सेवाओ से इतना प्रसन्न करें कि वे आपकी प्रत्येक बात को उचित मानने लगें। यह है शक्ति प्राप्त करने के अर्थ ।"

"यह तो हो गया है। यदि ऐसा ही देवी जी का आशय था तो आप को यह जान कर प्रसन्न होना चाहिये कि महाराज ने देवी को मुझ को दे देने का वचन दे दिया है ।"

"सत्य ?"

"हा, वे समझते है कि तुम रानी बनने योग्य हो। वे स्वयं तो रेखा को पटरानी बना रहे हैं। इस कारण उनकी इच्छा है कि यदि मै तुम से विवाह कर लूं तो तुम रानी बन सकोगी। वे तुम को एक मूल्य पर मुझ को दे देंगे।"

"पर आप ने एक बार यह कहा था कि आप स्त्रियो को धन से मोल नहीं लेते ।"

"वैसे तो मैंने तुम को विजय कर लिया हुआ है । अब तो तुम पर वैधानिक अधिकार प्राप्त करने के लिये यह किया जा रहा है ।"

"मुझ को महाराज की उदारता पर उनका कृतज्ञ होना चाहिये । परन्तु इस विषय में मै उनसे ही बात करूगी। आप से तो यह कहना चाहती हू कि आप अपना जीवन लक्ष्य बताने की कृपा करें, जिनसे मै देख

सकूँ कि आप का और मेरा जीवन लक्ष्य एक है या भिन्न-भिन्न।

"यदि आप राज्य प्राप्ति के लिये यत्न कर रहे हैं तो मेरा मार्ग आप का मार्ग नहीं है। यदि आप अपना कार्य राज्य के हित में कर अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं तो हम दोनो का मार्ग एक हो सकता है। इस पर भी कुछ बातें और हैं, जो विचारणीय हैं। 'सुखमय' शब्द के अर्थों को भी समझने की आवश्यकता है। देखना यह है कि आपका सुख और मेरा सुख एक हो सकते हैं या नहीं ?"

श्वेतांग को किरण के इस विश्लेषणात्मक वक्तव्य से आश्चर्य हुआ। वह समझता था कि ये सब अज्ञानता के लक्षण हैं। वास्तविक ज्ञान के अभाव में ही मनुष्य भविष्य से ऐसे डरता है जैसे कि वह अंधे कुए में कूद रहा हो। उसने गम्भीर होकर कहा, "मैं समझता हू कि तुम बच्चो की सी बातें करती हो। देखो मैं तुम को एक ज्ञान की बात बताता हू। इसके सम्मुख वेद-वेदांग भी फीके प्रतीत होते हैं। मैं तो भावी जन्म को मानता नहीं, यदि उसका अस्तित्व मान भी लें, तो भी इस जन्म में उस जन्म की बात के पूर्ण रूप में विस्मरण हो जाने से उस जन्म की चिन्ता करनी अब व्यर्थ की बात हो जाती है। इस कारण हम को तो इस जन्म की ही चिन्ता करनी रह जाती है। मैं तो इस जन्म को सुखी बनाने में ही चिन्तित रहता हू। अपने को प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न और सुखी रखना ही मेरे जीवन का ध्येय है। जहा तक दूसरो का सम्बन्ध है उनको मेरे अनुरूप ही रहना चाहिये। जो मेरे सुख का विरोध करेंगे मैं उनसे किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रख सकता। मैं इस सिद्धांत का मानने वाला हू कि 'तुझ को पराई क्या पड़ी अपनी निबेर तू।'

"यह है मेरे जीवन की मीमांसा। मैं चाहता हू कि तुम भी मेरे अनुरूप हो जाओ। हम दोनो मिल कर बहुत कुछ कर सकेंगे। अन्यथा दो तेज तलवारो की भांति एक दूसरे के विरुद्ध लड कर अपनी धारें ही खराब करेंगे। बस, इसी में सब कुछ समझ लो।"

किरण ने इस जीवन-मीमांसा को सुन कर मन में शान्ति अनुभव

नहीं की। इस पर भी उसने कहा, "श्रीमान्, मैंने आप की बात सुन ली है। अब इसको समझने का यत्न करूंगी। इस में समय लगेगा। अल्पबुद्धि स्त्री ही तो हू और फिर चिर सचित संस्कारो के कारण दूसरे ढंग से सोचने में समय लगता है। मै इस विषय में फिर कभी उत्तर दूंगी!"

: ७ :

किरण ने श्वेतांग को उक्त प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह समझती थी कि मै क्रीतदासी हू और कहीं रानी बनने के लोभ में इस जन्म को और भावी जन्म को भी बिगाड न लूं। इसके साथ ही वह यह समझने लगी थी कि श्वेतांग की स्वार्थपरता की नीति जब श्वेतांग को लेकर डूबे तो कहीं उसको भी साथ ही रसातल में न ले जावे। इस कारण वह चुप थी। उसने न तो महाराज कुमारदेव और न ही श्वेतांग से इस विषय में बातचीत की।

दिन के पीछे दिन और मास के पीछे मास व्यतीत होते गये और बात वहा ही रही जहा वह थी। किरण क्रीतदासी ही रही और पालकदेव इत्यादि बंदियो का प्रबन्ध करती रही। महाराज कुमारदेव अनिश्चित मन से न तो किरण को मुक्त कर सका और न ही अपने भाई इत्यादि के विषय में कोई अंतिम बात विचार सका। श्वेतांग अपनी नीति के अनुसार राज्य-कार्य चलाता रहा। अवन्ति में धन धान्य की वृद्धि होती रही। जनता में सुख भोग की लालसा बढती गयी और राज्य की ओर से नागरिको के सुख और आराम के अधिक और अधिक साधन जुटाये जाते रहे। लोग भी नित नये उपाय आनन्द-भोग और वासनातृप्ति के करते रहे।

एक दिन किरण भोजन, जो वह प्राय. अकेली अपने आगार में ही लिया करती थी, लेकर बैठी ही थी कि महाराज कुमारदेव उससे मिलने चले आये। कई मास के पश्चात् महाराज के दर्शन का सौभाग्य उस को प्राप्त हुआ था। इससे विस्मय में वह उठ कर उनकी आवभक्त करने लगी। जब वह महाराज का सम्मान करने के लिये खडी हुई तो कुमारदेव ने उसको सिर से पैर तक देखा। उसको वह एक विचित्र प्रकार के

ओज और सौन्दर्य की पुंज दिखाई दी । इस ओज के सम्मुख कुमारदेव घबड़ा उठा और अपने मन की बात को एक ओर रख क्षमा याचना करने लगा। "देवी!" उसने कहा, "मैं तुम से क्षमा याचना करता हूं।"

"क्या अपराध हो गया है मुझ से महाराज! जो मेरा ऐसा अपमान कर रहे हैं ?"

"तुम जैसी सुन्दरी की पूजा होनी चाहिये, वह मैं कर नहीं रहा। आज कई मास पश्चात् मुझको तुम्हारी सुध आई है ।"

"इस पर भी मैं अपना सौभाग्य ही मानती हूँ। यदि महाराज अब भी सुध न लेते तो मैं क्या कर सकती थी ?"

"मैंने तो देवी जी को एक बात में सम्मति लेने के लिये स्मरण किया है।"

"इससे तो महाराज मेरा और भी सम्मान कर रहे हैं। इस तुच्छ दासी को किसी योग्य तो समझा है।"

"देखो किरण! रेखा ने बताया है कि उसके बच्चा होने वाला है इस कारण मेरा उससे विवाह अनिवार्य हो गया है।"

"तो मैं महाराज को बधाई दूं क्या ?"

"आज रात विवाह होगा। मेरी इच्छा है कि विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में तुम्हें महामात्य को दान-दक्षिणा मे दे दूं।"

"बिना मेरी इच्छा के ?" किरण का मुख पीला पड़ गया। फिर कुछ विचार कर कहने लगी, "महाराज मैं आप की क्रीतदासी हू। आप मेरा प्रयोग जैसा चाहें कर सकते हैं, परन्तु मैं एक प्राणी भी हू। कोई भूषण, वसन इत्यादि वस्तु नहीं हू। इस प्रकार तो जब महामात्य मेरे भोग से ऊब जावेंगे तो वे भी मुझको अपने किसी सेवक के पास दे देंगे। क्या आप की यही इच्छा है महाराज ?"

"तुम क्रीतदासी हो किरण! मेरा अधिकार है कि मैं तुम्हें जिस को चाहू दूँ।"

"ठीक है महाराज! पर मैं किसी दूसरे के पास जाने से पहिले आत्म-हत्या भी तो कर सकती हू।"

"मुझको तो यह बताया गया है कि तुम महामात्य से प्रेम करती हो।"

"पर मैं उसकी वासना-तृप्ति के लिये वेश्या नहीं हूं।"

"तो फिर तुम ऐसी ही रहना चाहती हो जैसी हो ?"

"यदि आप मुझको ऐसा नहीं रखना चाहते, तो मुझको स्वतन्त्र कर दीजिये। पश्चात् मैं जिससे चाहूं, विवाह कर लूंगी।"

कुमारदेव इसके परिणामों पर विचार करने लगा। पश्चात् कुछ विचार कर बोला, "किरण ! मैं तुम से कुछ काम भी तो ले रहा हूं। वह कौन करेगा ?"

"आप मुझ को स्वतन्त्र करने के पश्चात् सेविका के रूप में रख लीजियेगा। कुछ वेतन दे दीजियेगा। मैं आप का कार्य पूर्ववत् करती रहूंगी।"

"परन्तु जब तुम अपनी इच्छा से विवाह करोगी और वह पुरुष हमारे अनुकूल न हुआ, तो तुम्हारे लिये बहुत कठिनाई उत्पन्न हो जावेगी।"

"मैं किसी ऐसे से विवाह, भला क्यों करूंगी, जो आप के अनुकूल नहीं होगा ? आप मेरे पर इतनी कृपा करेंगे कि मुझको दासता से मुक्त कर देंगे, तो मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ कि आप के उपकार को भूल जाऊंगी।"

"अच्छी बात है, विचार करेंगे।"

किरण मन में विचार करती थी कि उसको कुमारदेव की सहायता क्यों करनी चाहिये ? उसके लिये वह पालकदेव को बंदी बना कर क्यों रखे ? वह महामात्य सुदर्शन को क्यों बाहर जा कर कुमारदेव के विरुद्ध काम करने नहीं देती ? वह महामात्य श्वेताग से प्रेम करती हुई भी उसकी महत्वाकांक्षाओं को क्यों पसन्द नहीं करती ?

श्वेताग ने उसको एक दिन बताया था कि उत्ताल बाबा की दूषित शिक्षा के कारण ही वह विपरीत दिशा में विचार करती है। क्या यह ठीक है ?

किरण अपनी विशेष परिस्थिति में इन प्रकार के अनेकों प्रश्नों की उलझन में फंसी हुई थी। इनसे वह महाराज के कहने का कि वे उसकी

बात पर विचार करेंगे, कुछ उत्तर नहीं दे सकी। वह अभी तक अपने मन मे भी अपना भविष्य स्पष्ट देख नहीं सकती थी।

महाराज ने जाने से पूर्व एक बात और कही, "किरण ! मैं समझता था कि मैं तुम्हें उसको देकर तुम्हारे द्वारा उससे कई कार्य कराऊगा।"

"क्या कराना चाहते है आप मुझ से ?"

"महामात्य मेरे राज्याभिषेक में ढील कर रहे हैं।"

"आज्ञा हो तो, ऐसे ही, मैं उससे इस कार्य को करवाने का यत्न करू ?"

'हो सके तो करवाओ। इसके हुए बिना मैं समझता हू कि मेरा भविष्य अनिश्चित ही है।"

"इतनी सी बात के लिये आप को बहुत चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं इसका प्रबन्ध करवा दूंगी। जब विवाह हो रहा है तो राज्याभिषेक भी होगा।"

"तुम इसको छोटी सी बात मानती हो किरण ?"

"महाराज ! यह बात बहुत बडी हो तो भी होगयी ही समझनी चाहिये।"

८

किरण आज महामात्य के आगार मे गयी। उसकी सूचना पहुचते ही महामात्य अपने आगार से बाहर आ आदर से उसको भीतर ले गया।

वहा कुछ ब्राह्मण बैठे थे। महामात्य ने उनके वहा होने का प्रयोजन बताया।

"महाराज का रेखा से विवाह हो रहा है। नगर का कोई भी ब्राह्मण इस विवाह को कराने के लिये तैयार नहीं होता। इस कारण आचार्य वामदेव जी के आश्रम से इन को बुलाया है। ये पडित नीलकठ हैं आचार्य जी के परम प्रिय शिष्य है।"

किरण को अचम्भा हुआ। वह समझ नहीं सकी कि क्यो इस विवा के करने मे न की जा रही है। उसने पूछा, "यहा के ब्राह्मण विवाह क्यो नह कराते ?"

"प्राचीन विधि से विवाह कराते समय कोई कन्यादान करने वाला होना चाहिये।

"मैंने कहा था कि कन्यादान मैं कर दूँगा, परन्तु वे नहीं माने। कहते थे कि कोई सम्बन्धी होना आवश्यक है। इस प्रकार तो कोई भी किसी की कन्या को पकड़ कर, विवाह दिया करेगा।"

"पर विना विवाह के तो कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष के पास स्वेच्छा से रह सकती है?"

श्वेतांग ने हँस कर कहा, "मैंने यह बात उनसे कही थी। उनका कहना है कि एक वेश्या की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं होती। विवाह से जो सन्तान होती है उसका अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकार होता है। इस कारण विवाह के समय भारी सावधानी प्रयोग में लाई जाती है। जब कोई सम्बन्धी कन्यादान करता है तो इसका अभिप्राय यह माना जाता है कि वह लड़की कहीं से वरगला कर अथवा अपहरण कर नहीं लायी गयी।"

"तो फिर क्या होगा?"

"महाराज का विवाह होगा। विवाह श्री आचार्य वामदेव जी के ये शिष्य करायेंगे। इनका कहना है कि लड़की सज्ञान हो तो वह अपनी इच्छा से जिस से चाहे विवाह कर सकती है और उस विवाह का उतना ही मान होना चाहिये जितना कि माता-पिता से कन्यादान की हुई कन्या के विवाह का।"

इस प्रकार की बातें होते हुए देख नीलकंठ ने किरण का परिचय पूछा। श्वेतांग ने परिचय दिया तो नीलकठ ने उठ कर नमस्कार किया और कहा कि देवी की ख्याति वहां तक पहुंची हुई है। आचार्य जी के आश्रम में देवी जी के विषय में चर्चा होती है।"

"क्या चर्चा होती है, भगवन्? मेरा नाम कैसे पहुंचा है वहां?"

"आपका यहां विक्रय कर, श्री उत्ताल बाबा आचार्य जी के दर्शन के लिये वहां गये थे और उन्होंने आप के विषय में बताया था। तब मैं

आचार्य जी आपके विषय में जानकारी रखते आये हैं।"

"पर यह सब क्यों? एक क्रीतदासी के विषय में इतनी रुचि क्यों रखी जाती है। संसार में अनेकों स्त्रियों को छोड़ कर मेरे पर यह कृपा-दृष्टि किस प्रयोजन से की जा रही है?"

"यह बात तो गुरु जी ही बता सकते हैं। इतना मैं जानता हूं कि एक बार उन्होंने आपके विषय में कहा था कि आप की जन्म कुण्डली, जो उत्ताल बाबा ने उनको दी थी, यह बताती है कि आप एक महान् यश की भागिनी सन्यासिनी बनने वाली हैं। इस कारण ही शायद वे आपका ध्यान रखते हैं।"

"मैं सन्यासिनी?" किरण खिलखिला कर हंस पड़ी।

नीलकंठ ने बात बदल दी और कहा, "आचार्य जी की अनुमति से हम इस राज्य में विवाह की प्रथा में यह परिवर्तन करने जा रहे हैं, कि भविष्य में सज्ञान लड़कियां अपना विवाह स्वयं कर लिया करेंगी।"

"यह परिवर्तन कैसे होगा और इसको मान्यता कैसे होगी?"

"जो बात राज्य में राजा कर ले, वह प्रथा हो जाने से धर्म मानी जाती है।"

"मुझ को भय है कि कहीं विवाह-विच्छेद की प्रथा भी राजा से ही न आरम्भ करनी पड़े।" किरण ने मुस्कुराते हुए कहा।

"शुभ-शुभ बोलो देवी जी।" नीलकंठ ने आंखें फाड़-फाड़ कर देखते हुए कहा।

किरण ने कहा, "महामात्य जी! मैं तो आपसे मिलने आयी हूं।"

"मैं जानता हूं। आपके आने का प्रयोजन भी जानता हूं। चलिये दूसरे आगार में बातचीत करेंगे।" श्वेतांग किरण को लेकर एक दूसरे आगार में चला गया। वहां पहुंच उसने किरण को एक आसन पर बैठा कर कहा, "मैं चाहता हूं कि अब हम अपने विवाह के विषय में भी बातचीत कर लें। बताइये, कब यह हो जाय। यदि नीलकंठ जी से ही यह सम्पन्न हो सके तो क्या अच्छा न होगा?"

"मैं आप की बात नहीं समझी। अभी मैं विवाह करने योग्य नहीं हूं।

मैं महाराज को क्रीतदासी हू। अभी आप मुझ से विवाह की बात कैसे कर सकते है ?"

"तो महाराज ने आप को नहीं बताया ?"

"बताया है। इसी प्रयोजन से तो मै यहा आयी हू। मैं यह जानना चाहती हू कि विवाह के लिये तो इतनी जल्दी मचाई जा रही है पर राज्याभिषेक का क्या होगा ?"

"किसका विवाह और किसका राज्याभिषेक ? मै तो आपके अपने साथ विवाह की बात कह रहा हू।"

"और मैं महाराज के विवाह की बात कह रही हू। साथ ही उनके ही अभिषेक की बात पूछ रही हू।"

"तो महाराज ने आपको मेरे पास इस प्रयोजन से भेजा है ?"

"नहीं! मैं ही महाराज के विवाह की बात सुन कर आयी हू। मैं समझती हू कि राज्याभिषेक की तिथि विवाह से पूर्व निश्चय हो जानी चाहिये।"

"किरण ! इस सब बात का अभिप्राय समझ नहीं आ रहा। आपको इसमें क्या रुचि है ?"

"राजनीति में सब बातें इस प्रकार समझ नहीं आतीं, श्रीमान् ! पालकदेव जी को पदच्युत किये आज दो वर्ष हो चुके है और उनके उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक होने में ही नहीं आता।"

"आज किरण देवी लड़ने के लिये तैयार होकर आयी प्रतीत होती है ?"

"कुछ समझिये। मैं आपके, इस आवश्यक बात को इस प्रकार टालने को उचित नहीं समझती।"

"पर मैं तो इसको ठीक ही समझता हूं। अभी राज्याभिषेक नहीं होना चाहिये।"

"जब दो व्यक्तियों में मतभेद हो जावे, तब निर्णय कैसे हो ?"

"किरण देवी, बात क्या है ? विस्तार से समझाओ तो मैं भी कुछ

ज्वर अनुभव करने लगी थी ।

पालकदेव चिन्ता अनुभव करने लगा था। जब किरण नित्य के कार्य से आयी तो वह महारानी के पलग के समीप बैठा था। किरण ने चिन्ता में पूछा, "महाराज, क्या बात है ?"

"पद्मा को ज्वर आ गया है ।"

"मै वैद्यराज को बुलाती हू ।"

"इस रोग की चिकित्सा किसी वैद्य के पास होगी क्या ?"

"क्या रोग है ? महाराज !"

"इसको बदी होने का शोक है । इस शोक में ही वह गली जाती है। वैद्य इस में क्या करेगा ?"

"तो महाराज स्वतंत्रता के लिये यत्न करना चाहिये । कहिये तो जैसा अवसर एक दिन पहिले दिलवा सकी थी, पुन दिलवाने का यत्न करू ?"

"नहीं ! वैसा नहीं। मै स्वतत्रता अपना अधिकार मानता हू और उसी के आधार पर मुझको यहा से मुक्ति मिलनी चाहिये । किसी दूसरे को फसा कर अथवा कष्ट देकर स्वतत्रता तो बहुत छोटी वस्तु है, स्वर्ग-लोक का राज्य भी नहीं लेना चाहता।"

किरण इस प्रकार के विचारो को पहिले भी सुन चुकी थी। आज वह एक बात, जो वह पहिले कई बार विचार कर चुकी थी, कहने के लिये तैयार होगयी। उसने पूछा, "महाराज स्वतत्रता तो जन्मसिद्ध अधिकार है, परन्तु राज्य करना तो नहीं है ? अवन्ति का भूतपूर्व महाराज बदी है, न कि कोई नागरिक।"

"तो क्या तुम समझती हो कि कुमार को राज्य करने का अधिकार मुझसे अधिक है ?"

"मै आप दोनो भाइयो में तुलना नहीं कर सकती । इस पर भी जब मै प्रजा को सतुष्ट और प्रसन्न देखती हू तथा उसके आपको भूल जाने की बात पर विचार करती हूं तो इस परिणाम पर पहुचने पर

विवश हो जाती हूं कि किसी बात में तो छोटा भाई बड़े भाई से अधिक योग्य है।"

"परन्तु समाज का भविष्य जो बिगड़ रहा है।"

"जिसको आप बिगाड़ समझते हैं उसको दूसरे सुधार समझते हैं। परन्तु इस बात के विचार करने की क्या आवश्यकता है? सब लोग राजा हो नहीं सकते। राजा बनने के लिये प्रजा का सहयोग अत्यावश्यक है। वह बंदीगृह में रह कर कैसे प्राप्त हो सकता है? इस समय विचारणीय बात तो यह है कि आप भाग कर बाहर निकलना चाहते हैं अथवा यह वचन देकर कि आप काशी इत्यादि किसी तीर्थ स्थान पर जाकर शान्ति का जीवन व्यतीत करेंगे और अवन्ति का राज्य प्राप्त करने की इच्छा नहीं करेंगे। भाग कर जाने की अवस्था में सफलता अनिश्चित है। यहां राज्य में कई शक्तियां काम कर रही हैं। वे सब अपनी-अपनी ओर खेंचती हैं। इस कारण किसी भी कार्य के परिणाम का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। दूसरे उपाय में यदि आप वचन देने की बात कहें तो सफलता की अधिक आशा है।"

"मैं राज्य की अभिलाषा नहीं रखता। केवल जनता का विचार जानना चाहता था। वह अब जान गया हूं।"

"इस दिशा में मैं यत्न करूंगी। एक बात मैं आपको बताना चाहती हूं। वह यह कि महाराज कुमार देव का विवाह, रेखा देवी से कल हो गया है। इसके तीन मास पश्चात् उनका राज्याभिषेक होगा। उसके पीछे ही आपके मुक्त किये जाने का विचार हो सकेगा।"

इस सूचना से पालकदेव गम्भीर विचार में लीन हो गया। पद्मावती भी समझ गयी कि राज्याभिषेक के पीछे राज्य वापिस उनको मिलने की कोई आशा नहीं रहेगी। उसने चिन्ता में पूछा, "अब क्या होगा?"

"मैं समझता हूं कि राज्याभिषेक के पीछे तो हम को बंदी बना रखना व्यर्थ हो जावेगा। या तो तुम्हें हमें छोड़ दिया जायेगा अन्यथा एक रात चुपचाप विष देकर हमको शान्ति की गोद में सदा के लिये सुला दिया जावेगा।"

किरण वहा से कुमारदेव के आगार में गई। वह महाराज से मिल कर पालकदेव के विषय में कुछ निश्चय करना चाहती थी। वहा श्वेताग बैठा था और महाराज दास-दासियों को विवाह के उपलक्ष में उपहार दे रहे थे। किरण को देख महाराज ने बुला लिया और कहा, "देखो किरण देवी! महामात्य क्या कह रहे हैं?"

किरण ने महाराज और रेखा से एक नीचे आसन पर बैठते हुए कहा, "क्या कह रहे हैं श्रीमान् महामात्य जी?"

"ये कह रहे हैं कि इनको भी विवाह के उपलक्ष में उपहार दिया जाय।"

"ठीक तो कहते हैं महाराज! पर इनसे पूर्व मैं भी तो कुछ उपहार पाने की आशा रखती हूं।"

"पहिले क्यों?"

"नीच दास-दासियों को आपने उपहार पहिले दिये हैं। मैं महामात्य जी से तो नीच हूं ही। इस प्रकार उपहार पाने का अधिकार मेरा उनसे पहिले है।"

"पर देवी! हम तुम को महामात्य से ऊंची पदवी देना चाहते हैं।"

"न महाराज! महामात्य नाराज हो जावेंगे। इस समय पूर्ण राज्य के कार्य-भार का उत्तरदायित्व उन पर है और मैं हूं आप की क्रीतदासी। महामात्य के नाराज हो जाने से तो राज्य में अव्यवस्था फैल जाने का भय है। मेरे रूठने से क्या हो सकता है?"

"अच्छी बात है। तुम ही पहिले माग लो। क्यो महामात्य जी, आप क्या समझते हैं?"

"महाराज! देवी का अधिकार तो मुझसे अधिक है ही। देवियां सदैव आगे रहती हैं। यह हम पुरुषों का दुर्भाग्य है कि हम शक्तिशाली होते हुए भी इन की तिरछी भृकुटि से घबड़ा उठते हैं। आप देवी जी को प्रसन्न कर दें।"

"तो मागो किरण देवी ! क्या चाहती हो ?"

"महाराज, मैं अपनी स्वतंत्रता वापिस चाहती हू ।"

"पर हमारा काम कौन करेगा ? यह हम नहीं दे सकते । कुछ और मांगो देवी !"

"यदि महाराज मुझ को छोड नहीं सकते तो भवन के भूगर्भ आगारो में वद किये वंदियो को मुक्त कर दें ।"

"यह भी नहीं किरण देवी !" कुमारदेव ने गम्भीर हो कहा ।

"तो महाराज मुझ को और कुछ नहीं चाहिये । मैं आपकी कृपा की आभारी हूं ।"

"किरण ! तुम बहुत ही चतुर स्त्री हो । तुमने जो कुछ मागा है वह राज्य के भीतर भारी हलचल उत्पन्न करने वाला है । यदि मैं तुम को स्वतत्र कर दूं तो मेरे पास वदियो की देखभाल करने वाला कोई न होने से वे भी छोडने होगे । यदि मैं उनको छोड देता हू तो जिस प्रयोजन से मैंने अभी तक तुम को रखा हुआ है वह न रहने से तुम को दासी वना कर रखना व्यर्थ हो जावेगा । अर्थात् तुम भी छूट जावोगी ।"

"तो महाराज हम दोनो छूट जावेंगे न ? तो छूट जावें । क्या हानि होगी इससे ?"

इस समय श्वेताग ने वात का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, "हानि क्यो नहीं ? महाराज पालकदेव के छूट जाने से राज्याभिषेक सदेह में पड़ जावेगा ।"

"सदेह में क्यो पड जावेगा ?" किरण का प्रश्न था ।

"इसलिये कि एक देश में दो महाराज नहीं रह सकते ।"

"मैं अवन्ति के महाराज की मुक्ति के लिये नहीं कह रही । मैं तो अवन्ति के नागरिक पालकदेव, पद्मावती और पडित सुदर्शन की मुक्ति चाहती हूं । पालकदेव वचन देने के लिये तैयार है कि वे राज्य की लालसा छोड़ कर किसी तीर्थस्थान पर चले जायेंगे ।"

"उनका विश्वास किया जा सकता है क्या ?"

"मैं समझती हूं कि यदि वे एक बार वचन देंगे तो उसका पालन करेंगे।"

"वे वचन किस के सम्मुख देंगे ?"

"अपने छोटे भाई और अवन्ति के महाराज के सम्मुख।"

"राजनीति में वचनों का विश्वास नहीं किया जा सकता।" श्वेताग ने दृढ़ता से कहा।

"यह मैं जानती हूं। इस पर भी राजनीतिक कार्य वचनो के आधार पर ही चलते हैं। श्रीमान् पालकदेव चरित्रवान्, कर्मनिष्ठ और कर्म-फल के सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्ति है। वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। उनके वचन पर आप को विश्वास करना ही होगा।"

"पर किरण देवी उनकी इतनी प्रशसा क्यो करती है ?"

"सज्जन पुरुष से सबन्ध आने पर सहानुभूति उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही है।"

"मनुष्य का स्वभाव तो स्वार्थ सिद्धि है। कभी तो वह जान-बूझ कर स्वार्थ सिद्धि करता है और कभी अनजाने में अतरात्मा की प्रेरणा से।"

"अपनी जानकारी में तो मै किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रखती और यदि अनजाने में कोई स्वार्थसिद्धि हो जाये तो इसमें हानि ही क्या है ? देखना तो यह है कि महाराज यदि यह कार्य करें तो इनको हानि होगी अथवा लाभ ?"

"देवी क्या समझती है।" कुमारदेव पूछा।

"मै तो इसमें आपका लाभ ही समझती हू।"

"कैसे ?"

"मैं जानती हू कि श्रीमान् पालकदेव यह वचन दे देंगे कि वे राज्य करने का विचार छोड किसी तीर्थस्थान पर जाकर भगवद्भजन में लगे जावेंगे। महाराज उनके लिये वहा पर रहने का प्रबन्ध कर देंगे। इससे प्रजा में और ससार में जो यश और कीर्त्ति मिलेगी वह अमूल्य होगी।

इसके विपरीत बंदी रख कर अपना राज्य चलाने से संसार के इतिहास में महाराज के नाम के सम्मुख कालिमा का धब्बा लगा रह जावेगा।"

इस समय श्वेतांग ने पुन. वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "यश और कीर्त्ति बिना सुख और भोग के क्या अर्थ रखती है ?"

"सुख और भोग तो छिनेगा नहीं और यश तथा कीर्त्ति ऊपर से मिलेगी।"

"नहीं महाराज, भावुकता स्त्रियो का गुण है। इसमें वह नहीं जाना चाहिये। अवसर मिलने पर शत्रु का नाश कर देना ही सफल नीति है।"

"पर महामात्य जी, यह शत्रु कौन है ? आप किसके नाश करने की बात कह रहे हैं ? तनिक विचार करिये और फिर कहिये।"

"मै जो कुछ कह रहा हूं, विचार करने के उपरान्त ही कह रहा हूं। यह सत्य है कि पालकदेव और महाराज में पहिले तो शत्रुता नहीं थी, परन्तु अब जो कुछ हो गया है वह शत्रुता उत्पन्न करने से अधिक है। दोनो भाइयो में प्रतिस्पर्धा चल पड़ी है।"

"यदि वे राज्य छोड़ काशी चले जायें तब भी ?"

"यह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध है।"

"आप इतिहास भूल रहे है श्रीमान्।"

"मैंने इतिहास पढा है देवी जी ! जिस बात की ओर आपका सकेत है वह कपोलकल्पित है। स्त्रियो को सुनाने के लिये लिखी कथायें मात्र है।"

किरण हस पडी। हसते हुए बोली, "ऐसी अवस्था में मुझको श्रीमान् जी से कुछ नही कहना। मेरी तो भगवान् से यही प्रार्थना है कि अवन्ति को बचाये।"

"भगवान् ? देखा है देवी जी ने ?"

"हा।"

"मुझ को दिखाओ तो मानूं।"

"यत्न करिये श्रीमान्। उनको देखने का मार्ग अति दुस्तर है। शायद क्रीतदासी बन उत्ताल बाबा से शिक्षा पाने की आवश्यकता है।"

श्वेतांग हंस पड़ा। इस पर कुमारदेव ने बात बदल दी और कहा, "हम समझते हैं कि हमारा राज्याभिषेक आप दोनों के विपुल प्रयत्न से ही सम्पन्न होनेवाला है। इस कारण आप की सेवाओं का पुरस्कार हम इकट्ठा ही राज्याभिषेक के पश्चात् देंगे। महाराज पालकदेव के बंदीगृह से मुक्ति का प्रश्न भी उस शुभ अवसर के पीछे ही विचार करेंगे।"

स्वार्थ का रूप—वासना

: १ :

मल्ल राज्य की राजधानी पावा, उज्जयिनी से बहुत ही घटिया थी। राजमार्ग तो विशाल और पक्के थे परन्तु मार्ग तटो पर गृह प्राय कच्चे और एक छत्ते ही थे। ऊची-ऊची अटारिया, जिनकी उज्जयिनी में भरमार थी, यहा देखने को आखें तरसती थीं।

देश में पहाड बहुत थे। ऊची नीची घाटिया थीं जिन पर हरियाली का चिन्ह भी नहीं था। वनौषधियो के अतिरिक्त वहा और कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता था। मैदानो में क्षेत्र थे तो सिंचाई का प्रबन्ध नहीं था। वर्षा जितना कुछ जल देती थी, उस मे जो कुछ उपज हो सकती थी, होती थी और उतनी जनता का पेट भरने के लिये पर्याप्त नही होती थी। व्यापार न के बराबर था। परिणाम यह था कि देश निर्जन था और निर्धन देश की राजधानी जैसी होनी चाहिये थी, वैसी पावा नगरी थी।

जब कभी यहा के राज्याधिकारियो को धन का अभाव प्रतीत होता था, तो देश भर के योद्धाओं का सम्मेलन बुला उसमें धन-वृद्धि की आवश्यकता पर विचार करते थे। ऐसे सम्मेलनो में, जिसमें केवल सैनिक ही सम्मिलित हो, धन उपार्जन की विधियो में सर्वश्रेष्ठ विधि पडोसी देशो पर आक्रमण करना, स्वीकार होता था। इस देश में ब्राह्मणो की प्रतिष्ठा न के बराबर थी। प्राय विद्वान् और बुद्धिमान् लोग साधन विहीन होने के कारण देश छोड़ पड़ोसी देशो में चले गये थे। सारे देश में क्षत्रिय वर्ण के लोग ही प्रधान थे और शेष शूद्र थे जो इन क्षत्रियो की सेवा-शुश्रूषा करते थे। मान और आत्माभिमान दो प्रबल प्रेरणायें थीं जिनके आधार पर देश में जीवन चलता था। किंचिन्मात्र सी बात पर

द्वन्द्वयुद्ध हो जाते थे और दस बीस प्राणियो की हत्या हो जानी साधारण सी घटना मानी जाती थी।

सैनिको की गोष्ठियो में धनाभाव को दूर करने के उपायो के परिणाम-स्वरूप ही अवन्ति पर आक्रमणो का आयोजन हुआ था। तीन बार आक्रमण करने पर, केवल देश की जनसंख्या कम हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी परिणाम नहीं निकला था। इस पर भी देश की न्यूनताओ की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था।

देश मे गणतन्त्रीय राज्य था। उन परिवारो के प्रतिनिधि, जिनके लोग सेना में भर्ती होते थे, एक गण सभा बनाते थे और इस सभा के सभासद् अपने में से एक को गणपति चुनते थे। यह निर्वाचन प्रति तीन वर्ष के पश्चात् होता था।

गण-सभा के सदस्यो को वर्ष में पाँच सौ रजत और गणपति को डेढ सहस्र रजत मिलते थे। इसी कारण इन सभाओ में निर्वाचित होने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति में बनी रहती थी।

ब्राह्मण तथा वैश्यो की सख्या देश में बहुत कम थी। इनके तथा शूद्रों के प्रतिनिधि गण सभा में नहीं जाते थे। गण-सभा में क्षत्रियो का ही प्रभुत्व था और वे गण-सभा में आने के लिये परस्पर लडते-झगडते थे। इस पर भी देश की रक्षा के लिये सब एक हो जाते थे।

अवन्ति से तीन बार पराजित होने पर मल्ल सेनानियों के मस्तिष्क में हलचल मची थी। मल्लों को अवन्ति की सीमा से बाहर कर जब पालक-देव ने तीसरी बार भी अपनी सेना वापिस बुला ली तो इस पर गण-सभा में भारी विवाद चल पडा।

गणपति छन्द्रजीत ने सभासदो से कहा, "विचारणीय बात तो यह है कि पालकदेव ने हमको तीन बार पराजित किया, परन्तु तीनों बार ही अपने सैनिकों को हमारे देश में घुसने नहीं दिया।"

इस व्यवहार का कारण अपनी बुद्धि से सब ने दिया। परन्तु गण-सभा सामूहिक रूप में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकी। इस विवाद का एक

परिणाम यह हुआ कि एक लम्बे काल के लिये अवन्ति पर आक्रमण का विचार स्थगित कर दिया गया। इससे पहिले निरतर तीन वर्ष तक मार्गशीर्ष मास में आक्रमण कर दिया जाता था। देश भर में कोई क्षत्रिय परिवार ऐसा नही रहा था जिसको एक-दो प्राणी इन युद्धो में बलि न देने पडे हो।

पिछले युद्धो में पराजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि राज्य के नागरिक अवन्ति की प्रजा को श्रद्धा-भक्ति से देखने लगे। दोनो राज्यो में लोग अधिक और अधिक आने जाने लगे। लोग घूमने, दृश्य देखने और अपने विजेताओ को समीप से देखने जाते थे और वहा के पद्मा के किनारे के दृश्यो और भव्य भवनो को देख तृप्ति अनुभव कर लौटते थे।

अवन्ति में हो रहे राज्य परिवार सम्बन्धी परिवर्तनो का प्रभाव भी पावा में हो रहा था। जब पालकदेव और महामात्य सुदर्शन रात भर में ही अदृश्य होगये, तो एक बार तो पावा के लोग प्रसन्नता से तरगित हो उठे, परन्तु यह जान कि महाराज पालकदेव के स्थान पर सेनापति कुमारदेव ने राज्य हस्तगत किया है तो उनकी वह प्रसन्नता विलुप्त होगयी।

इस परिवर्तन पर गण-सभा में भी गरमागरम विवाद हुआ। गण-सभा का एक सदस्य देवयात था। वह दो बार गणपति बनने का यत्न कर चुका था, परन्तु दोनो बार ही कुछ सदस्यो के मतो की कमी से पराजित हो चुका था। इन पराजयो के कारण वह इन्द्रजीत का घोर विरोधी होगया था और उसकी प्रत्येक बात का विरोध करना उसने अपना काम बना रखा था। अवन्ति में राज्य परिवर्तन पर हुए विवाद में जब इन्द्रमणि ने इस पर चिन्ता प्रकट की, तो उसने प्रसन्नता दिखाई। उसका विचार था कि इस परिवर्तन के कारण अवन्ति में दुर्बलता आ गयी होगी। इस कारण समय आ गया है कि उस पर आक्रमण कर अपनी पिछली पराजयो का बदला चुका लिया जावे।

इन्द्रमणि ने समझाया कि पालकदेव के पश्चात् उसके पुत्र के स्थान सेनापति कुमारदेव राज्य कर रहा है और उसके राज्य के कार-भार को अपने ऊपर ले लेने को, न केवल सेना ने पसन्द किया है, प्रत्युत जनता ने

भी सराहा है । इससे अवन्ति दुर्बल नहीं हुई, प्रत्युत सुदृढ़ हुई है ।"

इस पर भी दैवयात और उसके साथियो का विरोध जारी रहा। इन्द्रमणि ने दैवयात के साथियो को प्रसन्न करने के लिये अपनी बात को कुछ अशों में बदल दिया। उसने कहा, "हमारे गुप्तचरो ने यह सूचना भेजी है कि बड़े भाई को छोटे भाई ने ही बंदी बनाया है । इस सूचना से, मेरी सम्मति में, स्थिति में कुछ अतर आ गया है । इस प्रकार दोनो भाइयों में झगड़ा खड़ा हो जाने से दोनो के सहयोगी परस्पर विरोध करेंगे। इसके परिणामस्वरूप राज्य दुर्बल होगा। इस कारण अभी आक्रमण करने के प्रस्ताव को मैं स्वीकार तो करता हू परन्तु इस शर्त पर कि अवसर की प्रतीक्षा की जावे ।"

इस पर दैवयात ने कहा, "इस समाचार से तो मेरा विचार भी बदल गया है । मैं समझता हू कि दोनो भाइयो में पालकदेव अधिक भद्र था। उसके काल में आक्रमण करने से तो उसने हमारे देश मे अपने सैनिको को आने नहीं दिया। कुमार देव से हम यह आशा नहीं कर सकते। इस कारण हमें मैत्री रखने का यत्न करना चाहिये।"

इस प्रकार गण-सभा में परस्पर विरोध चलता रहता था। जब गणपति इन्द्रमणि एक पक्ष लेता तो दैवयात दूसरा पक्ष ले लेता। श्वेताग ने राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही मल्ल राज्य से मैत्री सम्बन्ध उत्पन्न करने के लिये यत्न आरम्भ कर दिया। पत्रो में मल्ल राज्य के गणपति को इस बात में अपने अनुकूल पा उसने अपना एक विश्वस्त दूत बातचीत करने के लिये पावा भेज दिया। इन्द्रमणी ने गण-सभा में प्रश्न उपस्थित करने से पूर्व दैवयात को अपने अनुकूल करने के लिये उसको अपने घर पर आमन्त्रित कर, उससे पृथक में बातचीत कर लेनी उचित समझी।

उसने दैवयात से अति विनम्र भाव में कहा, "मित्र ! मैं तुम्हारे विरोध से कभी भी रुष्ट नहीं होता। मैं जानता हू कि यदि तुम गणपति के पद पर निर्वाचित हो जाते तो शायद मैं भी यही करता जो कुछ तुम करते हो। अर्थात् मैं भी तुम्हारी प्रत्येक बात का विरोध कर तुम्हारे कामों में

रुकावट डालने का यत्न करता। परन्तु मैं एक बात तुम से कहना चाहता हूं कि अवन्ति का राजदूत यहा पर आया हुआ है। इस कारण उसकी उपस्थिति में हमको परस्पर ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि जिससे अपने मत भेद का पता उसको न चले। वहा तो गणराज्य है नहीं और वहा के लोग हमारे इस प्रकार के मतभेदो का अर्थ नहीं समझते। हम दोनो को इस विदेशी के साथ ऐसे ढग से व्यवहार करना चाहिये जिससे उसके मन में यह प्रभाव पड़े कि हम उनसे बातचीत करने में एक है। इस कारण मेरा यह प्रस्ताव है कि इस दूत के साथ बातचीत करने के लिये तुम ही हमारे नेता बनो।"

यद्यपि इससे दैवयात को कुछ लाभ नहीं हो सकता था, अर्थात् वह इन्द्रमणि को नीचा नहीं दिखा सकता था, तो भी चौधरी बनने की लालसा से उसने इन्द्रमणी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अगले दिन दैवयात पूर्ण अधिकारो से युक्त हो अवन्ति के राजदूत से बातचीत करने के लिये उसके निवास-स्थान पर जा पहुचा।

अवन्ति से राजदूत बन कर सेठ राघव, जिसने कुमार को राजगद्दी दिलवाने में उसकी भारी सहायता की थी, आया था। श्वेताग के प्रबन्ध के अनुसार सेठ राघव अपने साथ बहुत दास दासिया लाया था। जिस पंथागार में उसके ठहरने का प्रबन्ध किया गया था, वह एक बहुत बडा गृह था। उसमें कई आगार थे और अवन्ति से आये हुए राजदूत के साथियों की आवभगत के लिये पावा की ओर से बहुत से नौकर चाकर भेजे गये थे।

दैवयात जब आया तो सेठ राघव ने गृह से बाहर आ बहुत आदर से उसका स्वागत किया। दैवयात सेठ के सभ्य व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। सेठ दैवयात से गले मिला और उसका दोनो हाथो से स्वागत कर भीतर भेंट करने के आगार में ले गया। जब वे जाकर बैठे तो सेठ ने जल पान के लिये निमन्त्रण दे दिया। उसने पूछा, "आप कभी हमारे यहां आये है अथवा नहीं?"

पक्षा नदी के तट पर छोटे-छोटे घाट थे। इन सब घाटो को मिला कर डेढ़ कोस लम्बा एक घाट बना दिया गया था, जिसके ऊपर एक विशाल चबूतरा और उसके पीछे घास का मैदान था। इसमें सैकडो पुष्प-लता-निकुज बनवाये गये थे। इस घाट पर सायकाल सहस्रो की सख्या में नर-नारी भ्रमण करते, नर्तकियों के नाच देखते, गाने वालियो के मनोहर गीत सुनते और मद्य मास इत्यादि बहुत ही अल्प मूल्य पर खाते थे। यह कार्य-क्रम मध्य रात्री तक चलता और प्राय लोग अति प्रसन्न और सतुष्ट होकर अपने घरो को जाते थे।

नगर के मार्ग विशाल कर दिये गये, मार्ग तटो पर पेड लगवा दिये गये और स्थान स्थान पर बच्चों और युवको के खेलने कूदने के लिये मैदान बनवा दिये गये।

उज्जयिनो में एक सगीताचार्य नटराज प्रद्युम्न रहता था। श्रीमान् पालकदेव के राज्य में उसकी साधारण सी ही मान्यता थी। कुछ घरों की लडकियाँ उसके पास सगीत और नृत्य सीखने आती थीं। कुमारदेव भी अपने बाल्य काल में कुछ काल के लिये उससे सगीत सीखने गया था और जब उसको पता चला कि वह इस कला को सीख नहीं सकता तो उसने नटराज के यहा जाना छोड दिया। इस पर भी नटराज के सुपुत्र प्रमोद से उसकी मैत्री बनी रही।

कुमार जब तीर्थाटन से लौटा तो प्रमोद भी उससे मिलने गया। कुमारदेव के भवन में नर्तकियो की भरमार देख वह घबडाया था। उसने कुमारदेव के सम्मुख तो उसके आचरण पर कोई टिप्पणी नहीं की, परन्तु उसने अपने पिता के पास जाकर पूर्ण वृत्तान्त बताया। इसके कुछ दिन पीछे नटराज भी कुमारदेव से मिलने गया। उसे वहा श्वेताग के दर्शन होगये।

प्रद्युम्न को अपने जीवन कार्य के कारण नगर की गणिकाओं से सबन्ध आता रहता था और फिर उन गणिकाओं के आगे पीछे-घूमने वालों का भी परिचय था। वह जब श्वेताग और कुमारदेव से भेंट कर

लौटा तो अपने पुत्र प्रमोद को बुला कर कहने लगा, "बेटा प्रमोद ! इस नगरी में कोई विप्लव आने वाला है। इस विप्लव में भवन, गृह अथवा मन्दिर नहीं गिरेंगे । प्रत्युत इसमें जनता के आचार, विचार तथा व्यवहार में उथल पुथल होने वाली है। यह समय है जब हमको कुछ करना चाहिये । व्यतीत हुई बीसियों पीढ़ियों की निर्धनता धो सकने का अवसर अब मिल सकेगा ।"

प्रमोद समझा नहीं । इस कारण उसने प्रश्नभरी दृष्टि से पिता की ओर देख कर पूछा, "पिता जी, ऐसा क्यों होगा ?"

प्रद्युम्न ने गम्भीर हो कहा, "किसी वेश्या का पुत्र राज्य की बागडोर सम्हालने आया है । और वह धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित अथवा सब प्रकार के संकोच छोड़, राज्य सत्ता अपने हाथ में करने पर तुला हुआ है। बड़े-बड़े मठाधारी, पदवियों व उपाधियों से विभूषित और चरित्रवान् तथा ज्ञानवान् अपने आसनों को छोड देंगे। वह समय होगा जब तुम को अपने हाथ रंग लेने चाहियें ।"

"यह तो अन्याय हो जावेगा, पिता जी !"

"बेटा ! यह आंधी तुम रोक नहीं सकोगे। कुमार देव के स्वभाव को मैं जानता हूं। वह उच्छृंखल प्रकृति का तो बचपन से ही है । अब उस उच्छृंखलता में वासना का विष आ मिला है। यह आंधी तो आयेगी। इस विनाश में जितना कुछ तुम अपने हाथों में समेट सको समेट लो और फिर जब आंधी निकल जावेगी तो उस समेटे हुए को पूंजी बना अपना और अन्य अनेकों योग्य अधिकारियों का भला कर देना ।"

प्रमोद पिताजी से इंगित मार्ग को ढूंढने लगा। वह एक दिन कुमार देव से मिलने गया तो श्वेतांग से परिचय पा गया। श्वेतांग भी प्रमोद को अपने अनुकूल पा उनसे अपना कार्य सिद्ध करने में सहायता लेने की सोचने लगा। तीर्थाटन से लौटने के उपलक्ष में हो रहे नृत्य तथा संगीत प्रतियोगिता में वह प्रबन्धक नियुक्त होगया। यह आयोजन प्रमोद ने अति कुशलता से सम्पन्न किया। इससे कुमार और श्वेतांग दोनों प्रसन्न थे।

अभी उत्सव चल ही रहा था कि राज्य में विप्लव होगया। इसके समाचार को सुन प्रद्युम्न ने पुत्र को वुला कर कहा, "देखो प्रमोद! घटनाओ में प्रगति वैसे ही हो रही है जैसी मै आशा करता था। आज तुम कुमारदेव से मिलने जाओ। एक तो उत्सव के विषय में आगे क्या होगा, जान कर आओ। दूसरे, इस समय कुमारदेव को अनेको साथियो की आवश्यकता होगी। तुम भी उनमें से एक हो। उससे भेंट करने से तुम विस्मरण नहीं होगे। तुम को भी अवसर मिलेगा, जिससे कार्य कर सकोगे।"

"पर पिता जी, पालकदेव महाराज का क्या हुआ?"

"जव राजा होते हुए वह अपने को सुरक्षित नहीं रख सका, तो तुम उसके लिये चिन्ता कर क्या कर सकोगे?"

प्रमोद महाराज कुमारदेव से मिलने गया और उसको यह जान भारी प्रसन्नता हुई कि उत्सव में हो रहे नृत्य, सगीत तथा अन्य मनोरजन के कार्य एक मास तक और चलते रहेंगे। प्रमोद को इन सव का प्रवन्ध करने के लिये नियुक्त कर दिया गया।

प्रमोद कुमारदेव से मिल कर घर लौटा तो एक लडकी, जो नटराज की शिष्या थी और जिसका नाम लोला था, नटराज के सम्मुख बैठी रो रही थी। प्रमोद ने उसको देख प्रश्नभरी दृष्टि से अपने पिता की ओर देखा। नटराज ने वताया, "देखो प्रमोद! इस आंधी का प्रथम विनाशकारी परिणाम हमारे सम्मुख आ गया है। इसके पिता पडित सुखदर्शन गणनाचार्य पकड कर किसी अज्ञात स्थान पर ले जाये गये है। घर पर सैनिकों ने अधिकार कर लिया है और यह भाग कर यहा आ गयी है।"

प्रमोद को उत्सव के चालू रहने और उसमें मनोरजन विभाग के अध्यक्ष वने रहने से जो प्रसन्नता हुई थी वह सव विलीन होगयी। यह विनाशकारी परिणाम कुमारदेव के समीप तो प्रकट नहीं थे। यह उसको अति भयकर रूप में यहा आकर दिखाई दिया।

लोला अभी वारह वर्ष की वालिका मात्र थी और प्रद्युम्न से

बाल्यकाल से शिक्षा पा रही थी। प्रमोद इस बालिका को बहुत पसन्द करता था, क्योंकि वह संगीत और नृत्य कलाओं में अति निपुण थी और साथ ही इसलिये भी कि उसका 'भैया प्रमोद' कह कर पुकारना अति मीठा प्रतीत होता था। पिता जी के अन्य शिष्य भी उस को ऐसे ही पुकारते थे, परन्तु जैसा रस, लोला के कहने में होता था, वैसा वह किसी अन्य के कहने में अनुभव नहीं करता था। वह लोला के ऐसा कहने में कारण जानने के लिये कई बार विचार कर चुका था, परन्तु किसी परिणाम पर नहीं पहुंचा था। आज लोला को इस दुःखित अवस्था में देख उसके हृदय में भारी टीस उठी। उसने पूर्ण परिस्थिति को जाना और फिर पिता जी से पूछा, "पिता जी, यह अब कहा रहेगी?"

"हमारे गृह में एक आगार खाली है ही। यह अभी वहां ठहर सकती है। तनिक, अन्य शिष्यों से इसको सुरक्षित रखना चाहिये।"

"यह मैं कर दूंगा पिता जी! चलो लोला! तुम अभी आराम करो। तुम्हारे पिता जी के विषय में पता करूंगा।"

लोला पंडित सुखदर्शन की एकलौती लड़की थी। यह गणित का विद्वान् बहुत कड़ी रीढ़ की हड्डी रखता था। जहा यह धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, धर्म पर आरूढ़ हो राजा-महाराजाओं से टक्कर लेने से डरता नहीं था, वहा इसकी मित्रों, सम्बन्धियों से भी कुछ विशेष बनती नहीं थी। यही कारण था कि लोला जब घर से भागी तो वह किसी सम्बन्धी के घर जाने के स्थान गुरु जी के स्थान पर चली आयी। उसके मन में विश्वास था कि प्रमोद भैया सबसे अधिक सहायता कर सकता है।

लोला अष्टाध्यायी का अध्ययन कर रही थी और संगीत तथा नृत्य सीखती थी। जैसी वह इन ललित कलाओं में निपुण थी, वैसे ही वह अपने अध्ययन कार्य में भी बहुत योग्य थी।

प्रमोद जब-जब भी कुमारदेव से मिलने जाता था, वह कान खड़े कर पंडित सुखदर्शन के विषय में जानने का यत्न करता रहता था। श्वेनाग से भी वह मिलने जाया करता था। वहां भी वह इस यत्न में

रहता था कि किसी प्रकार लोला के पिता का समाचार प्राप्त करे। इस सतर्कता पर भी उसको अपने ध्येय में सफलता नहीं मिली।

एक दिन, यह कुमारदेव के राज्य-भार अपनाने के लगभग एक वर्ष पीछे की बात है, कुमारदेव ने प्रमोद से कहा, "सगीताचार्य, हमारे भवन में आज नृत्योत्सव हो रहा है। आप उसमें आइये।"

"जैसी आज्ञा हो महाराज! क्या कोई विशेष नर्तकी आयी है?"

"हां। स्थानेश्वर की भैरवी नाम की एक नाचने वाली अपने दल-बल सहित आयी है। हमारा विचार है कि यदि वह और उसके गुरुजी, जो उसके साथ आये है, योग्य सिद्ध हुए तो उज्जयिनी में नये बनने वाले कला-भवन के पद पर वे सुशोभित होंगे।"

"यह तो अन्याय हो जावेगा महाराज! हम भी तो आपके सेवक यहा विद्यमान हैं। हमारी योग्यता में यदि कोई त्रुटि हो, तब तो बात दूसरी है।"

कुमारदेव ने हसते हुए कहा, "प्रमोद भैया, भैरवी की बहुत प्रशसा सुनी है। यदि तुम उससे प्रतियोगिता करना चाहते हो तो आ जाओ। हम किसी निष्पक्ष व्यक्ति को निर्णायक नियत कर देंगे।"

"यदि आज्ञा हो तो अपने वाद्य इत्यादि और भैरवी से प्रतियोगिता करने के लिये भी किसी को साथ लेता आऊ?"

"कुछ हानि नहीं। पर सुना है कि भैरवी वैशाली, मगध, अग, बग, हस्तिनापुर इत्यादि सब बड़े-बड़े देशो में ख्याति प्राप्त कर आयी है।"

"कुछ भय की बात नहीं है, महाराज! आज भवन में प्रतियोगिता हो जावे।"

: २ :

कुमारदेव के भवन में इस बात की धूम मच गयी कि भारत भर में ख्याति प्राप्त नर्तकी से प्रमोद प्रतियोगिता करेगा। यह समाचार श्वेतांग के पास भी पहुचा। उसने अपने गुप्तचरों के द्वारा यह भी समाचार पा

लिया था कि भैरवी रेखा के द्वारा महाराज के ज्ञान में लायी गयी है। इससे श्वेतांग कुछ घबराया। वह इस बात का बहुत ध्यान रखता था कि कुमारदेव पर कोई ऐसा प्रभाव डालने वाला न आ जावे, जिससे उसके अधिकारो में किसी प्रकार का अंतर आ जावे। इससे, भवन में उसके ज्ञान के बिना कोई व्यक्ति आकर कुमारदेव से सम्पर्क उत्पन्न करे, उसे पसन्द नहीं था। वह जानता था कि भवन में किरण की बहुत चलती है, इस कारण वह उससे मिलने चल पडा।

किरण को अचम्भा नहीं हुआ, जब उसकी सेविका मधीका उसके पास, महामात्य के भेंट करने के लिये आने का समाचार लायी। उसने कहा, "उनको बैठाओ। मै आ रही हू।"

कुछ विचार कर वह वहा आयी और साधारण आवभगत के पश्चात् कहने लगी, "मै एक प्रहर भर से आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हू। आप आये तो है परन्तु कुछ देर होगयी है।"

"क्यो? क्या बिगड गया है?"

"आप भैरवी के विषय में बात करने आये है न?"

श्वेतांग किरण के इस अनुमान पर मन ही मन विस्मय करते हुए बोला, "किरण, हो तो तुम एक स्त्री हो न? तभी इन खेल तमाशो को ही राजकार्य समझती हो।"

"तो आप समझते है कि भैरवी केवल खेल तमाशा करने आ रही है? यदि आपका ऐसा विचार है तो मैंने भूल की है। हां, तो श्रीमान् बतावें कि किस प्रयोजन से इस दासी के गृह को पवित्र करने का कष्ट किया है?"

"यदि मै यह कहूं कि मै देवी जी के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हू, तो?"

"तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमान् का मन सुलेखा से ऊब गया है। पर वह तो कल रात भी श्रीमान् के शयनागार में सोयी थी।"

श्वेतांग के लिये यह एक और बात, दिल को चोट पहुंचाने वाली हुई।

वह समझता था कि सुलेखा का उसके आगारों में आना कोई नहीं जानता। सुलेखा रेखा की एक प्रिय दासी थी। वह अभी आयु में बहुत कम थी और सुलेखा को विवाह का वचन देकर महामात्य ने अपनी प्रेमिका बनाया था। जब श्वेतांग को उत्तर न दे कर उसका मुख देखते हुए पाया तो किरण ने अपनी बात चालू रखी और कहा, "इस पर भी मैं तो यह जानती हूं कि यह पहिली बार नहीं कि श्रीमान् जी ने एक भोली-भाली बालिका को झूठ बोल कर ठगा हो। छोड़िये इस बात को। मैं तो जानती हूं कि आप न तो विवाह के विषय में बातचीत करने आये हैं और न ही आपने सुलेखा से कभी विवाह करना है।"

"तो देवी ही बताने की कृपा करें कि मैं किस अर्थ आया हूं?"

"मैंने तो बताया था, परन्तु श्रीमान् ने कह दिया कि मैं भूल कर रही हूं। इस पर तो श्रीमान् ही बता सकते हैं कि उनका यहां आने में क्या प्रयोजन है।"

"कुछ समय के लिये मैं मान ही जाता हूं कि मैं भैरवी के विषय में बात-चीत करने आया हूं।"

"तो बताइये, क्या चाहते हैं आप?"

"तो यह तुम नहीं बताओगी क्या? जब तुम सुलेखा के विषय में इतना कुछ जानती हो तो भैरवी के विषय में क्या नहीं जानती?"

"मेरे जानने की बात छोड़िये। आप उसके विषय में क्या कहने आये हैं?"

"प्रमोद ने उससे प्रतियोगिता के लिये चुनौती दी है?"

"हां, मैं जानती हूं।"

"जीतने वाले को कलाभवन की अध्यक्षता मिलेगी।"

"ठीक है। ऐसा होना ही चाहिये।"

"देवी जी क्या यह नहीं जानतीं कि कलाभवन का अध्यक्ष दस वर्ष में यहां के महाराज से भी अधिक शक्तिशाली हो जायेगा।"

"नहीं। मैं इतना कुछ और इतनी दूर की बात तो नहीं जान

सकती।' दस वर्ष तो एक बहुत ही लम्बा काल है। इस काल तक कौन जियेगा और कौन मरेगा, कहना कठिन है।"

"मैं तो जीना चाहता हूं, किरण देवी!"

"तो आप इतनी दूर की सोच सकते हैं। पर मैं तो कल की ही सोच सकती हूं।"

"तो तुम कल की बात बताओ। हम दूर की पूछते ही नहीं।"

"तो सुनिये श्रीमान्। जिस देश की भैरवी रहने वाली है, कलाभवन उस देश वालों का हो जावेगा और उनके षड्यंत्र का केन्द्र बन जावेगा। वहां उस देश की नर्तकियां, उस देश के वाद्य बजाने वाले और उस देश के शिक्षक आवेंगे और वे सब के सब उस देश के गुप्तचर होंगे।"

"तो वह किस देश की है?"

"यह मालूम करना आपका काम है।"

"तो तुम नहीं जानती, किरण?"

"पर मैं महामात्य नहीं हूं। आपके पास पूर्ण राज्य के साधन हैं। आप उसका पीछा करवाइये।"

"पर यह तो आज रात ही निर्णय होने वाला है कि कलाभवन का कौन अध्यक्ष बने।"

"तो इस निर्णय को रोकने का यत्न करिये।"

श्वेतांग पीतवर्ण हो, बिना एक भी शब्द और कहे, किरण के आगार से निकल गया। वह इस सूचना के पा जाने से एक क्षण भी व्यर्थ गंवाना नहीं चाहता था। वह सीधा कुमारदेव से मिलने चला गया। वहां जब महाराज से मिला तो उनको चिन्तित देख पूछने लगा, "क्या बात है, महाराज?"

"तो आपने अभी सुना नहीं कि रात यहां संगीत और नृत्य की प्रतियोगिता होने वाली है?"

"महाराज, यह तो पता चला है। परन्तु मैं तो यह पूछ रहा था कि महाराज की चिन्ता का कारण क्या है?"

"हमें इस प्रतियोगिता में निष्पक्ष निर्णायक चाहिये। हमारा विचार था कि नट-राज को इस कार्य के लिये बुला लेंगे, परन्तु अब तो उसके लड़के के साथ प्रतियोगिता होगी। इस कारण वह अब निष्पक्ष निर्णय कैसे दे सकेगा ?"

"हां, यह तो एक भारी चिन्ता की बात है। साथ ही यदि नगर में से किसी को बुलाया गया तो प्रथम तो कोई इतना योग्य क्या मिलेगा जो इन प्रतियोगियों की परीक्षा कर सके और दूसरे नटराज के सब शिष्य ही तो होंगे !"

"इसीलिये चिन्ता कर रहा हू महामात्य ! कोई मार्ग बताओ।"

"मार्ग तो है। यदि आप मान जावें तो एक व्यक्ति है, जिसके विषय में कोई नहीं कह सकता कि उसने किसी के साथ पक्षपात किया है। पर वह व्यक्ति केवल आपके कहने पर ही मध्यस्थ का कार्य करेगा।"

"तो बताइये, उसको भी सभा में बुला लें।"

"मेरा अभिप्राय किरण देवी से है। वह नटराज की शिष्या नहीं है। उसके विषय में कोई नहीं कह सकता कि उसका भैरवी से द्वेष है, अथवा वह प्रमोद के साथ कोई लगाव रखती होगी।"

"यह तो ठीक है महामात्य ! परन्तु वह सगीत के विषय में कुछ जानती भी होगी क्या ?"

"महाराज, मैं जानता हूं कि वह इस विद्या में बहुत ही निपुण है।"

कुमार खिलखिला कर हँस पड़ा। पश्चात् कुछ विचार कर कहने लगा, "बहुत अच्छी बात है। कम से कम किसी को यह कहने का तो अवसर नहीं मिलेगा कि किसी से अन्याय हुआ है।"

कुमार ने किरण को बुला भेजा। जब वह आयी तो उसको इस प्रतियोगिता में मध्यस्थ बनने को कहा गया।

किरण ने अचम्भा प्रकट कर पूछा, "महाराज ! आपको किसने कहा है कि मैं इस विद्या में कुछ जानती हू ?"

"महामात्य जी ने," कुमारदेव ने कहा।

"ऐसा प्रतीत होता है कि वे सारा संसार मेरा शत्रु बना कर रहेंगे।"

"पर तुम तो निष्पक्ष रह कर निर्णय दोगी। फिर क्यो तुम्हारा कोई शत्रु बनेगा?"

"महाराज! आप तो सब कुछ समझते हैं। भवन में कोई है जिसने भैरवी का नाम आपके कर्णगोचर किया है। यदि कहीं मेरा निर्णय उसके विरुद्ध होगया तो वह मेरा शत्रु हो जावेगा।"

कुमार किरण की बात सुन कर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। महाराज को चुप देख किरण ने कहा, "अतएव महाराज की भारी कृपा होगी यदि मुझ को इस कार्य से मुक्त कर दिया जावे।"

"नहीं!" कुमार ने दृढ़ता से कहा, "मैं चाहता हूं कि कलाभवन के अध्यक्ष पद के लिये किसी योग्य व्यक्ति का निर्वाचन हो। चाहे किसी ने भी भैरवी का नाम मुझको बताया हो, मैं इस विषय में निष्पक्ष निर्णय चाहता हूँ।"

"मैं तो महाराज की क्रीतदासी हूं। आपकी आज्ञा का उल्लघन करने की क्षमता नहीं रखती। इस पर भी इतना तो निवेदन कर देना चाहती हूं कि दूसरी वार विष दिये जाने पर बच सकना असम्भव है।"

कुमारदेव का मुख विवर्ण हो गया। भय से नहीं, प्रत्युत क्रोध से। वर्षों सेना में कार्य करने के कारण वह किसी भी परिस्थिति में भयभीत नहीं होता था। उसके क्रोध का कारण यह था कि उसके भवन में ऐसे तत्व, जो दूसरो को विष दे कर मार्ग से दूर करने का विचार रखते हो, उसको असह्य हो उठ थे।

कुछ काल तक विचार कर कुमारदेव ने कहा, "किरण देवी! हमारी आज्ञा है कि आज की संगीत और नृत्य की प्रतियोगिता में तुम निर्णायक का कार्य करोगी। हम चाहते हैं कि निष्पक्षता से योग्य व्यक्ति का, जो हमारे कलाभवन की अध्यक्षता करने के योग्य हो, निर्वाचन हो।"

किरण की नियुक्ति गुप्त रखी गयी। सायकाल के भोजन के पश्चात् भवन के एक आगार में कुमारदेव, रेखा, किरण और कुछ अन्य

दास-दासिया अपने-अपने योग्य आसनो पर बैठ गयीं । आगार के एक पक्ष में नर्तकी भैरवी और उसके दल के लोग, अपने वीणा इत्यादि यन्त्रो के साथ बैठे थे । दूसरी ओर नटराज प्रद्युम्न, प्रमोद, लोला और मृदग इत्यादि बजाने वाले बैठे थे । भवन के कुछ अन्य विशेष व्यक्ति भवन के चौथे कक्ष में, कुमारदेव के सामने भूमि पर बैठे थे । इस प्रकार जब सब अपने अपने स्थान पर बैठ गये तो कुमारदेव ने प्रतियोगिता का उद्‌घाटन कर दिया ।

कुमारदेव ने कहा, "श्रीमती भैरवी देवी जी की ख्याति कई मास से सुन रहा हूं । जब हमको विदित हुआ कि श्रीमती जी मल्ल राज्य से यहां पधारी हैं तो हमने उन की कला के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की। श्रीमती जी ने हमारी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन दिया और आज यहां आ कर हमको अनुगृहीत किया है ।

"इस समय हमारे मन में एक और विचार भी आया है कि प्रमोद जी की योग्यता से भैरवी जी की तुलना हो जाये, जिससे हमारे कलाभवन के अध्यक्ष-पद के लिये योग्य कलाकार का भी निर्वाचन हो जावे। कला-भवन के अध्यक्ष व्यक्ति को दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा वार्षिक मिला करेंगी और कलाभवन पर एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा प्रति वर्ष व्यय किया जावेगा ।

"इस प्रतियोगिता में मध्यस्थ के रूप में काम करने के लिये हम किरण-देवी को नियुक्त करते हैं ।"

किरण जो महाराज के चरणों में बैठी थी, कृतज्ञता से महाराज के मुख की ओर देख रही थी । रेखा भी महाराज के चरणो में बैठी थी। किरण का नाम मध्यस्थ के रूप में सुन उसके मस्तक पर त्योरी चढ गयी। उसने महाराज को अपने समीप खेंच कर कान में कहा, "महाराज ! मुझको सदेह है कि न्याय होगा !"

"क्यों ?"

"किरण सगीत और नृत्य के विषय में क्या जानती है ?"

"तो पहिले किरण की ही परीक्षा हो जावे ।"

"हां, महाराज!" रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा।

उत्तर किरण ने दिया, "महाराज! मैं साथ ही साथ अपनी परीक्षा भी दूंगी। इन लोगो की समालोचना, जो मैं करूंगी, उससे ही यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि मै इस विद्या में इन लोगो से भी अधिक जानती हूं अथवा नहीं।"

किरण के इस दावे से प्रमोद आश्चर्य में मुख देखता रह गया। भैरवी ने नाक चढा कर कहा, "महारानी जी! बीस वर्ष तक गुरु-जनो के चरणो में बैठ कर उनकी सेवा की है।"

"आपका कहना सत्य ही होगा। इससे मेरे ज्ञान की क्षुद्रता सिद्ध नहीं होती। आप आरम्भ करिये और फिर देखिये।"

रेखा इससे असतुष्ट थी और अपना रोष प्रकट करने ही वाली थी कि महाराज ने कह दिया, "कुछ भी हो आज तो किरण ही मध्यस्थ का कार्य करेगी। फिर हम भी तो यहा बैठे हैं। यदि देवी जी का निर्णय ठीक न हुआ तो हम देख लेंगे।"

इस बात ने सबका मुख बंद कर दिया। अब भैरवी के समीप बैठे एक वृद्ध ने खडे होकर निवेदन किया, "महाराज! भैरवी मेरी लडकी है और शिष्या भी। कला-भवन की अध्यक्षता के लिये प्रार्थी मैं हूं। भैरवी उस योग्यता का एक उदाहरण है जो मैं अपने विद्यार्थियो को दे सकता हूं। अध्यक्षता का कार्य करने की योग्यता तो मुझ में देखनी चाहिये। वैसे मैं अपनी कला में प्रवीणता की परीक्षा भी दे सकता हूं।"

इसका उत्तर अब किरण ने ही दे दिया। उसने पूछा, "आपका शुभ नाम और पूर्व परिचय क्या है?"

"मैं कलिंग देश का रहने वाला हूं। पडित मल्लिक मेरा नाम है। एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हो संगीत, नृत्य कला में प्रवीण होने पर देश-विदेश में घूम-घूम कर कलाओ में अधिक और अधिक ज्ञान उपार्जन करता रहा हूं।"

"यह ठीक है। प्रमोदकुमार और आपकी योग्यता की परीक्षा हो

जावेगी। अभी तो मैं यह चाहती हू कि भैरवी देवी मगलाचरण करें। पश्चात् प्रमोद जी स्वय अथवा उनका कोई शिष्य भी मगलाचरण करेगा।"

भैरवी ने कल्याण में गाया।

"वन्देऽरविन्दनयनाम्बुदाभ कमनीय मूर्त्तिधर पद्मनाभ।"

इसमें सदेह नहीं था कि भैरवी के स्वर में अलौकिक माधुर्य था। वह राग के उतार-चढाव और हेर-फेर से भी भली-भाति परिचित प्रतीत होती थी। स्वर-ताल-लय का ज्ञान उसको यथार्थ था। उसके रूप-रंग और हावभाव में भी आकर्षण था। पलथी मारे, हाथ जोड़ आखें मूंदे जब वह यह मंगलाचरण कर रही थी और सहज भाव में ही स्वर और ताल में संगीत ठीक बैठता जाता था तो नट-राज प्रद्युम्न के मुख से भी "साधु साधु" के प्रशंसात्मक वाक्य निकल रहे थे।

भैरवी गा रही थी।

"कोदड कला कौतिक निधान पाखड खडन गरुडयान।
कल्याण कोल करुणावतार कल्याण कमठ कृत कर्णधार॥
वन्देऽरविन्द.....

उत्तरोत्तर स्वर चढता जाता था और पूर्ण आगार स्वर तरगों से कम्पित होने लगा था। वह गा रही थी।

"देवगण पूज्य पाद विभ्राज्यमान विस्मित विषाद।
वदेऽरविन्द . . . !"

जब भैरवी ने 'वदे' कह कर शीश झुकाया तो सब के मुख से वाह-वाह निकल गया।

श्वेतांग ने रेखा के मुख पर देखा। वह प्रशसा करने वालो में सबसे आगे थी और बहुत गर्व से कह रही थी, "देवी! सत्य ही तुमने हमारी आशाओ से भी अधिक कर दिखाया है!"

किरण देवी के मुख पर भी प्रसन्नता थी और वह प्रशसात्मक दृष्टि से भैरवी की ओर देख रही थी। भैरवी की प्रशसा करने वालों में प्रद्युम्न किसी से पीछे नहीं था। उसने एक पुष्पमाला ली और भैरवी के गले में डाल

दी। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उस दिन विजय भैरवी की रहेगी। रे । ने कह भी दिया, "प्रतियोगिता तो हो चुकी। अब तो समय व्यर्थ गंवाने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं।"

इस पर प्रमोद ने कहा, "महाराज ! गुण की निन्दा करने वाला न तो इस लोक में और न ही परलोक में शान्ति पाता है । इस कारण हम भैरवी जी की प्रशसा किये बिना नहीं रह सकते । परन्तु महाराज ! इसका अर्थ यह नहीं कि ससार में भैरवी जी अतिम बात हो गयी। यदि आज्ञा हो तो हम भी अपनी एक शिष्या, जो केवल बारह वर्ष की आयु रखती है, उपस्थित करें।"

इतना कह प्रमोद ने लीला को आगे आकर मगलाचरण करने के लिये कहा। लीला को देख सब हस पड़े। रेखा हसने में सबसे आगे थी। परन्तु किरण ने सबको रोक कर कहा "मैं समझती हू कि यह बालिका बहुत ही न्यून अवस्था की है । यदि हम हंसेंगे तो यह घबड़ा उठेगी। यह फिर अन्याय हो जावेगा । हम को शान्ति से सुनना चाहिये ।"

इस पर सब चुप कर गये । लीला ने स्वर भरना आरम्भ कर दिया। प्रमोद वीणा बजा रहा था । मृदग बजाने वाले का नाम गजानन था। लीला सब से आगे बैठी थी। उसके हाथो में छोटी-छोटी करतालें थीं। जब उसने आलाप भरना आरम्भ किया तो श्रोतागणो को पता लगने लगा कि वह बालिका हसी का पात्र नहीं है । न तो स्वर-लय में कोई दोष था और न ही मिठास अथवा लोच में किसी प्रकार की कमी थी । स्वर बारीक अवश्य था परन्तु उसमें हृदय में चुभ जाने वाली उग्रता थी। लीला का आलाप जब तीव्र सप्तक तक पहुचा तो कानो में चुभने वाला होने के स्थान पर, चान्दी की घटियो के समान बजने लगा । आलाप के पश्चात् लीला ने गाया।

"हे मां !
वन्दना करूँ। अर्चना करूँ।"

बाल्यावस्था में मा की वन्दना में भावुकता का आ जाना स्वाभाविक

लोला अपने पिता के विषय में कुछ कह न बैठे । इस कारण उसने किरण से कहा, "श्रीमती जी ! आज्ञा दें,,तो चलें ।"

इस पर कुमारदेव का ध्यान भैरवी की ओर गया। वह श्वेताग से बातें कर रही थी । कुमारदेव जब उसके पास गया तो उसने पूछा, "महाराज ! अध्यक्ष-पद के विषय में कब तक निर्णय हो जावेगा ?"

"कल सायकाल तक आपको उससे अवगत कर दिया जावेगा।"

किरण के सगीत और नृत्य के सिद्धान्त के विषय में पूछे प्रश्नो से भैरवी को विश्वास हो गया था कि कला-भवन का कार्य उसको मिलने की आशा कम है । जहा तक कलाओं में प्रवीणता का सम्बन्ध था लोला, जो उससे आयु में बहुत कम थी, अधिक योग्य थी । जहा तक प्रबन्ध विषयक योग्यता का सम्बन्ध था, वह्लिक देव का उस पर कुछ भी अधिकार नहीं था। इससे जो कुछ, योग्यता न होने से भैरवी और उसके गुरु महाराज को मिलने की आशा नहीं रही थी, उसे वह अपने सौन्दर्य और चपलता के भरोसे प्राप्त करने का यत्न करने लगी। वह बहुत मटक-मटक कर बातें कर रही थी। उसने कहा, "महाराज हम तो राजा-रईसो के लिये ही बने हैं। बीस वर्षो से इन्हीं कलाओ की आराधना कर रही हू । अभी इस आराधना का फल प्राप्त नहीं हो रहा था। अब श्रीमान् जैसे गुणज्ञो के कारण जीवन सफल हो जाने की आशा है ।"

इतना कहते-कहते उसने दोनों भुजाओ को ऐसे ऊपर उठाया मानो वह किसी नृत्य-मुद्रा में अपने शरीर के संतुलन को ठीक कर रही है । भुजाओं को उठाने से उसके उभरे स्तन दो उत्तग शिखरों की भाति और उभर आय । उसकी अगिया के बंद कस गये मानो टूट ही जाने वाले हैं । कुमारदव को, जो उसके सम्मुख खडा था, उसके इस ाव से उससे आलिगन करने की उत्कठा जागती अनुभव होने लगी। यदि रेखा, किरण और श्वेताग वहां न होते तो आलिगन हो जाता। परन्तु रेखा भैरवी की चाल समक्ष गयी और महाराज की बांह पकड कर बोली, "अब चलना चाहिये।"

कुमारदेव सचेत होगया और हाथ जोड़ नमस्कार कर भैरवी को

विदा करने लगा। इस विषय पर और कुछ कहने-करने को नहीं रहा। भैरवी समझ गयी कि उसका विजय अवसर हाथ से निकल गया है। इस पर भी उसने साहस नहीं छोडा और कहा, "तो कल सेवा में उपस्थित हूंगी।"

महाराज को कुछ भी और कहने का अवसर रेखा ने नहीं दिया। वह उनको घसीट कर दूसरे आगार में ले गयी। दूसरे आगार में जाकर महाराज ने किरण से पूछा, "क्या निर्णय है देवी जी का ?"

किरण ने गम्भीर हो कर कहा, "महाराज कला एक ऐसा साधन है जो मनुष्य को अपनी पूर्ण योग्यता का उपयोग करने की सदा प्रेरणा देता है। इस कारण कला-भवन की महिमा बहुत अधिक है। इसका कार-भार किसी वेश्या वृत्ति के व्यक्ति को देना उचित नहीं। वे तो कला को हरजाई बना देंगे। भैरवी एक वेश्या मात्र है। वह्लिक पडित वेश्याओ का गुरु मात्र है। उसको मै इस महान् कार्य के सर्वथा अयोग्य समझती हू। रही कलाप्रवीणता की बात। वह्लिक पडित की शिष्या बीस-पच्चीस वर्ष की शिक्षा पाने पर भी लोला, एक बालिका मात्र से निम्न कोटि की प्रतीत हुई है।

"इस पर भी भैरवी आपकी अनेक दासियो में एक दासी बन कर तो रह सकती है। यह भी महाराज की रुचि पर निर्भर है।"

"नहीं," रेखा ने क्रोध में कहा, "वह इस प्रासाद में पग तक नहीं रख सकेगी।"

महाराज कुमारदेव इस पर खिलखिला कर हंस पड़ा। उसकी दृष्टि में अभी भी भैरवी का वह रूप, जिसको आलिंगन करने की लालसा उसमें जागृत हो गयी थी, घूम रहा था। कुमारदेव ने पूछा, "मेरी पटरानी जी! क्यों उसने क्या पाप किया है ?"

"वह निर्लज्ज स्त्री अभी सबके सामने आलिंगन के लिये आपको आह्वान कर रही थी।"

"तो इसमें कौन बुरा कर रही थी।"

"अच्छे-बुरे की बात में नहीं जानती। में तो आपको उस वेश्या के जाल में नहीं फसने दूंगी। में किरण देवी की सम्मति की पुष्टि करती हू।"

श्वेताग मुस्कराया और प्रसन्न हो विदा मागने लगा।

इस प्रकार अगले दिन ही यह घोषित हो गया कि प्रमोद कला-भवन का अध्यक्ष नियुक्त हुआ है । रेखा ने भैरवी को यह सदश भिजवा दिया, "यदि तुम अवन्ति से बाहर नहीं चली गयी, तो कुत्तो से नुचवा दूंगी।"

कलाभवन की अध्यक्षता मिलने पर प्रमोद को पता चला कि किरण की कृपा से ही उसको यह पदवी मिली है। उसको यह भी पता था कि भैरवी को रेखा की सहायता थी और महाराज तो इस विषय में लगभग निश्चय कर ही चुके थे । यह समाचार पा वह किरण का धन्यवाद करने चल पड़ा।

जब किरण देवी से उसको भेंट प्राप्त हुई तो उसने कहा, "मैं आपका अति धन्यवाद करता हू। योग्यता-अयोग्यता की बात तो आज इस देश में बहुत कम चलती है । मनुष्य का स्वार्थ ही उसके कामो का नियन्त्रण करता है ।"

किरण ने, उसकी बात का उत्तर देने के स्थान पर पूछा, "सगीताचार्य ! लोला को साथ नहीं लाये ?"

"तो उस बेचारी पर भी आपकी रुचि हो गयी है क्या ? इससे तो मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा । उसका भी उद्धार होगा, ऐसा मुझको दिखाई देने लगा है।"

"यह लोला है किस की लड़की ?" किरण ने पूछा

"अपने बाप की श्रीमती जी !" इतना कह वह मुस्कुराया।

"तो यह किसी गुप्त प्रेम का परिणाम है ?"

प्रमोद चुप रहा। इससे बात यहा ही समाप्त हो गयी।

श्वेताग किरण से मिलने आया तो पिछली रात के उसके निर्णय के लिये उसका धन्यवाद करने लगा। किरण ने बताया, "परमात्मा का धन्यवाद है कि लोला ने बहुत सुन्दर गाया और नृत्य किया। नहीं तो मेरे

लिये बहुत कठिन हो जाता ।"

"यहां से भैरवी और उसके साथी कहां गये थे, जानती हैं आप ?"

"हां, मल्ल राज्य के दूतावास में ।"

"यह सब तुम को कौन बताता है, किरण देवी !" श्वेतांग ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा ।

"मेरे पास साधन हैं । जब मुझको विष दिया गया था, तब मैंने सतर्क रहने की आवश्यकता अनुभव की थी । तब से ही मैंने अपने ज्ञान के लिये साधन जुटाने आरम्भ कर दिये थे ।"

"तो भैरवी के विषय में तुम और क्या जानती हो ?"

किरण हंस पडी । उसने कहा, "मेरा ज्ञान मेरे लिये है । महामात्य की सहायता के लिये नहीं ।"

"इसी कारण तो मैं कहता हूं कि हमारा विवाह हो जाना चाहिये । तब तो तुम्हारा ज्ञान हम दोनों के लिये हो जायगा न ?"

किरण ने हंसते हुए कहा, "मल्ल दूतावास पर देखरेख रखनी चाहिये । वहां के राजदूत का सम्पर्क नगर के प्रतिष्ठित जनों से बढ रहा है ।"

: ५ :

एक दिन किरण देवी ने लोला को अपने आगार में ले जाकर उसके माता-पिता का परिचय पूछा । उसका विचार था कि लोला उसकी भांति ही किसी निर्धन परिवार की लड़की है और उसके माता-पिता ने उसको प्रमोद के हाथ शिक्षा के लिये सौंप दिया है ।

लोला ने, जैसे प्रमोद ने उसको सिखा रखा था, पहिले तो केवल यही बताया कि वह अपने माता-पिता के विषय में कुछ नहीं जानती, परन्तु जब किरण देवी ने बहुत प्यार से उसके साथ सहानुभूति प्रकट की तो वह बालिका अपने माता-पिता का रहस्य बता गयी । किरण के प्रश्नों के उत्तर में उसने धीरे-धीरे सब कुछ बता दिया ।

उसने बताया कि माता का स्मरण उसे नहीं है । पिता जी का कहना था

कि उनका देहान्त उसके जन्म के समय ही हो गया था। पिता जी के लिये महाराज पालकदेव के मन में भारी मान था और उनके धर्म और चरित्र के श्रेष्ठ होने का वर्णन लोला ने किया। उसने अन्त में बता दिया कि उसके पिता का नाम पण्डित सुखदर्शन है और वे कुमारदेव के, किसी अज्ञात स्थान पर, बंदी हैं।"

"तो तुम ने पहिले यह क्यों बताया था कि तुम अपने पिता जी को नहीं जानती ?"

"प्रमोद भैया ने कह रखा था कि महाराज और महामात्य सुन कर क्रोध में मुझको मरवा डालेंगे।"

किरण यह सुन चुप कर गयी। उसको पंडित सुखदर्शन का उस दिन का व्यवहार स्मरण हो आया, जो उन्होंने कुमारदेव के प्रथम दिवस के भोज के समय दिखलाया था। यह जान कि पण्डित बंदी हैं उसको बहुत दुःख हुआ। इस पर उसने लोला को कहा, "लोला बहन! प्रमोद भैया ठीक ही कहते हैं। तुमको यह कथा किसी को नहीं बतानी चाहिये। सत्य ही महाराज तुम को फांसी पर लटकवा देंगे। मैं तो यह किसी को नहीं बताऊंगी। इस पर भी तुम किसी को नहीं कहना।"

लोला इस भय की बात से कांप उठी और अपने बताने पर पश्चात्ताप करने लगी। उसके भय से आंसू निकल आये। यह देख किरण ने उसको गोदी में बैठा उसका मुख चूम उसको आश्वासन दिया कि वह उसकी कथा किसी से नहीं कहेगी।

लोला ने घर पहुंचते ही सब बात प्रमोद को बता दी। इससे वह अति चिन्तित हो उठा। वह नहीं जानता था कि किरण देवी पर कितना विश्वास किया जा सकता है।

अब प्रमोद इत्यादि नवीन कलाभवन में रहते थे। यह कलाभवन महाराज पालकदेव के प्रासाद में कुछ परिवर्तन कर स्थापित किया गया था। यह पांच तल का भवन था। इसमें एक सौ एक विशाल आगार थे। एक सहस्र के लगभग छोटे-छोटे आगार भी थे। बीस विशाल

प्रागण थे और उनमें पुष्पवाटिका बनी थीं। इन पुष्पवाटिकाओं में जल-प्रपात, झरने और पुष्करिणिया बनी थीं। स्थान-स्थान पर देश-विदेश के प्रसिद्ध कलाकारों से निर्मित मूर्तियां तथा स्तूप खड़े थे। पूर्ण भवन अति सुन्दर, अति विशाल और अति सुख-साधनसम्पन्न था। इस भवन का प्रबन्ध प्रमोद संगीताचार्य के अधीन हो गया और उसमें कला के विस्तार, प्रसार और उद्धार के लिये प्रबन्ध होने लगा।

नटराज की ख्याति के कारण और राजनीति में परिवर्तन के कारण इन ललित कलाओं की महिमा अवन्ति में एकाएक बढ़ गयी। जब देश में यज्ञ, हवन, वेदगान तथा अन्य धार्मिक कर्मकांडो के स्थान पर सुरा, सुन्दरी, वीणा, दुंदुभि, मृदग, खजरी, तुमुर, बांसुरी इत्यादि की ध्वनियो का श्रवण होने लगा, तो इन कलाओं के सीखने की लालसा प्रत्येक युवक तथा युवति में जाग उठी।

प्रमोद प्रातः का अल्पाहार कर कार्यालय में आया तो बीस से ऊपर शिक्षा प्राप्त करने आये प्रार्थी वहा उपस्थित थे। जब वह अपने आसन पर बैठा तो प्रतिहार ने बताया कि बाईस नवीन विद्यार्थी कलाभवन में प्रवेश चाहते हैं।

"एक-एक कर भीतर भेजो।" प्रमोद ने उससे कहा।

एक प्रौढावस्था की स्त्री हाथ में एक-तारा लिये और भगवे वस्त्रो में सबसे प्रथम आयी। प्रमोद ने पूछा, "क्या नाम है देवी?"

"निपुणा जन्मनाम है भगवन्।"

"क्या करती हो?"

स्त्री ने मुख से व्यग का भाव बना कर कहा, "जब युवति थी तब स्त्रियो का कार्य करती थी। जब पुरुषों ने मुझको कार्य-हीन समझा, तो गली-कूचों में गा-गा कर भिक्षा-वृत्ति करती थी। अब एक वर्ष हो गया है, धीरे-धीरे मेरे गानो की माग कम हो रही है और भिक्षा मिलनी कठिन हो रही है। लोग अच्छा सगीत प्रति सायकाल पद्मा नदी के तट पर सुन लेते है। मेरे नीरस गीतो को सुनने वाला कोई नहीं। मेरे मन में विचार

आया कि इस कलाकेन्द्र में से कुछ सीख अपना निर्वाह करने के योग्य हो जाऊ।"

प्रमोद ने कहा, "देवी! तुम्हारे लिये इस भवन में स्थान नहीं है। तुम कला की पूजा करने की अधिकारिणी नहीं हो। मेरी बात मानो। मथुरा जी चली जाओ। वहा धर्म से प्रेरित इस जन्म के पापी, अपने भविष्य को सस्ते दामों में बनाने वाले भिक्षा दे तुम्हारे निर्वाह का प्रबन्ध कर देंगे।"

निपुणा कुछ काल तक विचार करती रही। पीछे प्रमोद का धन्यवाद कर बाहर चली गयी।

इसी प्रकार कार्य चलता रहा। सबसे अतिम प्रार्थी एक लडकी, चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु की, आयी। इस पर कुछ सतर्क हो प्रमोद ने उससे पूछा, "नाम क्या है कुमारी?"

"नन्दा।"

"माता-पिता क्या है?"

"यहां से दस कोस के अंतर पर भद्रक नाम के गाव में शिव मदिर के पुजारी से लालन-पालन की गयी कन्या हू। पुजारी का देहात हुए एक मास से कुछ ही ऊपर हुआ है। उसके अपने हस्तलिखित पत्रो, तथा उसके कहीं से प्राप्त पत्रो से पता चला है कि वह पुजारी, शिवदत्त, मेरा पालन-कर्ता मात्र था। मै किसी की पुत्री हू, जो अपना नाम नहीं लिखता था। वह प्रति मास मेरे पालन के लिये धन भेजता था। पुजारी के देहान्त के पश्चात् वह धन नहीं आया। यों तो गाव वाले मेरे खाने-पहिरने का प्रबन्ध कर रहे हैं, परन्तु इस कलाभवन की घोषणा सुन कर मैंने यही उचित समझा है कि यहा प्रवेश पा जाऊ तो ठीक रहेगा।"

"क्या सीखना चाहती हो?"

"नृत्य और सगीत।"

"कुछ रुचि है इन कलाओं में?"

नन्दा मुस्करा कर चुप कर रही। प्रमोद इसका अर्थ नहीं समझा।

वह प्रश्नभरी दृष्टि से उसके मुख की ओर देखता रहा। इस पर नन्दा ने आंखें नीचे किये हुए कहा, "गांव के लोग मुझको कोकिला कह कर पुकारते हैं।"

"ओह !" प्रमोद ने विस्मय में कहा, "अच्छा तो क्या कोकिला कूकती भी है ?"

"परीक्षा लीजियेगा क्या ?"

"यह जानने के लिये कि खिलौना बनाने की मट्टी फंसी है।"

प्रमोद ने नन्दा को बैठने के लिये आसन दिया ; जब वह बैठ गयी तो प्रमोद ने एक 'चौतारा', जो कार्यालय की दीवार के साथ टगा हुआ था, उतार कर उसके सामने रख दिया। नन्दा ने उसे स्वर किया और एक आलाप आरम्भ कर दिया। प्रमोद ने देखा कि उसका स्वर स्थिर, कोमल और प्रभावशाली है। उसको स्वर ज्ञान भी प्रतीत होता था। इस पर भी प्रमोद को यह समझ नहीं आया कि क्या राग अथवा रागिनी वह आलाप रही है। इस समय प्रमोद ने पूछा, "क्या रागिनी है यह ?"

"इसके जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई और पुजारी जी ने बताने की आवश्यकता नहीं समझी।"

"कौन स्वर लगा रही हो इसमें ?"

"स-निध्-नि्-पं-मं-प निधं-रे-स। स-रे-मग् मग्-म-प । म-प-निध नि स । स—नि्-नि्-प-मपनि्प-मग्-मग्-रे-स।

"बहुत मधुर बहुत मधुर है।"

नन्दा ने बताया, "पुजारी सायंकाल त्र्यम्बक भगवान् की मूर्त्ति के सामने बैठ इस स्वर में यह गाते थे :—

उमा रमण चरण शरण पाऊं।
सकल जगत विभूति, इन चरणन पर लुटाऊं।
दुष्ट दमन साधु उद्धरण, हेतु यह सब आयोजन।
पाऊं पाऊं तव कृपा, चरण रज शीश लगाऊं।"

आंखें मूंदे हुए नन्दा गा रही थी। प्रमोद ने देखा कि कलाकार बनने

के लिये एक अच्छा पदार्थ सामने उपस्थित है । स्वर में मिठास, गले में लोच, श्वास में बल, बुद्धि में कुशाग्रता और रूप-रंग में लावण्यता है। इस पर भी प्रमोद ने कहा, "संगीत में प्रवेश पा सकती हो, परन्तु नृत्य में इधर आओ। सीधी खड़ी हो जाओ । भुजा दिखाओ।"

प्रमोद ने भुज-दंड दबा कर देखा। जांघ की दृढ़ता देखी और वक्षोज की कठोरता देखी। तब कहा, "अभ्यास और संयम से रहोगी, तो नृत्य-कला में भी प्रवीणता पा जाओगी।"

प्रमोद ने नन्दा को कलाभवन में प्रवेश देते हुए कहा, "नन्दा नाम के स्थान पर तुम्हारा कोकिला नाम ही ठीक रहेगा। नन्दा में चार मात्रा पड़ती हैं और कोकिला में पांच। यह शुभ और मधुर होगा।" इस प्रकार कई दिनों के पश्चात् एक कोकिला प्रवेश पा सकी । इसको भवन की अट्टालिका पर लीला के साथ का एक छोटा सा आगार रहने को दे दिया गया। निर्वाह के लिये एक स्वर्ण मासिक नियत कर दिया गया।

इस प्रकार लगभग दो सौ विद्यार्थी, जिन्होंने प्रमोद की कठोर परीक्षा पास की, कलाभवन में शिक्षा पाने लगे। दिन रात, आठ प्रहर, भवन में संगीत की ध्वनि, तालों के बोल, नृत्य के आकार, पायलों की झनकार गूंजती रहती थी। कहीं धिक धिक ता, कहीं ना धिर धिर तुम्, कहीं मधनिस धनिस और कहीं, पन घट पे आये ढीठ पिया रे, चलता रहता था।

जिस दिन लीला किरण से अपने माता-पिता का रहस्य बता कर आयी उससे अगले दिन राजभवन से एक दासी प्रमोद को ढूंढती हुई आयी। उसके आने का समाचार पा प्रमोद के मन में लीला के विषय में भय समा गया। दासी ने प्रमोद के सामने उपस्थित हो कहा, "किरण देवी ने भेजा है । वे मध्याह्न में आप से मिलना चाहती हैं।"

"किनसे मिलना चाहती हैं ?"

"श्री प्रमोद जी संगीताचार्य से ।"

"क्या काम है ?"

"नटराज ! मैं नहीं जानती।"

: ६ :

किरण के आगार में प्रवेश करते समय, वह मन ही मन भय से कांप रहा था, परन्तु उसकी बात सुन उसे आश्चर्य हुआ। किरण ने कहा, "मैं समझती हू कि आपको इस लड़की को राजप्रासाद में लेकर नहीं आना चाहिये था। वह निर्दोष बालिका राजभवन की मलिनता में लिप्त हो पतित हो जावेगी। साथ ही उसका रहस्य अभी खुलना ठीक नहीं। वह भोली बालिका उस भय को नहीं समझ सकती, जो उसके लिये इस प्रासाद में उपस्थित है। हमारे महामात्य राजद्रोह को क्षम्य नही मानते ।"

प्रमोद को ऐसा प्रतीत हुआ कि किरण एक अति कोमल हृदय रखती है। इसी कारण उसने लोला के विषय में चेतावनी देना उचित समझा है। इस पर उसने अपनी सफाई देते हुए कहा, "देवी जी ! मुझको यह विदित नहीं था कि आप जैसी स्नेहमयी हृदय रखने वाली कोई नारी भवन में रहती है । यह आपका स्नेह ही था जिसने लोला को अपना रहस्य बताने पर विवश कर दिया था। यदि आप उस मातृविहीन बालिका को गोदी में लेकर प्यार करते हुए न पूछतीं तो वह कभी भी आप पर विश्वास न करती। मुझ को तो विश्वास है कि बालिका के हृदय ने आप पर भरोसा कर धोखा नहीं खाया।"

"आपका विश्वास करना भूल नहीं होगी। भगवान् करे कि मुझमें उस बालिका के विश्वास को बनाये रखने का निश्चय बना रहे। परन्तु जो बात आप कर रहे हैं, क्या उसको केवल मन के उद्गार के वश में होकर ही कर रहे हैं, अथवा बुद्धि से ठीक समझ कर कर रहे हैं? यह केवल मात्र लोला से स्नेह वश है, अथवा उसके पिता से जो अन्याय हुआ है उसके दुःख से प्रभावित हो कर रहे हैं?"

प्रमोद इस सीधे प्रश्न से भारी असमंजस में पड़ गया। वह इस बात के पूछे जाने का प्रयोजन समझने का यत्न करने लगा। वह सोच रहा था कि उसके मन के आंतरिक भावों को जानने से क्या वह उसका भेद खोल

देगी अथवा उसके मन के भावों से सहानुभूति प्रकट कर उसकी, लोला के पिता की खोज करने में सहायता करेगी। बहुत सोचने पर उसको उस दिन की बात याद आ गयी, जब उसने उसको भैरवी पर उपमा दी थी। उसको यह विश्वस्त सूत्रों से विदित हो चुका था कि महाराज कुमारदेव भैरवी का पक्ष ले रहे थे। इस बात को जानते हुए भी किरण ने उसे ही योग्य घोषित किया था। इससे उसके मन के संशय बहुत दूर तक निवारण हो गये। यद्यपि वह अभी भी पूर्ण रूप से किरण पर विश्वास नहीं कर सकता था, तिस पर भी उसने अपने मन की बात कह ही दी। उसने कहा, "देवी जी! मैं नहीं जानता कि श्रीमती जी यह किस प्रयोजन से पूछ रही हैं। इस पर भी यह विश्वास कर कि मैं एक अति विशाल-हृदय और न्यायप्रिय देवी के सम्मुख अपने मन की बात बता रहा हूं, यह निवेदन कर रहा हूं। मैं समझता हूं लोला के पिता का बंदी किया जाना न्यायसंगत नहीं था। यदि मेरे बस में होता तो उसको बंदीगृह से मुक्त कराने के लिये महाराज से प्रार्थना करता। मुझको यह विदित भी नहीं कि वे अभी जीवित भी हैं अथवा नहीं। इस कारण सिवाय लोला की रक्षा करने के और कुछ कर ही नहीं सकता।"

किरण प्रमोद के अपने मन की बात को बताने में हिचकिचाने पर मुस्कराई। पश्चात् कुछ विचार कर बोली, "देखिये प्रमोद जी! मैं राज्य की ओर से गुप्तचर का काम नहीं कर रही। इससे मुझसे आपको डरने की आवश्यकता नहीं। परन्तु एक बात से मैं डरती हूं कि परिस्थिति को भली भांति न जानने के कारण आप भूल कर सकते हैं और यदि मुझको आपके मन का वास्तविक ज्ञान हो तो मैं ऐसी अवस्था में हूं कि आप की बहुत दूर तक सहायता कर सकती हूं।"

"पर देवी! मैं कोई षड्यन्त्र नहीं कर रहा। इस पर भी आपके मेरे लिये इस संरक्षण पर मन को भारी संतोष हुआ है। देवी जी ने मेरे लिये पहिले भी बहुत कुछ किया है। इस कारण मैं तो पहिले ही देवी जी की कृपा के भार के नीचे दबा हुआ हूं। परन्तु जो आश्वासन आपने

मुझको आज दिया है, उसके लिये तो मेरा रोम-रोम आप का कृतज्ञ रहेगा। आपने आश्वासन दिया है कि यदि मैं कोई भूल करूं तो आप मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगी। मैं आपका अति कृतज्ञ हूंगा, यदि आप मुझको यह बताने की कृपा करेंगी कि क्या मैं लोला को घर में रखकर भूल कर रहा हू ?"

किरण ने कुछ काल तक मौन रह कर कहा, "मैं समझती हू कि आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। आपने लोला को घर में रख कर कोई पाप नहीं किया। अभी तक यह कोई नहीं कह सकता कि लोला अपने पिता के साथ महाराज के अपमान में सम्मिलित थी। परन्तु यह बात भी स्वयं सिद्ध है कि लोला जब बड़ी होगी तो अपने पिता के विषय में जानने के लिये अवश्य यत्न करेगी। उस समय शायद मैं यहां नहीं हूंगी। उस समय मैं आपका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकूंगी। इस कारण मैं चाहती हूं कि यदि आपने इस दिशा में कुछ करना है तो उसके लिये मार्ग अभी से स्वीकार कर लो, जिससे चाहे मैं यहा न भी रहूं, तब भी आप अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकें।"

प्रमोद किरण की बात सुन अवाक् रह गया। वह अभी भी किरण का वास्तविक अभिप्राय नही समझा था। किरण ने अपने मन की बात को तनिक और व्याख्या से कह दिया। उसने कहा, "जो कोई भी, आप अथवा लोला और उसके जो भी साथी उस समय हों, उनको एक-दो बातें समझ लेनी चाहियें। वह मैं आपको आज बता देना चाहती हूं। कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे कहने को स्मरण कर लेना।

"कुमारदेव हृदय से खोटा व्यक्ति नहीं है। श्वेतांग, उनके विपरीत विश्वासपात्र नहीं। राज्य का सुधार करने के लिये श्वेतांग के स्थान पर कोई अन्य महामात्य लाना पड़ेगा। जो भी व्यक्ति लोला के पिता को बंदीगृह से छुड़ाना चाहते है, उनको चाहिये कि श्वेतांग को दूर करें। आज कुछ ऐसी धूम मच रही है कि कुमार तो सब बुराइयों का मूल माना

पास एक अभियोग लेकर आयी।

"क्या बात है कोकिला?" प्रमोद ने पूछा, "शीघ्र बताओ, मैं एक आवश्यक कार्य से महामात्य जी से मिलने जा रहा हूं।"

"महामात्य जी से? तो भैया जाओ। मैं फिर कभी आ जाऊंगी। हमारे झगडे तो चलते ही रहते हैं।"

झगड़े की बात प्रमोद सहन नहीं कर सका। वह इसकी गंध भी कला-भवन में नहीं देखना चाहता था। इस कारण वह बैठ गया और बोला, "झगडा? किस से झगडा हुआ है, तुम्हारा?"

"एक पशु से, जिसको रहने के लिये आपने मेरे सामने का आगार दे रखा है।"

"प्रियमुख से झगडा किया है तुमने? क्या पशुपन किया है उसने?"

"मुझको नग्न देखने का यत्न किया है उसने। मैंने कई बार मना किया है परन्तु वह मानता ही नहीं।"

"तो तुम नग्न होती ही क्यों हो?"

"तो स्नान कैसे कर सकती हू? कई दिन से देख रही हूँ कि जब मैं स्नानागार में जाती हू तो वह उसकी दीवार के एक छिद्र में आंख लगाये रहता है।"

प्रमोद को जल्दी थी। इस कारण शेष जाच प्रियमुख के सामने ही करने के लिये उसको भी बुला लिया। प्रियमुख आया तो कोकिला ने अपनी कथा वर्णन कर दी।

"क्यों भाई प्रियमुख! यह क्या पशुपन है?"

प्रियमुख कुछ गम्भीर हो बोला, "भगवन्! मैं स्वय नहीं जानता कि यह क्या है? पर जब यह स्नानागार में जाती है तब अनायास ही मेरे पाव चल कर मुझ को छिद्र के सम्मुख खडा कर देते हैं। मुझको यह विदित नहीं था कि इसको मेरा यह दोष पता लग गया है।"

"क्या मिलता है तुमको इससे?"

"कुछ सुख, कुछ स्वाद, कुछ कल्पना के लिये सामग्री और कुछ

अब कोकिला के मधुर कंठ से गालियां सुनने का अवसर।"

"तो तुम अपना दोष स्वीकार करते हो?"

"मैं स्वीकार करता हूं कि मैं इसकी अनुपम रूपराशि देखने के लिये चोरी-चोरी प्रयत्न करता रहता हूं, परन्तु यह अपराध कैसे हो गया? यह मैं समझ नहीं सका।"

"देखो प्रियमुख! यह अपराध है, यह पशुपन......।"

इस समय प्रमोद के मस्तिष्क में एक विचार-तरंग उठी। वह चुप कर गया और उस विचार-तरंग में डूब गया। उसे चुप देख दोनों प्रियमुख और कोकिला उसका मुख देखने लगे। इस समय प्रमोद तो किसी दूसरे ही संसार में विचर रहा था। उसके मस्तिष्क में भ्रमण करती हुई योजनाओं के लिये रंग-रोगन मिल गया था। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और दोनों से बोला, "तुम जाओ। तुम्हारे झगड़े का निर्णय आकर करूंगा। देखो कोकिला! अपने स्नानागार की दीवार की मरम्मत करवा लो। उसके छिद्र को बंद करवा लो। तुम अपनी कंचुकी के छिद्र को बंद न करवा कर, उसमें से नग्न हो रहे अपने पयोधरों को देखने वाले पर क्रोध कैसे कर सकती हो? जाओ, अब दोनों जाओ। तुम्हारी बात फिर सुनूंगा।"

: ७ :

प्रमोद ने महामात्य के पास जाते हुए अपनी योजना की रूपरेखा बना ली थी। उसने महामात्य को बताया, "भगवन्! राज्याभिषेक के उत्सव पर अवन्ति में सुन्दरी-प्रतियोगिता हो। जो स्त्री अपने को सुन्दर समझती है इस प्रतियोगिता में भाग ले सके। प्रवेश शुल्क कुछ रख दिया जावे। एक निष्पक्ष निर्णायकमंडल निर्णय करे। सौन्दर्य में शरीर के अंग-प्रत्यंग की बनावट का ध्यान रखा जावे और फिर संगीत-नृत्य इत्यादि जो नारी के गुण हैं, उनकी परीक्षा की जावे। इस प्रकार से सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्वाचित कर एक पुरस्कार दिया जावे। उससे

"भवन के प्रांगण में लगे विज्ञापन को पढा है तुमने ?"

"क्यो, क्या है उसमें ?"

"पढ लो, तो पीछे बताऊगा।"

"पढ़ लिया है। तुम्हारे लिये उसमें कुछ नहीं।"

"यह मैं जानता हू। पर तुम्हारे लिये तो है। मेरा विश्वास है कि यदि तुम इस प्रतियोगिता में भाग लो तो पुरस्कार पा जाम्रोगी।"

"हट ! बडे पारखी आये हो न ?"

"सत्य कहता हू देवी !"

कोकिला उसकी बात सुनने के लिये रुकी नहीं। वह सीढियाँ उतरती गयी, परन्तु प्रियमुख की बात उसके मस्तिष्क में रडकती रही "तुम पुरस्कार पा जाम्रोगी ! तुम पुरस्कार पा जाम्रोगी।" जब तक वह भवन की भूमि के तल पर पहुची, उसके मन में निश्चय हो गया कि इस बात की परीक्षा करनी चाहिये, "क्या मैं वास्तव में सुन्दर हू ?" प्रियमुख मूर्ख है। उसकी बात का विश्वास कैसे कर लूं। इस पर भी वह उस प्रागण में गयी जहां विज्ञापन लगा था। बहुत से लडके-लडकियाँ उस को पढ रहे थे। कोकिला ने भी पढा। उसमें लिखा था,

"राज्याभिषेक के उत्सव पर अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की खोज की जायेगी।

"कोई भी स्त्री जिसको अपने सुन्दर होने का गर्व हो, इस प्रतियोगिता में सम्मिलित हो सकती है। प्रवेश शुल्क दस रजत है।

"प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिये क्या करना होगा, यह जानने के लिये कलाभवन के अध्यक्ष श्री प्रमोद जी से मिलना चाहिये।

"प्रतियोगिता कैसे होगी, इसका विवरण प्रतियोगिता में सम्मिलित होने वाली स्त्रियों को प्रमोद जी बतावेंगे।

"प्रतियोगिता का अंतिम निर्णय दस सहस्र दर्शको के भीतर एक विशाल पंडाल में किया जावेगा। इस पडाल में प्रवेश के लिये शुल्क होगा, एक सौ स्वर्ण, पचास स्वर्ण, बीस स्वर्ण, दस स्वर्ण और एक स्वर्ण।

"प्रतियोगिता में निर्णायक समिति के पांच सदस्य होंगे और इनका निर्णय अंतिम होगा।

"सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से वह पुरुष विवाह कर सकेगा जो उसका अधिक से अधिक मूल्य देगा और वह मूल्य उस पंडाल में आंका जावेगा। यह मूल्य राज्य-कर काट कर सुन्दरी की सम्पत्ति मानी जावेगी।

"ऐसा विचार है कि यह मूल्य कई लक्ष स्वर्ण से कम नहीं होगा।"

कोकिला दूर खडी विज्ञापन पढ रही थी। पचास-साठ विद्यार्थी भी इस विज्ञापन को ध्यानपूर्वक पढ रहे थे। वे पढते थे और भिन्न-भिन्न भावों को मन में ले कर चले जाते थे। नये पढने वाले उनके स्थान पर आकर खडे हो जाते थे। कोकिला खड़ी हुई थी विज्ञापन पढने, परन्तु पढन लगी विज्ञापन पढ़ने वालो की मन की भावनाओं को, जो उन मुखो पर प्रकट हो रही थीं।

कोई कन्या पढती तो लज्जा से लाल मुख हो चली जाती। कोई प्रेम से नवीन परिचय प्राप्त कुमारी पढ़ती तो वह जहा लज्जा से लाल हो। उठती, वहा मुस्कराती भी। शायद अपने प्रेमी से अपने सौन्दर्य की प्रशंसा स्मरण कर प्रसन्न होती थी। बडी आयु अथवा अनुभव प्राप्त युवति पढती तो प्रसन्न हो जाती। उसके लिये एक तमाशा होने वाला था। कुछ प्रौढ अवस्था की स्त्रिया भी विज्ञापन पढने आयीं और कोई नाक चढ़ा, कोई खिलखिला कर हंसती हुई चली गयी। युवको के लिये यह विज्ञापन एक रहस्योद्घाटन की सूचना थी। प्रायः के मुख पर कुछ जानने की उत्सुकता के लक्षण प्रतीत होते थे।

कोकिला को पाठकों के भाव पढते-पढते बहुत समय व्यतीत हो गया। वास्तव में उसको यह सब कुछ देखने अथवा समझने में जो स्वाद आ रहा था, उससे उसको समय का ज्ञान नहीं रहा था।

इस समय तक प्रियमुख अपने आगार में जा, वहा कुछ जल पान कर और वस्त्र बदल नगर में भ्रमणार्थ जाने के लिये नीचे उतर आया। मार्ग उस प्रांगण में से ही होकर जाता था, जिस में विज्ञापन लगा था। वहा

कोकिला को देख वह खिलखिला कर हस पडा । कोकिला का ध्यान भग नहीं हुआ । इस कारण वह उसके समीप जा कर बोला, "कोकिला ! क्या देख रही हो ?"

"मानव नाटक," कोकिला ने प्रियमुख का आशय समझ कहा ।

"कैसा है यह ?"

"मनुष्यता से लेकर पशुता तक के जितने स्तर हैं, वे सब यहां चलते-फिरते देखे हैं ।"

"इनमें से पशु कौन देखा है तुमने ?"

"एक तो प्रियमुख है ।"

"हट," कह प्रियमुख भ्रमणार्थ चला गया । कोकिला प्रमोद को ढूंढने चल पड़ी ।

८

प्रमोद लीला को धामार में एक ध्रुपद का हेर फेर समझा रहा था । वह बता रहा था कि ध्रुपद का आरम्भ वेद गान से हुआ है और जितनी मन को शान्ति और व्यवस्था इससे मिलती है उतनी और किसी भी राग और रागिनी से नहीं मिल सकती ।

इस भूमिका के साथ उसने स्वर, ताल, लय के विषय में बता कर बोल आरम्भ करा दिये । उसने बताया कि यह ध्रुपद मालकौंस में है और स्वर भर कर बोल बताये—

"शुभ आयो है आज मगल मोद घडी ।
नव कलियन की प्रभा ज्योतिर्मय
मन दर्पण पड़ी ।
ऋतु वसन्त में कुसम खिले बिखरे केसर पराग ।
सौरभयुत वायु मडल में भरा प्रेम अनुराग ।
लिपटी लता संग तरुवर है आकाश चढ़ी ।
मुद मगल मोद घडी ।"

लीला अभी समझ ही रही थी कि प्रतिहार ने आकर कहा, "श्रीमान् !

एक देहाती ब्राह्मण आप से मिलना चाहता है।"

प्रमोद के मन में ब्राह्मणो के लिये अभी भी श्रद्धा शेष थी। वे स्वयं भी ब्राह्मण थे, परन्तु कई पीढियो से गाने-बजाने का कार्य करने से नट कहाते थे। उसने सब काम छोड कर ब्राह्मण को भीतर लाने को कह दिया।

मस्तक पर तिलक लगाये, धोती और अंगरखा पहिने, पाव में लकडी की पादुका और सिर पर बडी सी चोटी को गाठ देकर बाधे हुए ब्राह्मण देवता कार्यालय में आये। प्रमोद ने खड़े हो, हाथ जोड़ नमस्कार कर आदर से आसन पर बैठाया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देते हुए बैठ कर कहा, "मैं गायनाचार्य प्रमोद से मिलना चाहता हूं।"

"सेवक उपस्थित है, भगवन्!"

उस वृद्ध ब्राह्मण ने प्रमोद को सिर से पांव तक देखा और फिर कहा, "मैं यह जानने आया हू कि सुन्दरी-प्रतियोगिता में प्रवेश पाने के नियम क्या है?"

"कौन भाग लेगा उसमें?"

"क्या उसका नाम-धाम बताये बिना इसके नियम भी नहीं बताये जायेंगे?"

"नहीं! ऐसी कोई बात नहीं। मैं यही जानना चाहता था कि भगवन् स्वय भाग लेंगे, या कोई अन्य?" इतना कह कर प्रमोद मुस्कराया, परन्तु ब्राह्मण के माथे पर भृकुटि चढी देख गम्भीर हो गया।

ब्राह्मण की भृकुटि शीघ्र ही मिट गयी और उसके मुख पर मुस्कराहट दौड गयी। उसने कहा, "मुझको आपसे इस मूर्खता की आशा नहीं थी। विज्ञापन में स्पष्ट है कि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का निर्वाचन होगा।"

"देवता! क्षमा चाहता हू, परन्तु इससे एक बात स्पष्ट हो गयी है कि आपने विज्ञापन ध्यान से पढा है। यहां बहुत लोग बिना विज्ञापन पढ़े भी आ रहे हैं।"

"परन्तु उसमें नियम नहीं लिखे थे। उसमें निर्वाचन-विधि नहीं

लिखी थी । उसमें निर्वाचन-तिथि और निर्वाचन-अध्यक्ष का परिचय नहीं था। यही जानने के लिये आया हू।"

"यदि तो प्रतियोगिता में भाग लेने वाला कोई है तब तो बत दूंगा। पहिले नाम-धाम लिखा दें और शुल्क जमा करा दें, पश्चात जो भी प्रश्न पूछा जायेगा उसका उत्तर दे दूंगा।"

ब्राह्मण का क्रोध शान्त हो रहा था। इस कारण उसने कहा "श्रीमान् ! यह भी विज्ञापन में नहीं लिखा था।" इतना कह उसने दम रजत प्रमोद के सम्मुख रख कर कहा, "लिख लीजिये, नाराट की अनुराध अहीरन।"

"अहीरन ?" प्रमोद अवाक् ब्राह्मण का मुख देखता रह गया पश्चात् कुछ विचार कर प्रमोद ने एक पत्र पर युवति का नाम लिख क पूछा, "माता-पिता का नाम क्या है ?"

"यह आवश्यक है क्या ?"

प्रमोद ने कुछ विचार कर कहा, "नहीं। अब आप जो भी सूच चाहते हैं, पूछिये।"

"निर्णायक कौन होगे ?"

"पाच सदस्यों की एक समिति होगी। इसकी नियुक्ति अभी न हुई।"

"नियुक्ति कौन करेगा ?"

"अवन्ति के महामात्य।"

ब्राह्मण के ओष्ठ कुछ कहने को हिले। प्रमोद को ऐसा स आया कि उनमें से पशु शब्द निकला है परन्तु इतना धीरे से कि कानों तक नहीं पहुच सका। प्रमोद के होठ कुछ ऐसे टेढ़े हुए कि उ मुस्कराहट आयी, परन्तु उसने शीघ्र ही अपने को सम्हाल लिया चुप कर गया। उसको चुप देख ब्राह्मण ने आगे पूछा—

"निर्वाचन-विधि क्या होगी ?"

"मूर्तिकलाविशेषज्ञों की एक समिति बनेगी। उनको एक

सुन्दरी की नग्न मूर्ति बनाने का काम सौंप दिया जायेगा। पांव के नख से लेकर शिर के केशों तक प्रत्येक अंग निर्माण किया जायेगा। जब वह मूर्त्ति बन जायेगी तब उसको आदर्श मान प्रत्येक प्रतियोगी की उससे तुलना की जावेगी। जो अधिक से अधिक उस मूर्त्ति से समता रखेगी वही अधिक से अधिक सुन्दर मानी जावेगी।

"साथ ही यह प्रतियोगिता जीवित स्त्रियो में है। इस कारण उस मूर्त्ति से समता के साथ-साथ शरीर में चपलता, अंगो में लचक तथा भाव भगी, गले की मधुरता की प्रतिस्पर्धा भी होगी।"

"तो सभा में प्रदर्शन के क्या अर्थ है ?"

"प्रथम, देश भर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का अतिम चुनाव देश के शिष्ट-मंडल के सम्मुख होगा। द्वितीय, देश की इस विभूति का दर्शन देश के सब दर्शनेच्छुओ को होना चाहिये।

"तृतीय, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के विवाह का प्रबन्ध यदि न किया गया तो गड़बड हो जाने की सभावना है। इस कारण यह निश्चय है कि उससे विवाह के इच्छुक उसका मूल्य आकेंगे। जो सबसे अधिक मूल्य देगा उससे उसका विवाह कर दिया जावेगा।"

ब्राह्मण इतना सुन कर उठ खडा हुआ, परन्तु प्रमोद ने उसके जाने से पूर्व उससे पूछा, "पर क्या मै आप का परिचय और युवति में रुचि का कारण जान सकता हूं ?"

वह ब्राह्मण प्रमोद के मुख की ओर देखता हुआ विचार करने लगा। प्रमोद ने समझा कि वह बताने में सकोच कर रहा है। इस कारण वह अपना प्रश्न वापिस लेने ही वाला था कि उसने कहा, "नाम भूदेव है। ग्राम नीरा गाव है। लडकी में इतनी रुचि नहीं, जितनी राज्य की नीति के दूषितपन को प्रकट करना है।"

प्रमोद देख रहा था कि उस पडित में दृढता है और बात में युक्ति है। साथ ही उसने भूदेव का नाम सुना हुआ था। वह जानता था कि वह एक विद्वान् व्यक्ति है। अतएव उसने कहा, "कुछ काल और बैठियेगा

नहीं ? यदि आपत्ति न हो तो कुछ और जानने की अभिलाषा जाग पड़ी है ।"

पडित पुन अपने आसन पर बैठ गया और कहने लगा, "हा पूछिये । बताने की बात होगी तो बता दूंगा ।"

"आप सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की खोज करने को एक दूषित बात मानते हैं क्या ?"

"निस्सन्देह ।"

"क्या हानि है इसमें ?"

"समाज को मायाजाल में फसाने से हानि ही तो हो सकती है ।"

"मायाजाल क्या है ?"

"शारीरिक सौन्दर्य । यह क्षणभगुर और जडता में स्थित होने से असत्य है । परमात्मा, आत्मा से दूरस्थ मिथ्या शरीर में जाति का ध्यान केंद्रित करने से पूर्ण जाति सत्य से दूर हो जायेगी ।"

"क्या सुन्दर शरीर में सुन्दर आत्मा का निवास नहीं होता ?"

"यह आवश्यक नहीं । सुन्दर आत्मा तो अपने शरीर को सुन्दर बना लेता है, परन्तु सुन्दर शरीर तो आत्मा को सुन्दर बनाने में अशक्त रहता है ।"

"आत्मा किसी ने देखा है क्या ?"

"तो कार्य कौन करता है ?"

"मन, जो शरीर का एक अंग है ।"

"इस पर भी यह तो सिद्ध हो है कि स्वस्थ मन और सुन्दर शरीर एक साथ होने आवश्यक नहीं ।"

"शरीर के सौन्दर्य के साथ मन की श्रेष्ठता बनाने का भी आयोजन है । इस कारण नृत्य और सगीत इस प्रतियोगिता का एक अग है ।"

"हम यही तो सिद्ध करना चाहते है कि यह भ्रम है ।"

"कैसे करेंगे भगवन् ?"

"यह अभी नहीं बताया जा सकता । समय बतायेगा ।"

"पर भगवन्, हमारी योजना को दूषित सिद्ध करने में आपको क्या मिलेगा ?'

"ब्राह्मण का कर्त्तव्य पालन करने में पुण्य।"

प्रमोद ब्राह्मण की युक्ति करने पर चकित था। वह उसके उत्तरो को सुन स्तब्ध रह गया और कितनी ही देर तक उसका मुख देखता रहा। पश्चात् कुछ विचार कर बोला, "शरीर का धर्म सुख-प्राप्ति नहीं है क्या ? और धर्म के पालन को पुण्य नहीं मानते आप ?"

"चिरस्थायी सुख-प्राप्ति ही धर्म है। क्षणिक सुख साधना जब स्थायी सुख में बाधक हो तो पाप भी हो जाती है।"

"जो सुख जीवन काल तक स्थिर रहे उसकी प्राप्ति तो पुण्य ही होगी ?"

"उसकी दृष्टि में, जो देहान्त को जीवन का अंत मानते है। यदि यह सिद्ध हो जावे कि ऐसे विचारको की दृष्टि बहुत लघु है तो फिर तो उक्त धारणा असत्य हो जावेगी।"

"प्रमाणो में हम प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।"

"ठीक है। पर अन्धे को प्रत्यक्ष तो कुछ भी नहीं होता। इसके यह अर्थ तो नहीं हो सकते कि कुछ है ही नहीं।"

यह वाद-विवाद दोनो को रुचिकर तो था, परन्तु प्रमोद अपने काम में बहुत व्यस्त था। इस कारण उसने अपने स्थान से उठ कर कहा, "आप के दर्शन फिर किसी समय प्राप्त करने का सौभाग्य मिलेगा क्या ?"

"हा। आप के विषय में किसी ने मुझको बताया था कि आप अति सज्जन पुरुष हैं। सो आप से मिल कर प्रसन्नता होनी चाहिये।"

"किसने मेरा परिचय दिया है आपको ?"

"एक है, किरण देवी।"

प्रमोद किरण का नाम सुन चौंक उठा। वह सतर्क हो भूदेव की ओर देखने लगा। वह पुन बैठ गया और भूदेव से पूछने लगा, "क्षमा करें, भगवन्! देवी से आपका परिचय कैसे है ?"

"यह रहस्य की बात है जो वह स्वयं ही बता सकती है । मैं अपने विषय में तो बता सकता हूं ।"

"आपके विषय में तो मैं जानता हू । आपका विवाद, जो महर्षि वामदेव जी से चल रहा है, मुझको पता है ।"

"तब तो आप बहुत कुछ जानते हैं । उन्होने चुनौती दी थी। उसके फलस्वरूप ही मुझको देश भर में भ्रमण कर अनुराधा ढूंढनी पडी है । भगवान् की कृपा से वह मिल गयी है ।"

प्रमोद अभी पडित भूदेव के कथन का अर्थ समझ ही रहा था कि वह उठ खडा हुआ और बोला, "मैं समझता हू कि मेरे विषय में पूर्ण आवश्यक परिचय आप को मिल गया है। अब मुझको चलना चाहिये ।"

"आप नगर में कहा ठहरे हैं ?"

"पथागार में ठहरा था। अब सडक नापता हुआ नीरा को चल दूंगा ।"

"और आप की खोज, अनुराधा कहा है ?"

"अपनी मां के पास रहती है और वहा शिक्षा प्राप्त कर रही है ।"

"शिक्षा कौन दे रहा है ?"

"वह महाशय अपना नाम बताना नहीं चाहते ।"

प्रमोद को आज कई नवीन बातों का पता चला। वह जान गया कि अवन्ति के कोने-कोने में सुन्दरी-प्रतियोगिता की चर्चा चल पडी है । इस प्रतियोगिता पर कोई विशेष घटना घटने वाली है । इसके साथ भूदेव के विषय में उसके ज्ञान में भी वृद्धि हुई। वह उसको केवल एक मीमासकमात्र ही जानता था। आज उसको पता चला कि वह एक मानसिक शक्ति का पुंज और दृढ़व्रती व्यक्ति है । वह कुछ कर दिखाने की क्षमता रखता है । सबसे अधिक विस्मयजनक बात जो उसको आज पता चली थी, वह किरण देवी के पडित भूदेव से परिचय की बात थी। किरण देवी के मन में अपने प्रति आदर की बात सुन तो उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही ।

: ६ :

भूदेव कलाभवन से निकल उज्जयिनी के विशाल मार्गों पर चलता हुआ, नगर के दक्षिण द्वार की ओर जाने लगा। मुख ऊँचे किये हुए वह मन में विचार करता जाता था। श्वेतांग का प्रभाव वह जनता के मन से दूर करना चाहता था। वह जानता था कि कुमारदेव बहुत मोटी बुद्धि का व्यक्ति है, परन्तु पालकदेव के विषय में भी उसकी कोई अच्छी सम्मति नहीं थी। इससे उसके सम्मुख प्रश्न कुमारदेव और पालकदेव का नहीं था, प्रत्युत महामात्य श्वेतांग और पंडित सुदर्शन का था। सुदर्शन बहुत ही योग्य व्यक्ति होते हुए भी सरल चित्त था और पालकदेव की अशुद्ध नीति को वह बदल नहीं सका था। इस कारण श्वेतांग को हटाने पर कौन उसका स्थान ले सकता है, एक अति गम्भीर और विचारणीय बात थी। किरण ने उसको स्वयं महामात्य का पद लेने के लिये कहा था और वह अभी तक इस बात के लिये अपने मन को तैयार नहीं कर सका था। प्रमोद की बात, जो उसने किरण से कही थी कि श्वेतांग के अतिरिक्त कौन है, जो उज्जयिनी में यह सब कुछ कर सकने की शक्ति रखता है, उसको परेशान कर रही थी। वह समझता था कि पंडित सुदर्शन तो यह सब कुछ करने अथवा अब अवन्ति की राज्य-व्यवस्था चलाने की योग्यता नहीं रखता। तो क्या वह स्वयं राजनीति के कीचड़ में कूद पड़े ?

दूसरी ओर महर्षि वामदेव की उसको चुनौती थी कि नास्तिकपथ को परास्त करने की शक्ति आस्तिकवाद में नहीं है। इसके विष को दूर करने के लिये प्रकृतिवाद ही एक सिद्ध उपाय है। कठिनाई यह थी कि किरण भी महर्षि के विचार को ठीक समझने लगी थी। तो क्या वह श्वेतांग को हटवा कर अपने को महामात्य पद पर नियुक्त करवाने के लिये यत्न करे ?

यह इन्हीं विचारों में चला जा रहा था कि एक स्त्री उसका मार्ग रोक कर खड़ी होगयी। पंडित को ठहरना पड़ा। स्त्री ने पंडित जी को

प्रणाम किया और कहा, "देवी जी आपको स्मरण करती हैं।"

"ओह! मषीका? कैसे पता चला देवी जी को कि मैं उज्जयिनी में हूं?"

"मैंने आज आपको उत्तरद्वार से प्रवेश करते और पथागार की ओर जाते देखा था। मेरा विचार था कि आप विश्राम कर, देवी जी से मिलने आवेंगे। मैंने देवी जी से कह दिया था, परन्तु जब आप नहीं आये तो उन्होंने आपके पास मुझको भेज दिया। आप पथागार में नहीं थे। वहां से पता चला कि आप कलाभवन में गये हैं। मैं वहां ही जा रही थी और आप मार्ग में ही मिल गये।"

"किस समय मिलेंगी देवी जी?"

"अपने आगार में, अभी।"

"इतनी आवश्यक बात क्या आन पड़ी है?"

"यह तो मैं नहीं जानती। कुछ दिनों से देवी जी चिन्तित प्रतीत होती हैं।"

"तो चलो।"

दोनों कुमारदेव के भवन की ओर चल पड़े। भवन के पिछवाड़े में सेवकों के लिये एक द्वार था। दासी पण्डित जी को वहां ही ले गयी। प्रहरी को महाराज के हस्ताक्षरों सहित प्रवेश आज्ञा दिखा कर वह उनको किरण के आगार में ले गयी। किरण देवी महाराज कुमारदेव से भेंट कर लौटी ही थी कि मषीका ने सूचना दी कि आचार्य जी आ गये हैं।

किरण देवी ने आगार के द्वार पर आकर उनका स्वागत किया और उनको आदरसहित भीतर ले जाकर बैठाया। किरण ने चरण-स्पर्श किये और कहने लगी "गुरुदेव! आपने आने की सूचना नहीं दी। क्या अपराध हो गया है मुझसे?"

"सूचना देने का अवसर ही नहीं था बेटी! आधे दिन के लिये आया था और अभी जा रहा था। मषीका ने बताया है कि तुम बहुत चिन्ता में हो। यह सुन आ गया हूं। क्या बात है?"

"महर्षि जी का सदेश आया है कि वे आपसे मिलकर काम नहीं कर सकते। आपकी और उनकी नीति एक समान नहीं है। इससे चिन्ता लग रही थी। यहा तो अवस्था दिन प्रति दिन बिगडती जाती है। नगर की यह सूचना है कि दो तीन हत्यायें नित्य होजाती है। महामात्य इन सब समाचारो को महाराज से छुपा कर रखते है। एक असुर मत जिसको लिंगेतवाद कहा जाता है, देश में प्रचलित होता जाता है। यह क्या बला है कोई नहीं जानता। व्यापार में धोखा होने लग गया है। असत्य, झूठ, लोभ, मोह, अहकार, द्वेष इत्यादि सब दुर्गुण उन्नति कर रहे हैं। चोरी, ठगी और दुराचार आदि व्यसन बढ रहे हैं।

"अभी-अभी महाराज से इस विषय में बात कर आ रही हूँ। उनका कहना है कि प्रथम तो ये सूचनायें असत्य ही होगी और दूसरे यदि श्वेतांग जी को हटा दिया जावे तो उनका स्थान लेने वाला देश में है कौन? यदि आप विद्वान् लोग परस्पर एकमत नहीं होते तो ससार तो रसातल को चला जावेगा।"

"तुम बहुत ही सरल चित्त हो किरण! इसी कारण यह नहीं समझ पाती कि विद्वान् होने से कोई सत्य और कर्मठ नही हो सकता। महर्षि वामदेव में और मुझमें आकाश-पाताल का अंतर है। वे पश्चिम को जाते है तो मै पूर्व को जाना चाहता हूं। वे किसी बात को दडनीय मानते है तो मै उसको प्रशसनीय समझता हू। ऐसी अवस्था में मै यह कैसे मान सकता हू कि वे और मै दोनो राज्य-भार वहन कर सकते है। मै महाराज पालकदेव के पुनः राज गद्दी पर बैठने के लिये कोई आशा नहीं रखता। वे महामात्य श्वेतांग के बराबर किसीको योग्य नहीं मानते। मै कुमारदेव के राज्यान्तर्गत यहा क्रान्ति करना चाहता हू और वे पालकदेव और श्वेतांग का सयोग कराने के लिये चिन्तित है।"

"यह तो कुछ बात नहीं बनी।"

"हा। मै तो अब इस बात का ही विचार कर रहा हू कि क्या मै अपने को महामात्य पद के लिये तैयार करूँ?"

"यह तो वही बात हुई जो मैं कहती थी।"

"हां, परन्तु मैंने अभी स्वीकार नहीं की।"

"तो गुरुदेव शीघ्र स्वीकार कर लीजिये। बात बहुत अच्छी बन जावेगी।"

"अभी तो इतना कुछ ही करना है कि महामात्य श्वेतांग को कैसे पदच्युत किया जाये। जब यह हो जावेगा और उस समय यदि और कोई व्यक्ति इस काम के योग्य नहीं हुआ तो मैं इस काम को करने के लिये तैयार हो जाऊंगा।"

"धन्यवाद, गुरुदेव! आज मेरा सब प्रयास सफल हुआ। मैं यहां की अवस्था से आपको अवगत करती रहूंगी।"

"मैं प्रमोद से आज मिला हूं। मुझको वह शुद्ध और सरलचित्त बालक-मात्र ही प्रतीत हुआ है। बच्चों की भांति वह तितलियों को पकड़ने में लगा हुआ है। उसके मन को अपने विचारों में ढालने की आवश्यकता है। इसके लिये यत्न करना चाहिये।"

"गुरुदेव! फिर कब दर्शन होंगे?"

"मैंने तुम को बता रखा है कि मुझको बुलाने के लिये क्या करना चाहिये।"

पश्चात् भूदेव किरण को आशीर्वाद देकर विदा हो गया। ज्यों ही वह किरण देवी के आगार से मषीका के साथ बाहर निकला, तो तीन सुभट हाथों में भाले लिये द्वार के बाहर खड़े दिखाई दिये। भूदेव के द्वार से बाहर निकलते ही सुभटों में से एक ने झुक कर प्रणाम किया और कहा, "महामात्य आप के दर्शन करना चाहते हैं।"

भूदेव एक क्षण अनिश्चित मन से खड़ा रहा। पश्चात् तुरत ही अपने मन को सम्हाल कर बोला, "चलो।"

इस प्रकार वह सुभटों से घिरा हुआ भवन के उस पक्ष की ओर ले जाया गया, जिधर महामात्य रहता था। उसको इस प्रकार जाते हुए मषीका ने देखा और समझा कि हत्यारे उसकी हत्या करने के लिये ले जा

रहे हैं।

महामात्य उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। भूदेव के आने पर बिना उसको बैठने को कहे, श्वेतांग ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"भूदेव।"

"कौन? आचार्य भूदेव? जिनका शास्त्रार्थ महर्षि वामदेव से चल रहा है?"

"जी हां।"

महामात्य श्वेतांग ने उठ कर भूदेव को आदरसहित अपने सामने रखे आसन पर बैठाया और कहा, "मुझको यह सूचना मिली थी कि कोई अपरिचित पुरुष किरण देवी से मिलने गया है। यह तो आप जानते हैं कि अन्तःपुर में कोई पुरुष जा नहीं सकता।"

"महाराज की आज्ञा से भी नहीं?"

महामात्य महाराज की आज्ञा की बात सुन अवाक् रह गया। पीछे कुछ विचार कर बोला, "क्या मैं वह आज्ञापत्र देख सकता हूं।"

इससे भूदेव घबराया। वह आज्ञापत्र मणीका के हाथ में था और सुभट उसको पकड़ कर ले आये थे। इस पर भी उसने कहा, "किरण-देवी की दासी के हाथ में था। आपके भेजे सुभट आ गये और मुझको इधर ले आये। वह आज्ञापत्र उसके हाथ में ही रह गया है।"

श्वेतांग ने समझा कि आचार्य पकड़ा गया है, परन्तु उसी समय एक प्रतिहार आज्ञापत्र लेकर वहां आ गया और पत्र भूदेव जी के हाथ में देकर बोला, "किरणदेवी जी ने भेजा है, जिससे आचार्य जी को प्रासाद से बाहर जाने में कठिनाई न हो।"

प्रतिहार चला गया तो महामात्य ने वह आज्ञापत्र पढ़ा। उसको ठीक देख पंडित जी को देकर कहने लगा, "क्षमा करियेगा। मुझको यह विदित नहीं था कि आप के पास आज्ञापत्र है।"

"क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं। इस पर भी एक बात निवेदन करना चाहता हूं। आशा है कि आप इसको किसी बुरे भाव में न लेंगे। मुझको

पकड़ने से पूर्व आप को द्वारपाल से पूछ लेना चाहिये था कि उसने मुझको कैसे भीतर आने दिया है । आशा है इस सम्मति देने की धृष्टता के लिये महामात्य क्षमा करेंगे," इतना कह भूदेव खड़ा हो गया ।

"यदि आपको बहुत शीघ्रता न हो तो अपनी सगत का लाभ कुछ और काल के लिये देने की कृपा करें ।"

भूदेव ने खिड़की में से बाहर देख कर कहा, "एक घड़ी भर और आपकी सेवा में रह सकता हू । मैंने आज ही नीरा जाना है । रथ मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा ।"

"धन्यवाद ! आप क्या लेंगे ? दूध अथवा सुरा ?"

"कुछ नहीं । मैं फलाहार लेता हू और आज ले चुका हू । आपका नाम तो बहुत सुना था सो आज इस विचित्र संयोग से दर्शन हो गये हैं । भगवान् का धन्यवाद है कि आपको उतना बुरा नहीं पाया जितना सुन रखा था ।"

महामात्य खिलखिला कर हस पड़ा । भूदेव भी मुस्कराया और चुप रहा । महामात्य ने कहा, "आपकी इस प्रशसा के लिये धन्यवाद करता हू । पर भगवन् ! मैंने कौन सी बात ऐसी की है जिससे कहने वाले मुझको बुरा कहते हैं ।"

"यह एक बहुत ही लम्बा विषय है । उसके लिये आज पर्याप्त समय नहीं है । यदि आप की इच्छा हुई तो फिर किसी दिन उपस्थित हो जाऊगा । इस पर भी इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि आप भूलें किया ही करते हैं, जैसे आज मुझको पकड़ कर की है ।"

"मैं समझता हू कि मैंने ठीक ही किया है । कहीं भवनपाल से आपके विषय में जाच करने को कह देता तो, आप का एक ओर तो अपमान हो जाता और दूसरे शायद भवनपाल की जाच आज समाप्त ही न हो सकती और आप नीरा न जा सकते ।"

"सत्य ? तब तो श्रीमान ! आपका मुझको कृतज्ञ होना चाहिये । मैं उसको इतना मूर्ख नहीं समझता था ।"

भूदेव की सतर्कता देख महामात्य विस्मय कर रहा था। इस पर उसने पुनः पूछा, "यदि वह इतना मूर्ख न होता तो क्या करता?"

"प्रथम तो वह मुझको जानता है। मैं पहिले भी इस प्रासाद में आ चुका हूँ। दूसरे उसको यह बात विदित होती कि मैं आज्ञापत्र लेकर आया हूं। तीसरे वह महाराज के आज्ञापत्र को देख कर मुझ को बंदी बनाने की धृष्टता न करता। उसको महाराज का अपमान करने का साहस न हो सकता।"

श्वेताग को आज भूदेव के तर्क करने की शक्ति का ज्ञान हुआ। पहिले तो वह उसको एक मूर्ख आस्तिक मात्र मानता था। वह इस प्रकार की बातों में तो निरुत्तर हो गया था, परन्तु वह यह जानना चाहता था कि किरण से उसका परिचय कैसे और किस प्रयोजन से है। इस कारण वह बात बदल कर पूछने लगा, "आप ठीक कहते हैं, परन्तु एक बात मुझको समझ नहीं आ रही। ये किरणदेवी आप की परिचित कैसे हैं?"

भूदेव मुस्करा कर बोला, "आप का गुप्तचर विभाग बहुत ही दुर्बल प्रतीत होता है। सुनिये, श्रीमान्! किरण देवी के पालनकर्त्ता अथवा शिक्षक मेरे गुरु भाई हैं। किरण देवी को बेचकर दक्षिण की ओर अपनी अन्य दासियां बेचने के लिये चले गये थे। कुछ मास हुए, वे लौट कर आये तो मेरे निवास स्थान पर ठहरे थे। उनकी कृपा से महाराज कुमार-देव और उनके द्वारा मेरा किरणदेवी से परिचय हुआ था। तब से कभी-कभी किरण देवी से भेंट करने की स्वीकृति मिलती रहती है।"

"तो आप भी क्या क्रीतदासियों का व्यवसाय करते हैं?"

"नहीं, यह व्यवसाय उत्ताल बाबा ने गुरु जी की शिक्षा से ग्रहण नहीं किया। यह तो उनकी अपनी बुद्धि के तर्क से स्वीकार किया हुआ कार्य है।"

"इस पर भी वह आपके पास आकर ठहरा था?"

"इस काम के अतिरिक्त वह बहुत ही गुणी व्यक्ति हैं।"

"आपके गुरु कहां रहते थे?"

"काश्मीर में। चक्रधरपुर के समीप एक आश्रम में।"

"किरण देवी के माता-पिता का कुछ ज्ञान है आपको ?"

"नहीं। मैंने कभी पूछा नहीं। इस पर भी उत्ताल वावा के मुख से एक वार निकल गया था कि काश्मीर के आदिवासी नागो के महाराज पद्मनागराज राज्य-च्युत होने पर, एक गाव में रहने लगे थे। उनकी सतान वहुत निर्धन हो गयी थी और यह कन्या उनके परिवार में से है।"

. १० :

श्वेताग, कुछ काल से, किरण के व्यवहार को समझ नहीं रहा था। एक ओर तो उसका प्रभाव महाराज कुमारदेव पर वढ़ रहा था और दूसरी ओर वह उससे तटस्थ रहने लगी थी। कभी ही उसकी महामात्य से भेंट हो सकती थी।

श्वेतांग को राज्य का कार्य भी करना पडता था। इस कारण उसको अवकाश वहुत कम मिलता था। महाराज से मिलने के समय, जो कभी किरण से भेंट हो जाती थी, अव वह भी नहीं हो सकी थी। जव भी वह महाराज की सेवा में उपस्थित होता किरण किसी कार्य में व्यस्त किसी अन्य स्थान पर होती थी।

आज वह भूदेव से किरण का परिचय और महाराज का इस योग्य व्यक्ति से मेलजोल का पता पा, ऐसा अनुभव करने लगा था, जैसे उसके पाव तले से मिट्टी खिसक रही है। उसको ऐसा प्रतीत हुआ था कि उसका प्रभाव राज्य और महाराज पर से कम हो रहा है।

किरण ने हठ कर महाराज के राज्याभिषेक की तिथि निश्चय करवायी थी। यह क्यो ? वह इस रहस्य को समझ नहीं रहा था। एक व्यक्ति, जिसके मन में यह वात वैठी हुई हो कि मनुष्य सर्वव स्वार्थ के लिये कार्य करता है, वह किरण के राज्याभिषेक के लिये यत्न को समझ नहीं सका था। किरण तो, वह विचार करता था, कुमारदेव से घृणा करती है। उसको यह विश्वास-सा हो गया था कि वह उससे कुछ

तो प्रेम करती ही है। इस पृष्ठ-भूमि की उपस्थिति पर यह राज्याभिषेक की बात उसको समझ नहीं आती थी। एक बात उसे समझ आयी कि अज्ञान अथवा मोह वश वह अपना हित-अहित समझ नहीं पा रही। इस कारण उसको अपने हित का ज्ञान होते ही वह उसके साथ मिल कर कार्य करने लगेगी, ऐसा विचार कर वह किरण से मिलने के लिये चल पड़ा।

भवन के मुख्य द्वार के बाईं ओर महामात्य का निवास स्थान था। द्वार के दाहिनी ओर राज्य-कार्यालय था। महामात्य को कार्यालय में जाने के लिये अपने निवास स्थान से निकल, द्वार से भवन के भीतर जाने वाले मार्ग को पार कर जाना होता था। इस प्रकार कार्यालय में जाने के लिये महाराज के निवास स्थान की ओर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसी कार्यालय के एक आगार में महाराज स्वयं भी आकर बैठते थे।

द्वार से महाराज के निवास स्थान को मार्ग सीधा ही जाता था। यह मार्ग एक विशाल आगार के सामने जाकर दो मार्गों में फट जाता था। यही आगार था, जहा महाराज प्रजा से भेंट किया करते थे और इसमें ही विराट् भोजन, नृत्य तथा संगीत सभाएं हुआ करती थीं।

मार्ग इस विशाल आगार के अगल-बगल होकर दो ओर चला जाता था। दोनों ओर मार्ग दो प्रांगणों में खुलता था। प्रांगण बहुत बड़े बड़े थे और दोनों में उद्यान लगे हुए थे। उद्यानों में पुष्करिणिया थीं, जिनमें जल-प्रपात बने हुए थे। उद्यानों में पुष्प-लताओं से ढके कुंज, चम्पा-चमेली की लतायें, गुलाब के क्षुप और सघन पीपल के पेड़ थे। दाहिने प्रांगण के एक ओर महाराज का निवास स्थान था। महाराज के आगारों के अगल-बगल किरण-रेखा के आगार थे और शेष आगारों में महाराज की अन्य प्रिय दास दासिया रहती थीं।

बाईं ओर के प्रांगण के चारों ओर के आगारों में भवनपाल तथा वे सुभट रहते थे, जो दिन-रात भवन सम्बन्धित प्रबन्ध और रक्षा का कार्य करते थे।

महाराज के लिये कई शयनागार थे। इनके अतिरिक्त वे रेखा और

"काश्मीर में। चक्रधरपुर के समीप एक आश्रम में।"

"किरण देवी के माता-पिता का कुछ ज्ञान है आपको ?"

"नहीं। मैंने कभी पूछा नहीं। इस पर भी उत्ताल बाबा के मुख से एक बार निकल गया था कि काश्मीर के आदिवासी नागो के महाराज पद्मनागराज राज्य-च्युत होने पर, एक गांव में रहने लगे थे। उनकी संतान बहुत निर्धन हो गयी थी और यह कन्या उनके परिवार में से है।"

: १० :

श्वेताग, कुछ काल से, किरण के व्यवहार को समझ नहीं रहा था। एक ओर तो उसका प्रभाव महाराज कुमारदेव पर बढ़ रहा था और दूसरी ओर वह उससे तटस्थ रहने लगी थी। कभी ही उसकी महामात्य से भेंट हो सकती थी।

श्वेताग को राज्य का कार्य भी करना पड़ता था। इस कारण उसको अवकाश बहुत कम मिलता था। महाराज से मिलने के समय, जो कभी किरण से भेंट हो जाती थी, अब वह भी नहीं हो सकी थी। जब भी वह महाराज की सेवा में उपस्थित होता किरण किसी कार्य में व्यस्त किसी अन्य स्थान पर होती थी।

आज वह भूदेव से किरण का परिचय और महाराज का इस योग्य व्यक्ति से मेलजोल का पता पा, ऐसा अनुभव करने लगा था, जैसे उसके पांव तले से मिट्टी खिसक रही है। उसको ऐसा प्रतीत हुआ था कि उसका प्रभाव राज्य और महाराज पर से कम हो रहा है।

किरण ने हठ कर महाराज के राज्याभिषेक की तिथि निश्चय करवायी थी। यह क्यों ? वह इस रहस्य को समझ नहीं रहा था। एक व्यक्ति, जिसके मन में यह बात बैठी हुई हो कि मनुष्य सदैव स्वार्थ के लिये कार्य करता है, वह किरण के राज्याभिषेक के लिये यत्न को समझ नहीं सका था। किरण तो, वह विचार करता था, कुमारदेव से घृणा करती है। उसको यह विश्वास-सा हो गया था कि वह उससे कुछ

तो प्रेम करती ही है। इस पृष्ठ-भूमि की उपस्थिति पर यह राज्याभिषेक की बात उसको समझ नहीं आती थी। एक बात उसे समझ आयी कि अज्ञान अथवा मोह वश वह अपना हित-अहित समझ नहीं पा रही। इस कारण उसको अपने हित का ज्ञान होते ही वह उसके साथ मिल कर कार्य करने लगेगी, ऐसा विचार कर वह किरण से मिलने के लिये चल पड़ा।

भवन के मुख्य द्वार के बाईं ओर महामात्य का निवास स्थान था। द्वार के दाहिनी ओर राज्य-कार्यालय था। महामात्य को कार्यालय में जाने के लिये अपने निवास स्थान से निकल, द्वार से भवन के भीतर जाने वाले मार्ग को पार कर जाना होता था। इस प्रकार कार्यालय में जाने के लिये महाराज के निवास स्थान की ओर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसी कार्यालय के एक आगार में महाराज स्वयं भी आकर बैठते थे।

द्वार से महाराज के निवास स्थान को मार्ग सीधा ही जाता था। यह मार्ग एक विशाल आगार के सामने जाकर दो मार्गों में फट जाता था। यही आगार था, जहां महाराज प्रजा से भेंट किया करते थे और इसमें ही विराट् भोजन, नृत्य तथा संगीत सभाएं हुआ करती थीं।

मार्ग इस विशाल आगार के अगल-बगल होकर दो ओर चला जाता था। दोनों ओर मार्ग दो प्रांगणों में खुलता था। प्रांगण बहुत बड़े बड़े थे और दोनों में उद्यान लगे हुए थे। उद्यानों में पुष्करिणियां थीं, जिनमें जल-प्रपात बने हुए थे। उद्यानों में पुष्प-लताओं से ढके कुंज, चम्पा-चमेली की लतायें, गुलाब के क्षुप और सघन पीपल के पेड़ थे। दाहिने प्रांगण के एक ओर महाराज का निवास स्थान था। महाराज के आगारों के अगल-बगल किरण-रेखा के आगार थे और शेष आगारों में महाराज की अन्य प्रिय दास दासियां रहती थीं।

बाईं ओर के प्रांगण के चारों ओर के आगारों में भवनपाल तथा वे सुभट रहते थे, जो दिन-रात भवन सम्बन्धित प्रबन्ध और रक्षा का कार्य करते थे।

महाराज के लिये कई शयनागार थे। इनके अतिरिक्त वे रेखा और

किरण के आगारो में भी जाकर विश्राम करते थे । इस कारण कोई नहीं कह सकता था कि वे रात कहा सोयेंगे । भवन के पिछवाडे में नदी बहती थी और वह भवन की भूमि से बहुत नीची थी । वदियो के आगार यूं तो भवन की भूमि के नीचे थे, परन्तु उनमें के गवाक्ष नदी के ऊपर खुलते थे और उनमें से स्वच्छ शीतल वायु आती रहती थी ।

महामात्य आज किरण से मिलने का निश्चय कर अपने आगार से निकल, द्वार से आ रहे मार्ग पर से होता हुआ, आगार के दाहिनी ओर के प्रागण मे जा पहुंचा । वहा मघीका खडी उद्यान की शोभा देख रही थी । महामात्य ने उससे पूछा, "मघीका ! देवी से भेंट हो सकेगी क्या ?"

"श्रीमान् ! वे आपकी प्रतीक्षा कर रही है । उनकी आज्ञा है कि आप के आते ही उनको सूचना दी जावे ।"

श्वेताग समझ गया कि भूदेव के विषय मे वात होगी । इससे वह अपने मन में विचार करने लगा कि क्या बहाना करे । इस समय मघीका भीतर सूचना देने चली गयी थी । वह अभी विचार कर भी नहीं पाया था कि मघीका आ गयी और महामात्य को भीतर चलने के लिये कहने लगी ।

जव महामात्य किरण के आगार में पहुचा तो वह वहा खडी थी । खडे-खडे ही उसने नमस्कार किया और पूछा, "क्या आज्ञा है श्रीमान् ?"

"आज्ञा तो आप करने वाली है । विदित हुआ है कि आप मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं ।"

"वह तो मै पीछे बताऊगी । यदि आप नहीं आते तो मै स्वय सेवा में उपस्थित हो जाती । अव तो आप ही आये है न ? तो वताइये किस कारण इतना कष्ट किया है ?"

"मै समझता हू कि जिस काम से आप सेवक को स्मरण कर रही थीं, शायद उसी काम से आया हू । मै पण्डित भूदेव के विषय में ही पूछने आया था ।"

"हां, पूछिये । उनको अभी आपने छोड़ा है या नहीं ?"

"छोड़ तो दिया है, परन्तु छोड़ देने पर संतोष नहीं हुआ ।"

"तो श्रीमान् ! यह असंतोष की बात क्यों कर दी है ?"

"केवल आपके मान-अपमान की बात का विचार कर । उनको बंदी बना यदि अभियोग चलवाता तो आपका नाम उसमें बार-बार आता । इसमें भारी अपमान हो जाता । शायद आपको भी न्यायालय में जाकर अपना वक्तव्य देना पड़ता और भगवान् जाने, आपको भी बंदी बनाने की आवश्यकता पड़ जाती ।"

"ओह ! बड़े दयालु हैं आप । इस क्षुद्र दासी के मान की रक्षा की बहुत चिन्ता रहती है आपको ! मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूं । पर श्रीमान् ! आपको इस क्रीतदासी से भी अधिक महाराज के हस्ताक्षरों के मान की रक्षा नहीं करनी चाहिये क्या ?"

"कौन महाराज ? तुम्हारे तो महाराज पालकदेव हैं न ?"

"अवन्ति में महाराज एक हैं । वह हैं महाराज कुमारदेव, जिनके राज्याभिषेक के लिये आप सहमत ही होने में नहीं आते ।"

"देखो किरण ! औरतों को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये । इसका परिणाम ठीक नहीं होगा ।"

"मैंने आपकी राजनीति में कभी हस्तक्षेप नहीं किया । कोई उदाहरण देकर बताइये । मैं तो महाराज की क्रीतदासी मात्र हूं । जब वे कोई आज्ञा देते हैं तो मैं उसमें न नहीं कर सकती ।"

"यह भूदेव से मिलना ही राजनीति में हस्तक्षेप है । उनका राज-भवन में आना ही इस बात का प्रमाण है कि कोई षड्यन्त्र हो रहा है ।"

"कौन षड्यन्त्र कर रहा है ?"

"पंडित भूदेव और तुम ।"

"किस के विरुद्ध यह षड्यन्त्र हो रहा है ?"

"राज्य के विरुद्ध ।"

किरण को क्रोध आ रहा था और वह अपने को नियंत्रण

में रखने का बहुत यत्न कर रही थी। इस पर भी उसने कहा, "अच्छी बात है। आप अपना अभियोग लेकर महाराज के सम्मुख चलें। मैं अपनी सफाई तो वहा ही दूंगी। चलिये।"

"चलने से पूर्व मैं एक बात कह देना चाहता हू कि आज सायकाल आप आइये और मेरे पास जो प्रामाण हैं देख लीजिये। उनको देख कर भी यदि आपका विचार हुआ कि महाराज के सामने यह बात जानी ही चाहिये, तो जावेगी ही।"

"क्या प्रमाण आप दिखा सकते है? मैंने कोई ऐसी बात नहीं की जिसका मुझको भय हो। मैं अभी महाराज के पास चलने के लिये तैयार हूँ।"

"क्रोध मत करो किरण! मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हू। मैंने जब से तुमको देखा है तब से ही मैं तुमसे प्रेम करता हू। मैं समझता हू कि तुम भी मेरे लिये कुछ तो आदर का भाव रखती हो। ऐसी अवस्था में हम दोनों को इस मूर्ख महाराज के लिये अपने सुख और भोग का बलिदान नहीं कर देना चाहिये।"

किरण हस पडी। उसने व्यग के भाव में कहा, "यह प्रेम का पाठ आप कहा से पढ गये है?"

"क्यो?"

"आप तो प्रेम में विश्वास नहीं रखते थे।"

"तुम्हारी सगत का फल हो रहा है। देखो किरण! मैं, सत्य ही, प्रेम के अर्थ नहीं समझता। इतना तो जानता हू कि तुम अति सुन्दर हो, तुम सुशील हो, भद्र हो और बहुत ही विदुषी हो। तुम से विवाह कर तुमको अपनी कह सकना किसी का भी परम सौभाग्य हो सकता है। मैं भी इसी बात के लिये यत्न कर रहा हू।"

"इसी कारण मुझको डरा-धमका कर, विवाह के लिये तैयार कर, सौभाग्यशाली होना चाहते है?"

"धमकाने की बात छोडो। उसके अतिरिक्त भी कई उपाय है।

आज सायंकाल तो मैं सत्य ही तुम को ऐसे प्रमाण दिखाना चाहता हू, जिनको देखकर तुम पंडित भूदेव के समीप भी जाना पसन्द नहीं करोगी। आज तुम आकर देख लो। तुम को संतोष हो जावेगा।"

किरण को विश्वास था कि उसके पास कोई प्रमाण नही हो सकता, जिससे आचार्य जी पर कोई आरोप लग सके। इस पर भी वह विचार कर रही थी कि सायंकाल वह उसके कथन की परीक्षा करने जाये अथवा नहीं। उसको चुप देख श्वेतांग ने कह दिया, "बात पक्की रही। मैं सब पत्र-पत्रक कार्यालय से निकलवा रखूंगा। अच्छी बात, अब मैं जाता हू।"

श्वेतांग नमस्कार कर चला गया। किरण विचार करती रही कि वह व्यर्थ की बात में समय गंवाये अथवा न। अभी वह किसी निर्णय पर पहुच नहीं सकी थी कि सायकाल हो गया। वह अभी अनिश्चित मन थी। उस समय महाराज का सदेश आया कि वे किरण देवी से मिलना चाहते हैं।

: ११ :

"यह तो भारी पाप हो गया है महाराज!" एक बाईस वर्ष का युवक महाराज कुमारदेव को कह रहा था। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। ब्राह्म मुहूर्त का घडियाल अभी बजा नहीं था। महाराज रेवा के शयनागार में बिस्तर पर लेटे हुए थे और युवक पलग के समीप आदरयुक्त मुद्रा में खड़ा था। महाराज के पलंग के समीप एक दूसरा पलग था, जो खाली पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस पर सोने वाला अभी अभी उठ कर कहीं चला गया है। यह युवक मनोज था।

इससे छः मास पूर्व, मनोज अवन्ति में आया था। उसके माता-पिता का देहान्त मार्ग में ही हो गया था। इससे अति दुःखी मन हो वह विन्ध्याचल मे ही विचरता रहा। समय व्यतीत होने से मन की व्यथा धीमी पड़ गयी और वह कुमारदेव के वचन को स्मरण कर अवन्ति आ पहुँचा। उज्जयिनी पहुच, महाराज कुमारदेव को सिंहासनारूढ देख जहां वह

प्रसन्न हुआ, वहा चकित भी हुआ । उसने महाराज से सहायता मांगी तो महाराज ने उसको अपने गुप्तचर विभाग में रख लिया । उन दिनों महाराज अपने राज्याभिषेक की तिथि के निश्चय न हो सकने के कारण महामात्य से अति क्षुब्ध थे । इस कारण उन्होंने मनोज से पूछा, "ब्राह्मण कुमार ! कोई भय युक्त कार्य भी कर सकोगे ?"

"महाराज ! मृत्यु से अधिक भययुक्त कोई बात नहीं है । मैं वह भी अपने सामने देख चुका हूं। महाराज ! आज्ञा करिये और विश्वास रखिये कि निर्भीकता से कार्य सम्पन्न किया जावेगा ।"

"अच्छी बात है। महामात्य श्वेताग के यहा प्रतिहार के रूप में सेवा करो और उसके प्रत्येक कार्य की देखरेख रखो । जब तुम वहा काम पा जावोगे, तब मैं तुम को बताऊंगा कि किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना है और मुझसे कैसे सम्पर्क बनाना है ।"

इस प्रकार कुछ प्रतीक्षा और प्रयत्न के पश्चात् मनोज 'लारू' के नकली नाम से महामात्य के यहा एक सेवक का काम पा गया । उसको यह काम करते हुए छै मास से ऊपर हो चुके थे। इस काल में उसने महामात्य की अनेकों बातें महाराज कुमारदेव को बतायी थीं। इन बातों का परिणाम ही यह हुआ था कि कुमारदेव अपने को बिना राज्याभिषेक के अरक्षित पाने लगा था। यही कारण था कि कुमारदेव श्वेताग से सतर्क होता जाता था। एक भ्रम उसके मन में अभी भी था। वह यह समझता था कि किरण उसके साथ सहानुभूति रखती है और यदि वह श्वेताग की विवाहिता बन गयी तो श्वेताग उसको धोखा नहीं दे सकेगा। इस कारण वह मन से चाहता था कि श्वेताग और किरण का विवाह हो जावे ।

मनोज प्राय पिछली रात अपने समाचार लेकर कुमारदेव के पास आया करता था। वह अभी अपने शयनागार में ही होता था कि मनोज वहा पहुच शयनागार का द्वार खटखटा देता और रेखा अथवा जो भी दासी महाराज की सेवा में होती, उठकर परदे के पीछे हो जाती। मनोज अपनी सूचना देकर चला जाता । महाराज उस सूचना पर विचार

करता और अपना व्यवहार निश्चय करता।

आज मनोज ने जो सूचना दी थी, उनको सुनकर महाराज ने कहा था, "यह तो एक बहुत ही साधारण घटना है, मनोज !" इस पर मनोज ने कहा था कि एक घोर पाप हो गया है।

इस पर महाराज ने कहा, "देखो मनोज ! हमने तुमको अपने यहा इसलिये नहीं रखा था कि तुम समाचारो पर टीका-टिप्पणी भी करो। राज्य के विषय में जब भी तुमने सूचना दी, मैंने सुनी। अब तुम अपने कार्य-क्षेत्र से बाहर की बात कर रहे हो।"

"महाराज ! मुझको आपकी सेवा करते हुए आज छै मास से ऊपर हो गये हैं। मैंने शुद्ध हृदय से अपना काम निभाया है। मैं समझता हूँ कि मैंने आपको ऐसी सूचनाए भी दी है, जिनसे आपको भारी लाभ हुआ है। मेरा विचार है कि राजभवन में जो कुछ होता है वह राज्यकार्य से न्यूनाधिक सम्बन्ध रखता ही है। जो बात आज रात महामात्य के आगार में हुई है, वह राज्य पर प्रभाव उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगी। यह पाप हुआ है और पाप का परिणाम अच्छा नहीं हो सकता।"

कुमारदेव की मोटी बुद्धि में बात आने लगी थी। इस पर भी उसने केवल यह कहा, "अच्छी बात है। तुमने अपने विचार से अपना कर्तव्य पालन किया। अब तुम जाओ और अपने कार्य पर डट जाओ। इस सूचना के लिये हम तुमको पुरस्कार देंगे और तुम्हारे इस कार्य पर की गई समालोचना पर विचार करेंगे।"

मनोज इस उत्तर पर सतुष्ट हो महाराज को नमस्कार कर बाहर निकल गया। अभी दिन चढने में समय था। मनोज महाराज के शयनागार में से निकल कर पिछवाडे की ओर से एक सकरे मार्ग में से होता हुआ, वृहत् आगार के पीछे से एक गुप्त मार्ग द्वारा भवन के उस प्रांगण में जा पहुंचा, जहा भवन के कर्मचारी रहते थे। वहा एक आगार का ताला खोल कर भीतर चला गया। यह उसके रहने का आगार था। कपड़े उतार वह सो गया।

मनोज जब महाराज के शयनागार में से निकल गया तो महाराज नित-

खिला कर हस पडा। हसी की ध्वनि सुन रेखा, जो एक पर्दे के पीछे छुप कर वार्तालाप सुन रही थी, वाहर आ गयी और महाराज के गले में वाह डाल कर कहने लगी, "अब ठीक हुआ है। वहुत अभिमान था इसको अपने सतीत्व पर। सव मद चूर हुआ है। पर यह आपका सेवक कुछ मूर्ख प्रतीत होता है।"

"नहीं प्रिये! यह मूर्ख नहीं। हमने जो कुछ किया है अपने विचार से ठीक किया है। इसको यह पता नहीं कि किरण के साथ इस व्यवहार में हमारा भी हाथ है। उसके विचार में यह पाप हो गया है। कौन कह सकता है कि उसका कहना ठीक नहीं होगा? इस काम का राज्य के ऊपर क्या प्रभाव हो सकता है, यह एक अनुमान का विषय है। उसका अनुमान हमसे भिन्न है।"

"कुछ नहीं होगा इससे। कौन जानता है किरण को? महाराज पालकदेव के वदी होने पर तो किसी ने कुछ किया नहीं। इस क्रीतदासी का मान उनसे भी अधिक हो गया है क्या? कुछ नहीं होगा महाराज! यह युवक पागल है, जो ऐसा अनुभव करता है।"

"है तो यह वहुत ही वुरी वात। यद्यपि हमारा आशय तो शुद्ध ही है। हम चाहते हैं कि वह महामात्य से विवाह करना स्वीकार कर ले। इस पर भी यह तो मानना ही पडेगा कि किसी को अचेत कर उससे भोग करना दंडनीय है।"

"कैसे दंडनीय हो गया महाराज!" रेखा ने अभिमान से कहा, "है तो वह क्रीतदासी। उसे आप वेच भी सकते हैं। तो फिर यदि किसी पर-पुरुष को आपने उसे भेंट कर दिया तो कौन अनर्थ हो गया?"

"अभी मैंने उसको बेचा नहीं। न ही उसको किसी को भेंट किया है। उसको तो अचेत कर उसका भोग किया गया है। यह तो किसी भी नियम से उचित प्रतीत नहीं होता।"

"महाराज! राज्य कार्य में कई ऐसी वात करनी पडती हैं, जो प्रत्यक्ष रूप में अनुचित प्रतीत होती हैं, परन्तु राज्य के हानि-लाभ की दृष्टि से

बहुत ही उपकारी सिद्ध होती है। मेरा विचार है कि अब किरण महामात्य से विवाह करने के लिये तैयार हो जावेगी और महामात्य का चित्त राज्यकार्य में लगने लगेगा।"

"यही तो देखना है। मनोज इस परिणाम की आशा नहीं करता प्रतीत होता।"

किरण को जब चेतना हुई तो वह अभी भी महामात्य की शय्या पर लेटी थी। महामात्य उसके साथ ही गहरी नींद सो रहा था। किरण को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक स्वप्न से जागी है। उस स्वप्न में, उसको धुंधला सा स्मरण हो रहा था कि महामात्य उससे प्रेम प्रकट करता था। वह उसके प्रेम को पसन्द नहीं करती थी, परन्तु उसमें या तो शक्ति नहीं थी या उसको यह विश्वास था कि वह स्वप्न देख रही है, जिससे वह उसके प्रेम का विरोध नहीं कर सकी। प्रेम प्रलाप के पश्चात् महामात्य का उसको गोदी में उठा कर शय्या पर लेटा देना, उसको अवस्त्र करना और फिर उससे संभोग करना, सब कुछ उसको स्वप्नवत् स्मरण था। उसके पश्चात् उसको नींद आ गयी और जैसे गहरी नींद में स्वप्न विलीन हो जाते हैं, वैसे ही हुआ।

अब जब नींद खुली तो पहिला विचार उसके मन में यह आया कि कितना भद्दा स्वप्न देखा है उसने। पश्चात् उसको ज्ञान हुआ कि वह सर्वथा नग्न हो रही है। इसके साथ ही उसको यह समझ आया कि यह उसका अपना शयनागार नहीं है। इस बात के स्पष्ट होते ही वह घबरा कर उठी और उसकी दृष्टि अपने समीप ही सर्वथा नग्न लेटे हुए श्वेनाग पर गयी।

श्वेतांग वास्तव में एक सुन्दर सुडौल पुरुष था। कुमार उसके सामने बहुत ही भद्दी रूप-रेखा रखता था। श्वेतांग को देख यह विचार एक क्षण के लिये उसके मनमें आया, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपने से किये गये कुकर्म की नीचता का ज्ञान हो गया। वह इस ज्ञान से कांप उठी और उसे पसीना छूटने लगा। उसके मस्तिष्क में चक्कर आने लगे और वह अपने सिर

को दोनो हाथो में पकड कर बैठ गयी। इस समय श्वेताग ने करवट ली और किरण को अपने नग्न होने का ज्ञान हो गया। श्वेताग को जागने वाला ही जान, उसका मन क्रोध, लज्जा और ग्लानि से भर गया। वह सिर को छोड शैय्या से उठी और अपने वस्त्रो को ढूंढने लगी। वे उसी आगार के एक कोने में पडे थे। उसने पहन लिये और पूर्व इसके कि श्वेताग जाग जाये, आगार का द्वार खोल, लुडकती-गिरती बाहर निकल गयी। उसके चक्कर अभी मिटे नहीं थे। उसको कुछ ऐसा भास हुआ कि श्वेताग की दासी, जो रात उनको मदिरा पिला रही थी, आगार के बाहर खडी उसकी ओर देख मुस्करा रही थी। किरण ने देखा और रात की घटना का धुंधला सा स्मरण उसको हो आया। उसने वहां खडे रहना उचित नहीं समझा और गिरती-पडती चली गयी। अपने आगार में पहुच उसने द्वार भीतर से बंद कर लिया और पलग पर लेट गयी।

उसके मस्तिष्क में फिर रात की बातें आने लगीं। वह महाराज कुमारदेव के सामने बैठी थी। महाराज ने उसको कहा था कि महामात्य उसके साथ एक आवश्यक राजकीय विषय पर बातचीत करना चाहता है। किरण ने कहा था कि उसको महामात्य के साथ राजकीय विषयो पर बात चीत करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। महाराज का कहना था "महामात्य का विचार है कि तुम यदि उसकी बात समझ जाओगी तो राज्य कार्य में भारी सहायता दे सकोगी। मै तुम्हारी योग्यता को जानता हू इस कारण कहता हू कि उसकी बात सुन लेने में हानि नहीं है।"

महाराज के इस प्रकार कहने पर वह महामात्य से बात करने पर तैयार हो गयी। वह गयी। महामात्य ने एक बहुत ही उच्च स्तर पर भोज का प्रबन्ध कर रखा था। अनेक प्रकार के मांस, मदिरा, मिठाइया तथा अन्य पकवान बनवाये हुए थे। उसने कहा भी था कि कि वह तो उन प्रमाणो को देखने आयी है, जो महामात्य के पास आचार्य भूदेव के विरुद्ध है।

महामात्य ने कहा, "वह भी तो दिखाऊगा। पहिले भोजन हो जाये तो हानि है क्या ?"

ज्यो-ज्यो भोजन होता गया किरण को भूख तथा प्यास लगती गयी और वह उस स्वादिष्ट भोजन और सुवासित मद्य का सेवन करती गयी। एक समय आया कि वह अपने को शिथिल पाने लगी। उसने कहा था, "श्रीमान् , यह मद्य बहुत ही तीव्र प्रतीत होती है ?"

"नहीं तो। मुझ को तो पता भी नहीं चला।"

इस पर भी किरण ने अनुभव किया कि उसको झपकी आने लगी है। इससे उसका सिर घूमने लगा। श्वेताग ने उसको आश्रय दिया और गोदी में ले लिया।

इसके पश्चात् जो कुछ हुआ वह उसको स्वप्नवत् ही स्मरण था, परन्तु नींद खुलने पर जब उसने अपने को श्वेताग की शैय्या पर लेटे पाया तो उसको स्वप्न के सत्य होने का विश्वास हो गया और इसको समझ वह अपनी पराजय पर लज्जा और आत्मग्लानि से गलने लगी। वह अपना सिर धुनने लगी और अपने को इस जाल में फसा हुआ पा हताश हो पलग पर लेट गयी।

दिन चढ आया था। दासी ने द्वार खटखटाया। किरण ने उठ कर खोला। दासी ने कहा, "देवी क्या बात है ? बदियो का भोजन नही जायेगा आज ?"

किरण को स्मरण हो आया। वह पलग से उठी और अपने सदूक से ताली निकाल, दासी को देकर बोली, "जाकर महाराज से कह दो कि मै आज रुग्ण हू और कार्य नहीं कर सकती। क्षमा चाहती हू।"

मधीका गयी और ताली लिये हुए लौट आयी। उसने बताया, "महाराज स्वय यहा ही आ रहे है।"

"पर बदी भूख से व्याकुल हो रहे होगे।"

"मैने कहा था। उनका कहना है कि वे शीघ्र ही आ रहे है।"

इस पर भी महाराज नही आये। प्रहर भर दिन व्यतीत हो गया। मधीका फिर आयी और कहने लगी, "देवी ! बदी भूखे हैं।"

विवश किरण उठी और भोजन-सामग्री, जो सेवक वहा रख गये थे, दासी से उठवाई और भूगर्भ आगारो को चली गयी।

महामात्य सुदर्शन और महाराज पालकदेव क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे। महारानी पद्मावती तो भूख से हताश हो पलग पर जा लेटी थी। आज कल उनके आगार खुले रखे जाते थे, जिससे वे परस्पर मिल जुल और बातचीत कर सकते थे। जब बाहर के द्वार के खुलने का शब्द सुनाई दिया तो दोनो उसको डाट-फटकार बताने के लिये तैयार खडे थे। परन्तु जब किरण ने आगार में प्रवेश किया तो उसका पीत मुख देख और उसकी टागो में अस्थिरता देख चुप कर गये। भोजन परसा जाने लगा और किरण बिना एक भी शब्द बोले सामने खडी रही। पालकदेव से नहीं रहा गया। उसने भोजन पर बैठने से पूर्व पूछ ही लिया, "किरण देवी! कुछ अस्वस्थ प्रतीत होती हो ?"

किरण ने उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसकी आखें डबडबा आयीं। पालकदेव और सुदर्शन दोनो ने देखा। इस कारण अवाक् मुख खडे रह गये। पद्मावती आसन पर बैठ गयी थी, परन्तु जब दोनों पुरुषो को खडे देखा तो वह भी विस्मय में सब को देखने लगी। महामात्य सुदर्शन ने आग्रह-पूर्वक पूछा, "बहुत दुखी हो देवी ?"

भर्राये स्वर में किरण ने कहा, "आप जलपान करिये, पहिले ही बहुत देर हो चुकी है। शायद कल से मैं इस काम पर आ नहीं सकूंगी। इस कारण अपनी पिछले दो वर्षों की भूलो के लिये क्षमा चाहती हूँ।"

"क्या हम तुम्हारे दुःख को बाट नहीं सकते ?"

"बहुत कठिन है श्रीमान्! एक क्रीतदासी से सहानुभूति दिखा कर कुछ लाभ नहीं होगा। मेरा निवेदन है कि आप आज तो पेट भर खा लीजिये। मध्याह्न के समय यदि फिर आना पडा तो बताने का यत्न करूगी।"

इतना कह वह अपने आचल से गालो पर ढुलक रहे आसुओ को पूंछने लगी। महाराज और महामात्य भी भोजन पर बैठ गये। तीनो ने एक-एक कौर खाया और उठ बैठे। पालकदेव सबसे आगे थे। उसने दासी को कहा, "ले जाओ उठा कर। खाने को चित्त नहीं करता।"

किरण देवी बिना और अधिक कहे वहां से चली आयी। मध्याह्न

पश्चात महाराज कुमारदेव किरण के आगार में आये और पूछने लगे, "किरण ! क्या बात है ?"

"महाराज ! मेरा मन विक्षुब्ध है। इस कारण, इस भय से कि कहीं कोई भूल न कर बैठूं, बंदियों के आगारों की तालियां महाराज के पास भेजी थी। आप से निवेदन था कि बंदियों की देखभाल का काम किसी अन्य से करवा लें ।"

"क्या कष्ट है देवी को ?"

"मैं श्रीमान् के सामने अपना अभियोग उपस्थित करूंगी, परन्तु अभी तो इसके भी योग्य नहीं कि अपने मन के भावों को व्यवस्थित भाषा में व्यक्त कर सकूं। इस कारण वह मैं एक-दो दिनों में सेवा में निवेदन करूंगी । अभी तो मैं उस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य से, जो श्रीमान् ने मुझको पिछले दो वर्ष से सौंप रखा है, अवकाश चाहती हूं । पीछे यदि जीवित रही तो पुनः श्रीमान् जी की स्थिर मन से सेवा करने के लिये तैयार रहूंगी।"

"पर देवी ! क्या बात हो गयी है जिससे जीवन-मरण की समस्या आन उपस्थित हुई है ?"

"तो क्या श्रीमान् मुझको अपने विचारों को सुव्यवस्थित करने का अवसर भी देना नहीं चाहते ?"

"पर यह कार्य कौन करेगा ? मेरे पास इस कार्य को करने के लिये कोई विश्वस्त कर्मचारी नहीं है।"

"पर महाराज ! मैं विवश हूँ।"

"तुम मेरी आज्ञा भी नहीं मानती क्या ?"

"मानना चाहती हूं पर अपने को अशक्त पाती हूँ।"

कुमारदेव के मन में आया कि यवन इत्यादि देशों में दास-दासियों को कोड़े लगा-लगा कर काम लिया जाता है। तो क्या किरण को भी इसी प्रकार काम करने पर विवश किया जाये। फिर कुछ विचार कर चुप कर रहा और ताली लेकर वहां से चला गया।

: १२ :

दो दिन में ही भवन में धूम मच गयी कि किरण देवी ने ग्रामरण उपवास कर रखा है। वह केवल जल ले रही है और मरणपर्यन्त न खाने का व्रत लिये हुए है। कानो-कान दास-दासियों में यह बात विख्यात हो रही थी कि महामात्य ने एक रात किरण देवी को मद्य पिला, अचेत कर उससे भोग किया है। इसीसे किरण देवी रुष्ट है और अब मर जाने का निश्चय किये हुए है।

इस समाचार से अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार दास-दासिया किरण के व्यवहार पर टीका-टिप्पणी करने लगी थीं। लोग तीन प्रकार के विचार रखने वाले थे। एक तो वे थे जो क्रीतदासी की प्रथा को वैसे ही समझते थे जैसे फारस, यूनान इत्यादि देशों में थी। वे कहते थे कि दासी तो दासी ही है। वह तो बिकने वाल वस्तु है। जिसके पास गयी वह उसी की भार्या बनने के लिये बाध्य है। दूसरे लोग वे थे, जिनके मस्तिष्क में अभी भी भारत में प्रचलित नारी की मान मर्यादा विद्यमान थी। वे क्रीतदासी को नगर में बिकने वाली वेश्या नहीं मानते थे। तीसरे वे लोग थे, जो कहते थे कि किरण को, चाहे कुछ भी हो, धोखा दिया गया है। यह तो बलात्कार है।

इस पर भी सबको आश्चर्य हो रहा था कि महाराज और महामात्य चुप थे। वे इस विषय में न तो कुछ कर रहे थे, न ही कुछ कहते थे। तीसरा दिन हो गया। अन्न शस्त्र चल रहा था। किरण देवी अपने पलग पर लेटी हुई थी। वह मरणासन्न हो रही थी। महाराज कुमारदेव उसके पास आये थे और सब सेविकाओं को बाहर निकाल उससे बातचीत करते रहे थे। बातचीत करने के पश्चात् जब वह उसके आगार से निकले, तो उनके मस्तिष्क पर चिन्ता की रेखायें थीं। जाने से पूर्व उन्होंने मणीका से कहा था, "देखो किरण देवी की प्रत्येक इच्छा की पूर्त्ति की जावे। इसमें ढिलाई न हो।"

अपनी बैठक में पहुच उन्होंने महामात्य को बुलाया और उससे कहा,

"किरण की अवस्था बहुत बिगड़ गयी है। वह अब भी कुछ खाने के लिये तैयार नहीं है। सबसे विकट समस्या यह उत्पन्न होगयी है कि भैया ने भी खाना छोड़ दिया है। वे कहते थे कि जब तक किरण वहां आकर यह नहीं कहती कि उसको कोई कष्ट नहीं, तब तक वे नहीं खायेंगे। मित्र! मैं बहुत चिन्तित हूँ।"

"इसमें आप का क्या दोष है? जो मरना चाहता है उसको आप कैसे बचा सकते हैं?"

"पर उनके साथ दुर्व्यवहार जो हुआ है।"

"यह तो राजनीति है। मैं एक बात आपसे पूछता हूँ कि आपके राज्य में प्रजा अधिक सुखी है या नहीं। यदि ऐसा है तो एक दो व्यक्तियों के मरने से कुछ नहीं होगा। कोई मरना चाहे तो मरे।"

"मैं दादा की जान बचाना चाहता हूँ।"

"बचाने से राज्य जायेगा। यह समझ लीजिये।"

"मैं अभी किरण से बात कर रहा था। उसने मुझ को कहा है कि दादा यह वचन देने को तैयार हैं कि वे राज्य की अभिलाषा त्याग कर किसी तीर्थ-स्थान पर चले जायेंगे।"

"तो क्या वे उपवास छोड़ कर यह वचन दे देंगे?"

"बिना किरण के अन्न खाये वे एक ग्रास भी नहीं लेना चाहते।"

"तो पहिले किरण को मनाइये।"

"कल प्रमोद ने बहुत यत्न किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सफल नहीं हुआ।"

"तो आचार्य भूदेव को बुला लीजिये। वह उनको अपने गुरु-समान मानती है।"

महाराज कुमारदेव को एक मार्ग सूझा। यद्यपि उनसे भी कोई भारी आशा प्रतीत नहीं होती थी, तो भी ऐसा विचार कर कि कुछ तो करना ही चाहिये, उसने एक सेवक के हाथ एक पत्र आचार्य भूदेव के पास भेज दिया।

कुमारदेव को स्मरण आ रहा था कि एक बार किरण ने कहा था, "शरीर-त्याग देने से कौन रोक सकता है।" इसके साथ ही मनोज की बात भी उसको याद आ गयी। उसने भी मृत्यु-दंड को बिना हिचकिचाहट के सुना था। उसके मन में मनोज से इस विषय पर बात करने की इच्छा हो गयी। वह उससे केवल गुप्त मार्ग द्वारा ही मिल सकता था। इस कारण उसने अपने शयनागार में जा कर एक विश्वस्त सेवक द्वारा उसको बुला भेजा। मनोज के आने पर द्वार बंद कर महाराज ने पूछा, "दो दिन से क्या कोई समाचार नहीं है ?"

"अभी परिपक्व नहीं हुआ महाराज! एक भारी षड्यन्त्र चल रहा है। मैं यह समझ नहीं सका कि वह किस विषय में है। ज्यूं ही उसका सिर-पैर समझ पाऊँगा, श्रीमान् को सूचित करूँगा।"

"किरण के विषय में क्या सूचना है ?"

"पहिले तो उससे बलात्कार करने पर महामात्य अति प्रसन्न थे। दूसरे दिन विस्मय में बैठे विचार करते रहे। आज कुछ चिन्तित थे। इसी विषय में एक गुप्त गोष्ठी बुलाई गयी है। उसमें सेठ राघव, पंच मंगल, मल्ल राज्य का दूत देवयात और नगर के कुछ अन्य लोग भी आ रहे हैं। आज मैंने यत्न कर द्वारपाल का काम लिया है। आशा है कि कल यथा-समय उपस्थित हो सकूँगा।"

"तुम क्या समझते हो कि किरण देवी मरणपर्यन्त उपवास करेंगी।"

"महाराज इसकी चर्चा राज्यभवन के प्रत्येक नर-नारी के मुख पर है। यह बात अब धीरे-धीरे नगर में भी फैल रही है।"

"लोग इस विषय में क्या कहते हैं ?"

"महामात्य के काम के औचित्य और अनौचित्य पर तो मतभेद है, परन्तु किरण देवी के अपने एक विचार पर बलिदान होने के लिये तैयार हो जाने से तो सबकी सहानुभूति उसके साथ हो गयी है।"

"तुम को तो विदित ही है कि मेरे बड़े भाई इसी भवन के भूगर्भ के आगारों में बंदी हैं। उनकी सेवा शुश्रूषा किरण करती थी। उन्होंने भी

किरण देवी के साथ सहानुभूति में उपवास कर रखा है ।"

"यह तो बहुत चिन्ता की बात है महाराज ! भाई की हत्या का समाचार कहीं देश में फैल गया तो विप्लव खड़ा हो सकता है ।"

"अच्छी बात है ! तुम अभी जा सकते हो । कल प्रात काल तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा ।"

मनोज यद्यपि ब्राह्मण वर्ण से था और पढ़ा लिखा विद्वान् था, इस पर भी गुप्तचर का काम करने के कारण और छोटी जाति के अनपढ़ लोगों का कार्य करने से उसकी प्रतिष्ठा अन्य प्रतिहारों से कुछ अधिक नहीं थी। यह ठीक था कि भवन के अन्य प्रतिहारों से वह अधिक गौरवर्ण और विशाल मस्तक था । उसका बात करने का ढंग भी अति सभ्य, उच्चारण शुद्ध और वाक्यों का विन्यास ठीक होता था। महामात्य श्वेतांग भी कभी-कभी उसकी बातें सुन कर विस्मय में उसका मुख देखने लगता था, परन्तु अभी तक वह बिना संदेह उत्पन्न किये अपना कार्य करता चला आ रहा था।

आज राज्यभवन में हो रही हलचल में अपनी स्थिति के कारण वह कोई भाग नहीं ले सकता था। इसका उसको भारी शोक था। वह किरण से मिल कर उसका व्रत तुड़वाने का यत्न करना चाहता था, परन्तु किस प्रकार उससे मिलकर अपना रहस्य खोले, वह समझ नहीं सका था। इसी प्रकार विचार करता हुआ, अपनी इच्छापूर्ति का कोई मार्ग न पाता हुआ अपने आगार में सायंकाल होने की प्रतीक्षा करता रहा । अभी उसके कार्य पर जाने का समय नहीं हुआ था कि महामात्य की एक दासी उसको बुलाने आयी, "महामात्य तुम को बुला रहे हैं ।"

"क्या काम है, देवी ?"

"श्रीमान् आज बहुत चिन्तित हैं। बहुत लोगों को वह बुला रहे हैं। शायद किसी के बुलाने के लिये ही तुमको भी कहीं भेजना होगा।"

मनोज उठ, प्रतिहारों के वस्त्र पहिन, दासी के साथ चल पड़ा। जब वह वस्त्र पहिन रहा था तब दासी उससे बातें कर रही थी, "भन्ते !

सुना है किरण देवी की मृत्यु हो गयी है ।"

"सत्य ?" वह एक क्षण तक अवाक् रह दासी का मुख देखता रहा। इस पर दासी ने पूछा, "तो तुम भी उस पर दया करते हो ?"

"दया ?" अब मनोज ने पुन कपडे पहिनने आरम्भ कर दिये थे। उनको पहिनते हुए उसने कहा, "नहीं देवी, मैं उस पर दया का भाव नहीं रखता। मैं उसकी प्रशसा करता हू। उसके गुण स्मरण कर आनन्द-विभोर हो जाता हू। वह क्रीतदासी होते हुए भी इस नरक-कुड में कमल-समान निर्लेप रहती थी।"

"धीरे-धीरे प्रतिहार जी! राजभवन को नरक कुड कहना अपराध है।"

"ओह! ठीक है देवी! मैं तो भूल ही गया था। क्षमा करना, मुझसे भारी भूल हो गयी है।"

"मुझ से तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मैं किसी का भेद नहीं खोलती।"

"तुम बहुत अच्छी हो। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मीना। मैंने एक बार पहिले भी बताया था तुम को।"

"मैं भूल गया था। अब याद रखूंगा। चलो मीना बहन! मैं तैयार हू।"

"मुझको तुम बहन क्यो कहते हो ?"

"तुम नहीं जानती क्या ? देखो।" दोनों उस कोठरी से निकल पडे थे और महामात्य के आगारों को चल पडे थे। "देखो, तुम लडकी हो, आयु में मुझसे छोटी हो और देखने में बहुत प्यारी लगती हो।"

मीना चलती हुई उसके मुख पर देखने लगी थी। मनोज अपने सामने देखता हुआ चला जा रहा था। मीना ने उसके मुख को देखा। वह गम्भीर था। मनोज ने मीना की ओर ध्यान नहीं किया।

मीना कुछ कहना चाहती थी, परन्तु वह तो उसकी ओर देख भी नहीं रहा था। वे अपने लक्ष्य-स्थान के समीप होते जाते थे। इससे मीना ने

अपने मन को दृढ़ कर कह ही दिया, "लड़की, आयु में छोटी, देखने में प्यारी, क्या केवल बहन ही हो सकती है ? क्या ऐसी पत्नी नहीं होनी चाहिये ?"

"ओह ! मेरा इस ओर ध्यान ही नहीं गया। तो तुम अपने को पत्नी बनने के योग्य समझती हो, यही न ? देखो पत्नी बनने के लिये कुछ गुण और भी होने चाहिये। वे हैं जैसे मन की अनुकूलता।"

"मन किसके अनुकूल होना चाहिये ?"

"पत्नी का मन पति के अनुकूल, अन्यथा भारी झगड़ा होता रहेगा।"

इस समय वे कर्मचारियों के प्रांगण से निकल कर मुख्य द्वार की ओर चल पड़े थे। अब मीना ने कहा, "जब विवाह हो जाता है, तब मन भी मिल जाता है।"

"कुछ बातें हैं, जिनमें तो विवाह से पूर्व ही एकमयता होनी आवश्यक है।"

"किन बातों में ?"

इस समय वे महामात्य के कार्यालय के सामने पहुंच गये थे। मनोज भीतर चला गया और मीना बाहर रह गयी।

प्रतिहार को सामने खड़ा देख महामात्य ने कहा, "प्रतिहार ! तुम अपने साथियों में सबसे अधिक समझदार प्रतीत होते हो। इस कारण मैं तुमको एक आवश्यक कार्य पर भेज रहा हूं। आशा करता हूं कि तुम इसको पूर्ण यत्न से करोगे।

"यह पत्र किरण देवी के पास ले जाओ और इसका उत्तर ले आओ। यह भी हो सकता है कि वे उत्तर देना पसन्द न करें। इस कारण जब वे इस पत्र को पढ़ रही हों तब उनके मुख पर देख कर उनके मन के भावों का अनुमान लगाने का यत्न करना ! मैं देखना चाहता हूं कि तुम इस कार्य को कैसे करके आते हो। यदि तुमने इस काम को भली भांति किया तो भारी पुरस्कार पा सकोगे।"

मनोज ने पत्र लिया और उसको अपने उत्तरीय के नीचे छुपा कर जाने

सुना है किरण देवी की मृत्यु हो गयी है ।"

"सत्य ?" वह एक क्षण तक अवाक् रह दासी का,मुख देखता रहा। इस पर दासी ने पूछा, "तो तुम भी उस पर दया करते हो ?"

"दया ?" अब मनोज ने पुन कपडे पहिनने आरम्भ कर दिये थे। उनको पहिनते हुए उसने कहा, "नहीं देवी, मैं उस पर दया का भाव नहीं रखता। मैं उसकी प्रशसा करता हू। उसके गुण स्मरण कर आनन्द-विभोर हो जाता हू। वह क्रीतदासी होते हुए भी इस नरक-कुड में कमल-समान निर्लेप रहती थी।"

"धीरे-धीरे प्रतिहार जी! राजभवन को नरक कुड कहना अपराध है।"

"ओह! ठीक है देवी! मैं तो भूल ही गया था। क्षमा करना, मुझसे भारी भूल हो गयी है।"

"मुझ से तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मैं किसी का भेद नहीं खोलती।"

"तुम बहुत अच्छी हो। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मीना। मैंने एक बार पहिले भी बताया था तुम को।"

"मैं भूल गया था। अब याद रखूंगा। चलो मीना बहन! मैं तैयार हू।"

"मुझको तुम बहन क्यों कहते हो ?"

"तुम नहीं जानती क्या ? देखो।" दोनों उस कोठरी से निकल पड़े थे और महामात्य के आगारो को चल पड़े थे। "देखो, तुम लड़की हो, आयु में मुझसे छोटी हो और देखने में बहुत प्यारी लगती हो।"

मीना चलती हुई उसके मुख पर देखने लगी थी। मनोज अपने सामने देखता हुआ चला जा रहा था। मीना ने उसके मुख को देखा। वह गम्भीर था। मनोज ने मीना की ओर ध्यान नहीं किया।

मीना कुछ कहना चाहती थी, परन्तु वह तो उसकी ओर देख भी नहीं रहा था। वे अपने लक्ष्य-स्थान के समीप होते जाते थे। इससे मीना ने

अपने मन को दृढ कर कह ही दिया, "लड़की, आयु में छोटी, देखने में प्यारी, क्या केवल बहन ही हो सकती है ? क्या ऐसी पत्नी नहीं होनी चाहिये ?"

"ओह ! मेरा इस ओर ध्यान ही नहीं गया। तो तुम अपने को पत्नी बनने के योग्य समझती हो, यही न ? देखो पत्नी बनने के लिये कुछ गुण और भी होने चाहियें। वे हैं जैसे मन की अनुकूलता।"

"मन किसके अनुकूल होना चाहिये ?"

"पत्नी का मन पति के अनुकूल, अन्यथा भारी झगड़ा होता रहेगा।"

इस समय वे कर्मचारियों के प्रांगण से निकल कर मुख्य द्वार की ओर चल पडे थे। अब मीना ने कहा, "जब विवाह हो जाता है, तब मन भी मिल जाता है।"

"कुछ बातें हैं, जिनमें तो विवाह से पूर्व ही एकमयता होनी आवश्यक है।"

"किन बातो में ?"

इस समय वे महामात्य के कार्यालय के सामने पहुच गये थे। मनोज भीतर चला गया और मीना बाहर रह गयी।

प्रतिहार को सामने खडा देख महामात्य ने कहा, "प्रतिहार ! तुम अपने साथियो में सबसे अधिक समझदार प्रतीत होते हो। इस कारण मैं तुमको एक आवश्यक कार्य पर भेज रहा हू। आशा करता हू कि तुम इसको पूर्ण यत्न से करोगे।

"यह पत्र किरण देवी के पास ले जाओ और इसका उत्तर ले आओ। यह भी हो सकता है कि वे उत्तर देना पसन्द न करें। इस कारण जब वे इस पत्र को पढ रही हों तब उनके मुख पर देख कर उनके मन के भावो का अनुमान लगाने का यत्न करना ! मै देखना चाहता हू कि तुम इस कार्य को कैसे करके आते हो। यदि तुमने इस काम को भली भाति किया तो भारी पुरस्कार पा सकोगे।"

मनोज ने पत्र लिया और उसको अपने उत्तरीय के नीचे छुपा कर जाने

सुना है किरण देवी की मृत्यु हो गयी है ।"

"सत्य ?" वह एक क्षण तक अवाक् रह दासी का मुख देखता रहा। इस पर दासी ने पूछा, "तो तुम भी उस पर दया करते हो ?"

"दया ?" अब मनोज ने पुनः कपड़े पहिनने आरम्भ कर दिये थे। उनको पहिनते हुए उसने कहा, "नहीं देवी, मैं उस पर दया का भाव नहीं रखता। मैं उसकी प्रशंसा करता हूं। उसके गुण स्मरण कर आनन्द-विभोर हो जाता हूं। वह क्रीतदासी होते हुए भी इस नरक-कुंड में कमल-समान निर्लेप रहती थी।"

"धीरे-धीरे प्रतिहार जी ! राजभवन को नरक कुंड कहना अपराध है।"

"ओह ! ठीक है देवी ! मैं तो भूल ही गया था। क्षमा करना, मुझसे भारी भूल हो गयी है।"

"मुझ से तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मैं किसी का भेद नहीं खोलती।"

"तुम बहुत अच्छी हो। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मीना। मैंने एक वार पहिले भी वताया था तुम को।"

"मैं भूल गया था। अब याद रखूंगा। चलो मीना बहन ! मैं तैयार हूं।"

"मुझको तुम बहन क्यों कहते हो ?"

"तुम नहीं जानती क्या ? देखो।" दोनों उस कोठरी से निकल पड़े थे और महामात्य के आगारों को चल पड़े थे। "देखो, तुम लड़की हो, आयु में मुझसे छोटी हो और देखने में बहुत प्यारी लगती हो।"

मीना चलती हुई उसके मुख पर देखने लगी थी। मनोज अपने सामने देखता हुआ चला जा रहा था। मीना ने उसके मुख को देखा। वह गम्भीर था। मनोज ने मीना की ओर ध्यान नहीं किया।

मीना कुछ कहना चाहती थी, परन्तु वह तो उसकी ओर देख भी नहीं रहा था। वे अपने लक्ष्य-स्थान के समीप होते जाते थे। इससे मीना ने

अपने मन को दृढ़ कर कह ही दिया, "लड़की, आयु में छोटी, देखने में प्यारी, क्या केवल बहन ही हो सकती है ? क्या ऐसी पत्नी नहीं होनी चाहिये ?"

"ओह ! मेरा इस ओर ध्यान ही नहीं गया। तो तुम अपने को पत्नी बनने के योग्य समझती हो, यही न ? देखो पत्नी बनने के लिये कुछ गुण और भी होने चाहियें। वे हैं जैसे मन की अनुकूलता ।"

"मन किसके अनुकूल होना चाहिये ?"

"पत्नी का मन पति के अनुकूल, अन्यथा भारी झगड़ा होता रहेगा।"

इस समय वे कर्मचारियों के प्रांगण से निकल कर मुख्य द्वार की ओर चल पड़े थे। अब मीना ने कहा, "जब विवाह हो जाता है , तब मन भी मिल जाता है ।"

"कुछ बातें हैं, जिनमें तो विवाह से पूर्व ही एकमयता होनी आवश्यक है ।"

"किन बातों में ?"

इस समय वे महामात्य के कार्यालय के सामने पहुंच गये थे। मनोज भीतर चला गया और मीना बाहर रह गयी।

प्रतिहार को सामने खड़ा देख महामात्य ने कहा, "प्रतिहार ! तुम अपने साथियों में सबसे अधिक समझदार प्रतीत होते हो। इस कारण मैं तुमको एक आवश्यक कार्य पर भेज रहा हूं। आशा करता हूं कि तुम इसको पूर्ण यत्न से करोगे।

"यह पत्र किरण देवी के पास ले जाओ और इसका उत्तर ले आओ। यह भी हो सकता है कि वे उत्तर देना पसन्द न करें। इस कारण जब वे इस पत्र को पढ़ रही हों तब उनके मुख पर देख कर उनके मन के भावों का अनुमान लगाने का यत्न करना ! मैं देखना चाहता हूं कि तुम इस कार्य को कैसे करके आते हो। यदि तुमने इस काम को भली भांति किया तो भारी पुरस्कार पा सकोगे।"

मनोज ने पत्र लिया और उसको अपने उत्तरीय के नीचे छुपा कर जाने

लगा, तो महामात्य ने पुनः कहा, "देखो, जब तक उसको यह पत्र हाथ में न दे दो तब तक मत पता चलने देना कि तुम मेरी सेवा में हो और किसी प्रकार का मेरा कोई पत्र लेकर आ रहे हो। उसको यह पता चल गया तो वह तुमको भीतर नहीं बुलायेगी।"

मनोज को पता चल गया कि किरण अभी जीवित है। उनको यह जान प्रसन्नता हुई। साथ ही वह किरण से पृथक् में बात करने का अवसर पाने से संतोष अनुभव कर रहा था।

१३

मनोज को कहना पड़ा कि वह महाराज का एक अत्यावश्यक संदेश लेकर आया है, अन्यथा उसको भीतर जाने की स्वीकृति नहीं मिलती। किरण सब प्रकार से चैतन्य थी किन्तु दुर्बल हो गयी थी। इस पर भी पलंग पर शांत भाव से लेटी हुई थी। दो दासियां उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं। सेवा-शुश्रूषा केवल मात्र यह थी कि वे पलंग के समीप बैठी हुई थीं और जब किरण जल मांगती थी तो उसको गंगा जल, जो एक मटके में भरा हुआ था, दे देती थीं।

मनोज भीतर गया तो किरण ने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। मनोज ने कहा, "देवी! मेरा कार्य केवल मात्र आप से है। इस कारण एकान्त में ही कह सकता हूं।"

किरण ने दासियों की ओर देखा तो वे उसका अभिप्राय समझ आगार से बाहर चली गयीं। मनोज ने अपने वस्त्र के नीचे से पत्र निकाल कर किरण देवी के हाथ में दे दिया और खड़ा हो उसके मुख के उतार-चढ़ाव को देखने लगा। किरण ने पत्र पढ़ा और फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर पलंग के नीचे फेंक दिया। मनोज को अचम्भा इस बात पर हुआ कि किरण के मुख पर किसी प्रकार का भी भाव पत्र पढ़ते हुए प्रकट नहीं हुआ। वह वैसे ही शान्त और बिना किसी प्रकार का उद्गार प्रकट किये, लेटी रही।

जब उसने पत्र फाड़ कर फेंक दिया, तो मनोज को विदा करने के लिये उसने करवट बदल ली। मनोज ने यह अवसर, अपने मन की बात कहने के लिये उचित मान कहा, "देवी! क्या मेरे जैसा तुच्छ व्यक्ति कुछ अपने मन की बात भी कह सकता है?"

किरण ने फिर मुख उसकी ओर घुमा कर कहा, "महामात्य की बात कह कर मेरे इस अंतिम काल को विक्षुब्ध मत करो।"

"देवी! अपने स्वामी की बात का उत्तर पा चुका हूँ। कुछ अपनी ओर से निवेदन करना चाहता हूँ।"

"करो।"

"जीवन में जो कुछ अपने वश में नहीं है, वह सहन करना पडता है, परन्तु जो वश में है, वह न करने से पाप नहीं हो जावेगा क्या?"

किरण दुर्बलता के कारण बहुत बोल नहीं सकती थी। इस कारण उसने बहुत ही संक्षेप में पूछा, "पाप-पुण्य का नाप-तोल कैसे होता है?"

"अपने अंतरात्मा को साक्षी रख काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त होकर, बुद्धि से विचारने पर पाप-पुण्य में भेद मिल जाता है।"

"मैं अपने विचार से जो कर रही हूँ, ठीक ही कर रही हूँ।"

"एक बार मैं भी ऐसा ही समझता था। यदि आप क्षमा करें तो इसी प्रकार की परिस्थिति में, अपना अनुभव निवेदन करना चाहता हूँ। मुझ को मृत्यु-दंड हो गया था। मेरे माता-पिता महाराज से मेरे जीवन के लिये क्षमा याचना करने जा रहे थे। मैं उनसे लड़ पडा था। मेरा कहना था, 'इस पतित जीवन से मुक्ति पाने में बाधक बन आप मेरा अहित करते हैं।' पिता जी ने इस पर भी याचना की। वह याचना स्वीकार हो गयी। अब मैं अनुभव करता हूं कि पिताजी ने ठीक ही किया था। मेरे सम्मुख ऐसा अवसर खुल रहा है, जिसमें मैं अपने अनुभव को ज्ञान के आश्रय कर, उपकार कार्य में लगा रहा हूं। मुझको स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मर जाने से अधिक पुण्य, जीवन चलाने में मिल रहा है।"

"प्रतिहार! मैं दीनदासी हूँ। तुम शायद क्षमा मिलने के पश्चात्

स्वतन्त्र पुरुष थे।"

"यह अवस्था सदा नहीं रह सकती। इससे निकलने का भी उपाय किया जा सकता है। देखिये किरण देवी! कितना भी संचित पुण्य फल क्यों न हो, नवीन जन्म में वीस वर्ष तो पुन ज्ञान प्राप्ति नें लग जावेंगे। यदि पिछले जन्म के कर्मों के फलस्वरूप क्रीतदासी के जीवन का भोग समाप्त नहीं हुआ तो क्या इस फल को अगले जन्म में चालू रखना ठीक होगा? क्या यह अच्छा नहीं होगा कि इस जन्म में ही इस भोग को समाप्त कर, भविष्य का भाग्य साफ पाटी पर लिखा जाये?"

किरण इन सब युक्तियों पर मनन कर चुकी थी, परन्तु यह विचार कर कि जो पतन उसका हुआ है, उसके पश्चात् अब जीवन का कुछ भी मूल्य शेष नहीं रह गया है, जीवन से सर्वथा निराश हो, वह आत्महत्या करने पर तैयार हुई थी। इस कारण उसने धीरे से कहा, "मुझ को इस शरीर से ग्लानि हो गयी है।"

"यही तो अहंकार का भाव है। पाप पापी को लगता है। जिसने कुछ नहीं किया, जो केवल दूसरे के दुर्व्यवहार का आखेट है, उसको अपने पर ग्लानि क्यों आती है? उसने अपराध नहीं किया। वह पापी नहीं है, फिर वह ग्लानि का पात्र भी नहीं हो सकता।"

किरण मुस्कराई और बोली, "स्वामी से सेवक अधिक योग्य प्रतीत होता है, तुम कौन हो, जो ऐसी युक्तियुक्त बात प्रतिहार के वस्त्र पहिन कह रहे हो?"

मनोज चुप हो गया। वह विचार कर रहा था कि अपना परिचय दे अथवा न। उसने बहुत विचार के उपरान्त इतना कहा, "मैं पढ़ा-लिखा ब्राह्मण कुमार हूं। किसी प्रयोजन-विशेष से महामात्य जी की सेवा में हूं। यह जो कुछ कह रहा हूं अपने मन से कह रहा हूं। मैं नहीं जानता कि पत्र में क्या लिखा था। जो कुछ मैंने निवेदन किया है, वह मेरे स्वामी के मन का प्रतिबिम्ब नहीं।"

"क्या नाम है देवता?"

"महामात्य की सेवा में मेरा नाम लारू है। मेरा वास्तविक नाम मनोज है। काशी का रहने वाला हूं। वहां पर मृत्यु का भागी बना, महाराज की दया से मुक्त हो, महाराज कुमारदेव के कहने पर उज्जयिनी आया हूं।"

"ओह! स्मरण आ गया है। महाराज ने तुम्हारी कथा वर्णन की थी। तो तुम. . . .।"

किरण अपनी बात समाप्त नहीं कर पायी थी कि आचार्य भूदेव ने प्रवेश किया। उन्हें आया देख किरण ने उठने का यत्न किया, परन्तु उठ नहीं सकी और पलंग पर धम्म से गिर पड़ी।

भूदेव और मनोज दोनों उसको पलंग से नीचे लुड़कता देख, उसको गिरने से बचाने के लिये दौड़े। किरण शीघ्र ही संभल गयी और लेटे हुए ही प्रणाम करने लगी।

इस समय किरण ने मनोज को कहा, "अच्छी बात है। आपके कथन पर विचार करूंगी। कल तक किसी परिणाम पर पहुंच सकूंगी।"

मनोज इसको चले जाने का संकेत समझ, झुक कर प्रणाम कर, आगार से बाहर हो गया। आचार्य भूदेव पलंग के समीप एक आसन पर बैठ पूछने लगा, "यह सब क्या है किरण ?"

"मैं शरीर त्याग रही हूं।"

"क्यों ?"

"महाराज कुमारदेव के भवन में जो कुछ हुआ है, वह आपको बताया नहीं गया क्या ?"

"महाराज ने पत्र में कुछ लिखा था, कुछ सारथि ने मार्ग में वर्णन किया, कुछ मैं अपने अनुमान से जान गया हूं। परन्तु आत्महत्या तो इस रोग की चिकित्सा नहीं। देखो किरण! मैं महाराज से इस विषय पर विचार-विनिमय कर आया हूं। तुम्हारे आमरण उपवास का समाचार महाराज पालकदेव को मिला है और उन्होंने भी आमरण उपवास आरम्भ कर दिया है। ऐसी परिस्थिति की सूचना भवन के बाहर प्रजा में फैल रही है। इससे कुमारदेव घबरा उठा है। उसने तुमको और उन बंदियों को मुक्त

करने का वचन दिया है। शर्त केवल यह है कि आप लोग उपवास तोड दें और महाराज पालकदेव, शेष जीवन किसी तीर्थस्थान पर व्यतीत करना स्वीकार करें।"

"भगवन्! मेरी बात को महाराज पालकदेव से क्यों जोडा जा रहा है ?"

"आधारभूत अन्याय दोनो के साथ एक जैसा ही हुआ है। किसी ने अनधिकार-युक्त चेष्टा की है।"

"उस पापी को दड मिलना चाहिये।"

"तुम क्या समझती हो कि मेरी अथवा तुम्हारी प्रार्थना पर भगवान् अपराध क्षमा कर देगा ?"

"गुरुदेव! भगवान् अपने हाथ से तो कुछ करता नहीं। हम लोगों को ही इसमें यत्न करना पडता है।"

"ठीक, परन्तु इस प्रकार मरना तो इस यत्न का भाग नहीं हो सकता।"

"मेरा मरना तो अपने आत्मा की शान्ति के लिये है।"

"विचित्र आत्मा है तुम्हारा! अपने कर्मफल को पूरा किये विना यहा से चले जाने से, शेष फल भोगने के लिये पुन यहा आना पडेगा। क्या तुम यह पसन्द करोगी कि अगले जन्म में पुन. क्रीतदासी बन यही भोग भोगो ?"

"वह प्रतिहार भी यही कह रहा था।"

"कौन? यह जो अभी यहा से गया है? कौन है वह ?"

"मनोज नाम है। काशी का एक विद्वान् युवक है। कारण विशेष से प्रतिहार का काम कर रहा है।"

"क्या कहता था वह ?"

"कहता था कि पिछले जन्म का भोग समाप्त कर अगले जन्म के लिये साफ पाटी पर भाग्य-रेखा चित्रित करनी ठीक रहेगी।"

"ठीक ही तो कह रहा था।"

"महाराज पालकदेव मान जायेंगे क्या ?"

"तुमने ही एक वार कुमारदेव से कहा था कि पालकदेव ऐसा मान जावेंगे ।"

"इस वात को छै मास हो चुके हैं। आज क्या विचार है, कैसे कह सकती हू ?"

"यदि तुम स्वीकार करो तो वे अवश्य मान जावेंगे । वे तो तुम्हारे मरने के लिये मरने पर तैयार हो गया है और तुमको जीवित रखने के लिये क्या राज्य नही छोडेगा ?"

किरण देवी को समस्या का एक नवीन पक्ष समक्ष आया। वह चुप कर गयी। भूदेव को यह किरण की स्वीकृति प्रतीत हुई। इस कारण उसने कहा, "किरण देवी ! भगवान् तुम्हारा भला करें। तुमने मेरा कहा माना है। इस कारण मैं सदैव तुम्हारी भलाई का चिन्तन करता रहूँगा। मैं अभी पालकदेव के पास जाकर इस विषय का निर्णय करवाता हू। जाने से पूर्व अभी तुम्हारे विषय में और विचार करना है । मैं पुन: आऊँगा ।"

· १४ ·

मध्य रात्रि हो चुकी थी । अभी पालकदेव के विषय में सब बातें निश्चय नहीं हो सकी थीं। किरण देवी ने गंग की दासी का रूप ले लिया था और उसी के आगार में पालकदेव को ले जाया गया था। भूदेव बैठा इस सधि की व्याख्या लिख रहा था। अनन्दन एक बात पर पड रही थी। महारानी चाहती थी कि शतवीर भी उनके साथ तीर्थ स्थान पर भेज दिया जावे। कुमारदेव, श्वेताग की सम्मति से शतवीर को ऐसे गुरु के पास रखना चाहता था, जिसकी शिक्षा से वह राज्यकार्य के सर्वथा अयोग्य हो जावे। इस कारण वह कहता था कि उसकी शिक्षा में बाधा नहीं डाली जा सकती। कौन कह सकता है कि वह पुन: राज्य गद्दी नहीं पा जावेगा ? इस प्रकार विवाद चल रहा था और इसका कहीं अंत दिखाई नहीं देता था।

"श्रीमान् महामात्य की आज्ञा से।"

"किस प्रयोजन से ?"

"हम नहीं जानते। हमारे नायक अभी नहीं आये। हम को केवल इतनी आज्ञा है कि महाराज पालकदेव और किरण देवी, जो भवन में बदी है, भाग न सकें।"

भूदेव समझ गया कि सेना को कुमारदेव के विरुद्ध नहीं किया जा सका। इस कारण, वह सैनिको को विना कुछ कहे राजभवन में वापिस आ गया। इस समय तक भवनपाल का प्रवन्ध पूर्ण हो चुका था। राजभवन के पाच-सौ सुभट खड्ग नगे किये भवन के मुख्य मुग्य-स्थानो पर नियुक्त हो चुके थे।

आचार्य भूदेव भीतर आया तो उसने महाराज कुमार देव को शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित देखा। उसने कुमारदेव को एक ओर लेजा कर वाहर की अवस्था से परिचित किया। वह अभी कुमारदेव को समझा ही रहा था कि श्वेताग के आने पर कैसे वात करनी है कि मनोज एक और सूचना लेकर आया। उसने बताया, "महामात्य के शयनागार में पलग पर, यह एक पत्र पडा मिला है। मै समझता हू कि यह महामात्य के आज के व्यवहार पर बहुत प्रकाश डालता है। पत्र खुला पडा था, इससे प्रतीत होता है कि महामात्य ने इसको पढा है और इसको पढ़ते ही वे कहीं चले गये है।"

कुमारदेव ने पत्र पढा। उसमें लिखा था,—"श्वेताग चिरजीव हो। तुम्हारा पत्र पढा है। उसका सिर पैर पता नहीं चला। एक वात समझ में आयी है कि तुम शतवीर को भवन में रखना चाहते हो। इसका अर्थ यह होगा कि कुमार के पीछे उसको राज्य गद्दी देनी पडेगी। शतवीर अपनी माता के समान सुन्दर और ओजस्वी कुमार है। कुमारदेव की अपनी सतान कव होगी और उसका प्रभाव जनता पर कैसा होगा, अभी कहा नहीं जा सकता। अव तुम विचार कर लो।

"मै अभी शतवीर को भेज नहीं रहा। तुम्हारा पत्र आने पर भेजूंगा।"

कुमारदेव इसका अर्थ नहीं समझा। महाराज को अनिश्चित मन देख,

मनोज ने पूछा, "महाराज ! क्या विचार कर रहे हैं ?"

"मैं इसका अर्थ समझने का यत्न कर रहा हूं।"

"महाराज ! अर्थ तो स्पष्ट है। महामात्य ने आपको आचार्य भूदेव के लिये रथ भेजते देख यह अनुमान लगाया प्रतीत होता है कि आप महाराज पालकदेव को छोड़ देंगे। पूर्व इसके कि आप यह कर सकें, उन्होंने शतवीर को यहा बुला कर आपका स्थानापन्न एक व्यक्ति खड़ा करना चाहा है। साथ ही सेना को बुला कर पालकदेव और किरण के यहा से निकल जाने को रोकने के लिये यत्न किया है।

"शतवीर को बुलाने के लिये उन्होंने एक वेगगामी अश्व पर पत्र भेजा होगा, जिसका अर्थ श्री वामदेव नहीं समझे और शतवीर के स्थान केवल पत्र ही भेज दिया, जो आपके सामने है। इस पत्र को पाकर महामात्य जी को अपनी पूर्ण योजना विफल होती दिखाई दी और वे उतावली में पत्र को वहीं खुला छोड, शतवीर को लेने चले गये हैं। मैं समझता हूं कि वे एक-दो घडी में शतवीर को लेकर आने ही वाले होंगे। उनका अनुमान यह रहा प्रतीत होता है कि आचार्य जी यदि रात को आ भी गये तो भी रात-रात में कोई निर्णय नहीं हो सकेगा और प्रातःकाल तक वे अपनी योजना को पूर्ण कर लेंगे।"

आचार्य भूदेव मनोज के अनुमान पर चकित रह गया। इतने स्पष्ट रूप में परिस्थिति को समझने वाला उसे और कोई दिखाई नहीं दिया था। इसने आचार्य ने कुमारदेव को इस परिस्थिति के अनुरूप ही प्रबन्ध करने की राय दी। कुमार ने भवनपाल को बुला कर समझा दिया, "यदि महामात्य के साथ कुमार शतवीर आवे तो उसको भी भवन में आने दिया जावे, परन्तु किसी भी अवस्था में कोई भी सैनिक भीतर न आने दिया जावे। साथ ही पचास सुभट्ट कुमार ने अपनी बैठक से बाहर खडे कर लिये, जिससे आवश्यकता पडने पर उनसे सहायता ली जा सके।

अधिक काल तक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ी। मनोज का अनुमान सत्य निकला। महामात्य कुमार शतवीर के साथ दो अश्वों पर सवार, उनको

और वीस सुभट इनकी रक्षा के लिये नियुक्त किये जायें।"

भवनपाल, जो वहा खडा था, वीस सुभटो से श्वेताग को घेरा डाल कर ले गया। इस समय एक सैनिक, जो सिर से पाव तक धूलि से भरा हुआ था, लाकर कुमारदेव के सामने खडा कर दिया गया।

कुमारदेव ने उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। सैनिक ने झुक कर प्रणाम की और कहा, "महाराज! मल्ल सेना ने अवन्ति पर आक्रमण कर दिया है। पाच सहस्र से ऊपर सैनिको ने नोरा गाव की ओर से सीमा पार कर हमारी टुकडी पर धावा बोल दिया है। हम वहा दो सौ से अधिक नहीं हैं, इस कारण हम आक्रमणकारी सेना को केवल रोक ही सकते हैं।

"सेनानायक ने मुझको श्रीमान् को सूचित करने के लिये भेजा है।"

कुमारदेव ने आचार्य भूदेव को नगर में उचित घोषणा और प्रबन्ध करने की आज्ञा दे कर, स्वय सेना के साथ मल्लों का आक्रमण रोकने के लिये, जाने की तैयारी कर दी। सेना को तैयार हो कूच करने को आज्ञा दे दी गयी और कुमारदेव ने अपना रथ तैयार करने को कह दिया।

आचार्य भूदेव ने तुरत नगर और सेना में यह घोषणा करवा दी कि श्वेताग महाराज कुमारदेव को वदी बना राज्य अपने अधिकार में करना चाहता था। इस कारण उसको महामात्य पद से हटा कर महाराज कुमारदेव ने दर्शनाचार्य भूदेव को महामात्य पद पर नियुक्त किया है।

इस घोषणा के साथ ही भवन के चारो ओर खडी सेना को अपने शिविर में चले जाने की आज्ञा दे दी। कुमारदेव स्वय दिन निकलने से पूर्व मल्लो का विरोध करने के लिये सेना के साथ सीमा की ओर प्रस्थान कर गये।

पालकदेव, महारानी पद्मावती के साथ रथ पर सवार हो दिन चढ़ने से पूर्व ही उत्तर की ओर चल दिये। कुमार शतवीर को आचार्य भूदेव ने अपने पास रख लिया।

किरण देवी से जब पूछा गया कि वह कहा जाना चाहती है, तो उसने बताया, "मै अभी निश्चय नहीं कर सकी। आचार्य जी से राय कर निश्चय करूगी।" वह अभी कला भवन में रहने चली गयी।

: १५ :

मनोज का अनुमान सत्य निकला। श्वेतांग ने, किरण के साथ दुर्व्यवहार के अगले दिन अपने किरण के साथ विवाह की मनोकामना की पूर्ति के लिये महाराज कुमारदेव से निवेदन किया, "महाराज! मैं समझता हूँ कि अब तो किरण देवी मेरे से विवाह करना स्वीकार कर लेंगी।"

"मुझको इसमें सन्देह है, मित्र!"

"आप से वह मिली है?"

"हां, उसने बंदियों की देखभाल का काम छोड़ दिया है। साथ ही वह अति दुःखी प्रतीत होती है।"

"आज्ञा हो तो मैं उससे मिल लूँ?"

"हां, मिल सकते हो। मेरा विचार है कि हम किरण देवी को आज तक समझे ही नहीं। उसकी भावनाओं को न समझ कर हम विपरीत व्यवहार करते रहे हैं।"

"इस पर भी मैं उससे मिल कर सब बात आज निश्चित कर लेना चाहता हूँ।"

श्वेतांग किरण देवी से मिलने गया तो बहुत कठिनाई से भेंट कर सका। जब वह किरण देवी के सामने उपस्थित हुआ तो सदैव के प्रतिकूल, किरण उसके आदर के लिये खड़ी नहीं हुई। इससे वह समझ गया कि देवी जी बहुत क्रुद्ध हैं। स्वयं ही एक आसन पर बैठते हुए उसने कहा, "देखो किरण देवी! कभी मानसिक दुर्बलता के रोगियों से कोई काम बलपूर्वक लिया जाता है, वह इसलिये कि कार्य हो जाने पर उनकी उससे हिचकिचाहट दूर हो जाती है और वे उस काम को करने लग जाते हैं। यही मैंने किया है। वास्तव में तो मेरा तुम से विवाह हो गया है, केवल प्रथा निभानी रह गयी है। बताओ वह कब होगी?"

"जो कुछ एक क्षीण आशा इसकी थी, वह भी अब नहीं रही। आपका मुझ से विवाह नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"मेरे मन में जो आपके लिये थोडा सा आदर रह गया था वह आपने, अपने रात के कुकर्म से मिटा दिया है। वह पत्नी ही क्या जिसके मन में अपने पति के लिये आदर न हो ?"

"तो बिना विवाह के ही तुम मेरी बन जाओ। किरण प्रिये ! मैं तुम से अति प्रेम करता हू और तुमको अपने हृदय की ही नहीं, प्रत्युत अवन्ति राज्य की महारानी बनाना चाहता हू। यह मूर्ख कुमार अवन्ति जैसे धन-धान्य सम्पन्न राज्य का मालिक बना हुआ है। यह सब मेरे बल-बूते पर ही हुआ है और हो रहा है। जिस दिन तुम मेरे साथ मिल कर काम करना चाहोगी उस दिन ही एक पलक की झपक में, दोनो मूर्ख भाई भूत काल में, जल में मिश्री के समान विलीन हो जावेंगे।"

"बस करिये। यह सब व्यर्थ की बात है। मैं न तो आपकी भार्या बनूंगी और न ही अवन्ति राज्य की महारानी। आप अब जा सकते हैं।"

"महाराज कुमारदेव ने तुम को मुझे भेंट में दे दिया है। इस कारण तुम अब मेरी हो। विवाहिता बन कर रहो अथवा दासी बन कर, यह तुम्हारी इच्छा पर है, परन्तु तीसरा कोई मार्ग नहीं है।"

"है। महाराज ने मेरा शरीर मोल लिया था। शायद वही उन्होंने आपके हाथ सौंप दिया है। इस शरीर में एक वस्तु अभी मेरी अपनी है, जिसको तुम्हारे महाराज न तो मोल ले सके है, न ही वे प्रेम से अपना बना सके है। वह मैं इस शरीर से पृथक् कर रही हू। उसको हो जाने दो, फिर ले जाना महाराज कुमारदेव की क्रय की हुई दासी। यहीं इस आगार में पडी होगी।"

"महाराज ने जीवित-जागृत किरण क्रय की थी। उसका मृत शव नहीं। यदि तुमने आत्महत्या करने का यत्न किया तो महाराज की धरोहर की चोरी हो जावेगी। यह तो पाप हो जावेगा।"

"बडे आये है पाप-पुण्य के बताने वाले। आप चले जाइये। मै आपका मुख भी देखना नहीं चाहती।"

"अच्छी बात है। मैं तुम को दो दिन का समय देता हूं। यदि तुम अपने आप मेरे आगारों में आ जाती हो तो ठीक है, अन्यथा मैं तुम को यहां से उठा कर ले जाऊंगा।"

"ले जाना।"

श्वेताग ने समझा कि किरण अभी भी अपने को, अपनी परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकी। वह उसको और पतन की ओर धकेल कर, इसके लिये उसके मन को तैयार करना चाहता था। इस कारण यह चुनौती देकर वह बाहर निकल गया।

उस सायंकाल उसको यह समाचार मिल गया था कि किरण ने आमरण उपवास आरम्भ कर दिया है। वह इसको ढोंग समझता था। उसने समझा कि भूख लगने पर खा लेगी। ऐसा नहीं हुआ। अगले दिन भी उपवास चालु रहा। अगले दिन उसको सूचना मिली कि महाराज पाल्हदेव ने भी उपवास करना आरम्भ कर दिया है। पहिले तो उसको यह सुन कर प्रसन्नता हुई। उसने मन ही मन यह कहा कि यदि पालकदेव भूखे रहने से मर जायें तो एक ओर की चिन्ता मिट जाये। न रहे बास न बजे बांसुरी। उनकी मृत्यु से कभी उनके बंदी गृह से बाहर आकर गड़बड़ी करने की सम्भावना सदैव के लिये मिट जावेगी।

परन्तु महाराज पालकदेव के उपवास के समाचार से कुमारदेव को चिन्तित देख, वह गंभीर हो गया। उसको भय लग गया था कि भावुकता में वह कर कहीं कुमारदेव अपने बड़े भाई के सामने घुटने न टेक दे। उसी दिन उसने कुमार देव को भी क्षेत्र से बाहर कर निष्कटक राज्य करने की योजना बना डाली। उसने मल्ल राज्य के दूत दैवयात को बुला कर कहा, "ठाकुर महोदय! अब समय आ गया है कि अपनी योजना को सफल बनाने के लिये काम आरम्भ कर दिया जावे। मैं चाहता हूं कि आपसे हुए समझौते को एक बार पुन स्मरण करवा दूं। आप पांच सहस्र सेना लेकर नौरा की ओर से आक्रमण कर दें। मैं यहां से सेना भेज कर आपकी सेना को रोक दूंगा। जब सेना युद्ध में संलग्न होगी, राज्य में विप्लव मचा कर दूंगा।

पश्चात् आपकी और अवन्ति राज्य की परस्पर सन्धि हो जावेगी। उसमें आपको आक्रमण का पूर्ण व्यय दिलवा दूंगा और आपसे व्यापारिक समझौता कर मल्लराज्य को भी अवन्ति के समान उन्नत करने के लिये, यहा से सहायता दूंगा।"

देवयात और श्वेताग में यह समझौता पहिले ही हो चुका था। इस पर कार्य आरम्भ करने के लिये मल्ल सेना सीमा के पार तैयार खडी थी। सो देवयात ने सकेत पा पूछा, "आप कब तक आशा करते है कि सेना उज्जयिनी में पहुच जावे।"

"मै चाहता हू आपकी सेना परसो राज्य में प्रवेश करे और चौथे दिन पद्मा के उस पार आकर ठहर जावे। इधर से झूठ मूठ की लडाई के लिए सेना भेजी जावेगी और जब तक कोई बडी लडाई होगी, यहा नवीन प्रबन्ध हो जावेगा और वह प्रबन्ध आपसे सन्धि करने पर तैयार हो जावेगा। इसमें दोनों राज्यो का कल्याण होगा। आपके राज्य को अवन्ति के विद्वानो की सेवायें मिल जावेंगी और यहा पर कोई युक्तियुक्त राज्य स्थापित हो जावेगा।"

देवयात अपने मन में मुस्कराता हुआ एक तीव्रगामी अश्व पर सीमा की ओर चल पडा।

श्वेताग की योजना सरल थी कि सेना के आक्रमण की सूचना से पहिले वह कोई बहाना बना कर कुमारदेव को बन्दी गृह में डाल देगा और शतवीर को महाराज घोषित कर स्वय राज्य करेगा। इस समय मल्ल राज्यों की सेनाओ से युद्ध करने के लिये अवन्ति की सेना युद्ध क्षेत्र में होगी और नागरिको को नवीन परिस्थिति के अनुकूल कर लिया जावेगा।

सब कार्य भली भाति से चल रहा था। तीसरे दिन महाराज से बात-चीत करने पर उसको यह समझ आया कि किरण की अवस्था आशा से शीघ्र बिगड रही है और महाराज पालकदेव के लिये भी कुमार की चिन्ता बढ़ रही है। इससे उसको अपनी योजना ही ठीक समझ आयी। इस कारण से ... के कुछ उचित व्यक्तियों को बुला कर उन्हें अपनी योजना के

अनुकल करने का यत्न किया। इस समय उसको पता मिला कि आचार्य भूदेव के लिये रथ भेजा गया है। इससे उसको चिन्ता लग गयी। उसने शतवीर को बुलाने के लिये दूत भेज दिया। दूसरी ओर किरण के शरीर और मन की ठीक अवस्था जानने के लिये उसने अपने प्रतिहार लालू को एक पत्र देकर भेजा। उस पत्र में कोई नवीन बात नहीं थी। वास्तव में यह पत्र तो एक बहाना मात्र था। यथार्थ में तो वह यह जानना चाहता था कि वह कब तक जीवित रहेगी और क्या वह उसके जीवनकाल में ही अवन्ति में विप्लव कर सकेगा ?

जब मनोज पत्र लेकर किरण के पास गया हुआ था, महर्षि वामदेव का पत्र आया। वह, पत्र पढ क्रोध में भरा हुआ, स्वयं शतवीर को लेने के लिये चल पड़ा। वह गया और शतवीर को साथ लेकर वापिस आ गया। मार्ग में इतनी तीव्र गति से घोडो के दौडाने पर जब शतवीर ने अचम्भा प्रकट किया तो उसने उसको और भी तीव्र गति से चलने के लिये उत्साहित करते हुए बता दिया कि वह उसको अवन्ति का महाराज बनाने को ले जा रहा है । उसकी पूर्ण योजना मनोज के, उसके कामो पर सदेह करने से विफल हो गयो। मनोज ने अपने सदेह महाराज कुमारदेव को बता दिये और उस पर आचार्य भूदेव ने सम्भावित भय के निवारण करने के उपाय बना दिये। यदि आक्रमण से पूर्व वह महामात्य पद से च्युत न हो जाता और उसके विश्वासघात करने का कुमार को विश्वास न हो जाता तो श्वेतांग के स्थान कुमारदेव बदी होता और महामात्य के स्थान पर भूदेव की नियुक्ति न हो पाती और कुमारदेव की, मल्लों से युद्ध में, मृत्यु घोषित कर शतवीर को अवन्ति का महाराज घोषित कर दिया जाता।

श्वेतांग की पूर्ण योजना मनोज के भेद जान लेने के कारण और उसके ठीक अनुमान लगाने के कारण, विफल हो गयी। श्वेतांग पालक-देव के आगारो में बदी हो गया और दो दिन के घमासान युद्ध के पश्चात् मल्लो को घोर पराजय मिली। चौथी बार कुमार विजयी हो कर अवन्ति की

प्रजा के जय जयकार में नगर में आया। इससे उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ गई।

इसके पश्चात् मल्ल राज्य से अवन्ति के सम्बन्ध पुन टूट गये और दूत वापिस हो गये।

लिंगायतवाद

: १ :

आचार्य भूदेव के लिये राज्यकार्य सभालना सुगम नहीं था। श्वेताग के काल में जो उच्छृङ्खलता जनता को प्राप्त हो चुकी थी, वह वापिस लेनी आवश्यक होते हुए भी, सुगम नहीं थी। भूदेव भली भाति समझता था कि जनता में पुन तपस्या का जीवन लाना शीघ्र संभव नहीं। उसके लिये बहुत चतुराई और धैर्य की आवश्यकता थी। इस कारण उसने कोई बात भी नहीं बदली। नागरिक जीवन में राजाज्ञाओ से परिवर्तन लाने के स्थान पर उसने जनता के मनो में परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये उपाय करना आरम्भ कर दिया।

विवाह के नियम जैसे ढीले हो चुके थे, उनको वैसे ही रहने दिया गया। उद्योग और शिल्प के लिये भी उतना ही बल दिया जाता रहा, जितना श्वेताग के काल में था। प्रजा का ध्यान धनोपार्जन में वैसे ही लगा रहने दिया गया जैसे पहिले था। आचार्य भूदेव के महामात्य पद पर आसीन होने से, जो आशका जनता में उत्पन्न हुई थी, वह धीरे-धीरे मिट गयी और लोग नाच-रंग में वैसे ही लीन रहे, जैसे पहिले थे।

सायकाल नदी के घाट पर नगर के लोग मनोरजन के लिये एकत्रित होते। दिन भर काम की थकावट, सस्ते दाम पर मद्य पान कर तथा नाच-रंग तमाशे और नटो के करतब देख, दूर करते और खाना-पीनाकर घरो में जाकर सोते।

जबसे यह प्रथा स्वीकार हुई कि विवाह करने के समय माता-पिता का कन्यादान करना आवश्यक नहीं, तब से प्राय विवाह नदी के तट पर अथवा मधुशालाओ में नया सुरा की मस्ती में निर्णय होते थे। कभी ही किसी

ब्राह्मण देवता से वेद मन्त्र पढा कर और प्राय. विना किसी को भी कहे-सुने युवक-युवतिया मधुशाला में बैठे-बैठे विवाह करने का निर्णय करते और पत्नी पति के घर चली जाती। ऐसे विवाहो के सम्बन्ध स्थायी भी बन जाते थे। कभी शीघ्र ही पति-पत्नी में सम्बन्ध, झगडा होने से, टूट जाता तो अगले दिन वे पुन भिन्न-भिन्न मधुशालाओ में अपने लिये जीवन-साथी ढूंढने चले जाते।

यह सब कुछ भूदेव के आने से बद नहीं किया गया। जनता का भय, कि ये रग-रलिया बद हो जावेंगी, मिट गया। राज्य की ओर से कोई घोषणा नहीं की गयी। महामात्य के बदलने की घोषणा के समय केवल इतना कहा गया, "मनुष्य के सुख साधनों में नये आविष्कार करने वालो को पुरस्कृत किया जावेगा।" इसके साथ ही यह घोषणा की गयी कि राज्य का कर सबको यथा समय दे देना चाहिये।

इन घोषणाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा गया। इससे लोग अति प्रसन्न थे। इससे एक बात जनता के मन में जम गयी कि अवन्ति में लोक-सुखवर्धक नीति का चलन करने वाला श्वेताग नहीं, प्रत्युत कुमारदेव था।

श्वेताग कहा गया कोई नहीं जानता था। जनता को उसके कहीं लुप्त हो जाने का शोक भी नहीं था। किसी के लिये किसी प्रकार की बाधा भी उपस्थित नहीं हुई थी। कार्य यथावत् ही चलता प्रतीत हुआ था। इस पर भी महामात्य के बदले जाने से सब लोग अवन्ति के वायु-मडल में परिवर्तन अनुभव करने लगे थे। कहीं-कहीं ब्राह्मणो के दर्शन होने लगे थे। जहा पहिले, सिर पर लम्बी-सी चुटिया की बडी-सी गाठ देख कर लोग हसते थे, वहां इसको एक सहनशील बात मान, लोग इस ओर ध्यान नहीं देते थे। महामात्य आचार्य भूदेव के भी सिर पर बड़ी-सी चोटी थी। महामात्य के आगारो से प्रात ब्रह्म-मुहूर्त्त में वेद मन्त्रों की ध्वनि उठने लगी थी। इस कारण यह बात भी अब कोई आपत्तिजनक नहीं रही थी।

एक दिन नगर और राज्य में यह समाचार फैल गया कि महाराज

कुमारदेव के महारानी रेखा से पुत्र हुआ है। इस राजकुमार के जन्म पर नगर में दीप माला की गयी। पाच दिवस तक मद्य, मास तथा मिष्ठान्न बिना मूल्य मिलता रहा। राज्य की ओर से इन वस्तुओ के भडार स्थान-स्थान पर खोल दिये गये। सैनिको को दस-दस स्वर्ण मुद्रा इस उत्सव पर व्यय करने के लिये भेंट के रूप में दी गयीं और उनको नगर में घूमने का सुअवसर दिया गया।

बहुत से छुट्टी पाये सैनिक अपने-अपने घरो को चले गये। जो विवाहित नही थे और जिनके माता-पिता नहीं थे वे नगर की मधुशालाओं में अपना धन व्यय कर आनन्द-भोग करने लगे।

इससे नगर में खाने-पीने और खेल-कूद की धूम मच गयी। इन सैनिको के नदी घाट पर भारी संख्या में जाने से नाच-गानो में विशेष स्फूर्ति आ गयी। नाचने वाली नर्तकियो के अड्डो मे बहुत वृद्धि हो गयी और प्रत्येक अड्डे पर देखने वालो की भीड बढ गयी।

नगर की सुप्रसिद्ध नर्तकी मिरिका भी आज अपने घर मे निकल घाट पर नाच करने आयी। उसके घाट पर आने के समाचार से पूर्ण घाट पर आये हुए रसिक लोग उसका नाच देखने चले आये। नगर के प्रसिद्ध सेठ राघव, महाराज के घर राजकुमार के होने के उपलक्ष में, यह नाच करा रहे थे। पूर्ण खर्चा सेठ जी ने किया था। इस पर भी दर्शक, जब नर्तकी नाच में विशेष कौशल दिखाती थी तो रजत और स्वर्ण भेंट करते थे।

नाच समाप्त हुआ। मिरिका, भीड से निकल, भेंट में प्राप्त स्वर्ण मुद्राओ को लिये हुए अपने रथ में बैठ, चलने ही वाली थी कि एक सैनिक भीड को इधर-उधर धकेलता हुआ रथ के समीप आ कर बोला, "देवी ! अपने रथ में मुझको भी स्थान दे दो।"

"क्यो ?" मिरिका ने मुस्कराते हुए युवक सैनिक की ओर देख कर पूछा।

"इस कारण कि मै युवा हूं, सुन्दर हूं और. . . .।" कुछ और कहने के लिये वह शब्द ढूंढ रहा था।

मिरिका खिलखिला कर हस पडी। इसमे वह सैनिक अपनी शेप वात नहीं कह सका और चुप कर गया। मिरिका ने उसको चुप देख, भेंट में मिली स्वर्ण-मुद्राओ में से मुट्ठी भर निकाल कर दिखाते हुए कहा, "देखो कितनी सुन्दर हे ये।"

"हा। हा। यही तो कहने वाला था। मै बहुत धनी हू।"

"कितने धनी हो तुम?"

"कुबेर समान। अपना मूल्य बताओ।"

"रथ पर चढ़ने के लिये एक सहस्र। रातभर अपने आगार में रखने के लिये पाच सहस्र।"

"स्वीकार है।"

मिरिका आश्चर्य में देखती रह गयी। फिर कुछ विचार कर पूछने लगी, "किसके वेटे हो?"

"मेरे पिता जी तुम को कुछ नहीं देंगे। वे महा कजूस है। कहो तो रुपया निकालूं?"

"लाओ।"

सैनिक ने एक थैली अपने उत्तरीय के नीचे से निकाल, रथ पर फेंकते हुए कहा, "गृह द्वार पर चल कर और दूंगा।"

मिरिका ने थैली खोल कर देखी नहीं। केवल हाथ में तौल कर अनुमान लगा कहा, "ठीक है, चले आओ।"

सैनिक कूद कर मिरिका के रथ पर चढ, उससे सट कर बैठ गया। भीड जो इन दोनों का सवाद सुन रही थी, इस सौदे के हो जाने पर तालियां बजा कर हर्ष प्रकट करने लगी। किसी ने जयघोष कर दी, "मिरिका देवी की जय।"

इस भीड में एक युवक और एक युवति विस्मय में, यह सौदा होते हुआ, देख रहे थे। दोनों देहात से आये थे और भाई-बहन थे। यद्यपि उनको विदित था कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध नगर में सुगमता से बनते बिगडते है, परन्तु यह विचार कर कि उनको नगर वालों मे क्या, वे

कुमार का जन्मोत्सव देखने चले आये थे। वे मिरिका का नृत्य देख कर नर्तकी को जाते हुए देख रहे थे और उस समय नर्तकी और सैनिक का सौदा देख कर चकित हो रहे थे। लड़की जो केवल चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी तालियां बजा कर सैनिक की बहादुरी की प्रशंसा कर रही थी।

रथ गया। भीड़ भी रथ के पीछे मिरिका की जय-घोष करती हुई चली गयी और दोनों विस्मय में रथ को जाते देखते रह गये। लड़की ने कहा, "भैया! कितना धन है इस नगर में?"

"हां।"

"हमारे पास कुछ नहीं है। हम घर में केवल दस रजत लेकर आये थे।"

"अभी दसों की दसों हमारे पास हैं। किसी बात की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

"परन्तु....।" लड़की कुछ कहती-कहती रुक गयी।

"हां, क्या बात है मीना?"

"पिताजी स्वस्थ होते तो हम भी नगर में आकर कुछ कार्य कर लेते। हमारे पास भी रजत के स्थान स्वर्ण मुद्रायें होतीं।"

"तुम को क्या चाहिये?"

"देखा नहीं कि नर्तकी ने कैसे सुन्दर भूषण पहिने हुए थे?"

"ओह! वे भी मिलेंगे। भगवान् तुम्हारे पति को भेजेंगे, जो तुमको बहुत सुन्दर सुन्दर भूषण बना कर देगा।"

मीना को विवाह की बात सुन कर लज्जा अनुभव हुई। परन्तु अपनी सहेलियों को स्मरण कर, साहस पकड़ कर बोली, "पर भैया! तुमको भी तो भाभी के लिये भूषण चाहियें?"

इसने युवक को कुछ याद आ गया। उसने कहा, "मीना हम को भोजन भी तो करना है। क्या खाओगी?"

"पहिले मिष्ठान्न की दूकान पर चलें। पीछे पूरी खायेंगे।"

वे अभी वहा ही खडे थे, जहा से मिरिका का रथ युवक को लेकर चला गया था।

खाने की बात का विचार कर वे एक मिठाई की दुकान की ओर चल पडे। मिठाई बिना मूल्य मिलती थी। दूकान के सामने खडे होते ही दूकानदार ने एक दोना युवक को और एक युवति को दिया। दोने में पाच प्रकार की मिठाई थी। दोनो ये लेकर नदी तट पर जा बैठे और खाने लगे। मिठाई समाप्त होने पर वे पीने के लिये जल ढूंढने लगे। नदी का जल कुछ गदला था, इस कारण एक पियाऊ पर पहुचे तो उनको दो मट्टी के कुल्हड सुवासित पानक के मिल गये। दोनो ने पानक पिया। तृषा शेष रह जाने पर उन्होने ने पुन पिया। मीना ने इसको पीते हुए कहा, "यह बहुत स्वादिष्ट प्रतीत होता है।"

"इसमें कुछ मात्रा में सुरा मिली प्रतीत होती है।

"पर इसमें मुझको कोई खराबी समझ नहीं आयी। मेरे मित्र ने बताया था कि यदि मद अधिक चढने लगे तो आचार खा लेना चाहिये। इससे मद उतर जाना है।" इस समय उनको फिर भूख और प्यास लगी। अब वे एक पूरी की दूकान पर गये और पहिले की भाति उनको एक-एक दोना पूरी और साग का मिल गया। दोनों एक स्थान पर बैठ पूरी खाने लगे। इस समय तक मीना को मद्य का नशा चढने लग गया था। उसने भाई से कहा, "भैया! देखो न, नदी के पार भी ऐसा आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है।"

युवक ने देखा और कहा, "नहीं तो।"

"वाह! देखते नहीं? वह सामने किनारे पर, दीपों की पक्तिया लगी हैं।"

युवक आखे फाड फाड कर देख रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि नदी के मध्य में चली गयी। वहा इस तट की वस्तुओं और दीपकों का प्रति-बिम्ब दिखाई दे रहा था। वह समझ गया और खिलखिला कर हसने लगा। मीना नहीं समझी। दोनों पूरी खाकर पुन तृषा अनुभव करने लगे। भाई, बहन की अवस्था का अनुभव लगा कर शुद्ध जल की खोज में था, परन्तु

वह कहीं मिल नहीं रहा था। सामने एक पियाऊ दिखाई दी और वे प्यास से व्याकुल मद्य पीने वहां जा पहुंचे। तृषा तीव्र हो गयी थी, इस कारण उन्होंने कई-कई कुल्हड़ लेकर पिये।

अब उनको ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे हवा में, भूमि से कई पग ऊपर चल रहे हैं। वायु उनका भार सह नहीं सकती। इस कारण उनके पांव वायु में धंसे जा रहे हैं और उनके पांव ऊपर-नीचे हो रहे हैं। वास्तव में वे सुरा के मद में झूमते हुए जा रहे थे। मीना को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पृथ्वी डोल रही हो। उसने भाई के कंधे पर हाथ रख आश्रय लेते हुए कहा, "हम कहां जा रहे हैं ?"

"मैं थक गया हूं। चलो घर लौट चलें।"

"पर यह भूचाल जो आ रहा है।"

"आने दो। हमारा झोपड़ा गिर नहीं सकता।"

"मेरी टांगें वायु में धंसती जा रही हैं।"

"इस पर भी हम चल रहे हैं।"

"भाड़े का रथ लेकर गांव को चल दें।"

"तनिक नदी के तट पर बैठ कर थकावट दूर कर लें, तो ठीक न होगा क्या ?"

दोनों घाट से एक ओर हट कर जंगल में घुस गये और एक पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगे।

: २ :

मीना का पूरा नाम मीनाक्षी था। उसके भाई का नाम ताराचन्द्र था। वे और उनके पिता कुम्हार का काम करते थे। उनका पिता सीधा-सादा व्यक्ति था और पिछले एक वर्ष से वह दमा के रोग से बीमार था। तारा और मीना दोनों मट्टी के बर्तन बनाते थे। तारा नगर में लाकर बेचता था। वहीं राजकुमार के जन्मोत्सव के मनाये जाने की सूचना लेकर गया था और मीना हठ कर उसके साथ उत्सव देखने चली आयी थी।

उनका विचार था कि मध्य रात्रि तक घर लौट आवेंगे । परन्तु ऐसा हो नहीं सका। अगले दिन जब तारा की नींद खुली तो दिन बहुत चढ़ आया था। वह उठ कर बैठा तो पहिले तो उसको समझ ही नहीं आया कि वह वहा कैसे आ पहुचा है। तदनन्तर उसको धीरे-धीरे पिछली रात की बातें स्मरण आने लगीं। जब उसको यह स्मरण आया कि मीनाक्षी और वे दोनो पेड़ की साया तले सोये थे, तब उसने अपनी बहन को ढूंढना आरम्भ कर दिया। वह वहा नहीं थी। वह उठा। उसकी टागें लडखडा रही थीं। इस पर भी वह बहन के न मिल सकने पर चिन्ताग्रस्त हो पेड का आश्रय ले खड़ा हो गया और जहा तक उसकी दृष्टि जाती थी, बहन को देखने लगा। कभी एक ओर जाता कभी दूसरी ओर। मीनाक्षी कहीं दीखाई नहीं दी ।

सूर्य सिर पर आने लगा था। वह बहन को ढूंढता हुआ धीरे-धीरे चल कर कुछ दूर तक निकल गया। एक पेडो के झुरमट में उसको अपनी बहन की धोती का सा कपडा दिखाई दिया। वह वहा खडा हो गया और आवाज दे-देकर पुकारने लगा।

पेड़ों के झुरमुट में से एक भर्राई हुई आवाज आयी, "भैया!"

तारा पौदो के पत्तों को एक ओर कर झुरमुट के बीच घुस गया। उसने देखा कि मीना घुटनो में सिर दिये बैठी है। तारा ने पूछा, "क्या हुआ है ?"

"सर्वनाश, भैया!"

"क्या ?"

मीना बोली नहीं पर सिर घुटनो में दे कर रोने लगी। "कैसे आ गयी हो तुम यहा ?" तारा ने पूछा।

"मुझ को यह स्मरण होता है कि कोई मुझको बाह से पकड कर यहा ले आया और इस झुरमुट में लाकर मेरे . पीछे मैं सो गयी। जब उठी तो दिन निकलने वाला था । मेरे साथ एक युवक यहा पर था, जो मुझ को हिला-हिला कर जगा रहा था। जब मुझ को चेतना हुई तो

मेरा मुख चूम कर, यह मेरे पास रख कर चला गया है।"

तारा ने देखा कि दस स्वर्ण मुद्रायें उसके पास रखी थीं। वह अपनी बहन के पास बैठ गया और पूछने लगा, "अब क्या होगा?"

"मैं इतनी देर से यहां बैठी यही तो विचार कर रही हूं। मुझको तो नदी में डूब मरने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं सूझता।"

"नहीं मीना! यह नहीं! उठो चलो। किसी से कुछ नही कहना। बिना बताये कौन जान सकेगा कि क्या हुआ है?"

"पिता जी को पता चला तो बहुत दुःखी होंगे।"

"पर तुम उनको बताओगी ही क्यों? हम तुम्हारा विवाह शीघ्र ही कर देंगे।"

"किससे करोगे? गांव में तो कोई लड़का दिखाई देता ही नहीं।"

"मिल जायेगा। पर तुमने आज की घटना किसी से बताना नहीं।"

दोनों घर पहुंचे। पिता की हालत कुछ अच्छी नहीं थी। इस पर भी उसने बच्चों से पूछा, "क्या देखा उत्सव में तुमने?"

"बाबा! नगर में सोने की नदियां बहती हैं। मिठाई मांस, मद्य इत्यादि सब नि:शुल्क मिलता था। लोग स्वर्ण-मुद्राओं की वर्षा करते हैं, मानो वे कौड़ियां हैं।"

"रात कहां रहे हो?"

"वहां, नदी के किनारे घाट पर, सो रहे थे।"

पिता को संतोष हुआ और वह अपने नित्य के काम, खांसने और श्लेष्मा निकालने में लग गया। मीना स्नानादि कर घर के काम में लग गयी। तारा अपने पिछले दिन के अनुभवों पर विचार करता हुआ अपने बर्तन बनाने के चक्के पर जा बैठा।

वह बर्तन बनाने और मीना की बात पर विचार करने में इतना लीन था कि सामने एक लड़की आकर बैठ गयी और उसको पता ही न चला। जब एक बर्तन बना, उसे चक्के से उठा कर एक ओर रखने लगा, तो उसकी आंख की पुतली में लाल सी झलक पड़ी। उसका ध्यान

टा और वह उस लड़की को वहां बैठा देख खिल उठा । उसने पूछा, "पारो ! कब आयी तुम ?"

"कितनी देर से तो बैठी हूं । न जाने कौन-कौन महल बना रहे थे कि इधर आंख ही नहीं उठी ।"

"आज बहुत दिनों पश्चात् तुम्हारे दर्शन हुए हैं ?"

"मां कहती थीं कि जब तक विवाह न हो जावे, मुझ को तुमसे मिलना नहीं चाहिये । कल वे सब उत्सव देखने नगर गये थे और मैं अकेली होने से तुम को मिलने आयी थी, पर तुम भी तो गए हुए थे ।"

"अब तो तुम्हारे दर्शन को मन तरसता रह जाता है ।"

"छोड़ो इस व्यर्थ की बात को। बताओ कब आओगे विवाह करने ?"

"विवाह तो हो जाता, पर तुम्हारी मां भूषण जो मांगती हैं । एक वर्ष के भारी परिश्रम से, दो सौ रजत एकत्रित की हैं । अब प्रश्न यह है कि भूषण कहां से खरीदूं ?"

"आकर मां से ही कह दो न । वे स्वयं ले आयेंगी ।"

"यही विचार कर रहा हूं ।"

"तो आज आना ।"

तारा अपने होने वाले श्वसुर के घर जा पहुंचा । वे लोग शोकग्रस्त बैठे थे । तारा के पूछने पर पारो ने बताया कि कल ये सब उत्सव में गये थे और वहां भाभी खो गयी है । दिन भर ढूंढने पर भी नहीं मिलीं ।

"तो उसको ढूंढने आज पुनः जाना चाहिये ।"

"चन्द्र वहीं है," तारा के श्वसुर ने कहा, "वह व्याकुल हो नगर के मार्गों पर इधर-उधर पागल हुआ फिर रहा है ।"

इस पर तारा ने अपने मन की बात कह दी, "बाबा ! मैं तो यह कहने आया था कि पारो का विवाह कर दो । मेरे पास दो सौ रजत तो हैं । उसके भूषण खरीदने नगर जाना तो होगा ही । भाभी को भी ढूंढ लेंगे ।"

इस पर पारो का पिता तारा को एक ओर ले गया और उसको कहने लगा, "भैया तारा ! अब हम भूषण खरीदने नगर नहीं जायेंगे ।

मैं बताता हूं कि क्या हो रहा है वहां। सहस्रों सैनिक और अन्य युवक उत्सव में घूम रहे हैं। वे मद्य पीते हैं और फिर जहां कहीं भी कोई स्त्री मिले, उससे भोग-विलास करते हैं। यदि तो प्रातः उससे पिंड छूट गया तो ठीक, नहीं तो गला घोंट नदी में बहा देते हैं। मुझको भय है कि चन्दू की बीबी से भी यही हुआ है। उसकी रसभरी आंखों ने कई युवक उसके आगे-पीछे कर दिये थे।"

"बाबा! मैं सब कुछ देख आया हूं। पारो का विवाह नहीं करोगे तो वह भी किसी के जाल में फंस जायेगी।"

"चन्दू के आ जाने पर लड़की का विवाह अवश्य ही कर दूंगा।"

चन्दू आया पर पारो की भाभी नहीं आयी। वह एक और स्त्री पकड़ लाया था। यह कनखैया थी। चन्दू के से हट्टे-कट्टे युवक को उज्जयिनी के मार्गों पर व्याकुल घूमते देख पूछने लगी, "युवक! क्या ढूंढ रहे हो?"

"अपनी बीबी को।"

"कहां रखा था उसको तुमने?"

"नदी-तट पर उत्सव देखते-देखते भीड़ में खो गयी है। उसी समय से ढूंढ रहा हूं। अभी तक नहीं मिली।"

"क्या युवा थी वह?"

"हां, मेरी आयु की ही थी।"

"तो गयी। अब नहीं मिलेगी वह। देखो यदि न मिले तो रात को मेरे स्थान पर आ जाना।" यह कह उसने चन्दू को अपना घर दिखा दिया।

चन्दू ढूंढने-ढूंढते थक कर रात को उस स्त्री के घर जा पहुंचा। उसने उसकी सेवा शुश्रूषा की और उसकी बीबी बनना स्वीकार कर लिया। चन्दू ने पिता की स्वीकृति के बिना विवाह करना पसन्द नहीं किया। इस कारण दोनों गांव चले आये।

चन्दू का पिता यह सौदा देख चकित रह गया। कनखैया ने चन्दू के पिता से कहा, "देखो बाबा! नगर में मेरे कई मकान हैं। इनसे भारी आय होती है। यह तुम्हारा बेटा यदि मेरे साथ चल कर रहेगा, तो इसको यह

मिट्टी के मटकने नहीं बनाने पड़ेंगे। बीस-तीस रजत मासिक आपको भी भेज दिया करूंगी। बताओ है स्वीकार ?" चन्दू तैयार हो गया। बाप बितर् बितर् मुख देखता रह गया। अगले दिन पारो का विवाह हो गया। तारा पारो को अपने घर ले गया। चन्दु माता पिता को छोड़ नगर चला गया। इसके एक मास पीछे तारा की बहन मीना चुप चाप नगर को चली गयी।

२

भूदेव ने महामात्य पद ग्रहण किया तो उसने मनोज को निजी गुप्तचर नियुक्त कर लिया। वह नगर-नगर और गाव-गाव घूम कर जनता के विचारो की थाह लेता और सब समाचार महाराज तथा महामात्य के पास भेजता रहता था। भूदेव ने और भी कई गुप्तचर रखे हुए थे और वह एक से भेजे समाचार दूसरों से जाच कराता रहता था। इन समाचारों के आधार पर वह देश में नीति का निर्माण करता रहता था। कुछ ही दिनों में राज्य भर में कार्य शान्ति से चलने लगा था। पडित भूदेव ने पहला नियन्त्रण यह चलाया कि नर नारी की स्वतन्त्रता एक पवित्र वस्तु घोषित कर दी। उस घोषणा में उसने यह कहा, "महाराज कुमारदेव के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, पूर्ण स्वतन्त्रता है। कोई, चाहे वह धनवान हो चाहे शक्तिशाली, किसी दूसरे की स्वतन्त्रता छीन नहीं सकता।"

इसके अर्थ स्वरूप व्यक्ति-गत स्वतन्त्रता सबकी बनी रही। जनता में सुधार, वह राज्य-बल से करवाना नहीं चाहता था। व्यक्तियो में उच्छृंखलता राज्यसत्ता दुर्बल होने के कारण नहीं, प्रत्युत नैतिकता के गिर जाने के कारण उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण उसने व्यक्ति और राज्य में संघर्ष चलाने के स्थान धर्म और व्यक्ति के अधिकार-क्षेत्रों में सीमा बाधने का यत्न किया।

उसने रेखा को पटरानी के पद से हटाने के लिये नहीं कहा। उसने

रेखा के पुत्र उत्पन्न होने पर देश भर में उत्सव मनवाया। इस उत्सव में जनता जो कुछ चाहती थी वह उसको उपलब्ध कराया। इस उत्सव में जो कुछ उच्छृंखलता हुई, उससे वह भली भांति परिचित था, परन्तु उसे इसको रोकने के लिये राज्य की ओर से दवाव की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

राजकुमार के उत्पन्न होने पर उसने कुमारदेव के राज्याभिषेक की तिथि निश्चित कर दी और उस अवसर पर होनेवाले अनेकानेक आनन्दोत्सवों की एक लम्बी सूची बना दी। प्रत्येक कार्य का एक-एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया।

महाराज कुमारदेव, रेखा, राज्य-कर्मचारी और अन्य प्रजागण सब प्रसन्न थे। ब्राह्मण वर्ग भी अब महामात्य से मिल कर अपनी सम्मति देने लगा था। इस वर्ग से जब-जब भी जनता के आचार-व्यवहार में राज्य की ओर से हस्तक्षेप करने के लिये कहा जाता था, तब-तब महामात्य का एक सरल उत्तर यह होता था, "जब तक कोई दूसरे पर बल प्रयोग नहीं करता तब तक राज्य का हस्तक्षेप लाभ के स्थान हानिकर होगा। कोई अभियोग मेरे पास लाओ, जहा यह सिद्ध हो सके कि किसी ने किसी दूसरे पर बलात्कार किया है तो न्यायालय न्याय करेगा।"

"तो श्रीमान्! सुधार कैसे होगा?"

"यह ब्राह्मणों का काम है कि जनता को समझावें और प्रत्येक कार्य के गुण-दोष बतावें।"

राज्याभिषेक पर लाखों आने वाले दर्शकों के आराम के लिये सैकड़ों प्रकार के प्रबन्ध करने पड़े। सब पूर्ण सतर्कता से किये गये। इस अवसर पर देश-विदेश से आने वाली लगभग दस लाख जनता के खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया गया।

इस अवसर पर दास-दासियों के क्रय का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। महाराज कुमारदेव इसको एक अच्छी प्रथा मानते थे। भूदेव ने इस का विरोध करने के स्थान इसको भी उसी सिद्धान्त के अनुसार नियन्त्रण में

रखना चाहा, जिससे अन्य समाज के कार्य चलते थे। इसकी स्वीकृति भी कुमारदेव ने दे दी। भूदेव इसको अपने आस्तिकवाद की भारी विजय समझता था। उसने यह घोषणा करवा दी, "राज्याभिषेक के अवसर पर उज्जयिनी में लाखों की सख्या में लोग देश-विदेश से आने वाले हैं। इस अवसर पर कुछ व्यापारी लोग दास-दासियो का क्रय-विक्रय करना चाहते हैं। राज्य की ओर से व्यापार की स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए, हम इन विकने वाले दास-दासियों की स्वतन्त्रता भी मानते हैं। अतएव महाराज की ओर से यह घोषणा की जाती है कि अवन्ति राज्य में बिकने वाले प्रत्येक दास-दासी की परीक्षा होनी आवश्यक है। जो अपने बिकने को पसन्द करेंगे, वेही बिक सकेंगे।"

लोग इस घोषणा को मूर्खता की बात समझते थे, परन्तु जब इन दास दासियो के निरीक्षण पर मनोज कुमार को लगा दिया गया तो लोगो को चिन्ता होने लगी।

राजकुमार दो मास का हो गया था। कुमारदेव देख रहा था कि राजकुमार उससे और रेखा से न मिलकर, किरण से रूप-रेखा में अधिक मेल खा रहा है। उसने एक दिन रेखा से पूछ ही लिया, "प्रिये! यह क्या चमत्कार मैं देख रहा हू। राजकुमार की आखें तुमसे मिलने के स्थान किरण देवी से मिलती हैं। तुम्हारी आखें काली हैं और इसकी शरवती हैं।"

रेखा ने बात को टालने के लिये कह दिया, "मुझको इतना ज्ञान नहीं महाराज!"

"मैं जब इस बच्चे को देखता हू तो मुझको किरण की याद आ जाती है। विचित्र बात है, तुम्हारा उससे सदा द्वेश रहा और तुम्हारे ही बच्चे की आखें उसके समान हों।"

रेखा ने इस बात का उत्तर नहीं दिया।

जब से राज कुमार उत्पन्न हुआ था, श्वेताग की यह मांग रही थी कि उसको एक बार राजकुमार के दर्शन कराये जायें। इस माग की पूर्ति का

रेखा विरोध करती थी। इस पर भी राज्याभिषेक के तीन-चार दिन पहिले कुमारदेव को श्वेतांग की इस प्रार्थना की याद आ गयी। वह विचार करने लगा कि इसमें क्या रहस्य है? उसने तमाशा देखने के लिये एक दिन राजकुमार और रेखा को लेकर भूगर्भ आगारों में, जहां वह बंदी था, जाना स्वीकार कर लिया। साथ में कई सुभट भी ले लिये गये, जिससे श्वेतांग कोई हानि न पहुंचा सके।

श्वेतांग ने इन सबको और राजकुमार को आते देख उठ कर स्वागत किया और महाराज का इस कृपा के लिये धन्यवाद किया।

"श्वेतांग! मैं तुमको अभी भी अपना मित्र समझता हूं, परन्तु जब राजनीति भाई-भाई में सम्बन्ध को भी पार कर सकती है, तो मित्र-मित्र के सम्बन्ध से भी यह ऊपर जाने की क्षमता रखती है। इस पर भी मित्र की यह मांग कि वह मेरे सुपुत्र के दर्शन करना चाहता है, मानी ही जा सकती है।" महाराज ने कहा।

श्वेतांग ने बालक को गोदी में ले लिया और उसको गवाक्ष के सामने लेजाकर प्रकाश में देखा। कितनी ही देर तक वह बालक को ध्यानपूर्वक देखता रहा और तब खिलखिला कर हंस पड़ा। महाराज ने उसको इस प्रकार हंसते देख समझा कि उसका मस्तिष्क बिगड़ गया है। जब वह हंसता ही गया तो बालक को वापिस लेकर महाराज ने पूछा, "मित्र क्या बात है? इस पागलपन का कारण क्या है?"

जब श्वेतांग जी भर कर हंस चुका तो गम्भीर हो कहने लगा, "महाराज! मैं आपका आभारी हूं। मेरे मन में उठ रहे संशय शांत हुए।"

उसने रेखा की ओर देखा और झुक कर, प्रणाम कर कहा, "महारानी जी! मैं आपका भी भारी कृतज्ञ हूं।"

कुमारदेव ने कहा, "मित्र! मैं तुम्हें, अपने राज्याभिषेक के उपरान्त मुक्त कर, काशी पहुंचा दूंगा और तुम्हारे पिता जी को तुम्हारी सेवाओं के प्रतिकार में उचित धन भेज दूंगा। मैं अब तक भी यही समझता हूं कि बिना तुम्हारे मैं यह राज्य नहीं पा सकता था।"

"महाराज !" श्वेतांग ने कहा, "मैंने जो कुछ आपके लिये किया है, इसको आप आज से दस-बीस वर्ष पीछे ही समझ सकेंगे ।"

इस समय रेखा ने कहा, "महाराज मेरा चित्त घबरा रहा है । यहां की वद वायु मेरे अनुकूल नहीं है । मैं यहा से चलना चाहती हू ।"

इस पर सब बातचीत बंद हो गयी और महाराज रेखा को आश्रय देकर भूगर्भ से बाहर ले आये । रेखा लगभग अचेत हो रही थी । उसको सुवासित सुरा पान करा कर ठीक किया जाने लगा ।

. ४ .

किरण अभी भी कलाभवन में ठहरी हुई थी । मनोज अपने गुप्तचर विभाग के कार्य से उससे मिलने गया । उसकी सीख, जो उसने किरण को आमरण उपवास के समय दी थी, उसे स्मरण थी । इस कारण उसने मनोज को पहिचान कर उसको आदर से बैठाया और आने का कारण पूछा । मनोज ने कहा, "आपके विषय में जो कुछ सुना है, उससे आपके दर्शन करने की कई दिनों से अभिलाषा बन रही थी । सो आज अवसर पाकर आपको आवश्युक्त नमस्कार करने चला आया हू ।"

"क्या बात सुनी है आपने मेरे विषय मे ?"

"मैं महाराज पालकदेव जी से, उनके विदा होने से पूर्व मिला था और उन्होंने आपकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी । एक दिन महाराज कुमारदेव से आप के विषय मे बात चल पडी तो वे भी आपकी प्रशसा करते हुए थकते नहीं थे । दूसरी ओर, जहा महामात्य श्वेतांग आपकी प्रशसा करते हैं, वहा आचार्य भूदेव भी आपके गुणानुवाद करते नहीं थकते । कितनी विचित्र बात है । आपकी प्रशसा करने वालों में एक आस्तिक है दूसरा नास्तिक है । एक परोपकारी है और दूसरा स्वार्थरत है । एक पदच्युत राज्याधिकारी, दूसरा अन्याय से राज्याधिकारी बना हुआ । इस प्रकार परस्पर विरोधी प्रवृत्ति वालों को आपकी प्रशसा करते देख, मन आपके सामने मस्तक नत कर नमस्कार करने को कहता है ।"

"मनोज ! यह चारणो की बातें छोड़ो । बताओ श्वेतांग से भेंट हुई थी।"

"कुछ दिन हुए हुई थी। एकान्त में उससे बातचीत करने का अवसर मिला था। वह भी आपसे दुर्व्यवहार करने पर पश्चाताप करता था। उसका कहना था कि आपको अपनी राजनीति में सम्मिलित करने के लिये ही उसने वह सब कुछ किया था।"

"उसकी सबसे बड़ी भूल यह थी कि वे मेरे सहयोग का मूल्य स्वयं ही निश्चय कर रहा था। मै जो मूल्य उससे माग रही थी, उसको देने पर उसको महामात्य पद से वचित होना पडता था।"

"छोड़िये इस बात को देवी ! वह चित्र पट से हट गया है। उसने रंग-मच पर अपना कार्य समाप्त किया और अब नैपथ्य में चला गया है। आप अभी रग मच पर खड़ी है। मै यह जानने के लिये उत्सुक हूं कि आप कौन अभिनय करने का विचार करती है।"

"आप यह किस कारण पूछ रहे हैं। यह प्रश्न महामात्य के पत्र की भाति किसी दूसरे का है अथवा आपके मन से उपजी उस सीख की भाति है जो पत्र देने के पश्चात् आपने दी थी।"

मनोज मुस्कुराया और कुछ विचार कर बोला, "देवी ! मै यह प्रश्न महाराज कुमारदेव की आज्ञा से पूछ रहा हू।"

"आप अभी भी भी एक प्रतिहार के रूप में है क्या ?"

"नहीं ! यहा मेरी पदवी प्रतिहार से ऊची है । मै गुप्त सम्मति-दाताओ में हूं।"

"महाराज के इस प्रश्न में प्रयोजन क्या है ?"

"वे आपको अपनी द्वितीय विवाहित पत्नी बना कर रखना चाहते हैं।"

किरण ने इस विषय पर पहिले ही विचार कर रखा था। इस कारण उसने बिना अधिक विचार किये कह दिया, "यह नहीं होगा। एक ऐसे पति-की पत्नी जो पसन्द न करता हो, मुझ को रुचिकर नहीं। एक ऐसी की सौतन बनना, जो घृणा करती हो, कुछ ठीक नहीं जचता।

"भगवान ने मुझको उन्नीस वर्ष की दासता के पश्चात् मुक्ति दी है। अब मैं अपनी आत्मा को उन्नत करने के लिये यत्न करूंगी। मैं इस पापी जीवन की कालिमा को जप, तपस्या और पुण्य कर्मों से धोने का यत्न करूंगी।"

"देवी का उद्देश्य शुद्ध है और इस अधम भ्राता तुल्य प्राणी का आशीर्वाद आप के साथ है। आपका संदेश महाराज को पहुंचा दूंगा।"

मनोज जब झुक कर, प्रणाम कर जा रहा था, तो प्रमोद ने उस आगार में प्रवेश किया। उसके साथ लोला थी। मनोज ने प्रमोद और लोला के लिये मार्ग छोड़ दिया। लोला पांव में पायल पहिने थी। उसने लहगा तथा कसी चोली पहिनी हुई थी। होंठो पर झीना सा रंग, आंखों पर काजर, मस्तक पर सिन्दूर और अन्य श्रृङ्गार के चिन्ह बने थे। मनोज को वह बहुत ही प्यारी लगी और वह उसको देखता रह गया। किरण ने मनोज को वापिस बुला लिया। मनोज, जो द्वार के अन्दर ही खड़ा था, लौट आया और देवी के समीप आ खड़ा हुआ। किरण ने कहा, "मैं आप का परिचय श्री प्रमोद, कलाभवन के अध्यक्ष जी से करा दूं?"

"देवी जी की अपार कृपा मानूंगा।" मनोज के यह कहते हुए लोला को फिर मन भर कर देखा।

किरण ने परिचय कराया, "ये है मनोज कुमार, काशी के एक दार्शनिक और शुद्ध वैदिक वाद में विश्वास रखने वाले, महाराज के गुप्त परामर्शदाता।"

मनोज समझ गया कि किरण ने यह परिचय देकर उस के उपकार से अधिक प्रमोद का भला किया है। इससे वह किरण देवी की चतुराई पर मुस्कराया। प्रमोद ने झुक कर मनोज को नमस्कार की। किरण देवी ने परिचय चालू रखा, "मेरी वर्तमान अवस्था के बनने में इन का भी हाथ है। मैं इनकी एक ऐसी सीख के लिये, जो इन्होंने एक ऐसे समय में दी थी जब मैं आत्म-हत्या करने वाली थी और जिससे मैं यह नवीन जीवन धारण कर आत्मोन्नति की उज्ज्वल उषा का दर्शन करने

से वचित होने जा रही थी, अति कृतज्ञ हूं।"

प्रमोद ने पुनः नमस्कार किया। लोला भी इस परिचय से यह जान गयी कि ये किरण पर इतना उपकार करने वाले है, और प्रशसात्मक आदर से मनोज की ओर देखने लगी।

प्रमोद ने कहा, "श्रीमान्! आज लोला देवी किरण देवी के लिये एक विशेष नृत्य तैयार कर उसका प्रदर्शन कर रही है। हमें बहुत प्रसन्नता होगी, यदि आप भी इस अवसर पर उपस्थित हो, हमें अनुगृहीत करें।"

मनोज ने प्रश्न भरी दृष्टि से किरण की ओर देखा। किरण देवी उठते हुए बोली, "आइये मनोज जी! कुछ तो मनोरंजन होगा ही।"

सब नीचे उतर आये। भूमि पर एक बड़े आगार में कलाभवन के प्राय. सब विद्यार्थियो और अध्यापकों की उपस्थिति में ये पहुचे। इनके आसन रिक्त रखे हुए थे। एक आसन मनोज के लिये भी लगा दिया गया। जब ये बैठ गये तो लोला, जो अपने आगार से ही तैयार होकर आयी थी, दर्शकों के मध्य में आ खड़ी हुई।

लोला ने कहा, "गुरुवर तथा सहपाठियो को बता देना चाहती हूं कि मैं इस नृत्य में क्या कहना चाहती हू। इसका शीर्षक है 'मानव जीवन'। शिशु-काल से लेकर वृद्धावस्था की चेष्टाओ को मैंने नृत्य में बांधने का यत्न किया है। इसके नौ अग किये है। शिशु काल, कौमार्यावस्था, यौवनारम्भ, पूर्ण यौवन, विवाहित जीवन, माता-पिता की मृत्यु, प्रौढावस्था और वृद्धावस्था।

"इतने मात्र के सकेत से आशा है कि आप समझ सकेंगे।"

किरण के समीप ही मनोज बैठा था। उसने मनोज से पूछा, "आप इस कला के विषय में जानते है क्या?"

"बहुत कम।"

"इस पर भी आशा करती हूं कि आप इस बालिका के कौशल की प्रशंसा करेंगे। यह इस कला में अद्भुत योग्यता रखती है।"

"आज का दिन अपने जीवन का एक अति उत्कृष्ट दिन मानूंगा।

भगवान् की कृपा है कि ये सब आनन्दोत्पादक कार्य अनायास देखने को मिल रहे हैं।"

इस समय लोला ने नृत्य आरम्भ कर दिया। वह भूमि पर लेट गयी और पांच मास के बच्चे की भांति सुर, ताल, लय के साथ हाथ-पांव मारना अथवा पांव के अंगूठे को चूसना नृत्य में करने लगी। हर्ष के समय तथा मां से दुग्ध पान करते हुए जैसे बच्चा अंग-प्रत्यंग चलाता है वैसा ही वह करने लगी। धीरे-धीरे उसने पूर्ण शिशु-काल के लाड-प्यार तथा रूठने की मुद्रायें बना कर दिखायीं। बहुत कठिन अभिनय यौवनावस्था का था। वह भी उसने दिखाया। अंत में जब वृद्धावस्था का नाटक किया तो देखने वालों के हृदय पसीज उठे।

मनोज पूर्ण नाटक को आद्योपान्त मन्त्र-मुग्ध की भांति देखता रहा। इसमें वैचित्र्य यह था कि बिना एक भी शब्द बोले हाव भाव ही ऐसे ढंग से किये गये थे कि अंग-प्रत्यंग की प्रत्येक गति-विधि भावों को भलीभांति प्रकट कर दर्शकों को हृदयंगम कर रही थी। इस पर भी कोई गति, ताल और लय से भ्रष्ट नहीं थी।

नौ अंगों में नृत्य को समाप्त करने में चार घड़ी भर लग गये और इसमें लोला ने इतनी मुद्रायें बनायीं कि कलाविज्ञ उपस्थित जन भी वाह-वाह करते नहीं थके।

नृत्य समाप्त हुआ। किरण ने लोला की पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और धन्यवाद कहा। पश्चात् मनोज ने भी लोला की भूरि भूरि प्रशंसा की और कहा, "सेवक के योग्य कभी कोई काम हो तो आज्ञा कर सकती हो। मुझको आप की सेवा कर अति प्रसन्नता होगी।"

इस कथन पर लोला ने किरण की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। लोला को मनोज का परिचय, 'महाराज का गुप्त परामर्शदाता' स्मरण था। किरण उसके मन का आशय समझ गयी। इस कारण उसने कहा, "मनोज जी! इस अनाथ बालिका का एक कार्य तुम कर सकते हो। आचार्य जी से कह देना कि लोला को स्मरण रखें। बस, वे सब कुछ जानते हैं।"

मनोज कलाभवन से लौटा तो मन में एक नवीन आन्दोलन लिये हुए था। इस अशान्ति का कारण वह समझने का यत्न करने लगा। इस रहस्य को समझने में उसको कई दिन लग गये। जब उसको पता मिला और वह अपने मन के भावों के विश्लेषण में सफल हुआ तो वह चकित रह गया। वह समझ गया कि वह लोला से प्रेम करने लगा है। इस बात के ज्ञान होने से वह पुलकित मन हो इसमें सफल होने का उपाय सोचने लगा। इसका सूत्र उसको किरण से दिये संकेत में मिला।

वह आचार्य भूदेव के पास गया और उनसे निवेदन करने लगा, "भगवन्! एक लड़की लोला ने अपने विषय में आपको स्मरण कराने के लिये कहा है।"

"ओह। मैं तो भूल ही गया था। देखो मनोज! यह कार्य लगभग वैसा ही है, जैसा महाराज पालकदेव का था। इस लड़की के पिता ने कुमारदेव के विरुद्ध, जब वह अभी सेनापति था, व्यवस्था दी थी। उसके प्रतिकार में महाराज ने इसे मरणपर्यन्त बंदी रखने का दंड दिया है। मैं समझता हूं कि यदि यह ब्राह्मण देवता, कुमार की सेवा स्वीकार कर, मेरी नीति के अनुसार कार्य करना चाहे तो इसका पहिला अपराध क्षमा हो सकता है। यदि तुम एक-दो दिन के लिये इस हठी ब्राह्मण के पास चले जाओ और इससे बातचीत कर, इसको समझा सको तो लोला का कार्य सम्पन्न हो सकता है।"

मनोज ने पंडित सुखदर्शन के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त की और नाराट दुर्ग को जाने की तैयारी कर दी। जाने से पूर्व वह लोला से मिलने गया। वह उससे प्रमोद के सम्मुख मिल सका। उसने लोला को बताया, "लोला देवी! मैं आपके पिता जी से मिलने जा रहा हूं। आशा करता हूं कि शीघ्र ही उनको बंदीगृह से मुक्त करा सकूंगा। यदि आप कोई संदेश देना चाहें तो दे सकती हैं।"

लोला पिता जी की बात सुन तरल-नेत्र कृतज्ञता से भरी हुई मनोज की ओर देखती रह गयी। प्रमोद ने मनोज को पंडित जी के विषय में

बताया, "पंडित जी में केवल दोष यही था कि वे निर्भीक थे। अपने मन की बात कहने में वे कभी किसी से नहीं डरे। इस पर भी वे एक च्यूंटि को भी हानि पहुचाने में अयोग्य थे।"

"नटराज!" मनोज ने कहा, "समय बदल गया है। आचार्य भूदेव की इच्छा है कि राज्य को सुदृढ़ करने के लिये सब श्रेष्ठ और बुद्धिमान् लोगो को यहा एकत्रित हो जाना चाहिये। यही कारण है कि धीरे-धीरे राज्य न्याय और युक्ति का प्रचार करने का यत्न कर रहा है। आपको विदित होना चाहिये कि इस ओर प्रथम प्रयास नदी तट पर एक शिला-लेख लगवा कर किया गया है। लेख में लिखा है, "महाराज कुमारदेव के राज्य में बलात्कार करना पाप माना गया है। किसी भी व्यक्ति को अधिकार नहीं कि वह दूसरे की इच्छा बिना उससे किसी प्रकार का कार्य ले। ऐसा करना बलात्कार है और इस का दंड मृत्यु है।

"राज्य नियमो के अनुसार ही काम लिया जा सकता है।"

लोला ने एक पत्र पिता के नाम लिख कर मनोज को दे दिया और कहा, "श्रीमान्, यदि यह कार्य आप सम्पन्न कर सके तो आपकी जीवन भर आभारी रहूंगी।"

पंडित सुखदर्शन जैसे हठी ब्राह्मण को अनुकूल मार्ग पर लाना इतना सुगम नहीं था जितना पालकदेव को। इस कारण मनोज को कई बार नाराट की यात्रा करनी पडी।

५

किरण क्रीतदासीपन से मुक्त हो कलाभवन में लगभग दो मास तक रही। इस काल में वह अपनी परिवर्तित परिस्थिति पर विचार करने में लीन थी। इस समय तक उसको उत्ताल बाबा से प्राप्त ज्ञान के साथ साथ राज्यभवन की स्वार्थान्धता और कुचक्रो का ज्ञान भी मिल चुका था। दो मास तक कलाभवन में रहने से एक और सृष्टि का चित्र देखने को मिला। साधारण सी बात पर कैसे एक लडकी दूसरी से लड पडती है अथवा मित्रता

कर लेती है, यह सब उसमें, संसार के प्रति ग्लानि उत्पन्न करने में कारण बन रहा था।

कलाभवन के रहने वाले पहिले कुछ दिन तो उसको ऐसे देखते रहे, जैसे वह कोई दर्शनीय जन्तु है। सबके मुख पर था, "एक लक्ष स्वर्ण में विकने वाली दासी।" किरण को यह उपनाम पसन्द नहीं था, परन्तु यह एक तथ्य था, जो वह मिटा नहीं सकती थी।

कुछ ही दिनो में उसको एक दर्शनीय जन्तु मानने वाले स्त्री-पुरुष उसके लिये स्वय कम दर्शनीय नहीं रहे। लोला द्वारा कोकिला का परिचय उससे हो गया। जिस दिन से यह परिचय हुआ उस दिन से ही भ्वन में रहने वाले प्राणियो का पूर्वापर उसको विदित होने लगा।

कोकिला को दूसरो की बातें सुनने और सुनाने का बहुत चाव था। जब उसने किरण को अपनी बातो में रुचि रखते देखा तो वह कलाभवन की सब बातें स्वयं ही उसको आकर बताने लगी। प्रमोद के विषय में, प्रमोद के पिता नटराज के विषय में और अनेको के विषय में समाचार जैसे वह जानती थी, बताती थी।

किरण को यह जान कर विस्मय हुआ कि कला के नाम के नीचे कितनी विषय-वासना कार्य करती है। एक दिन कोकिला बताने लगी, "कांचन कुमारी तीन दिन से लापता थी, आज उसका शव पद्मा के तट पर पड़ा मिला है।"

"ऐसा क्यो हुआ ?" किरण ने उसको कथा बताने में प्रोत्साहन देते हुए कहा।

कोकिला ने कथा सुना दी, "वह एक धनी महाजन की लडकी थी। उसका कोई भाई नहीं है। वह ही पिता के लाखों की स्वामिनी होने वाली थी। उसका विवाह एक अन्य महाजन के पुत्र से होने वाला था, परन्तु उसका प्रेम एक कलाभवन के मूर्तिकार से हो गया। कलाकार ने उसकी कई नग्न मूर्तियां बनायी हैं। एक दिन उसका मगेतर कलाभवन में उससे मिलने आया और अपनी होने वाली पत्नी की नग्न मूर्तियां कलाभवन के

प्रागणो में खडी देख, क्रोध से भर गया। उसने उसके साथ यह किया है।"

एक अन्य दिन उसने बताया कि प्रियमुख एक रात भर उसके द्वार के बाहर बैठा प्रेम की भिक्षा मागता रहा है। एक अन्य मूर्त्तिकार की कथा उसने बतायी। वह दस सहस्र रजत उसको केवल उसके नितम्बो का चित्र खेंचने का देने को कह रहा है।

किरण का प्रश्न था, "तो तुमने न क्यों कर दी है ?"

"मैं सुन्दरी प्रतियोगिता में भाग ले रही हू। उसमें मेरा और भी अधिक दाम पडेगा।"

"और यदि तुम उसमें श्रेष्ठ सिद्ध न हुई तो ?"

"यह हो नहीं सकता। मैंने अपने को दर्पण के सम्मुख खडे हो कर देखा है। मै समझती हू कि मुझ से सुन्दर लडकी ढूंढ कर लाना एक चमत्कार ही होगा।"

"हा, बहुत सुन्दर लडकी शायद सहस्रों दर्शको के सम्मुख नग्न होना पसन्द न करेगी।"

"तो उस सौन्दर्य का लाभ ही क्या हुआ। देखिये, मैं यदि प्रथम पाच में भी आ गयी तो चार-पाच सहस्र स्वर्ण तो पा ही जाऊगी और कहीं सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुई तो फिर कहना ही क्या है ?"

"पर तुमको लज्जा नहीं लगेगी, जब दर्शक तुम्हारे कुच और अन्य गुह्य अग देखेंगे ?"

"लज्जा ढोंग ह। कुरूप स्त्रियों ने अपनी कुरूपता को छुपा कर रखने के लिये एक पाखड बना रखा है। सब जीव जन्तु निर्वस्त्र घूमते रहते हैं, तो मनुष्य ही क्यों इस प्रकार छुप-छुप कर रहता है ?"

"परन्तु इससे वासना को उत्तेजना जो मिलती है ?"

"जिनको मिलती हैं वे मूर्ख हैं। मुझको स्वय कभी उत्तेजना अनुभव नहीं होती।"

"तो तुमने किसी के सम्मुख नग्न हो कर देखा है ?"

"प्रियमुख ने मुझको कई वार छुप कर और अब तो कई वार ऐसे

भी देखा हूं, वह मूर्ख कई बार मुझ को देखकर व्याकुल हो उठता है और मैं, जब वह मेरे समीप आने लगता है, तो लात मार कर दूर कर देती हू ।"

"तुमको इस में आनन्द आता है क्या ?"

"आनन्द तो लात खाने का उसको भी आता ही है । यदि न आता होता तो पुन मेरे दर्शन करने की अभिलाषा क्यों करता ? प्रत्येक पक्ष के समाप्त होने पर वह मुझको देखने के लिये कहता है, 'कोकिला देवी ! मैं देखना चाहता हूँ कि इन दिनो के अभ्यास से तुम्हारे अंगो में सौन्दर्य और बढा है या नहीं ।' मैं कहती हू, 'हा । देखो और सत्य-सत्य बताना और यदि मुझको तुम्हारी उगली भी छू गयी तो लात खाओगे ।"

"वह मान जाता है । मेरे अग प्रत्यग का निरीक्षण करता है और फिर प्रेम से विह्वल हो मुझसे आलिगन की इच्छा करता है । कभी यत्न भी करता है तो नृत्य से चपल हुई मेरी टांगो से ठोकर खाता है और औंधे मुख जा गिरता है ।"

"मुझ को भय है, कोकिला ! कि तुम्हारा भी कहीं वही अत न हो, जो काचन कुमारी का हुआ है ?"

"मैंने उसको वचन दिया है कि यदि मैं सर्वश्रेष्ठ निर्वाचित हुई तो एक रात उसको अनुगृहीत करूंगी ।"

"सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का तो विवाह हो जावेगा न ?"

"मैं जानती हू, परन्तु मूर्खों से, जो सौन्दर्य को धन से क्रय करते हैं, धोखा खेलना अनुचित नहीं है ।"

मन की ऐसी भयंकर अवस्था होने का ज्ञान पाकर किरण काप उठी । वह इससे किसी अच्छे परिणाम की आशा नहीं करती थी । उसने कोकिला की इस मनोवृत्ति को बदलने का प्रयत्न किया । उसने कहा, "कोकिला बहन ! ससार में दस धर्म है और पाच पाप हैं । धर्म करने के लिये होते हैं । धृति, दमन, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, शौच, बुद्धि युक्त व्यवहार, विद्या, सत्य और क्रोध के पालन से पुण्य फल प्राप्त होता है और काम, क्रोध, लोभ,

मोह, अहकार का आचरण पाप का भागी बनाता है।"

कोकिला हस पड़ी। उसने कहा, "महाराज कुमारदेव ने भाई का राज्य छीन लिया। क्या हुआ है ? उसने एक क्रीतदासी को महारानी बना लिया है ! क्या कर लिया है किसी ने उसका ? यह सब भीरु जनो की बातें है। देखिये किरण जी ! मै आपको प्रगतिशील काल का धर्म बताती हू। सुख प्राप्त करना प्रत्येक प्राणी का अधिकार है। जो भी इस सुख-प्राप्ति में बाधा खड़ी करता है, वह अनधिकार चेष्टा करता है। हमारे युग का धर्म है सब जियो, सब खाओ, सब आनन्द भोग करो। एक सबके लिये हो और सब एक के लिये हों।"

किरण विस्मय में कोकिला का मुख देखती रह गयी। उत्ताल बाबा की शिक्षा इससे विपरीत थी। उसका कहना था कि धर्म व्यक्ति और समाज का पथ-प्रदर्शक है। धर्म-पालन में कितना भी कष्ट हो, सहन करना चाहिये। वास्तविक सुख समाज की उन्नति से ही प्राप्त होता है। वह सुख क्षण-भगुर होता है जो दूसरो को दु ख देकर प्राप्त हो। दूसरों में धर्म विरुद्ध आचरण ही विरोध के योग्य है।

जिस दिन कोकिला से बातचीत हुई वह मनमें इतना दु ख अनुभव करने लगी थी कि रात भर सो नहीं सकी। यदि कोकिला उसके स्थान पर होती तो कुमारदेव विष का ग्रास हो चुका होता। श्वेताग अवन्ति पर राज्य करता होता। यहा के बदी-गृह बदियों से भर गये होते।

वह कलाभवन को घूर का ढेर समझने लगी थी। कोकिला से प्राय कलाकारो के काले चिट्ठे सुन चुकी थी। उसके मन में कलाभवन के लिये भारी श्रद्धा थी, परन्तु इस वातावरण में किसी के भी कल्याण की आशा वह नहीं कर सकती थी। इस विचार के आते ही वह काप उठी।

रात भर मनन करने पर उसको इस भवन में, इस नगर में और इस राज्य में रहने से ग्लानि होने लगी। अत में उसने अपने जीवन का महान् निर्णय लिया। उसने अपना शेष जीवन जप-तप, ध्यान में लगाने का निर्णय कर लिया।

इस समय उसके पास मनोज कुमारदेव का सदेश लेकर आया। कुमारदेव उससे दूसरा विवाह करना चाहता था। किरण अपना निर्णय ले चुकी थी। उसका आचार्य भूदेव की नीति पर भी विश्वास नहीं रहा था। वह समझती थी कि इस राज्य में रह कर आत्मोन्नति सम्भव नहीं।

एक दिन बहुत सुबह, ब्रह्ममुहूर्त्त से भी पूर्व, वह चुपचाप पजों के बल चलती हुई, आगार से निकल, भवन की सीढियो से उतर, सोये हुए द्वारपाल के पास से निकल, जनशून्य मार्ग पर जा खडी हुई। वह उस नगर से अदृश्य हो जाना चाहती थी और अपना जीवन-मार्ग ढूँढने के लिये महर्षि वामदेव जी के पास जाना चाहती थी। इस कारण पूर्व की ओर चल पडी।

नगर के प्रहरियों ने कहीं-कहीं रोका। उन्होने पूछा, "अरी औरत! कहा से आ रही हो?"

किरण ने उस नगर में उचित प्रतीत होने वाला उत्तर दिया, "प्रेमी की शैया से।"

"ओह! भाग्यशालिनी हो।" प्रहरी मुस्करा कर कहते।

"और कहा जा रही हो?"

"अपने पति के घर।"

"भगवान् तुम्हारा भला करे।"

"हा भैया, तुम्हारा भी भला हो।"

इस प्रकार ऐसे उत्तर देती हुई, जो उस समय की उज्जयिनी में स्वाभाविक ही प्रतीत होते थे, वह नगर के द्वार की ओर चलती गयी। नगर-द्वार खुला था। प्रहरी खड़े थे। प्रहरियो के नायक ने पूछा, "कहा जा रही हो गोरी?"

"अपने गाव को।"

"एक रात और यहीं रह जाओ न?"

"वीर! तुम्हारी प्रेमिका गाली देगी।"

"हां। ठीक कहती हो, परन्तु वह तुम-जैसी सुन्दर नहीं।"

"तो यह मेरा दोष है क्या?"

"नहीं देवी! यह तुम्हारा गुण है। किसी राजा-महाराजा के घर जाओ तो सोने से लाद देगा।"

"वहीं जा रही हू। मेरी चिन्ता न करो।"

इस प्रकार नायक को विस्मय करते छोड, वह द्वार से निकल गयी। किरण सूर्य निकलते तक, पूर्व की ओर चलती हुई नगर से अढाई कोस दूर नदी के तट पर जा पहुची। वहां एकान्त देख बैठ गयी। थोडा विश्राम कर शौचादि से निवृत्त हो, नदी में स्नान कर, कपड़े पहन समीप किसी गाव की खोज में चल पड़ी। एक कोस भर और चलने पर वह एक गांव में पहुची। किसी ठहरने योग्य स्थान की खोज में पूर्ण गांव में घूम गयी। गाव के मध्य में एक मन्दिर था। उसमें एक पाठशाला भी थी। इस स्थान को अपने ठहरने के लिये उचित न मान वह गाव के बाहर की ओर चल पडी। वह किसी गृहस्थ के घर में ठहरना नहीं चाहती थी। वह अपना नाम-धाम तक बताना नहीं चाहती थी। वहा उसको अपना परिचय झूठ अथवा सत्य कुछ तो देना ही पडेगा। वह वहा जाकर विश्राम करना चाहती थी, जहा उससे पूछने वाला कोई न हो। इसी कारण वह किसी एकान्त मंदिर की खोज में थी।

गाव के बाहर, बस्ती से कुछ दूर, उसको एक निर्जन मंदिर दिखाई दिया। मन्दिर एक ऊंचे चबूतरे पर बना था। चबूतरा मंदिर से दस-दस हाथ चारो ओर आगे को बढा हुआ था। मन्दिर में एक मुख्य आगार था, जिसका द्वार पूर्वाभिमुख था। किरण चबूतरे पर चढ़ गयी और इसको निर्जन पा, वहा विश्राम करने के विचार से देखने लगी। मुख्य आगार का द्वार तो पूर्व की ओर था और इस आगार के उत्तर, दक्षिण और पश्चिम में कई अन्य आगार बने थे। मुख्य आगार में लिंग की स्थापना थी। आगार के बाहर एक बैल की, श्रद्धा-भक्ति से लिंग की ओर देखते हुए, पत्थर की मूर्त्ति बनी थी। आगार में लिंग पर पुष्प और जल चढा देख किरण को यह विचार आया कि कोई अभी पूजा कर गया है। उसने यह देखन के लिये कि वहा किसी का निवास है या नहीं, दूसरे आगार देखने आरम्भ कर दिये। सिवाय एक के शेष सब आगारों के द्वार खुले हुए थे और

उनमें चटाई बिछी होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। बंद आगार बाहर से कुंडे से और उस पर ताले से बंद था। उसने इस स्थान को अपने विश्राम करने के लिए उपयुक्त मान वहां एक दिन और एक रात ठहरने का विचार कर लिया। वह चबूतरे के एक कोने पर बैठ गयी और अपने भविष्य के विषय में विचार करने लगी।

महर्षि वामदेव के विषय में वह बहुत किम्वदन्तियां सुन चुकी थी। यद्यपि आचार्य भूदेव वामदेव की विचारधारा को ठीक नहीं समझता था, इस पर भी वह वहां जाकर उनसे इस विषय पर राय लेना चाहती थी। विचार करते करते उसको नींद आने लगी और वह वहां चबूतरे पर ही लेटी और सो गयी।

बैल गाडी की गडगडाहट के शब्द से उसकी नींद खुली। उसने देखा कि कुछ लोग एक बैलगाडी पर बहुत सा सामान लादे हुए आ रहे हैं। इस समय सूर्य पश्चिम की ओर प्रस्थान कर चुका था। तीसरा प्रहर हो गया था, उसको भूख लग आयी थी और वह उन लोगों से पूछ कर, गांव में जाकर भोजन का प्रबन्ध करना चाहती थी।

: ६ :

बैल गाडी पर बडे-बडे बर्तन और मिट्टी के मटके तथा खाने पीने का सामान लदा हुआ था। कुछ स्त्री-पुरुष उस गाड़ी के साथ थे। गाडी मन्दिर के पिछवाड़े में जा कर खड़ी हो गयी। किरण अभी भी अपने स्थान पर बैठी यह देख रही थी।

गाड़ी के साथ आये स्त्री-पुरुषों ने सामान गाड़ी से निकाल कर मंदिर के पिछवाडे की ओर से चबूतरे पर ला कर रख दिया और परस्पर विचार-विनिमय करने लगे।

इस समय कुछ लोग बीस-पचीस मिन-मिनाते छागों को गले में रस्सी बांधे वहां ले आये। वे भी बैल गाडी के पास एक पेड से बांध दिये गये। इसके पश्चात् और भी लोग आये और उधर ही चले गये, जिधर बैल गाड़ी खड़ी थी।

किसी ने किरण को चौंतरे पर बैठे देख लिया। परिणाम स्वरूप एक प्रौढावस्था का व्यक्ति उसके सामने आकर बोला, "जय शिव।"

किरण ने आंख उठा कर उस व्यक्ति की ओर देखा। वह काला धूर्त, सिर पर मोटे घुंघराले बालों वाला पुरुष था। जब उसने किरण की आंखों की ओर देखा तो मन्त्रमुग्ध हो देखता ही रह गया। अकस्मात् उसके मुख से निकल गया "शिवं सुन्दर। शिव सुन्दर।"

किरण उसके भाव को न समझती हुई उसके मुख पर देखती रही। उस भद्र पुरुष ने कहा, "देवी! कहा से आयी हो?"

"उज्जयिनी से।" किरण ने आखे नीचे करते हुए उत्तर दिया।

"किधर जा रही हो?"

"पूर्व की ओर।"

वह मुस्कुराया और बोला, "क्या मरने की ठान रखी है। इस ओर बीहड जगल है, वहाँ सिह और व्याघ्र नर-रक्त के प्यासे घूमते रहते हैं।"

"मैंने श्री वामदेव जी के आश्रम मे जाना है।"

यह सुन वह व्यक्ति खिलखिला कर हस पड़ा। किरण विस्मय में उसका मुख देखने लगी। उस भद्र पुरुष ने पूछा, "तुम्हारे पति कहा हैं?"

"पति नहीं है।"

"विधवा हो?"

"नहीं! विवाह ही नहीं हुआ।"

"तो वेश्या हो। वामदेव के यहा तुम्हारी खूब पटेगी।"

"मैं अपना भविष्य सुधारने जा रही हू।"

"क्या वहा से भगवान् समीप पड़ते हैं?"

"जैसे इस मन्दिर से समीप पड़ते हैं।"

वह काला पुरुष समझ गया कि किसी बुद्धिशील स्त्री से वातचीत कर रहा है। इस पर भी उसने कहा, "मेरा अभिप्राय इस मन्दिर से ही है। यह शिव मदिर है और आज महा शिवरात्रि उत्सव है। भगवान्, देवन के देव, महादेव की उपासना होगी। सो जो कुछ वहा प्राप्त करने जा

रही हो, वह यहा भी मिलेगा।"

किरण ने दात बदलने के लिये और वादविवाद में न पड़ने के लिये कहा, "देवता ! मुझको भूख लगी है ।"

"अभी मिलेगा भोजन ! परन्तु अभी के निर्वाह के लिये ही तनिक खाना। रात्रि को महाभोज होने वाला है।"

किरण चुप रही। वह गया और शीघ्र ही दो युवतियां पलाश के पत्तो से बने दोने में मिठाई लिये हुए आयीं। साथ ही मट्टी के कुल्हड में जल भर लायीं। उन्होने सब सामान किरण के सामने रख दिया और स्वय उसकी सुन्दर आखो को देखती हुई, सामने चौकड़ी लगा बैठ गयीं। एक स्त्री ने पूछा, "क्या नाम है देवी !"

"रम्भा।" किरण ने अपना परिचय न देने के लिये कह दिया।

"तो पुरोहित जी ठीक कहते थे कि शिव की पत्नी गौरी हो।"

"मेरा विवाह नहीं हुआ।" किरण ने ध्यान मिठाई की ओर लगाये हुए कहा।

"तो हो जावेगा। आज रात रम्भा और शिव का विवाह होगा।"

"पर वे तो कैलाश पर रहते है ?"

"रात हम उनका आह्वान करेंगे। वे प्राय. आते हैं। रम्भा को देख तो वे भागे आवेंगे।"

किरण ने मुस्कराते हुए कहा, "तो कैलाश सूना हो जावेगा।"

"बहुत भोली हो रम्भा ! उनके लिये सहस्रो, लाखो स्थानों पर एक ही समय में प्रकट होना कौन कठिन बात है ? वे सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी साक्षात् भगवान है।"

"तो वह रात यहा आयेंगे ?"

"रम्भा से विवाह करने।"

"पर मैं तो विवाह करना नहीं चाहती।"

"भगवान् को देखोगी तो फिर न नहीं कर सकोगी। उनकी इच्छा का विरोध तो हो ही नहीं सकता।"

"तुम लोग कौन हो ?"

"हम सब इस, वह जो सामने दिखाई देता है, गाव के रहने वाले है। हम सब शाक्त है और लिंगायतवादी है। इस मन्दिर के पुरोहित श्री निकुम्भ जी है। वही जो आपके लिये मिठाई लेने गये थे। मदिर बनवाने के लिये गाव के सेठ भद्रक जी ने पैसा दिया है। हम सब उपासक है।"

किरण मिठाई खा चुकी थी। उसने पेट भर जल पिया और कुछ विश्राम करने की इच्छा प्रकट की। मिठाई लाने वाली स्त्रियो मे से एक ने कहा, "यात्रियो के लिये ये आगार है। आप एक में जाकर ठहर सकती है।"

"मुझको महर्षि वामदेव जी के आश्रम में जाने के लिये किस ओर जाना चाहिये।"

"हम नहीं जानतीं। पुरोहित जी ही बता सकेंगे।"

किरण ने रात भर वहा ठहरने का निश्चय कर लिया और जाने से पूर्व, पुजारी जी से पूछ लेने का विचार कर, एक आगार मे चटाई के ऊपर जा कर बैठ गयी। वे स्त्रिया उसको आराम करने को छोड गयीं। किरण चटाई पर लेटते ही फिर सो गयी। इस बार तो पेट में भोजन जाने की मस्ती मात्र थी और वह अधिक काल तक सोई नहीं रह सकी।

जब उसकी नींद खुली तो लगभग एक सौ स्त्री-पुरुष वहा एकत्रित हो गये थे। सब नये-नये वस्त्र पहिने हुए थे। किरण समझ गयी कि वे महा-शिवरात्रि के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये है। वह अभी चटाई पर बैठी सुस्ती दूर कर ही रही थी कि पुरोहित निकुम्भ उसके पास आया और सामने बैठ गया। जब किरण ने उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा तो वह बोला, "भगवती रम्भा ! आज उत्सव में सम्मिलित होने वाले स्त्री-पुरुष आप से ही भगवान् शिव का आह्वान कराना चाहते है।"

"पर मै तो इस विषय में कुछ नहीं जानती।"

"आपको इस विषय में कुछ नहीं करना होगा। आप को हम रम्भा

के योग्य शृङ्गार करवायेंगे और एक उच्च आसन पर बैठायेंगे। तब हम भगवान् का कीर्तन करेंगे। यदि वे प्रसन्न हो जायेंगे तो आवेंगे और आपके साथ आसन पर विराजमान होंगे। उस समय हमारी उपासना आरम्भ होगी। आप रम्भा होने से उपासना का परम फल पावेंगी।"

"पर मैं रम्भा अथवा गौरी नहीं हूं। मैं रम्भा बनना नहीं चाहती। मैं आपका उत्सव दूर से ही देख प्रसन्न हूंगी।"

"यदि आपकी इस काम से अरुचि है तो महादेव प्रसन्न नहीं होंगे और वे नहीं पधारेंगे।"

"इसीसे मैं कहती हूं कि किसी अन्य शक्तिनी को यह पद प्रदान कीजिये। वह मन से रम्भा अथवा उमा बनना चाहेगी और भगवान् उस पर प्रसन्न हो कर आपको दर्शन देंगे।"

पुजारी निरुत्तर हो चला गया। तब उत्सव पर आये जनों की सभा हुई और उनमें से पांच स्त्रियों का एक शिष्ट-मंडल किरण को समझाने आया उन स्त्रियों में से एक, जो सबसे सुन्दर प्रतीत होती थी, कहने लगी। "रम्भा देवी! तुम्हारे माता-पिता ने जब तुम्हारा नाम रम्भा रखा होगा, तब तुम्हारी जन्म-कुंडली ही से तो रखा होगा।"

"यह मेरा नाम मेरे माता-पिता ने नहीं रखा।"

"तो किसने यह नाम दिया है तुमको?"

"मैंने स्वयं रख लिया है।"

"तभी तो हम कहने आयी हैं कि नाम रखने से क्या बनता है। वैसा स्वयं बनने का भी तो यत्न करो।"

"अच्छा, यह बताओ।" किरण ने उस स्त्री की आंखों में देखते हुए पूछा, "कभी ऐसा उत्सव तुम पहले भी मना चुकी हो।"

"हां! ये पुजारी जी यहां पांच वर्ष से आये हुए हैं और प्रति मास कृष्ण चतुर्दशी को यहां उपासना का आयोजन करते हैं। वर्ष में महा शिव-रात्रि को भी आयोजन होता है। आज वही वार्षिक आयोजन है।"

"आपमें से कोई बता सकती है कि इन आयोजनों में क्या होता ?"

"यह बताने की हमें आज्ञा नहीं। हां, इतना बता सकती हूं कि सूर्यास्त होते-होते हम भगवान् के सामने उपस्थित होंगे और भजन-कीर्तन आरम्भ होगा। कीर्तन तब तक चलता रहता है, जब तक भगवान् दर्शन नहीं देते। जब वे दर्शन देते हैं तो हम गद्गद् प्रसन्न हो जाते हैं।"

"आपमें से किसी ने उनके दर्शन पहिले भी किये है ?"

"महा शिवरात्रि को तो सदैव उनके दर्शन होते हैं।"

"उनके दर्शन के पश्चात् क्या होता है ?"

"जो कुछ होता है वह अवर्णनीय है। हमारे पास भाषा नहीं जिससे उसका वर्णन कर सकें।"

"फिर भी, क्या होता है ?"

"इतना आनन्द अनुभव होता है कि हमारे रोम-रोम पुलकित हो उठते हैं।"

"देखो बहन जी! मैं रम्भा तो बनूंगी नहीं। हा, यदि आप स्वीकृति दें तो एक दर्शक के रूप में साधारण भक्तिनी बन आपका उत्सव देखने की इच्छा हो रही है।"

उस स्त्री ने बहुत आग्रह किया, परन्तु किरण ने स्वीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि वे पाचों-की-पाचों भक्तो की सभा में लौट गयीं। वहा इस बात पर वादविवाद हुआ कि यह अपरिचित स्त्री इस गोपनीय पूजा में सम्मिलित की जाये अथवा नहीं। सब पुरुष उसको सम्मिलित करने के पक्ष में थे और स्त्रिया कुछ पक्ष में थीं कुछ विपक्ष में। अत में पुजारी ने कहा, "भगवान् के सम्मुख जाने की, यदि उसकी इच्छा हो तो मना नहीं करना चाहिये। यदि वह उनका अनादर करेगी तो त्रिशूलधारी अपने मान की रक्षा करने में स्वय योग्य हैं।"

इस पर एक मध्य आयु की स्त्री खडी होकर कहने लगी, "भगवन्! मेरी भी सुन लीजिये। यह पूजा तो हमारी विषय-वासना की प्रवृत्ति को ढाप कर रखने के लिये है। हम जो इसमें सम्मिलित हो कर, इसका स्वाद ले चुके हैं, वे इस पर्दे को उतार कर फैंकना नहीं चाहते। इस पर भी

जब हम पूजा से वापिस जाते हैं तो यह अनुभव करते हैं कि कुछ भूल कर चले हैं।

"इससे मैं यह कहती हूं कि यह अपरिचित लड़की हमारा सब पोल खोल दे सकती है, और राज्य की ओर से हम दंड के भागी हो सकते हैं।"

इसका उत्तर पुजारी ने दिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमती चौध-राइन अब वृद्धावस्था में पदार्पण कर रही हैं। उनको काम देवता अब कष्ट नहीं देते। इस कारण उनको अब भगवान् महादेव की रक्षा की आवश्यकता नहीं रही।

"मैं इतना निवेदन कर देना चाहता हूं कि मनुष्य एक अति दुर्बल प्राणी है। यदि यह अपनी पूर्ण शक्ति कामदेव से झगड़ा करने में व्यय कर दे तो फिर जीवन कार्य के लिये शक्ति नहीं रह सकती। इस कारण यदि वासना में लिप्त होना पाप है तो भगवान् की रक्षा हम को उस पाप से बचा लेगी।

"रहा राज्य की ओर से दंड का भागी होना। यह तब तक नहीं होगा जब तक हमारा यह काम धर्म के नाम पर है। राज्य ने अपना धर्म छोड़ दिया है। वह धर्म-निरपेक्ष बन गया है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म पालन की स्वतन्त्रता है।"

इस पर एक वृद्ध पुरुष कहने लगे, "यह असुरों का एक धर्म है। हम आर्य हैं। हमको यह धर्म स्वीकार नहीं करना चाहिये।"

इस पर एक युवक बोल उठा, "काका ! इस धर्म का पालन करने के लिये किसी को विवश नहीं किया जाता। यदि आपको यह पसन्द नहीं तो ठीक है। आप इसमें मत सम्मिलित हो।"

"मैं तो केवल अपनी स्त्री के कहने पर आता हूं।"

"तो उसको भी मत आने दो।"

पुजारी ने इस विवाद को बढ़ने से रोकने के लिये उस वृद्ध महाशय से कहा, "काका पुण्यपाद ! तनिक विवेक से कार्य लोगे तो सब बात स्पष्ट हो जावेगी। तुम पैंसठ वर्ष की आयु के हो। तुम्हारी स्त्री तीस वर्ष की है। तुम वृद्ध हो, वह युवा है। उसकी इच्छा युवा पति पाने की बनी रहती है।

इसकी पूर्ति के दो मार्ग थे। एक तो वह चोरी-चोरी युवा पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करती। दूसरा मार्ग हमने इस उपासना के रूप में उपस्थित किया है। अब तुम दोनो परस्पर विचार कर लो कि कौन मार्ग तुम को पसन्द है।

"मेरा मत है कि यह लिगायतवाद चोरी-चोरी व्यभिचार से अच्छा है।"

पुण्यपाव चुप कर गया। उसकी स्त्री लीला दूर खडी एक युवक से बातचीत कर रही थी। पुजारी के कहने पर सब लीला की ओर देखने लगे और हसने लगे।

७

किरण ने राज्य प्रासाद में दासियों से, असुरो के इस शैव मत के विषय में सुन रखा था। उसको सूचना यह थी कि ये लोग मनुष्य शक्ति का सत्व यौन शक्ति को मानते है और उसके प्रयोग को भी वे भगवान् के अर्पण कर परम पुण्य प्राप्त करना चाहते है। परन्तु वे यह किस प्रकार करते है, वह नहीं जानती थी। उसके मन में यह इच्छा जाग पडी थी कि वह देखे कि ये लोग क्या करते है।

वह अपने आगार से उठ कर बाहर चली आयी। मन्दिर के बाहर चबूतरे पर भक्त लोग सभा कर रहे थे। इस कारण वह मन्दिर के पिछवारे में चली गयी। वहा उन छागों का, जो लाये गये थे, मास भूना जा रहा था। घी और मसालो की सुगन्ध उस भुन रहे मास में से आ रही थी। दूसरी ओर बडे-बडे मटको से छोटे-छोटे घडो में सुरा बदली जा रही थी। मन्दिर के उस द्वार में से, जो बंद था, चांदी के बर्तन निकाले जा रहे थे किरण इतना धन इस मन्दिर में संचित देख चकित रह गयी। बर्तन धो-पूँछ कर साफ कर दिये गये थे। चमचमाते हुए थाल, कटोरे, कलसे, गगरे, सब उठा-उठा कर मन्दिर के नीचे ले जाए जा रहे थे। चौतरे में एक द्वार खोल कर लोग बर्तन और खाने का सामान उसके भीतर ले जा रहे थे। किरण समझ गयी कि यह भोजन वहा पर जाकर खाया जायगा।

मंदिर के चारों ओर घना जंगल था। इस जगल के कारण यह मन्दिर

गाव से छुपा हुआ प्रतीत होता था। जंगली वराह और भेड़िये तो दिन के समय भी घूमते दिखाई देते थे। सियार भुन रहे मांस की गंध से आकर्षित होकर भोजन के चारों ओर परिक्रमा काटने लगे थे। सेवक लाठियां लिये उनको दूर रखने में लगे हुए थे।

किरण यह देख विचार कर रही थी कि इतने भोजन इत्यादि का क्या होगा? इस समय पुजारी निकुम्भ उसके समीप आकर बोला, "देवी! क्या देख रही हो?"

"वह देखो।" किरण ने सियार की ओर उंगली कर कहा, "भूखा सियार अपनी जिह्वा चला-चलाकर अपनी भूख का परिचय दे रहा है।"

यह सब सामग्री इतनी स्वादिष्ट है कि इनको देखने मात्र से पेट में कुतर्-कुतर् होने लगती है।"

"यह पूजा आपकी विचित्र है कि इसमें इतना कुछ खाने को और सुरा पीने को एकत्रित कर रखी है।"

"आप देखेंगी कि इन ढेरों पदार्थों का कहीं पता भी नहीं चलेगा।"

"मैं आपकी पूजा में विघ्न नहीं डालना चाहती। मैं तो इस प्रकार की पूजा में विश्वास नहीं रखती।"

"देखिये रम्भा देवी! आपने हमारी प्रार्थना, पूजा की रानी बनना, स्वीकार नहीं की। इस कारण हमने यह पदवी तो कजरी को दे दी है। पिछले वर्ष भी तो उन्होंने ही पूजा का नेतृत्व किया था।"

"यह कजरी इस गाव की रहने वाली है क्या?"

"नहीं। इस गांव के एक महाजन हैं। दो वर्ष हुए वे इसको उज्जयिनी से पाच सौ स्वर्ण पर मोल लाये थे। वह गाव में सबसे सुन्दर मानी जाती है। इस पर भी आपके सामने तो वह कुछ भी गणना नहीं रखती।"

किरण मन में विचार करती थी कि पांच सौ स्वर्ण की एक लक्ष स्वर्ण के सामने क्या गणना है। पश्चात् सचेत हो बोली, "कजरी का निर्वाचन कर आपने अच्छा ही किया है। कौन है कजरी?"

"अब यहा नहीं है। वह नीचे के आगारों में शृङ्गार करने चली गयी है। यह वही है जो आपके पास आने वाली पाच स्त्रियो में सबसे सुन्दर थी।"

"यदि मेरे यहा एक आगार में सो रहने से आपके काम में बाधा पडती हो तो मैं गाव में चली जाती हू।"

"इसकी आवश्यकता नहीं। यदि आप मेरा आग्रह मानें तो रात पूजा में सम्मिलित हो जाइये। मैं आपका बहुत आभारी रहूगा।"

"आपके साथी तो आपत्ति नहीं करेंगे ?"

"नहीं करेंगे। मैं पुजारी होने के नाते आपको निमंत्रण देता हू।"

किरण चुप रही। निकुम्भ ने इसको स्वीकृति मान लिया और धन्यवाद कर दिया। इस पर पुजारी ने कहा "आपने मन्दिर देखा है क्या।"

"हा। वह जहां आप लोग बैठे सभा कर रहे थे।"

"नहीं। रात की पूजा वहा नहीं होगी। ठीक उस स्थान के नीचे, जहा वह मन्दिर है, वास्तविक पूजा स्थान है। उसको वही मार्ग जाता है जहां से भोजन पदार्थ नीचे जा रहे हैं। आइये आपको कजरी का शृङ्गार हो रहा दिखायें।"

किरण निकुम्भ के साथ चबूतरे के आगारो की ओर चल पडी। चबूतरे के नीचे के द्वार में प्रवेश करते ही नीचे उतरने को सीढ़िया थीं। वे सीढिया एक सुरग में पहुच जाती थीं। सुरग एक आगार में पहुचती थी। इसमें अग्नि शिखाओ से प्रकाश हो रहा था। किरण ने अनुमान लगाया कि पूर्ण चबूतरो और चबूतरो पर के आगारो के नीचे वह अगार फैला हुआ है इस आगार की छत्त बीसियो खम्भो पर खडी थी। इसमें स्वच्छ वायु के आने का प्रबन्ध था।

पुजारी किरण को उस आगार के एक कोने में ले गया। वहा कजरी कौशेय वस्त्र और भूषण पहिने खडी थी। कुछ स्त्रिया उसके मस्तक और कपोलो पर चित्रकारी कर रही थीं। उसके पास एक काले-कलूटे रग का बहुत भारी शरीर का पुरुष खडा उनको ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देख

रहा था। पुजारी को आते देख उस युवति ने मुस्कुराते हुए कहा, "देवी रम्भा पर यदि इतना परिश्रम किया जाता तो आजकी उपासना अद्वितीय हो जाती।"

"तुम क्या कुछ कम हो कजरी देवी? तुम हमारे गाव की विभूति और शिव शम्भु की प्रिया हो।" निकुम्भ ने कहा।

किरण ने उस श्रृङ्गारयुक्त युवति को देखा तो अनुभव किया कि वह सुन्दर है, चतुर है और इस उपासना में उत्साह रखती है। इससे उसने कहा, "बहन! जब तक पूजा-पाठ में मन न लगे तब तक पूजा का फल नहीं लगता।"

"यह तो है।" उस भैंसे समान मोटे महाशय ने कहा। हीरक जड़ित अंगूठियां और कौशेय वस्त्र, जो वह पहिने हुए था, यह प्रकट कर रहे थे कि यह कोई धनी-मानी पुरुष है। उस व्यक्ति ने किरण की ओर देख कर कहा, "पर देवी की आंखों से तो भक्ति रस टपक रहा प्रतीत होता है।"

"हां।" पुजारी ने कहा, "परन्तु अभी देवी जी को अपने अंतरात्मा की प्रेरणा का ज्ञान नहीं हुआ। इसी कारण मैंने इनको आज उत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया है। यह इन्होंने स्वीकार कर लिया है। यदि भगवान् की कृपा हुई तो आज ही इनकी कुंडली खुल जायेगी और ये मोक्ष का मार्ग पा जायेंगी।"

इस पर उस धनी महाशय ने कहा, "रम्भा देवी! कितना धन लेकर तुम इस गाव में रहना स्वीकार करोगी?" वह किरण को एक वेश्या मात्र ही समझता था।

"मैं कल यहां से जाने का विचार रखती हूं।"

पुजारी ने कहा, "ये कजरी के स्वामी भद्रक जी हैं। ये रत्न बेचने का काम करते हैं। जब से श्रीमान् कुमारदेव यहां के महाराज हुए हैं, तब से इनके व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है और इस समय महाराज से भी अधिक धन के स्वामी हैं। यदि आप इनका निमंत्रण स्वीकार करलें तो ये दो लक्ष, तीन लक्ष स्वर्ण देने को तैयार हो सकेंगे।"

"इनको तो सुन्दरी प्रतियोगिता में जाना चाहिये। वहां सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की नीलामी होगी।"

भद्रक हंस पड़ा। उसने कहा, "जो नग्न हो वहां नाचेगी वह सुन्दरी भी होगी क्या ? इसमें मुझको संदेह है। इस समय तो मैं एक अद्वितीय वस्तु अपने सामने देख रहा हूं।"

किरण हंस पड़ी। फिर कुछ विचार कर बोली, "अद्वितीय वस्तुओं की उपलब्धि बहुत कठिन होती है।"

"सो तो मैं जानता हूं, देवी!"

"मैं कल जा रही हूं। नदी पार कर पहिले महर्षि के आश्रम को जाने का विचार है।"

"क्या रखा है उस नास्तिक के पास ?"

"उनकी महिमा तो सर्वत्र विस्तार पा रही है।"

"वैसे तो चार्वाक और उनके पर-शिष्य नाकेश की भी ख्याति फैल रही है। केवल ख्याति होने से कोई सत्य है, नहीं कहा जा सकता।"

"तो सत्य क्या है ?"

"जो अजर है, अमर है, शिव है, सुन्दर है। महर्षि के दर्शन करोगी तो मन में ग्लानि उत्पन्न होगी।"

"आपने दर्शन किये हैं उनके।"

"प्रति वर्ष उनके आश्रम में जाता था। इधर पांच वर्ष से जबसे निकुम्भ जी का आगमन हुआ है, वहां जाने की रुचि नहीं रही।"

"तो यह वाद, आपको अधिक सत्य प्रतीत हुआ है ?"

"देवी! देखो और फिर समझने का यत्न करो। निस्सन्देह इसके समान सत्य तुमको अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा।"

"देखूंगी।"

"और विचार भी करियेगा," पुजारी निकुम्भ ने कहा, "मनुष्य दुर्बलताओं का पुंज है। जीवन के विकट संघर्ष में ये दुर्बलतायें मनुष्य को घेरे रहती हैं। इनसे परास्त होते समय पराजय को भी



भगवान् के चरणों में अर्पण करने से, आत्मा पतित न होकर उन्नत होती है। जहां चार्वाकीय नास्तिक पतन को मनुष्य की प्रकृति मान उसमें मल के कीड़ों के समान लोट-पोट होने में आनन्द मानते हैं, वहां लिंगायतवादी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को अवगुण मानते हुए, इनसे निर्लेप रहने का यत्न करते हैं। कभी इसमें लिप्त होने पर अपनी दुर्बलता को भगवान् के चरणों में अर्पण करना ही ठीक समझते हैं।

"उदाहरण के रूप में यह कजरी गांव की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। इसके सौन्दर्य को देख इसकी प्रशंसा करने की इच्छा गांव के प्रत्येक युवक में उत्पन्न होती रहती है। यदि तो इसके दर्शन भगवती गौरी मानकर करते हैं तो हमारे में श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होती है और आत्मा में पतन के स्थान उत्थान होता है।"

किरण मुस्कराई और चुप कर रही। इस पर भद्रक ने कहा, "कहां जायेंगी आप इतनी लम्बी यात्रा पर? सब व्यर्थ है। प्रत्येक प्रकार का शारीरिक सुख और आत्मा की शान्ति आपको इस पद्मा के किनारे मिल सकती है। कहो तो एक अति सुन्दर भवन नदी के किनारे आपकी इच्छानुसार निर्माण करवा दूं?"

किरण ने केवल यह कहा, "अति धन्यवाद है आपका, परन्तु मैं अभी अपने विचार बदलने में कोई कारण नहीं देखती।"

किरण ने देखा कि कजरी पूर्ण शृंगार कर चुकी है। वह जब तैयार हो गयी तो पुजारी ने समीप खड़े सेवक को कहा, "दुंदुभि बजा दो।"

सेवक ने बाहर जा, द्वार के बाहर रखे नगारे पर चोब से चोट करनी आरम्भ कर दी, "डब डब डम् डब डब डम॥"

चारों ओर ढोल-नगारे बजने लगे। भूगर्भ आगार में, प्रकाश अधिक कर दिया गया। अग्नि शिखायें तीव्र कर दी गयीं और भक्त लोग, जो अभी तक मंदिर के बाहर खड़े थे, भीतर आकर चक्राकार बैठने लगे। पुजारी ने किरण को अपने समीप बैठने का निमन्त्रण दे दिया। जब वह बैठ गयी, तो भद्रक किरण के दूसरी ओर आकर बैठ गया। स्त्री-पुरुष सब मिले-

जुले बैठे थे। जब वे सब बैठ गये तो पुजारी ने खड होकर देवता का आह्वान आरम्भ कर दिया। बहुत ही मधुर स्वर में और लय के साथ निकुम्भ ने स्तोत्र गाने आरम्भ किये।

"नमो रुद्राय नीलाय भीमाय परमात्मने ।
कपर्द्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नम ॥
वृषभध्वजाय सोमाय सोमनाथाय शम्भवे ।
दिगम्बराय भर्गाय उमाकान्ताय वै नम ॥"

जब निकुम्भ ये स्तोत्र पढ़ रहा था, श्रोतागण इसके मधुर स्वर के साथ-साथ सिर हिला कर मन का आनन्द प्रकट कर रहे थे। किरण देख रही थी कि उपासको के मुखो पर एक विशेष प्रकार का ओज प्रकट होने लगा है। किरण भी आखें मूंद कर इस गान का आनन्द लेने लगी। पुजारी आह्वान में लीन था और स्तोत्र पढ रहा था—

"महेश्वराय व्याघ्राय पशूना पतये नम ।
पुरान्तकाय सिंहाय शार्दूलाय मखाय च ॥
मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने ।
कामान्तकाय बुद्धाय बुद्धीना पतये नम ॥"

चक्राकार बैठे हुए उपासकों के मध्य में रिक्त स्थान कुछ विशेष रूप से प्रकाशमय दिखाई देने लगा। किरण को ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी आखें कुछ भारी हो रही हैं। उसने उनको यत्न से खोला और उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने इस विशेष प्रकार से प्रकाशित स्थान को देखा।

पुजारी गा रहा था —

"दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थायाविनाशिने ।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नम ॥
गजासुरमहाकालायान्धकासुरभेदिने ।
नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च ॥
भक्तप्रियाय देवाय ज्ञात्रे ज्ञापव्ययास च ।
महेशाय नमस्तुभ्य महादेव हराय च ॥

अब तक किरण को भी अनुभव होने लगा था कि पुजारी के गान में प्रभाव है। पहिले तो उसे अपने शरीर में एक प्रकार की शान्ति व्याप्त होती प्रतीत हुई, परन्तु फिर धीरे-धीरे उसको अपने शरीर में से ऊष्मा निकलती प्रतीत होने लगी। इस सब समय पुजारी का मधुर स्वर चल रहा था।

"त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदांगाय नमो नमः।
अर्थाय चार्थरूपाय परमार्थाय वै नमः ॥"

किरण का पूर्ण शरीर भनभनाने लगा था। उस भूगर्भ-आगार में पुजारी की दृढ ध्वनि ऐसी गूंज रही थी कि उसके शरीर का स्नायु-मंडल स्पन्दन करने लगा था। एकाएक 'हर-हर-महादेव' का जय घोष हुआ और किरण ने यह देखने के लिये आंखें खोल दीं कि कौन नवीन बात हो गयी है। उपासको के मुख से 'जय शिव ! जय शिव !' उच्चारण होने लगा था। किरण ने देखा कि उस स्थान पर से, जहां प्रकाश विशेष हो रहा था, एक लिंग प्रस्फुटित हो रहा है। उसने बहुत ध्यान से देखा। भूमि में हलचल मच रही थी और उसमें से एक बृहत् आकार वाला लिंग निकल रहा था। किरण मन्त्रमुग्ध हुई उसकी ओर देखती रह गयी। सब उपासक, 'जय शिव ! जय शिव !' कह रहे थे।

इस समय पुजारी ने पुन स्तोत्र गाने आरम्भ कर दिये। पुजारी गा रहा था। उपासक 'जय शिव ! जय शिव !' कह रहे थे। लिंग बडा ही बडा होता जाता था। बढ़ता-बढता लिंग मनुष्य की ऊंचाई जितना हो गया और वह उसी अनुपात में मोटा भी होता गया। यह लिंग ज्योतिर्मय था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसमें से प्रकाश निकल रहा है। अब सब उपासक उसकी ओर श्रद्धा-भक्ति से देखने लगे। पुजारी अभी भी स्तोत्र पढ रहा था—

"अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः।
श्मशानवासिने भूयो नमस्ते कृत्तिवाससे ॥
शशांकशेखरायेशायोग्र भूमिशयाय च।
दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्गं व्यव साक्षिणे ॥

लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः ।
नमः प्रलयरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः ॥"

इस समय किरण को ऐसा भास हुआ कि लिंग की ज्योति इतनी उग्र हो गयी है कि उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है । किरण ने आखें वद कर लीं ।

पुजारी ने और भी ऊंचे स्वर से कहा—

"नमो नमः कारणकारणाय मृत्युंजयात्मभवस्वरूपिणे ।
श्री त्र्यंबकायासितकण्ठशर्व गौरीपते सकल मंगलहेतवे नमः ॥"

एक क्षण ठहर कर निकुम्भ ने जयघोष किया, "श्री त्र्यम्बक त्रिपुरारि भगवान् महादेव की जय ।"

"देवन् के देव ! हम सब दास दर्शनार्थ सेवा में उपस्थित हैं । दर्शन दो भगवन् ! दर्शन दो भगवन् ! ! नाथ दर्शन दो ! ! ! "

सब लोग 'जय हो ! जय हो ! ' का उच्चारण करने लगे । किरण ने आखें खोलीं तो उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा । उसने देखा कि साक्षात् शिव, जटाजूटधारी, त्र्यम्बक, सर्पमालाधारी, सिंहचर्म कटि से लपेटे हुए, हाथ में चमचमाता त्रिशूल लिये हुए, लिंग के स्थान पर खड़े दिखाई दिये । लिंग अदृश्य हो गया था । शिव के पीछे एक श्वेत पत्थर का आसन बना था ।

जब उपासक जय-जयकार कर रहे थे, शिव ने अपना दाहिना हाथ उठाया और सब को आशीर्वाद दिया । इस आशीर्वाद को पा उपासक शान्त हो गये । पुजारी ने एक चान्दी के लोटे में दूध और जल ले पाद-प्रक्षालन किया और तब साष्टांग नमस्कार किया । इस समय कजरी उठी और उसने भी वैसे ही नमस्कार किया । शिव आसन पर बैठ गये । पुजारी ने पाद-प्रक्षालन का जल लेकर सब को पिलाया और कजरी भगवान के समक्ष नृत्य करने लगी ।

: ८ :

जब कजरी नृत्य कर रही थी, कुछ लोग आगार के भिन्न-भिन्न कोनों में सुगन्धित धूप तथा सामग्री जलाने लगे थे। इन सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध मस्तिष्क को चढने लगी। किरण देख रही थी कि इस सुगन्धित वायु से नींद नहीं आ रही, प्रत्युत शरीर में स्फूर्ति आ रही है। एक विशेष बात उसको अनुभव होने लगी। उसका अपना चित्त नाचने को करने लगा। उनके पाओं में कुत-कुती होने लगी थी। एक बार तो वह उठ खडी भी हुई। फिर अपने को संयम में लाकर वह अपने आसन पर बैठ गयी। उसको विस्मय हुआ कि उसको किसी ने देखा नहीं। सबके सब कजरी के नृत्य में लीन थे।

कजरी का नृत्य समाप्त हुआ तो भगवान् ने कजरी को अपनी गोदी में आ बैठने का निमन्त्रण दे दिया। कजरी लपक कर देवन् के देव महादेव की गोदी में जा बैठी। उसके वहा जाते ही, साप जो भगवान् के शरीर पर मालायें बनाये हुए थे, अथवा जो भुजाओं पर भुज दंड बनाये हुए थे, फूंकार मार फन खडे कर, क्रोधभरी आखों से दो-दो जिह्वा निकालने लगे, परन्तु शीघ्र ही शान्त हो फन फेंक सो गये।

उपासक, "जय शंकर, जय महादेव, जय उमा, जय गौरी," का मंत्र उच्चारण करने लगे। पुजारी ने उपासको के मन्त्र उच्चारण को नियम में लाने के लिये, स्वर सहित ऊचे स्वर में गाना आरम्भ कर दिया।

"जय जय शकर, जय महादेव। जय जय शकर, जय महादेव ॥
गौरी पति जय, जय महादेव। जय जय शकर, जय महादेव ॥

इस प्रकार कीर्तन होने लगा। इस कीर्तन में पुजारी निकुम्भ सबका नतृत्व कर रहा था। कजरी महादेव के गले में बाह डाल, प्रेम भरी दृष्टि से देख रही थी और भगवान् का बाया हाथ कजरी की पीठ के पीछे से उसको पकड़ कर अपनी बायीं जाघ पर बैठाये हुए था। वह हाथ उस के बायें वक्ष पर जा पहुचा था।

कजरी कभी अपना सिर भगवान् के विशाल वक्ष स्थल पर रख, आखें मूंद मुग्ध हो जाती थी और कभी आखें उठा कर मुख की ओर देखती थी। जिस विह्वलता से वह देखती थी, उतनी ही व्यग्रता से भगवान उसको अपने अग के साथ लगाते थे।

इस समय मद्य का वितरण होने लगा। भगवान् के सम्मुख एक स्वर्ण-पात्र में अर्पण की गयी। कजरी ने वह पात्र लेकर भगवान् के मुख से लगा दिया। उसने दो घूंट पीये और पश्चात् उसमें से कजरी ने पिया। इसके पश्चात् उपासकों ने चान्दी के पात्रों में मद्य पीनी आरम्भ कर दी। लोग मद्य पीते जाते थे और कीर्तन करते जाते थे।

"जय जय शकर जय महादेव। गौरी पति हरि जय महादेव ॥
नीलकठ हरि गरल पिये। जय जय शकर जयमहादेव ॥"

वायु मडल में सुगन्धित धूप का धूँआ, सुरभित मद्य की मादकता, कजरी की कामभरी दृष्टि और भगवान् का उसे बार-बार अक से लगाना, वायु मडल को कामुकता से भर रहा था। इस समय भुना मास बाटा जाने लगा। चान्दी के थालों में मास वितरण होने लगा। जब उपासक मास खाते, तो उनको प्यास लगती और प्यास को बुझाने के लिये मद्य का सेवन करते, तो भूख लगती। इस प्रकार खाते और पीते जाते थे। पुजारी खडा उच्चस्वर में कीर्तन करता जाता था। एकाएक कजरी भगवान की गोदी से उतर आयी और पुन नृत्य करने लगी। जब नृत्य करते-करते थक गयी तो उसने थकावट दूर करने के लिये मद्य से भरा पात्र मुख से लगाया और पी गयी। पश्चात् पुन नाचने लगी। इस बार तो किरण से नहीं रहा गया। वह खडी हो नाचने लगी। वह भी एक-दो प्याले मद्य पान कर चुकी थी और सुगन्धित धूँआ अभी भी उसके मस्तिष्क को चढा हुआ था। उसे नाचता देख एक बार तो कजरी भी ठहर गयी। भगवान् उसको नाचते देख आसन से उतर आये और किरण का हाथ पकड कर नाचने लगे। इस समय मृदग, दुंदुभि, वीणा इत्यादि वाद्य भी ध्वनित होने लगे। तत्ने प्रथम भद्रक ने चौधरायन का हाथ पकड कर नृत्य में साथ देना

आरम्भ किया। उनके नाचने के साथ, 'जय जय शकर, जय महादेव' की ध्वनि उठ रही थी।

किरण के साथ दो-तीन चक्कर काट भगवान् ने उसको छोड दिया और कजरी को पकड़ लिया। किरण अकेले ही नाच रही थी। उसे अकेले देख भद्रक ने चौधरायन का हाथ छोड किरण का हाथ पकड कर नाचना आरम्भ कर दिया। इस समय महादेव ने कजरी का अलकृत मुख चूमकर उससे आलिगन किया। अब अन्य स्त्री-पुरुष भी उठ कर तालिया बजाते हुए नाचने और जय-जय शकर गाने लगे।

किरण की मद्य-सेवन से उन्मत्तता उत्तरोत्तर बढती जाती थी और वातावरण के सम्मोहनी प्रभाव में आकर वह भी समीप के पुरुषों को चूमने और आलिगन करने लगी। उसके मन में कुछ ऐसा बैठ गया था कि लिग से महादेव का प्रकट होना अवश्य दैवी घटना थी। उस समय उसको यही समझ आया कि ससार की साक्षात् महा शक्ति आगार में विद्यमान हो नृत्य कर रही है। वही शक्ति उसमें भी विद्यमान है और उसके मन को नाचने पर विवश कर रही है।

उसको प्यास लगी तो उसने मद्य पी ली और इससे तो और भी उसका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार लुप्त हो गया। नाचते-नाचते भद्रक उसके सामने आ गया। दोनो फिर नाचने लगे। भैंसे के समान हृष्ट-पुष्ट भद्रक और कमल नाल के समान मृदुल किरण परस्पर विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे थे। भद्रक को भूख लग गयी तो उसने किरण को पकड कर बैठा दिया। दोनो मास-भक्षण करने लगे और मद्य पान करते गये।

इस पर जब वे नाचने के लिये उठे तो किरण ने अनुभव किया कि उसके पाद तले से भूमि चक्कर काटने लगी है। इस समय उसके पूर्ण शरीर में उत्तेजना की अग्नि भडक उठी। उसके वक्षोज में स्पन्दन होने लगा। जब भद्रक उससे आलिगन करता तो उसे कुछ शान्ति अनुभव होती। जब वे नृत्य करते तो पुन आलिगन करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती। वह भूल गयी थी कि वह अन्य अनेकों के सामने है और उसको यह कामुकता

कजरी कभी अपना सिर भगवान् के विशाल वक्ष स्थल पर रख, आखें मूंद मुग्ध हो जाती थी और कभी आखें उठा कर मुख की ओर देखती थी। जिस विह्वलता से वह देखती थी, उतनी ही व्यग्रता से भगवान उसको अपने अग के साथ लगाते थे।

इस समय मद्य का वितरण होने लगा। भगवान् के सम्मुख एक स्वर्ण-पात्र में अर्पण की गयी। कजरी ने वह पात्र लेकर भगवान् के मुख से लगा दिया। उसने दो घूंट पीये और पश्चात् उसमें से कजरी ने पिया। इसके पश्चात् उपासको ने चान्दी के पात्रों में मद्य पीनी आरम्भ कर दी। लोग मद्य पीते जाते थे और कीर्तन करते जाते थे।

"जय जय शकर जय महादेव। गौरी पति हरि जय महादेव ॥
नीलकठ हरि गरल पिये। जय जय शकर जयमहादेव ॥"

वायु मडल में सुगन्धित धूप का धूंआ, सुरभित मद्य की मादकता, कजरी की कामभरी दृष्टि और भगवान् का उसे बार-बार अक से लगाना, वायु मडल को कामुकता से भर रहा था। इस समय भुना मांस बाटा जाने लगा। चान्दी के थालों में मास वितरण होने लगा। जब उपासक मास खाते, तो उनको प्यास लगती और प्यास को बुझाने के लिये मद्य का सेवन करते, तो भूख लगती। इस प्रकार खाते और पीते जाते थे। पुजारी खडा उच्चस्वर में कीर्तन करता जाता था। एकाएक कजरी भगवान की गोदी से उतर आयी और पुन नृत्य करने लगी। जब नृत्य करते-करते थक गयी तो उसने थकावट दूर करने के लिये मद्य से भरा पात्र मुख से लगाया और पी गयी। पश्चात् पुन: नाचने लगी। इस बार तो किरण से नहीं रहा गया। वह खडी हो नाचने लगी। वह भी एक-दो प्याले मद्य पान कर चुकी थी और सुगन्धित धूंआ अभी भी उसके मस्तिष्क को चढा हुआ था। उसे नाचता देख एक बार तो कजरी भी ठहर गयी। भगवान् उसको नाचते देख आसन से उतर आये और किरण का हाथ पकड कर नाचने लगे। इस समय मृदग, दुंदुभि, वीणा इत्यादि वाद्य भी ध्वनित होने लगे। सबसे प्रथम भद्रक ने चौधरायन का हाथ पकड कर नृत्य में साथ देना

आरम्भ किया। उनके नाचने के साथ, 'जय जय शंकर, जय महादेव' की ध्वनि उठ रही थी।

किरण के साथ दो-तीन चक्कर काट भगवान् ने उसको छोड दिया और कजरी को पकड़ लिया। किरण अकेले ही नाच रही थी। उसे अकेले देख भद्रक ने चौधरायन का हाथ छोड किरण का हाथ पकड कर नाचना आरम्भ कर दिया। इस समय महादेव ने कजरी का अलकृत मुख चूमकर उससे आलिगन किया। अब अन्य स्त्री-पुरुष भी उठ कर तालिया बजाते हुए नाचने और जय-जय शंकर गाने लगे।

किरण की मद्य-सेवन से उन्मतता उत्तरोत्तर बढती जाती थी और वातावरण के सम्मोहनी प्रभाव में आकर वह भी समीप के पुरुषों को चूमने और आलिगन करने लगी। उसके मन में कुछ ऐसा बैठ गया था कि लिग से महादेव का प्रकट होना अवश्य दैवी घटना थी। उस समय उसको यही समझ आया कि ससार की साक्षात् महा शक्ति आगार में विद्यमान हो नृत्य कर रही है। वही शक्ति उसमें भी विद्यमान है और उसके मन को नाचने पर विवश कर रही है।

उसको प्यास लगी तो उसने मद्य पी ली और इससे तो और भी उसका अपनी इन्द्रियो पर अधिकार लुप्त हो गया। नाचते-नाचते भद्रक उसके सामने आ गया। दोनो फिर नाचने लगे। भैंसे के समान हृष्ट-पुष्ट भद्रक और कमल नाल के समान मृदुल किरण परस्पर विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे थे। भद्रक को भूख लग गयी तो उसने किरण को पकड कर बैठा दिया। दोनो मास-भक्षण करने लगे और मद्य पान करते गये।

इस पर जब वे नाचने के लिये उठे तो किरण ने अनुभव किया कि उसके पाद तले से भूमि चक्कर काटने लगी है। इस समय उसके पूर्ण शरीर में उत्तेजना की अग्नि भडक उठी। उसके वक्षोज में स्पन्दन होने लगा। जब भद्रक उससे आलिगन करता तो उसे कुछ शान्ति अनुभव होती। जब वे नृत्य करते तो पुन आलिगन करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती। वह भूल गयी थी कि वह अन्य अनेकों के सामने है और उसको यह कानुकता

वहाँ प्रकट नहीं करनी चाहिये। वह विवश थी । उसके मन में अस्पष्ट सी स्मृति थी कि वह अवन्ति के महाराज की सहवासिन रही है अथवा श्वेताग जैसे सुन्दर पुरुष को अस्वीकार कर चुकी है। इस समय तो स्वप्नवत् वहा के वातावरण के प्रभाव में वह समझती थी कि वह ठीक ही कर रही है। ऐसा होना ही है। इससे अपने को रोकने की चेष्टा अपनी शक्ति से वाहर पाती थी।

इस समय कजरी अन्य उपासकों के साथ नृत्य करने लगी थी और भगवान् महादेव भी अन्य उपासिकाओं के साथ नाचने लगा था। नाचते-नाचते उसकी दृष्टि किरण पर गयी तो वह अपनी साथिन उपासिका को छोड़ किरण की ओर आया, परन्तु पूर्व इसके वह उस तक पहुच सके निकुम्भ ने किरण को पकड़ कर अपनी ओर खेंच लिया। किरण, भद्रक को चौधरायन से गाढ आलिंगन करते देख, किसी पुरुष से आलिगन करने के लिये उतावली हो उठी। निकुम्भ उसकी इच्छा को समझ गया और उसने भी उससे गाढ आलिंगन किया और उसके अधरों का चुम्बन किया। इस समय भगवान् पुजारी के पीछे आ खड़े हुए। पुजारी ने उसको भगवान् के लिये छोड देने के स्थान उसका पुन आलिंगन किया और धकेल कर कुछ दूर ले जाना चाहा। महादेव उनके पीछे जाने लगा। पुजारी की इच्छा किरण को अपने साथ रखने की थी। किरण भी कामुकता में सज्ञा खो चुकी थी और एक क्षण भी पुजारी से पृथक् होना नहीं चाहती थी।

इस प्रकार जाते-जाते वे तीनो आगार के एक दूर कोने में चले गये। पुजारी ने अभी तक मद्यपान नहीं किया था। इस कारण उसने उस कोने में पहुच महादेव से कहा, "आप की उमा उधर घूम रही है।"

"मेरी रम्भा यह है ।"

"इस पर दया करो भगवन् !"

"नहीं, इसे छोड दो।"

पुजारी ने चाहा कि झगडा न किया जाये। उसने किरण को अपने से पृथक् कर महादेव की ओर धकेलना चाहा। किरण इस समय सर्वथा

असयत हो चुकी थी। वह महादेव के पास जाने के स्थान एक अन्य युवक का हाथ पकड़ कर नाचने लगी। पुजारी ने महादेव का ध्यान किरण से हटाने के लिये स्वय उसका हाथ पकड कर नाचना आरम्भ कर दिया, परन्तु महादेव इस प्रकार भुलावे में नहीं आया। उसने निकुम्भ को एक ओर कर, किरण के साथी को किरण से पृथक् करने का यत्न किया। इस समय उसका पांव अटक गया। एक उपासिका, जिससे कोई नृत्य नहीं कर रहा था और जो बैठी मास खा रही थी, महादेव के मार्ग में आ गयी थी और वह ठोकर खा गिर पड़ा था। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि किरण ने उसको धक्का दे दिया है। उसने लडखड़ाते पगो से उठकर, त्रिशूल उठाकर कहा, "अरी पापिन ! ले।"

इतना कह उसने त्रिशूल फेंक दिया। यह फेंका तो किरण पर गया था पर लगा किरण से नृत्य करने वाले युवक को। त्रिशूल उसकी पीठ की ओर से गर्दन में धस गया। वह युवक तुरत मृत्यु का ग्रास हो गया। उसकी गर्दन से रक्त का झरना फूट पडा और किरण के मुख और केश रक्त से भीग गये।

जब किरण का साथी, किरण के हाथों से निकल भूमि पर जा गिरा और उसकी आखो के सामने उसके मुख पर गिरा लाल रक्त आया तो उसको एक दम चेतनता हुई। वह मृत्यु को सामने खड़ा देखने लगी। उसका मदात्यय लोप हो गया।

महादेव उस युवक की हत्या कर एक क्षण के लिये ठिठक गया, फिर किरण की ओर लपका। निकुम्भ चैतन्य था। उसने यह हत्या होती देखी और भय से काप उठा। उसने महादेव को पकड़ कर अपने आसन की ओर ले जाने का यत्न किया। महादेव आसन पर जाने के स्थान त्रिशूल, मृत शव से निकाल, किरण पर चलाने का विचार करने लगा।

इसमें किरण को समय मिल गया। वह अपने जीवन को भय में देख भाग खडी हुई। वह उस भूगर्भ आगार से निकल बाहर खुले में आ गयी। वहा की स्वच्छ वायु के लगने से और आगार में के सुगन्धित

धूँए के अभाव में वह तीव्र गति से चैतन्य प्राप्त करने लगी।

इस समय भीतर का कोलाहल सुरग के द्वार के समीप आता दिखाई दिया। उसने समझा कि वे उसको पकडने आ रहे है। इस बात का विचार आते ही वह मन्दिर के समीप वाले जगल में भाग खडी हुई, और देखते-देखते अघेरे में विलीन हो गयी।

पुजारी निकुम्भ, जिसने अभी तक मद्य की एक बूंद भी नहीं पी थी, परिस्थिति को भली भाति समझता था। वह महादेव को दूसरों के पास छोड किरण को समझाने के लिये उसके पीछे-पीछे बाहर आया। जब वह सुरग से बाहर निकला तो श्वेत कपडों में कोई व्यक्ति जगल के अधकार में विलीन हो गया। वह उसके पीछे गया परन्तु अघेरे में जगल में बहुत दूर तक नहीं जा सका।

: ६ :

सूर्योदय से पूर्व ही किरण नदी के तट पर पहुच, अपने कपडों और केशो में से रक्त के चिह्न मिटा, अपने विषय में सोचने लगी। रात की घटना में उसको एक बात विशेष प्रतीत हुई। ज्यों ही उस धूप का धूंआ उसने सूँघा था, तब ही उसकी विचार शक्ति लोप होने लगी थी। उसके मन का उसकी इन्द्रियों पर नियत्रण छूट गया था। उसकी स्मरण शक्ति शिथिल हो गयी थी। जहा उसके मन की दृढता लोप हो गयी थी वहा उसमें कामुकता भडक उठी थी।

वह यह स्मरण कर कि उस समय वह किसी पुरुष से सहवास करने के लिये कितनी व्याकुल हो उठी थी, आश्चर्य करने लगी थी। इस धूंए से निकलते ही किस प्रकार उसके मन का अधिकार इन्द्रियो पर लौट आया था, विस्मय करने की बात थी। रात की घटना उस को एक भयानक स्वप्न प्रतीत हुई।

सूर्य की प्रथम किरण के दर्शन करते ही वह उठ खडी हुई और नाव के घाट का पता करने चल पडी।

कुछ दूर जाने पर घाट मिल गया। नौका किनारे पर खड़ी थी। कुछ स्त्री-पुरुष उसमें बैठे थे। किरण भी उसमें चढ़ एक ओर बैठ गयी। वहां पर बैठे स्त्री पुरुष परस्पर ऊंचे-ऊंचे बात चीत कर रहे थे। एक प्रौढ़ावस्था का पुरुष कह रहा था, "कल्लू चमार का पुत्र अपने घर के बाहर मरा पाया गया है। सब गांव वहां एकत्रित हो रहा है। उसकी गर्दन पीछे से काट दी गयी है। कल्लू कह रहा था कि वह रात महा शिवरात्रि की पूजा करने मंदिर में गया था। प्रातःकाल जब वह शौच के लिये जा रहा था तो उसका पांव अटक गया। उसने प्रकाश किया तो अपने बेटे का ही शव देख व्याकुल हो वहीं बैठ गया। लोग कह रहे थे कि उसको त्रिशूल का घाव है।

एक और आदमी ने कहा, "तब तो यह, उस धूर्त पाखंडी शंकर का ही काम है। वह ही इन पूजाओं में महादेव का अभिनय किया करता है।"

इस पर एक स्त्री जो किरण के समीप ही बैठी थी बोली, "तो काका! तुम भी इन की पूजा में सम्मिलित होते हो।"

वह पुरुष खिलखिला कर हंस पड़ा परन्तु फिर चुप कर गया। इस पर उस स्त्री ने फिर पूछा, "ये लोग क्या करते हैं इतनी मद्य और मांस से?"

"सब खाते और पीते हैं। शिव की आराधना करते हैं और.... और .....।"

वह कहता-कहता रुक गया। उसके मुख पर लाली दौड़ गयी। फिर कुछ सोच कर उसने कहा, "एक बात सत्य है कि शंकर महा दुष्ट है।"

"कल्लू को नगर में जाकर न्यायपति के सामने अपना अभियोग उपस्थित करना चाहिये।"

"कल्लू कह तो रहा था, परन्तु साक्षी कौन करेगा। वहां जितने जाते हैं सब नाक-कटों की मंडली की भांति अपने पाप छुपाने के लिये वहां का भेद नहीं खोलते।"

"पर काका! तुम तो कह दोगे।"

"मैं तो कल वहां नहीं गया। मैं अब दो वर्ष से वहां नहीं जाता।"

"तो इस हत्या की कोई साक्षी नहीं करेगा क्या?"

किरण, जो यह सब सुन रही थी, अनायास बोल उठी, "साक्षी मिल जायगी।"

सब उसका मुख देखने लगे। किरण को स्वय भी, अपने इस प्रकार वार्तालाप में हस्तक्षेप करने पर विस्मय हुआ। क्या वह साक्षी करने उज्जयिनी लौट कर आयेगी? वह नहीं चाहती थी कि रात की घटना को सबके सामने कहे, परन्तु अब बात मुख से निकल गयी तो निकल गयी। अब वह लौट नहीं सकती थी। इस कारण उसने विचार कर कहा, "हुत के पिता को कहना कि वह अपना अभियोग महामात्य भूदेव के सामने उपस्थित करे और साक्षी के लिये किरण देवी का नाम लिखा दे। किरण देवी अभी महर्षि वामदेव के आश्रम में मिल सकेगी।"

किरण देवी का नाम सुन सब अवाक् उसका मुख देखने लगे। कितनी ही देर तक चुप रहने पर उसी औरत ने, जो बात कर रही थी कहा, "किरण देवी क्या साक्षी देगी।"

"मैं समझती हू कि वह सब बात खोल कर कह देगी। वह बता सकेगी कि कल्लू के पुत्र की क्यो हत्या की गयी है।"

"तो वह वहा पर थी क्या?"

"अवश्य रही होगी। अन्यथा वह सब बात बता कैसे सकेगी।"

"हत्या करने वाले को पहिचान लेगी क्या?"

"अवश्य! पहिचान सकेगी।"

"तो वह तुम नहीं हो?" काका कहे जाने वाले पुरुष ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"मैं कैसे हो सकती हू? हा, मैं उसको जानती हू। वह अभी भी गाव में गुप्त रूप में ठहरी हुई है। मैं अभी-अभी उससे मिल कर आ रही हू।"

इस पर सब बैठे हुए किरण का मुख देखने लगे।

नौका वाला आया और दो-दो ताम्र नौका का भाडा एकत्रित करने लगा। किरण ने उसको एक रजत दे दी। नौका वाले ने शेष दे सकने में असमर्थता प्रकट की। उस पर किरण ने कहा, "तो शेष रखो। जब

लौटूंगी तो ले लूंगी।"

"कब तक लौटोगी देवी!"

"बता नहीं सकती।"

"तो यदि उस दिन भी मेरे पास शेष दाम न हुआ तो?"

"तो फिर जब जाऊंगी ले लूंगी।"

"तो बहुत आना-जाना होगा तुम्हारा?"

"यह तो नवका ही बना है और बना रहेगा।"

नौका वाले ने रजत अपनी धोती के छोर से बांध लिया और नौका चलाने लगा। यात्रियो ने पुन अपनी बातचीत आरम्भ कर दी। एक यात्री ने कहा, "कल्लू कहा करता था कि उसका बेटा शिव-पूजा में न जाया करे, परन्तु सेठ भद्रक की दासी उसको पकड ले जाया करती थी।"

"काका! मुझ को तो यह बदमाशी का अड्डा ही प्रतीत होता है। अब तो ब्राह्मणो की बहू-बेटिया भी इसमें सम्मिलित होने लगी हैं।"

"और नगर में क्या हो रहा है? यहा तो केवल कृष्ण चतुर्दशी को ही ये रगरलिया मनायी जाती हैं और वहा तो नित्य सायकाल पद्मा के घाट पर यही कुछ होता है। यहा तो मानसिक दुर्बलता मान शायद भगवान् से उसके लिये क्षमा याचना की जाती है, परन्तु वहा तो सब प्रकार के विघ्न तोड उच्छृखलता करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है।"

इस पर किरण के समीप बैठी स्त्री पुन कहने लगी, "काका! तत्वदर्शी की लड़की किशोरी नगर में विवाही गयी थी। वह अब वेश्या-वृत्ति करती है और उसका पति इस में उसकी सहायता करता है।"

"धन्य हो महाराज कुमारदेव! अब तो नवीन वेद लिखवाने की बात शेष रह गयी है।"

एक स्त्री ने किरण से पूछा, "क्या नाम है बहन! तुम्हारा।"

"रत्ना।"

"किस गाव से आ रही हो?"

"मैं उज्जयिनी की रहने वाली हू। अपने पति से दु खी हो घर से भाग आयी हू।"

वह स्त्री मुस्कराई और बोली, "भगवान् तुम्हारी सहायता करेगा। परन्तु यह किरण को तुम कैसे जानती हो?"

"किरण देवी महाराज की क्रीतदासी थी। आचार्य भूदेव के कहने पर महाराज ने उसको मुक्त कर दिया है। मैं उस देवी की सेविका थी।"

"वह तुम से अधिक सुन्दर है क्या?"

"मैं तो उसके जूते की भी तुलना नहीं रखती।"

"सत्य? मैंने तुम्हारे जैसी सुन्दर आंखें कभी नहीं देखीं।"

"मैं अपने विषय में तो जानती नहीं, तुम्हारे विषय में कह सकती हूँ कि तुमने बहुत कम स्त्रियो को देखा है। तभी मेरी आखों की इतनी प्रशसा करती हो।"

नौका नदी पार लग गयी। किरण ने पूर्व का मार्ग पकड़ा। नौका के सब यात्री उसको देखते रह गये। वह पुरुष जिसको सब काका कह कर सम्बोधन कर रहे थे, अपने साथ जाने वाली स्त्री से बोला, "बेटी! यह स्त्री ही किरण देवी प्रतीत होती है। अद्वितीय सुन्दरी है वह।"

किरण अब ठीक मार्ग पर थी। नदी से दो कोस के अन्तर पर वह एक गाव में पहुची। अब उसने किसी एकान्त के मन्दिर में जाने की भूल नहीं की। सीधे किसी निर्धन ब्राह्मण का आतिथ्य स्वीकार कर भोजनादि से निवृत्त हो मध्यान्ह-पश्चात् आगे चल पडी।

१०

कल्लू चमार को आशा नहीं थी कि उसके साथ न्याय होगा। इस कारण वह अपने पुत्र का दाह-सस्कार कर घर लौट आया। सायकाल नौका के यात्री गाव में लौटे तो उस स्त्री ने रम्भा की बात हुत के पिता को कही। कल्लू चमार को विश्वास नहीं आया और वह सेठ भद्रक के पास जाकर नौका में हुआ वार्तालाप सुनाने लगा। यह सुन कि रम्भा शायद

किरण देवी थी ,भद्रक को उसके हाथ से निकल जाने का बहुत शोक हुआ। परन्तु कल्लू को आचार्य भूदेव के पास जाने से रोकने के लिये उसने कह दिया, "भैया कल्लू ! किसी ने तुमको बहका दिया प्रतीत होता है। न तो रात कोई किरण देवी उपासना में सम्मिलित हुई थी और न कोई इस नाम की औरत गाव में आयी है। तुम्हारे बेटे की हत्या हम में से किसी ने नहीं की। वह कल जगल में वराह का आखेट करने गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका जगल के भीलो से झगडा हो गया है और किसी भील ने उसकी गर्दन में भाले से घाव कर उसको मार डाला है। पश्चात् उसको यहा छोड गये हैं।"

भद्रक ने अपनी सहानुभूति का प्रमाण देने के लिये उसको, पुत्र का क्रियाकर्म कराने के लिये पाच सौ रजत दिये। कल्लू यह धन पाकर, अपना शोक छोड अपने कामकाज में लग गया। गाव के लोग कल्लू को अभियोग चलाने के लिये नगर को न जाते देख गाव के एक ब्राह्मण तत्वदर्शी को जाकर बोले, "पडित जी ! आप ही कुछ करिये। इस प्रकार तो हमारा गाव में रहना कठिन हो जावेगा।" गाव वालों ने, जो नौका में किरण से बात कर आये थे, नौका वाली पूर्ण बात पडित जी से बतायी। इस पर पडित जी ने उज्जयिनी जाना स्वीकार कर लिया।

पंडित तत्वदर्शी को ससार में विषय-वासना की वृद्धि देख क्रोध चढ रहा था। उसकी अपनी लडकी के विषय में भी लोग कई प्रकार की बातें प्रचलित कर रहे थे। इससे वह आचार्य भूदेव से कह कर कम से कम अपने गाव में तो शिव के इस मदिर को बद करवा देना चाहता था।

अगले दिन वह गाव से उज्जयिनी में जा पहुचा। वह अपनी लडकी कशोरी के घर पहुचा तो घर सूना देखा। वह विस्मय में देखता रह गया। घर प्राय: खाली हो चुका था। वह घर में जा कर उसके सामान से रिक्त आगारो को देख रहा था कि उस का जमाई बाहर से आया और पडित जी को देख ऊँचे स्वर से हँसने लगा। तत्वदर्शी अपने जमाई को पागलो की भाति हँसते देख, उसके शान्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। जब

"कितनी श्राय थी उसकी ?"

"क्या जाने ! पाठशाला में पढाता था। कभी दाल है तो भाजी नहीं। कभी धोती मिली तो कुर्ती नहीं मिल सकी। विवाह के पश्चात् के पाच वर्ष में केवल एक जोडा जूता लेकर दिया था।"

"तो तुम उसको छोड कर चली श्रायी हो ?"

"हा, श्रौर क्या करती ? श्रापने तो मुझको उस भूखे-नगे के साथ बाध छोड दिया था। यदि मैंने यह बुद्धिमत्ता न की होती तो श्राज भी उसके जूठे बर्तन मसलती होती। वह निर्लज्ज न्यायालय में गया तो मैंने महामात्य से स्पष्ट कह दिया कि मैं उसके पास नहीं रहना चाहती, राज्य की घोषणा के श्रनुसार मुझको विवश कर उसके पास भेजना, मेरे साथ बलात्कार करना हो जावेगा। इस पर महामात्य ने पूछा कि मैं कितना खर्चा चाहती हूँ। मैंने बता दिया कि मैं दो सौ स्वर्ण प्रति मास चाहती हूँ। इतना वह दे नहीं सकता था श्रौर सेठजी ने दो वर्ष के लिये न्यायालय में जमा करा दिया। इस पर मुझ को यहा श्राने की स्वीकृति मिल गयी।"

तत्वदर्शी इस परिस्थिति से घबडा उठा। "किशोरी ! तुमने श्रपने विचार से ठीक ही किया है। मैं श्रब चलता हूँ।"—वह यह कह, वहा से चला श्राया।

पडित तत्वदर्शी महामात्य के द्वार पर जा पहुँचा। महामात्य राज्याभिषेक की तैयारी में व्यस्त था, परन्तु एक ब्राह्मण को द्वार से लौटाना ठीक न समझ उसने पडित जी को प्रतीक्षा करने को कह दिया। पडित तत्वदर्शी भी हठी श्रादमी था। वह श्रपने मन का समाधान किये बिना लौट जाना उचित नहीं समझता था। उसने श्रपने मन में निश्चय कर लिया था कि वह महामात्य से भेंट किये बिना नहीं जायेगा, चाहे उसको एक मास भर महामात्य के द्वार पर बैठना पडे।

उसी दिन, रात के दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर, उसको भीतर बुलाया गया। श्राचार्य भूदेव ने ब्राह्मण देवता का स्वागत कर पूछा, "क्या कष्ट

हैं देवता ?"

तत्वदर्शी ने कल्लू के पुत्र की हत्या का वृत्तांत वैसा ही बता दिया, जैसा उसको विदित था। पश्चात उसने कहा, "श्रीमान् ! इस घटना से गांव में आतंक छा रहा है।"

महामात्य ने पूछा, "आपका कल्लू के पुत्र से क्या सम्बन्ध है ?"

"भगवन् ! मैं उसके गाव का रहने वाला हूँ। गाव के लोग मुझे अपना पुरोहित मानते हैं। साथ ही मैं वहा की पाठशाला का अध्यापक हूं। वहा के रहने वालो के सुख-दुःख का उत्तरदायित्व, कुछ सीमा तक, मुझ पर भी है।"

"यह तो ठीक है, परन्तु देवता ! उस लडके का पिता तुम्हारे साथ क्यो नहीं आया ?"

"जिस व्यक्ति पर हत्या करने अथवा कराने का सदेह किया जाता है, उसने हुत के पिता को धन देकर यहा आने से रोक रखा है।"

"तो इसका यह अर्थ हुआ कि हुत के पिता का मुख बंद कर दिया गया है। तब तो गाव का कोई भी व्यक्ति साक्षी देने से इसी प्रकार रोक दिया जावेगा। फिर अभियोग कैसे चलेगा ?"

"एक साक्षी है, जो मेरे विचारानुकूल धन से खरीदा नहीं जावेगा। वह है किरण देवी। मैं समझता हूं कि वे उस पूजा में उपस्थित थीं।"

"कौन किरण देवी ?" भूदेव ने सतर्क हो पूछा।

"महाराज की क्रीतदासी, जिनको उन्होने, आपके कहने पर मुक्त कर दिया था।"

"कहा है वे ?" पडित भूदेव ने अपनी उत्सुकता को न छिपा सकने से पूछ ही लिया।

"मेरे ज्ञान के अनुसार वे महर्षि वामदेव जी के आश्रम को गयी है।"

"यह तो बहुत बड़ी बात होगयी है, पडित जी महाराज ! क्या किरण देवी साक्षी करने आवेंगी ? महर्षि वामदेव जी का आश्रम हमारे राज्य में नहीं है। अपने राज्य के बाहर से हम किसी को यहां आने पर

विवश नहीं कर सकते ।"

"इस पर भी यदि आप चाहेंगे तो मैं समझता हूं कि वे आने से न नहीं करेंगी । आप उनको पत्र लिख कर पूछिये तो ।"

"बहुत कठिन है ।"

"ठीक है महाराज ! परन्तु गाव वालो का क्या बनेगा ?"

"आप वहा अध्यापक हैं । आप यत्न कर लिंगायतवादियों को गाव से निकलवा क्यो नहीं देते ?"

"मेरी कौन सुनता है, श्रीमान् ?"

"विचित्र अध्यापक हैं आप ! यदि आपके कहने में इतना प्रभाव नहीं तो फिर हम क्या कर सकते है ?"

"मैं समझाता तो हूँ महाराज, परन्तु नगर से जो समाचार देहातों में जाते है, उनसे मेरे सब किये-कराये पर पानी फिर जाता है ।"

"तो पहिले नगर में ही समझाने का काम कर दीजिये न । देखिये, आज ही एक अभियोग आया था । एक निर्धन ब्राह्मण की पत्नी, धन के लोभ में अपने पति को छोड कर एक धनी सेठ के घर जा बैठी है ।"

"हा भगवन् ! सुना है । वह स्त्री इस पापी की अपनी ही लडकी है । मैं अभी उसके पास से होकर चला आ रहा हूँ । धर्म की हानि हुई है राज्य के करने से, और अब इसकी रक्षा भी तो राज्य के करने से ही हो सकेगी ।"

"मैं ऐसा नहीं समझता । सुनिये । कोई भी राज्य जनता की रुचि के विरुद्ध चल नहीं सकता । जनता की रुचि बनाना जाति के ब्राह्मण वर्ग का काम है । आप लोग तपस्याहीन होगये है । तभी आपके कहने में प्रभाव नहीं रहा । मेरा कहा मानो । जाकर जनता में त्याग, तपस्या, समाजहित और धर्म की भावना उत्पन्न करने का यत्न करो । जब एक भारी सख्या में लोग धर्मात्मा हो जावेंगे, तब राज्य उनकी सहायता से धर्म की स्थापना कर सकेगा । अभी तो यही धर्म है, जो यहा चल रहा है । मैं जानता हूँ कि लिंगायतवादी क्या करते है । मैं यह भी जानता हूँ

कि पद्मा नदी के तट पर नित्य रात को क्या होता है। परन्तु जनता यही चाहती है। राज्य जनता की रक्षा के लिए बनाया गया है। समाज ने राज्य को ब्राह्मणों की भांति उपदेश करने के लिए निर्माण नहीं किया।"

"पर आचार्य जी! राज्य ने जनता को पतन की ओर तो धकेला है न?"

"नहीं भगवन्! ब्राह्मणों में, तपस्या क्षीण हो जाने से, राज्य का विरोध करने की सामर्थ्य नहीं रही थी। यही कारण है कि जब श्वेनाग यहां ऊधम मचाने लगा तो किसी को यह समझ ही नहीं आया कि उसका विरोध करना चाहिये और यदि विरोध करने में अपने को होम करना पड़े तो कर देना चाहिये। क्या करते रहे हो अभी तक ब्राह्मण देवता? कहां गये वे लक्ष-लक्ष ब्राह्मण जो महाराज पालकदेव के काल में स्वर्ण मुद्राओं के ढेर-के-ढेर उठा कर ले जाते थे?

"देखो, मैं ऐसे ब्राह्मणों की खोज में हूं, जो देश को इस घोर अत्याचार के विरुद्ध खड़ा कर दें, जो जनता के मन में सत्य और न्याय के लिए आग लगा दें। जब कोई ऐसा व्यक्ति आयेगा और यदि उस समय मैं इस पद पर रहा तो उसकी विजय कराने में राज्य का सहयोग होगा।"

तत्वदर्शी आचार्य के इस वेदना से भरे वक्तव्य को सुन स्तब्ध रह गया। उसे चुप देख भूदेव ने कहा, "ब्राह्मण देवता! कुछ समझ सके हो? सत्यनिष्ठ ब्राह्मण के सम्मुख पाप, आंधी के सामने तिनके के समान, उड़ जाता है। जाओ, समझने का यत्न करो और अपनी, ब्राह्मण-कन्या मां की कोख की लाज रखने का यत्न करो।"

इतना कह भूदेव उठ खड़ा हुआ और जाने से पूर्व बोला, "मुझे तो अभी महाराज से एक अत्यावश्यक परामर्श के लिए मिलने जाना है। इतना विश्वास रखो कि किरण को मैं लिखूंगा और आपके शिव मंदिर में हुई हत्या की जांच कराने का यत्न करूंगा।"

तत्वदर्शी को आचार्य भूदेव का कथन शूल की भांति चुभ रहा था।

उसका कोई लडका नहीं था। एक लडकी किशोरी थी। उसके जीवन का मार्ग वह देख आया था। अपने कर्तव्य का मार्ग वह आचार्य जी से समझ आया था। केवल एक बात थी, जो वह समझ नहीं सका था। क्या उसकी विद्वत्ता और योग्यता देश में उथल-पुथल मचा सकने में सबल है ? आचार्य भूदेव ने कहा था कि तपस्या के क्षीण हो जाने से ही ब्राह्मण जाति पाप से जनता को बचा नहीं सकी। तो तपस्या चाहिये, तपस्या चाहिये। इसी प्रकार वह 'तपस्या चाहिये, तपस्या चाहिये' की रट लगाता हुआ अपने जमाई के घर जा पहुँचा। वहा उसका जमाई शोकग्रस्त भूखा ही लेटा हुआ था। वह भी उसके समीप जाकर लेट रहा। रात भर उसके मस्तिष्क में तपस्या की बात चक्कर काटती रही। अगले दिन वह वहा से निकला तो अपने गाव को जाने के स्थान जगल की ओर चल पडा। उसके हृदय में यह बात बैठ गयी थी कि तपस्या चाहिये।

सुन्दरी-प्रतियोगिता

: १ :

चिरकाल से प्रतीक्षा किया जा रहा काल आ पहुचा। महाराज कुमारदेव का राज्याभिषेक-उत्सव मनाने की तैयारी पूर्ण हो गयी। देश भर के गण्य-मान्य पुरुष-स्त्रियां, बाल-वृद्ध, जो उज्जयिनी में आ सकते थे आ गये। विदेशों से भी व्यापारी, कलाकार, उद्योगपति और राजाओं-महाराजाओं के प्रतिनिधि सहस्रों की सख्या में आये। भारत खंड में यह विख्यात हो रहा था कि उज्जयिनी के धर्म-मूर्त्ति महाराज पालकदेव के संन्यास ले लेने पर कुमारदेव का राज्याभिषेक हो रहा है।

उज्जयिनी की पाच लक्ष सेना की तीखी खड्ग ने कुमारदेव के राज्यारूढ होने में न्याय-अन्याय की विवेचना को बंद कर दिया और कुमारदेव की जय-जयकार कर दी। आस्तिकता और नास्तिकता के विवाद को जनता द्वारा कुमारदेव के समर्थन ने समाप्त कर दिया।

मध्य भारत के प्राय. सब देशों के राज्य-प्रतिनिधि, इस अवसर पर पधारे और उनके लिये रहन-सहन का विशेष प्रबन्ध किया गया। विदेशों से आये व्यापारियों के लिये पद्मा के पार एक पृथक् नगर बसाया गया। अवन्ति के नागरिकों के लिये पृथक् आवास बनाये गये। नवीन नगर और प्राचीन उज्जयिनी का सम्बन्ध नदी पर कई सेतु बांध कर दिया गया। दिन रात इन सेतुओं पर से लोग आते-जाते थे। इन दोनों नगरों की और इनसे बाहर की सड़कें भीड़ से ठसाठस भर रही थीं।

कोई घर नहीं था जिसमें दस-बीस अतिथि आकर न ठहरे हों। इस पर भी एक-दो लाख ऐसे भी थे जो रात को मार्ग-तटों पर सोने का विचार रखते थे।

राज्याभिषेक का उत्सव तीन दिन तक चलना था। पहिले दिन

राज्याभिषेक का कार्यक्रम था। दूसरे दिन सुन्दरी-निर्वाचन और प्रदर्शन का कार्य होने वाला था और तीसरे दिन क्रय-विक्रय और अन्य प्रतियोगिताएं होने वाली थीं। राज्याभिषेक के अंतिम दिन एक महान् भोज होने वाला था जिसमें दस सहस्र से ऊपर गण्यमान्य अतिथियों को निमंत्रण दिया गया था।

व्यवसाय-विभाग का प्रबन्ध सेठ राघव के हाथ में था। सुन्दरी निर्वाचन तथा प्रदर्शन का प्रबन्ध प्रमोद को सौंपा गया था और उद्योग तथा कलाओं में प्रतियोगिता का प्रबन्ध मनोज के हाथ में दे दिया गया था।

राज्याभिषेक का कार्यक्रम उस दिन ब्रह्म मुहूर्त में आरम्भ हुआ। नगर के पांच सौ से ऊपर मंदिरों में घंटे-घड़ियाल, दुंदुभि इत्यादि से नव राज्य और नवयुग का अभिवादन किया गया।

सूर्योदय पर अवन्ति के भावी महाराज की सवारी निकली। सवारी का आरम्भ पांच सौ नर-सिंहों के तुमुल नाद से हुआ। नर-सिंह बजाने वालों के पीछे पांच सौ नर्तकियों का एक स्वर, ताल और लय पर नृत्य करता हुआ समूह था। इनके पीछे इतने ही नट अपने करतब दिखाते जा रहे थे। अवन्ति के इतिहास में से ऐतिहासिक दृश्यों की झांकियां इनके पीछे पीछे थीं। पश्चात् बाहर से आये भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधि अपने अपने सुसज्जित रथों पर थे। इनके पीछे अवन्ति के प्रतिष्ठित गण थे। पश्चात् अवन्ति सेना के पांच सौ सर्वश्रेष्ठ सैनिक और अंत में एक रजत स्वर्ण आभूषणों से युक्त हाथी पर महाराज कुनान्देव और उनके बायीं ओर महारानी रेखा, दोनों बैठे जा रहे थे। महाराज के हाथी के पीछे एक हाथी पर आचार्य भूदेव और उसके साथ कुमार शतवीर बैठा था। सवारी के अंत में पांच सहस्र नग्न खड्ग लिये सैनिक अश्वों पर सवार चले जा रहे थे।

इस प्रकार पूर्ण सवारी एक कोस भर लम्बी उज्जयिनी के पूर्ण नगर में घूमी। एक प्रहर भर यह चलती रही।

दो वर्ष के पश्चात् नगर में कहीं-कहीं वेद-गान भी हुआ। यद्यपि

कुमारदेव इसको पसन्द नहीं करता था, परन्तु भूदेव के समझाने पर चुप कर रहा। आचार्य का कहना था कि कोई आपका कल्याण वेद-मन्त्रो द्वारा करना चाहता है तो आपको अस्वीकार करने में कोई कारण नहीं। सवारी का अत एक विशाल भवन के समक्ष हुआ। यह भवन अभिषेक के कार्य के लिये विशेष रूप से निर्माण करवाया गया था। बाहर और भीतर से इसको भली भाति सजाया गया था। बाहर पूर्ण भवन पर रजत का पतरा चढ़ाया गया था, जिससे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का एक टुकडा पृथिवी पर उतर आया प्रतीत होने लगा था। भीतर से इसकी पूर्ण दीवारें सोना-चादी के गंगा-जमुनी काम की बनी थीं। दस सहस्र आसन इसमें इस प्रकार लगाये गये थे कि उन पर बैठ कर सबको अभिषेक का कार्यक्रम देखने का अवसर मिल सके। सब आसन रजत के थे। एक रत्न तथा स्वर्ण-जटित सिहासन महाराज और महारानी के लिये बना था। भवन की छत पर देश भर के ऐतिहासिक घटनाओ के चित्र चित्रित थे और भवन की दीवारो पर अवन्ति राज्य परिवार के राजा-महाराजाओ के चित्र लटक रहे थे। भवन इतना सुन्दर था कि देखने से मन नहीं भरता था।

जब सवारी इस भवन के सम्मुख पहुची, तो महाराज महारानी सहित इस भवन के एक आगार में कुछ काल के लिये विश्राम करने चले गये। इतने में सब आमन्त्रित गण भवन के दस सहस्र स्थानो पर बैठ गये। धूप-दीप से सुवासित वायु से तथा गवाक्षो द्वारा आये प्रकाश से जगमग करता हुआ भवन, आनन्द में हिलोरें ले रहा प्रतीत होता था।

लीला के पिता गणनाचार्य पडित सुखदर्शन नाराट दुर्ग से मुक्ति प्राप्त कर उज्जयिनी में विद्यमान थे। उन्होने आचार्य भूदेव की नीति के अनुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया था और कुमार ने उनको राज्य-परिषद् में सम्मिलित करने की अनुमति दे दी थी। पडित सुखदर्शन भी सवारी में सम्मिलित थे और उनके लिये भी राज्य-परिषद् के अन्य सदस्यों के साथ राज्याभिषेक भवन में स्थान था। उन्होने भवन में आकर देखा कि उसको आचार्य भूदेव के साथ का स्थान मिला है।

समय होने पर आचार्य भूदेव महाराज और महारानी को लिवाने गया और उनके आने पर चारण ने सिंहासन के समीप खडे होकर घोषणा की, "अवन्ति राज्यकुलप्रदीप, साधु पालकदेव के कनिष्ठ भ्राता अवन्ति-वर्धन महाराज कुमारदेव महारानी रेखा देवी सहित पधार रहे हैं।"

सब उपस्थित गण, दस सहस्र के दस सहस्र, अपने-अपने आसनों क सामने सत्कारार्थ उठ खडे हुए। इस समय चारण ने घोषणा की, "महाराज कुमारदेव तथा महारानी रेखा देवी की जय हो।"

भवन में सबसे आगे महाराज कुमारदेव और उनके साथ महारानी रेखा देवी ने प्रवेश किया। उनके पीछे आचार्य भूदेव और कुमार शतवीर और पीछे सेनापति सुधीर और पाच सेनानायक नग्न खड्ग लिये प्रविष्ट हुए।

महाराज और महारानी को भूदेव सिंहासन के समीप ले गया और उन पर उनको बैठा दिया। उनके बैठने पर दर्शक भी अपने-अपने आसनो पर बैठ गये। सिंहासन के दाहिनी ओर सेनापति सुधीर और बाईं ओर आचार्य भूदेव खडे हो गये। सिंहासन के चरणो में चारण था और सिंहासन के पीछे पाच सेनानायक थे।

जब सब बैठ गये तो चारण ने महाराज को झुक कर प्रणाम किया और सिंहासन के एक ओर खडे होकर, जिससे पीठ सिंहासन की ओर न रहे और मुख सभासदों की ओर हो जाये, उच्च स्वर में, जो भवन भर में सुना जा सके, कहा,

"अवन्ति-बाहर से अभ्यागत वर तथा अवन्ति के गण्य मान्य जन! अवन्ति-महिमा सेवा में उपस्थित कर रहा हू।" उसने मधुर आकर्षक और शक्तिशाली स्वर में गाया।

"सूर्य चन्द्र नव ग्रह वर रक्षा करते हैं जाकी
ऐसी उज्जयिनी है जगत उद्धारिनी ॥
सुन्दर सुखद सरस सुवासित उद्यान भरी
भूमध्य स्थित पावनी भारत शोभाकारिणी ॥

देश-देश के विद्वद्वर माग भरत हैं जाकी
तातें भयी सुहागिन उज्जयिनी सुहाविनी ।।
निर्माता पद्मावती सहस्त्रबाहु अर्जुन
आदित्य सेना विक्रम सुषेण प्रभृति महामयी ।।
पद्मा भोगवती हिरण्यवती उज्जयिनी
युग-युग जीवित रही रूपवती मृणालिनी ।।
संसार संस्कृति की मा महान भारत माता
मान्या है उसकी यह सर्वश्रेष्ठ किरीट मणि ।।
देख वैभव चकित इसका लोग सब ही हुए
सूर्य गगन में वैसी जगत में उज्जयिनी ।।"

लोग साधुवाद करने लगे। चारण ने दो क्षण ठहर पुन आरम्भ किया :

"अहोभाग्य भारत के नव युग ले आई यह
अब शत-शत शतियों की दासता काटने को ।।
होगा मानव उन्नत माया-जाल छिन्न कर
भविता की प्रगति में विघ्न-बाधा पाटने को ।
इसी उज्जयिनी की शोभा विस्तृत भई
जब नौ लक्ष सुभट इसके खड्ग तान गये ।।
अवन्ति महाराज की शूरताई देख-देख
लोक-लोक में महिमा इसकी सब मान गये ।।

अवन्तिवर्धन कुमार श्रीमान् धीमान् बन
शूरवीर लोकपाल से सब सुख भर रहे ।।
मानव की महिमा को सर्वोपरि मान्य कर
परोक्ष की चिन्ता से निर्भय जग कर रहे ।।
धन्य धन्य उज्जयिनी कोटि-कोटि जनता से
सुख सम्पदामयी हुई है इस काल में ।।

धन्य है कुमारदेव अवन्ति के भाग्यदाता
जग में चिरजीवि रहे शोभित जिय भाल में ।।

चारण के इस अवन्ति-महिमा गान की सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस गान के पश्चात् आचार्य भूदेव ने उच्च स्वर में एक वक्तव्य दिया। उसने कहा—"सभ्यगण ! महाराज साधु पालकदेव के समय में सब कुछ होते हुए भी धन-सम्पदा का अभाव था। तीन बार मल्लो से युद्ध करने के कारण जनता हीन-क्षीण, समाज जर्जर, राज्यकोष रिक्त हो चुका था। ऐसे काल में वर्तमान महाराज ने इस देश का पुन निर्माण करने का निर्णय किया। आज तीन वर्ष के श्रीमान् के राज्य-प्रबन्ध से व्यापारियो के कोष स्वर्ण से लद गये हैं। जुलाहे और चमारो की बहुए रत्नजटित भूषण पहिनने लगी है। नगर विशाल विस्तृत सुहावना सद्योद्यान और सुन्दर हो गया है। ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल में देश ने उन्नति की है। इस प्रकार धन-धान्य से भरपूर देश में लोग सुख और शान्ति से सोते हैं। आज यहां सिंह और अजा एक घाट पर पानी पीते हैं। .

"इससे जनता की सहमति से महाराज कुमारदेव का राज्याभिषेक किया जाता है।"

इस समय महाराज कुमारदेव की जय-घोषणा चारण ने की। पूर्ण भवन जय-जयकार से गूंज उठा। राज्याभिषेक के लिये महर्षि वामदेव पधारे थे। उन्होने स्वर्ण थाल में स्वर्ण दीप जला, पुष्प-रोली-नारियल ले, महाराज और महारानी की आरती उतारी और उनको तिलक दिया। महर्षि यह कार्य कर थाल को महाराज के चरणो में रख अपने आसन पर जा विराजे। अब सर्वप्रथम, आचार्य भूदेव ने थाल में से रोली लेकर महाराज को तिलक दिया। पश्चात् क्षत्रियकुलशिरोमणि सेनापति सुधीर ने तिलक दिया। इसके पीछे वैश्यकुल-भूषण सेठ राघव ने महाराज को तिलक दिया। अंत में शूद्र जाति के पंच मोहन ने महाराज के चरणों में रोली दी।

इस विधि के समाप्त हो जाने पर, चारों वर्णों से सम्मानित, तिलक-

विभूषित, राज्य का चिन्ह स्वरूप राजमुकुट आचार्य ने प्रजा की ओर से पहिनाया। महाराज को मुकुट पहिना आचार्य ने दूसरा मुकुट महारानी को पहिनाने के लिये महाराज के सामने उपस्थित किया और महाराज ने उसको दोनो हाथों से पकड़ कर महारानी के सिर पर रख दिया।

इस पर पुनः महाराज कुमारदेव का जय-घोष हुआ। इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई और उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

: २ :

राज्याभिषेक की नगर भर में धूम थी। इसी दिन नगर में परिषद् के सदस्यों के नाम घोषित किये गये। इसमें आचार्य भूदेव का नाम महामात्य पद पर होना तो सबको विदित ही था, परन्तु पंडित सुखदर्शन की न्यायमन्त्री के पद पर नियुक्ति सबके लिये आश्चर्यकारक हुई। पंडित सुख-दर्शन के विषय में सबको विदित था कि वह राज्य का बंदी है। अब उसका छूट जाना और फिर उसका मंत्री पद पर नियुक्त हो जाना एक भारी विस्मय की बात हो गयी। इससे कुमारदेव की महिमा प्रजा में और भी बढ़ गयी।

राज्याभिषेक की सभा से लौट कर पंडित सुखदर्शन लीला को लेकर तीन वर्ष के पश्चात् अपने गृह पर पहुंचा। लीला और पंडित दोनों जानते थे कि मनोज के प्रयत्नों से ही यह सम्भव हो सका है। सब से प्रथम बात, जिस को जानने का यत्न पंडित जी ने किया वह मनोज के विषय में ही था। लीला ने बताया, "ये काशी के रहने वाले एक विद्वान् ब्राह्मणकुमार हैं।"

"लड़का अच्छा समझदार प्रतीत होता है।"

उसी सायंकाल आचार्य भूदेव पंडित जी से मिलने आया। उसके साथ कुमार शतवीर भी था। साधारण आव-भगत के पश्चात् शतवीर और लीला को वहां ही छोड़ दोनों वृद्ध जन राजनीति के विषय में बातचीत करने के लिये एक पृथक् आगार में चले गये। जाते समय पंडित सुखदर्शन ने अपनी पुत्री ने कहा, "लीला! कुमार का मनोरंजन करना। मैं तनिक इनसे

बातचीत कर लूं।"

अकेले रह जाने पर दोनो चुप एक दूसरे का मुख देखने लगे। वे नहीं जानते थे कि किस विषय पर बातचीत करे। इस चुप्पी से लोला तग आ गयी और बोल उठी, "आप बोलते नहीं। बोल भी सकते है या नहीं ?"

शतवीर इस पर मुस्करा कर बोला, "तुम्हारी जिह्वा है, यह तो पता चल गया। मै तो यह सोच रहा था कि तुम को चुपचाप बैठे देखना शायद अधिक आनन्दप्रद है।"

"तो पता चला कि आप चित्र-काला में प्रवीण है।"

"नहीं तो। मैंने तो कभी तूलिका को छूआ तक नहीं।"

"तो आप अवश्य मूर्तिकार होगे।"

"यह भी नहीं।"

"तो फिर आप कुछ भी नहीं। पर आप मुझको देख कर क्या आनन्द लेते है ?"

"मै तुम्हारा सुन्दर रूप-रग हृदयगम कर रहा हू।"

"इससे क्या होगा ?"

"जब तुम्हारी मूर्त्ति मेरे मन मे बैठ जायेगी तो मै उसको स्मरण कर आह्वान मत्र का जप करूगा, जिससे तुम मुझसे प्रेम करने लगोगी। फिर तुम मेरी हो जाओगी।"

"तब तो बहुत बुरा होगा।'

"क्यो ? तुम मेरी होना नहीं चाहती क्या ?"

"मुझको इसमें कोई लाभ पतीत नहीं होता।"

"मै शीघ्र ही अवन्ति का महाराज होने वाला हू।"

"किसने कहा है आपको यह झूठ ?"

"मेरा मन कहता है।"

"मेरी शुभ-कामना आप के साथ है। परन्तु अभी तो यह अलभ्य अभिलाषामात्र प्रतीत होती है।"

"मै जब महाराजा बनूंगा तो तुमको महारानी बनाऊगा।"

"नहीं श्रीमान् ! मैं महारानी बनना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

"गृह की मुंडेर पर बैठना भययुक्त तो है ही, साथ ही मुंडेर जितनी ऊंची हो भय उतना ही अधिक हो जाता है।"

"इस पर भी वीर-धीर ऐसे भययुक्त कार्य करते ही हैं।"

"मैं वीर-कन्या नहीं हू। मैं तो एक कलाकार हू।"

"तो क्या एक कलाकार वीर-धीर नहीं हो सकती ?"

"बुद्धिशीलता और वीरता दो परस्पर विरोधी बातें हैं। इनका समन्वय कहीं देखा नहीं।"

बहुत रुचिकर बातचीत चल पड़ी थी। शतवीर इन व्यंग पर हस पड़ा और कहने लगा, "तो यह समन्वय कर दिखायेंगे। देखो लोला! मैंने उस दिन तुमको प्रमोद जी के साथ देखा था। फिर एक दिन तुम्हारा नृत्य भी देखा था। मैं तबसे ही तुममे प्रीति रखने लगा हू। अब मैं तुममें भी अपने लिये प्रेम उत्पन्न कर सकूं, वैसा उपाय सोच रहा हू। इस अर्थ तुम्हारा रूप अपने मन में बैठा कर अनुष्ठान करूंगा। गुरुजी का कहना है कि एक लक्ष अनुष्ठान करने से तुम भागी हुई मेरे पास आओगी।"

"तब मैं आपको बधाई दूंगी।"

"तो क्या तुम ऐसी बात को असम्भव समझती हो ?"

"यह तो मैंने नहीं कहा।"

"क्या नहीं कहा ?" पडित सुखदर्शन ने पीछे खड़े हुए कहा। पडित जी और आचार्य जी अपनी बातचीत समाप्त कर आ गये थे।

इस प्रकार की बात अपने पिता से कही जाने पर उसको लज्जा लग गयी और उसका मुख लाल हो गया। लोला को चुप देख शतवीर ने उत्तर दिया, "महर्षि जी से मैंने एक ऐसा मंत्र सीखा है, जिससे मैं किसी को भी अपने वश में कर सकता हू। यह वशीकरण मैं लोला पर करने वाला हूं। ये कहती हैं कि जब मैं ऐसा कर लूंगा तब मुझको बधाई देंगी। तो

इसके अर्थ तो यह हुए कि इनको गुरु जी की विद्या पर सदेह है अथवा ये उस वशीकरण का विरोध करने का विचार रखती है।"

शतवीर की बात सुन, दोनो वृद्ध जन हस पडे। पीछे पडित सुखदर्शन ने गम्भीर हो कहा, "देखो कुमार! जब ये तुम्हारे वश में हो जावेगी तो फिर यह तुम को बधाई देने के स्थान अपने को बधाई देगी।"

आचार्य भूदेव ने पडित के इस कथन को कुमार के साथ लोला के विवाह की स्वीकृति समझा। इससे वह प्रसन्न हो पडित जी से विदा ले चल पडा।

मार्ग में रथ पर बैठे हुए आचार्य भूदेव ने कहा, "कुमार तुमने लोला से प्रेम प्रकट कर ठीक ही किया है। वास्तव में वह एक समृद्ध देश की पटरानी बनने के योग्य है।"

जब आचार्य भूदेव और शतवीर चले गये तो पडित ने अपनी लडकी से पूछा, "क्या कहता था यह मूर्ख ?"

लोला जो बातों का रहस्य खुल जाने से आखें झुकाये बार-बार टेढी दृष्टि से पिता जी को देख रही थी, राजकुमार के लिये मूर्ख शब्द का प्रयोग सुन विस्मय में मुख उठा देखने लगी। उसकी घबराई हुई दृष्टि को देख पडित सुखदर्शन ने अपने कहने की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "लोला बेटी! यह लडका महर्षि वामदेव के बहकाने में आ गया है। इसी कारण इसको मूर्ख कहता हू।"

"मैं नहीं समझी कि वह क्या कह रहा है और आपने भी जो कुछ कहा है वह मेरी समझ में नहीं आया।"

"देखो, इसने अपना विचार कि वह तुम को अपने वश में करना चाहता है, बता कर मूर्खता की है। वह अब यह कर नहीं सकेगा। अब तुम उनसे विवाह करना पसन्द नहीं करोगी। तुम्हारे मन में एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया उठेगी, क्योंकि कोई मनुष्य, अपनी इच्छा के बिना, किसी के वश में होना नहीं चाहता।"

"इस पर भी, पिता जी! मैं आपकी इच्छा का सम्मान करूगी।

यदि आप चाहेंगे तो मैं....।"

पंडित सुखदर्शन ने उसकी बात को बीच में ही रोक कर कहा, "लीला! तुम को यह समझ लेना चाहिये कि मैं कभी नहीं चाहूंगा कि मेरी लडकी किसी मूर्ख से विवाह करे। मेरा इस लडके के विषय में पहिले भी यही विचार था।"

लीला चुप रही। वह अपने मन में उठ रहे विचारों का विश्लेषण कर रही थी। राजकुमार शतवीर उसके मन में किसी प्रकार का भी आकर्षण उत्पन्न नही कर सका था। इसके विपरीत वह अपने मन में मनोज के लिये आदर और मान का भाव रखती थी। इस विषय में मनोज ने उससे कभी वार्तालाप नहीं किया था। इससे वह अपने मन में कुछ स्पष्ट विचार नहीं रखती थी।

: ३ :

लीला सायंकाल अपनी सखियों से मिलने कलाभवन में गयी। वह देखना चाहती थी कि अगले दिन होने वाली सुन्दरी-प्रतियोगिता के विषय में क्या तैयारी हो रही है।

कलाभवन में भारी चहलपहल थी। प्रतियोगिता के लिये आयी हुई सुन्दरियों को इस भवन में रहने दिया गया था। वे एक सौ से ऊपर थीं। उनकी प्रारम्भिक परीक्षा उसी सायंकाल होने वाली थी। निर्वाचन समिति, जिसका प्रमोद अध्यक्ष था, इन प्रारम्भिक परीक्षा में बहुत सी सुन्दरियों को निकाल देने वाली थी। यह विचार था कि पांच सुन्दरियों को निर्वाचित कर लिया जावे और शेष को उसी दिन छुट्टी दे दी जावे। इन पांच का अगले दिन पुन. निरीक्षण किया जावे और सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का निर्वाचन कर दिया जावे। पश्चात् सायंकाल नव दर्शकों के सम्मुख उन पांचों को उपस्थित किया जावे। यदि दर्शकों का बहुमत उनके निर्णय को उचित न समझे तो वे पुन: विचार करें। इस प्रकार अंतिम निर्णय पर पहुंचा जावे।

अंतिम निर्णय के लिये, जो दर्शकों के सम्मुख होने वाला था, एक विशाल पडाल निर्माण किया गया था। यह कलाभवन के प्रागण में कौशेय और तूल का बनाया गया था और इसको भीतर से बहुत सजाया गया था। इस पडाल में प्रकाश करने के लिये एक सहस्र अग्निशिखाओं का प्रबन्ध था। इन पर जलाने के लिये एक विशेष प्रकार के तैल का प्रबन्ध था, जिसके जलने से धूंआ न निकले और प्रकाश अधिक हो।

लोला जब कलाभवन मे पहुची तो प्रारम्भिक परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। प्रमोद अन्य परीक्षको के साथ परीक्षाभवन से बाहर आ चुका था। इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण सुन्दरिया मुख लटकाये जा रही थीं और जो पाच उत्तीर्ण हुई थीं, वे अपने मित्रों से बधाइया ले रही थीं।

पाच उत्तीर्णो में कोकिला भी आ गयी थी और उसकी सहेलिया उसको घेरे खडी थीं। उनमे कुछ युवक भी थे। प्रियमुख सबसे आगे खडा कह रहा था, "क्यो कोकिला, मैंने ठीक कहा था न। मैं मूर्ख नहीं हू देवी !"

"परन्तु प्रियमुख ! मुझको तुम्हारी बूझ मे भारी सदेह है। तुमने अभी उसको नहीं देखा।" इतना कह कोकिला ने प्रागण में दूर खडी एक लडकी की ओर उँगली कर दी। सब उसकी ओर देखने लगे। वह अकेली थी। लम्बी छरहरे शरीर की, छोटा सा अण्डाकार मुख और अग में स्फूर्त्ति और चपलता चटक रही थी। प्रियमुख ने भी उधर देखा और कहा, "अभी बच्ची है। किसी आगामी प्रतियोगिता में आ सकती है।"

"वह हम पाचो में निर्वाचित हो चुकी है।"

"तब क्या हुआ ? हम कलाभवन के सब लोग सार्वजनिक निर्वाचनोत्सव में तुम्हारे लिये हल्ला करेंगे। यदि तुम्हारे विरुद्ध निर्णय दिया गया तो प्रमोद जी के लिये कलाभवन चला सकना कठिन हो जावेगा।"

"पर यह लडकी है कौन ?" एक अन्य ने पूछा, "उसका कोई संगी-साथी दिखाई नहीं देता।"

"वह सफल नहीं हो सकती।" प्रियमुख का कहना था।

प्रमोद ने लोला को उस प्रांगण में प्रवेश करते देखा तो अपने साथियो को छोड, उसके पास चला गया और पूछने लगा, "कैसे आई हो लोला ?"

"प्रतियोगिता वाली सुन्दरियो का तमाशा देखने चली आयी हूं।"

"तो इधर आओ, तुम को एक चमत्कार दिखाऊँ।"

वह लोला को साथ लेकर उस एकान्त में खडी लड़की के पास चला गया। जब वे उसके पास पहुचे तो वह उनकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी। प्रमोद ने पूछा, "तुम्हारी मा नहीं आयी क्या ?"

"हम दोनो इकट्ठे आये थे। उसको मै यहा बैठा कर भीतर परीक्षा के लिये गयी थी। हम को भीतर बहुत समय लग गया है। बाहर आयी हू तो वह यहा नही है।"

"शायद कुछ खाने-पीने गयी है।"

"मै यहीं उसकी प्रतीक्षा करना चाहती हूं।"

प्रमोद ने उसका परिचय कराया, "यह है अनुराधा ग्वालिन, कानू ग्वालिन की बेटी। अभी तक हमारी समिति के मत में यह देश की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। अतिम निर्णय कल होगा।"

लोला ने उसको सिर से पाव तक देखा और उसक अंग-प्रत्यंग के परस्पर अनुपात को देख कर चकित रह गयी। इस समय प्रमोद ने लोला का परिचय कराया, "अनुराधा यह है लोला देवी, पडित सुखदर्शन, न्याय-मंत्री की सुपुत्री। यह संगीत और नृत्य में बहुत ही प्रवीण है ?"

अनुराधा ने लोला को हाथ जोड कर नमस्कार किया और पूछा, "ये प्रतियोगिता में नही आयीं ?"

"नहीं। मै अपने आप को कुछ बहुत सुन्दर नही मानती।"

"किसी ने आप को भ्रम में डाल रखा है।"

प्रमोद ने लोला से कहा, "तुम इसको अपने आगार में ले जाओ। मै इनकी मां का पता कराता हू। उनको ढूंढकर वहां ही भेज दूंगा।"

लोला अनुराधा को लेकर ऊपर उस आगार में चली गयी, जिसमें

वह रहती थी। प्रमोद ने कलाभवन के एक कर्मचारी को अनुराधा की मा को ढूंढने भेज दिया।

प्रमोद जब अपने कार्यालय में गया तो प्रियमुख अपने कुछ साथियों के साथ वहां आ पहुचा। प्रमोद ने अपने आसन पर बैठते हुए पूछा, "प्रियमुख! क्या बात है ?"

"आप से हम सब एक विशेष निवेदन करने आये है। वह यह कि कोकिला कला-भवन की विद्यार्थिनी है। इस नाते उसका आप पर भी कुछ अधिकार है। यदि वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित होती है तो कला-भवन का मान बढ़ेगा।"

"यह ठीक है।" प्रमोद ने कहा, "परन्तु यह सम्मान देना तो मेरे अधिकार में नहीं है। राज्य ने इसके लिये एक समिति बनाई है। वह कार्य कर रही है।"

"यदि तो समिति ने कोकिला को निर्वाचित किया तब तो ठीक है।"

"परन्तु समिति किसी और के पक्ष में भी तो सम्मति दे सकती है।"

"उस अवस्था में जनता इसका विरोध करेगी।"

"इस अवस्था में समिति अपने निर्णय पर पुन विचार करेगी। इस बार उसका निर्णय अतिम होगा।"

"आप अध्यक्ष है। आप अपना प्रभाव प्रयोग करियेगा।"

"हा, यदि मेरी समझ से समिति का निर्णय ठीक न हुआ तो अवश्य सदस्यों को समझाने का यत्न करूगा, परन्तु निर्णय तो बहुमत से ही होगा।"

"आपकी समझ में अभी तक क्या आया है ?"

"समय से पूर्व बताना उचित नहीं समझता।"

"मैने आपको निवेदन कर दिया है और उसमें युक्ति भी दी है। हम कला-भवन के सदस्य कोकिला के पक्ष में निर्णय चाहते है।"

"मै अन्य कोकिलाओ का गला नहीं घोट सकता।"

"श्रीमान्! न्याय करते समय भी तो स्वार्थ का ध्यान रखना चाहिये।

आज स्वार्थ का युग है।"

"तुम ठीक कहते हो प्रियमुख ! मैं भी स्वार्थी हूं। परन्तु मेरे और तुम्हारे में अंतर यह है कि जिसको तुम स्वार्थ समझते हो, मैं उसको अपने लिये अहितकर समझता हूं। मेरा स्वार्थ इस बात में ही है कि इस प्रतियोगिता में न्याय हो।"

"मैं आपसे अधिक नहीं कह सकता। आप समझदार है। भला-बुरा विचार कर काम होना चाहिये।"

प्रमोद को प्रियमुख के व्यवहार पर क्रोध चढ़ आया। उसने महामात्य को लिख दिया कि सुन्दरी-प्रतियोगिता और प्रदर्शन के समय दगा हो जाने की आशका है इस कारण वह चाहता है कि सेना का पूर्ण रूप में प्रवन्ध कर दिया जावे। इतना कर वह लोला के आगार में चला गया। इस समय तक लोला ने अनुराधा को अपनी प्रिय सखी वना लिया था। दोनो परस्पर बहुत घुल-मिल कर वातचीत करने लगी थीं। जब प्रमोद वहां पहुचा तो लोला ने उसको वताया, "भैया! ये आचार्य जी की परिचित हैं।"

"हा, मुझको यह ज्ञात है। इनका नाम श्री आचार्य जी स्वय लिखाने आये थे।"

"ये कहती है कि एक दिन आचार्य जी इन के गाव के समीप से जा रहे थे और ये दूध की मटकी सिर पर रखे हुए, एक दूसरे गांव में आ रही थीं। उन्होंने देखा और इनकी मा से कुछ वातचीत हुई। पश्चात् एक नट आकर इनको नृत्य तथा संगीत की शिक्षा देने लगा। आज प्रात ये अपनी मा के साथ यहा आयी थीं, अव वे नहीं मिल रही।"

"मैंने उनको ढूंढने के लिये एक कर्मचारी को भेजा है।"

"ये कहती हैं कि ये अपना मूल्य नहीं लगवायेंगी। ये विकना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

उत्तर अनुराधा ने दिया, "मैं क्रीतदासी वनना नहीं चाहती।"

"इसमें हानि ही क्या है? महारानी भी तो क्रीतदासी है।"

"वे महारानी है। मैं महारानी बनने की अभिलाषा नहीं रखती।"

"पर यह तो इस योजना का एक अंग है।"

"होगा, पर मैं नहीं बिकूंगी।"

"देखो अनुराधा! लाखों स्वर्ण मुद्रायें मिलेंगी।"

"क्या करूंगी उनको लेकर? मैं तो अपने मन-पसन्द का पति पाऊंगी।"

प्रमोद ने इस वार्तालाप को आगे नहीं चलाया। उसको भय था कि समय से पूर्व इस विषय में झगड़ा करने से योजना असफल हो सकती है। इस पर भी उसको विचारने की सामग्री मिल गयी। वह विचार करने लगा कि अनुराधा महाराज पालकदेव के काल की विचारधारा की प्रतीक है। कोकिला नवीन विचारों से ओत-प्रोत। कितना अंतर पड़ गया है दोनों कालों में। केवल तीन वर्ष का काल ही व्यतीत हुआ है, परन्तु विचारों में युग-परिवर्तन हो गया है। इसका श्रेय श्वेतांग को है। वह अवश्य ही महान् व्यक्ति है।"

प्रतिहार ने आकर कहा, "अनुराधा देवी की माता आ गयी हैं। वे नगर घूमने चली गयी थीं और मार्ग भूल गयी थीं। जिस किसी से भी पूछतीं कि वह स्थान कहां है, जहां सुन्दरी-प्रतियोगिता हो रही है, तो लोग यह समझ कि वह स्वयं इस प्रतियोगिता में भाग लेने आ रही है, हंस देते और मिथ्या मार्ग बता देते। इससे उनको भारी कष्ट हुआ है। इस व्यवहार से निराश होकर वे मार्ग के तट पर बैठी थीं कि मनोज जी ने देख लिया। वे रथ पर सवार कहीं जा रहे थे। उन्होंने इनको देखा और इनकी कठिनाई जान रथ पर सवार कर लिया और यहां ले आये।"

"उन दोनों को यहां ले आओ।"

: ४ :

अगले दिन पाच निर्वाचित सुन्दरियो का पुनः निरीक्षण हुआ और सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि अनुराधा सर्वश्रेष्ठ है । उससे न्यून अक एक पद्मा नाम की लडकी के थे। यह भी देहात की रहने वाली थी। कोकिला तीसरे स्थान पर आयी। दो अन्य लड़किया थी, जो चौथे और पाचवें स्थान पर रखी गयी ।

जव यह परिणाम घोषित किया गया तो चौथे और पाचवें स्थान पर आयी लडकियो ने सार्वजनिक प्रदर्शन में भाग लेने से न कर दी, परन्तु जब उनको यह विदित हुआ कि उनको मिलने वाला प्रारम्भिक उपहार नहीं मिलेगा, तो इस उपहार की राशि जान वे तैयार हो गयीं। यह उपहार भी पाच सहस्र स्वर्ण था।

सायंकाल सुन्दरी निर्वाचन का सार्वजनिक आयोजन होने वाला था और इससे पूर्व ही अनुराधा और प्रमोद को धमकी दी जाने लगी। अनुराधा प्रमोद के पास पहुची और बोली, "मुझको किसी ने यह धमकी दी है कि यदि मैं उत्सव से पूर्व ही यहां से चली न गयी तो मुझको मार डाला जावेगा।"

"मैं जानता हू देवी ! मैंने इसकी सूचना महामात्य के पास भेज दी है और इस समय भी तुम्हारे शरीर की रक्षा की जा रही है। उत्सव में तो तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध और भी सतर्कता से किया जायेगा।"

इससे अनुराधा निश्चिन्त होकर अपने आगार की ओर चली। जब वह कला-भवन की सीढियां चढ रही थी तो प्रियमुख सीढिया उतर रहा था। वह अनुराधा को देख खड़ा हो गया। अनुराधा उसका ध्यान किये बिना चढती जाती थी। इस पर उसने मार्ग रोक लिया। अनुराधा ने एक ओर हट कर निकल जाना चाहा, परन्तु प्रियमुख उसको मार्ग नहीं दे रहा था। विवश वह खड़ी हो उसकी ओर देखने लगी। प्रियमुख मुस्कराने लगा। अनुराधा ने विद्युत की सी गति से एक चपत उसके मुख पर लगा

"इसके अतिरिक्त बुद्धि की भी परीक्षा की गयी है। स्वर के माधुर्य, गले की लोच और स्वर की दृढता की भी परीक्षा की गयी है। इन सबमें कला में प्रवीणता की ओर इतना ध्यान नहीं दिया गया जितना स्वाभाविक योग्यता की ओर।

"इस प्रकार हमने कल एक सौ से ऊपर अभ्यर्थिनियों में से प्रथम पाच का निर्वाचन कर लिया था। वे पाचो की पाचो आपके सम्मुख उपस्थित की जा रही हैं। उन पाचों में से सर्वोत्तम आपके सामने निर्वाचित की जायेगी।

"सब दर्शकों से इस निर्वाचन में सहायता और सहयोग की प्रार्थना है। इतना आपको भी ध्यान रखना चाहिये कि यहा कला की प्रतियोगिता नहीं हो रही, प्रत्युत सौन्दर्य की प्रतियोगिता की जा रही है। कला में निपुणता का प्रदर्शन इसी मडप में कल होगा।

"पूर्व इसके कि यह कार्यक्रम आरम्भ हो, इसमें पुरस्कार के विषय में दो एक शब्द निवेदन कर देना चाहता हू। मडप में प्रवेश के लिये शुल्क के रूप में नब्बे सहस्र स्वर्ण प्राप्त हुआ है। इसमें पडाल पर और अन्य व्यय दस सहस्र स्वर्ण हुए हैं। राज्य कर बीस सहस्र स्वर्ण निकाल कर शेष साठ सहस्र स्वर्ण में से प्रथम स्थान पर आने वाली को चालीस सहस्र स्वर्ण और अन्य चारो को पाच-पाच सहस्र स्वर्ण उपहार दिया जावेगा। पश्चात् इन पाचो के विवाह के लिये जो कुछ भी मिलेगा वह राज्य कर दे कर शेष उनको दे दिया जावेगा। विवाह के लिये मूल्याकन भी इसी मडप में होगा।

"अब महाराज की आज्ञा से प्रतियोगिता आरम्भ होती है।"

पाचो सुन्दरिया गोटे-किनारी के उत्तरीय पट ओढे मच पर आगयीं। इनको देख दर्शकगण वाह-वाह कर उठे। ये सब अपने लम्बे केशो को खोले पीठ पर छोडे हुए थीं। इनको किसी प्रकार का शृंगार करने की स्वीकृति नहीं दी गयी थी। उत्तर पट भी सबके एक समान थे। सर्वथा प्राकृतिक रूप में ही उनका प्रदर्शन होना था।

एक-एक सुन्दरी मच के मध्य में खडी होकर, गाकर और नृत्य कर अपने अंग-प्रत्यग का प्रदर्शन करती थी। नृत्य में अपने एक-एक अग को मूर्त्ति के उसी अग के समीप ला कर समानता का प्रदर्शन करती थी और अत में अपने पूर्ण शरीर को नग्न कर उस मूर्त्ति के समीप खड़ा कर प्रदर्शन करती, जिससे दर्शक उसके सौन्दर्य का अनुमान लगा सकें। जहा कोकिला के सम्बन्ध मे सबका मत था कि वह नृत्य कला में सबसे अधिक योग्य है, वहा दोनो देहात की सुन्दरिया अनुराधा और पद्मा शरीर की बनावट में कोकिला से श्रेष्ठ थीं। अनुराधा ने अपना देहाती नृत्य दिखाया। उसमें वह वैसी प्रतीत हुई जैसे जगली हिरणी मंच पर कूद-फाद रही हो ?

यह प्रदर्शन एक प्रहर भर चलता रहा। इसमें सदेह नहीं था कि अनुराधा और पद्मा का शारीरिक गठन लगभग बराबर था, परन्तु स्वर माधुरी मे अनुराधा श्रेष्ठ निकली। कोकिला के विषय में तो यह स्पष्ट हो गया कि वह सुसंस्कृत तो सबसे अधिक है, परन्तु सुन्दर अधिक नहीं।

प्रियमुख और उसके साथियो ने पहिले तो कोकिला की बहुत सराहना की। 'धन्य हो ! धन्य हो ! साधु ! साधु !' तथा 'बहुत सुन्दर' इत्यादि वाक्यो से उसके प्रदर्शन का स्वागत किया। जब अनुराधा और पद्मा मच पर प्रदर्शन करने लगी तो उसके लिये निन्दासूचक वाक्यों का प्रयोग किया। जब-जब उनकी आलोचना सीमा का उल्लघन करती थी तब-तब ही सैनिक आकर उनको शात करने का यत्न करते रहते थे। इस पर भी जब वे शात नहीं हुए तो सेनापति सुधीर ने महाराज की आज्ञा से हल्ला करने वालो को चेतावनी दे दी। उसने कहा, "इस समय मंडप में मेरे पाच सौ सैनिक शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित खड़े हैं। किंचित् मात्र भी अशिष्टता होने पर उनके खड्ग रक्त पीने लगेंगे।"

इस घोषणा से मडप में शान्ति विराजमान हो गयी। इस समय प्रमोद ने दर्शको के सम्मुख निरीक्षक समिति की ओर से यह घोषणा की—'अनुराधा सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। पद्मा को दूसरे स्थान पर और कोकिला को तीसरे स्थान पर रखा गया है।'

इस घोषणा पर प्रियमुख के एक साथी ने खड़े होकर कहा, "मैं महाराज से यह प्रार्थना करता हूँ कि अनुराधा आचार्य भूदेव की दासी है। इस कारण महामात्य को प्रसन्न करने के लिये उसको फोकट में पुरस्कार दिलवाया जा रहा है।"

इस पर महाराज कुमारदेव ने अपने आसन से उठ कर कहा, "मैं दर्शक गण को अपने स्वतंत्र मत देने के लिये कहता हूं। अंत में प्रतियोगिता अनुराधा और पद्मा के भीतर रह गयी है . ।"

इस समय एक दर्शक बीच में ही बोल उठा, "महाराज ! कोकिला के साथ भी।"

इस पर दर्शकों में से बहुत से दर्शकों ने आवाजें लगानी आरम्भ कर दीं, "चुप रहो ! चुप रहो !"

इस पर महाराज कुमारदेव ने कहा, "मैं इस प्रकार अनियमितपन स्वीकार नहीं करता। मैं आज्ञा करता हूं कि सेनापति मंच पर आकर दर्शकों का मत लें।"

सेनापति आया और उसने दर्शकों से मत मांगा। पहिले अनुराधा के विषय में मत लिया गया। पश्चात् पद्मा के विषय में और अंत में कोकिला के लिये। इस मतदान पर विवाद के लिये कोई स्थान नहीं रहा कि अनुराधा को सर्वश्रेष्ठ पद मिला। इस घोषणा के पश्चात् महाराज कुमारदेव एक बड़े-बड़े, सुन्दर पाटलों की पुष्प-माला लेकर अनुराधा को पहिनाने के लिये आगे बढ़े। अनुराधा सुन्दरी की मूर्ति के समीप आ कर खड़ी हो गयी। महाराज दर्शकों की जय-ध्वनि में माला उसको पहिनाने के लिये बढ़े। ठीक इस समय मंडप के उसी ओर से जिधर से कोकिला का समर्थन हुआ था, एक कटार उड़ती हुई आयी और अनुराधा के उत्तरीय को चीरती हुई आदर्श सुन्दरी के वक्षस्थल में लगी और झनकार कर गिर पड़ी।

कटार चलाने वाले का विचार था कि अनुराधा देवी वहीं खड़ी रहेगी। यदि वह वहां खड़ी रहती तो कटार उसके हृदय स्थल में लगती, परं

जब महाराज समीप आये तो वह एक पग आगे बढ़ आई और उसने झुक कर माला गले में ले ली। इससे कटार उसके कंधे पर से उत्तरीय चीरती हुई, मूर्ति को जा लगी।

कुमारदेव ने कटार को मूर्त्ति से टकरा कर भूमि पर गिरते देखा और आज्ञा दे दी, "पकडो इस श्वान को।"

एक सैनिक ने प्रियमुख को गर्दन से पकड लिया और उसको मंच पर घसीट लाया। "मार डालो दुष्ट को। मार डालो दुष्ट को।" ऐसी ध्वनि चारो ओर से आने लगी। ज्यो ही प्रियमुख को मच पर ला कर खडा किया गया, महाराज ने अपना खड्ग निकाल कर उसके पेट में घुसेड दिया और जब वह धम्म से मच पर गिरा तो पांव की ठोकर से महाराज ने उसको मच से नीचे धकेल दिया।

: ५ :

अनुराधा ने पुनः झुक कर नमस्कार किया और महाराज का धन्यवाद किया। पश्चात् वह पीछे हट कर भवन की दीवार के साथ लग कर खड़ी हो गयी।

अब प्रमोद ने आगे बढ कर अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से विवाह के इच्छुक लोगो से, सुन्दरी का मूल्य करने के लिये कहा। इस पर एक युवक ने, जो मडप में पीछे के आसनो की पक्ति में एक पर बैठा था, उठ कर पाच सौ स्वर्ण देने की घोषणा की। इस समय अनुराधा पुन सामने आ गयी और प्रमोद जी से कह कर महाराज से प्रार्थना करने लगी, "मैं अब सज्ञान हू और मैं कहती हू कि मेरा मोल-तोल न किया जावे। मैं बिकना नहीं चाहती।"

इस पर सब विस्मय में उसका मुख देखने लगे। इस आपत्ति पर महाराज कुमारदेव ने कहा, "देवी! इस प्रतियोगिता का यह एक नियम है।"

"महाराज!" अनुराधा ने दृढता से कहा, "यह नियम महाराज को

घोषणा के विरुद्ध पडता है । महाराज ने पूर्ण राज्य में ये शिलालेख लगवाये हुए हैं कि कोई किसी पर बलात्कार करेगा तो मृत्यु दण्ड पावेगा। इन शिलालेखो की उपस्थिति मे सुन्दरी-प्रतियोगिता मे यह नियम कि सुन्दरी की इच्छा के विरुद्ध भी नीलामी होगी, अवैधानिक हो जावेगा। यह अधर्म होगा।"

इस युक्ति को सुन महाराज कुमारदेव अवाक् खडा रह गया। इस पर अनुराधा ने फिर कहा, "महाराज ने एक और आज्ञा निकाली है कि किसी दास-दासी का क्रय भी तो उसकी इच्छा के बिना नहीं हो सकता। महाराज मै तो क्रीतदासी भी नहीं। इस कारण मेरी इच्छा का अनादर तो तब तक नहीं हो सकता जबतक आप की उक्त आज्ञायें चालू हैं।"

इस पर महाराज ने महामात्य से इस विषय में व्यवस्था मागी। आचार्य ने उठकर कहा, "महाराज ! यह लडकी ठीक कहती है । राज्य-नियम के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता। इस कारण सुन्दरी-प्रतियोगिता का यह नियम तब ही लागू हो सकता है जब सुन्दरी इस को स्वीकार करे।"

"तो हम को इसी से प्रार्थना करनी पडेगी कि वह अपना अमूल्य सौन्दर्य तथा यौवन किसी गवार मूर्ख ग्वाले के पास देने की मूर्खता न करे। वह इस अनमोल रत्न की रक्षा नहीं कर सकेगा।"

अनुराधा ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "महाराज ! मै आप की प्रजा हूँ। यदि कोई मेरे पर बलात्कार करना चाहेगा तो यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि मेरी रक्षा करे। कोई भी व्यक्ति राज्य से अधिक बलशाली नहीं हो सकता।"

कुमारदेव इन तर्क के सामने निरुत्तर हो गया। कितनी देर तक सब दर्शक आश्चर्य में लडकी की बातो पर विचार करते रहे। अत में कुमार-देव ने कहा, "देखो देवी ! यदि तुम्हारा मूल्य पडेगा तो चार-पाच लक्ष स्वर्ण से कम नहीं पडेगा। सम्भव है अधिक ही पडे । तो क्या इतना धन भी तुम को इस कार्य के लिये तैयार नहीं कर सकता ?"

"श्रीमान् ! क्षमा करें। मेरे विचार में धन एक व्यर्थ की वस्तु है।

जब खाने, पहिरने और रहने को साधन प्राप्त हो जावें तो धन एक बोझा हो जाता है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि देवी किसी के प्रेम-जाल में फंस चुकी है।"

"ऐसी कोई बात नही है महाराज!"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"मै चाहती हूं कि चालीस सहस्र मेरी माता को दे दिया जावे और मुझको यहा से घर जाने की स्वीकृति प्रदान की जावे।"

"तुम अकेली जा सकोगी क्या?"

"अभी तक अठारह वर्ष आयु के व्यतीत हो चुके हैं और मुझको सरक्षको की आवश्यकता नहीं पडी, परन्तु आज इस प्रदर्शन के पश्चात् आपके राज्य-नियम की अवहेलना करने के लिये कोई तैयार भी हो सकता है। इससे मै श्रीमान् से प्रार्थना करती हूँ कि मेरी रक्षा की जावे।"

इस पर महाराज ने प्रमोद से कह दिया कि अनुराधा विवाह नहीं करेगी। उसके स्थान पर पद्मा तथा कोकिला की नीलामी हो सकती है। पद्मा ने भी बिकने से न कर दी और कोकिला की नीलामी की बारी आ गयी। कोकिला के लिये बोली होने लगी। अनुराधा तथा पद्मा के बिकने से इन्कार करने पर कोकिला की मान-प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। परिणाम यह हुआ कि मूल्यांकन बहुत ऊचा नहीं गया। एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा तक पहुच रुक गया। एक वृद्ध सेठ ने, जिसका नाम बालमुकुन्द था, एक लक्ष की बोली दी और उसके पीछे किसी ने अधिक देना पसन्द नहीं किया।

कोकिला बहत्तर वर्ष के वृद्ध के हाथ एक लक्ष स्वर्ण पर बिक गयी। इसमें से पच्चीस सहस्र राज्य कर देकर शेष कोकिला को देने की आज्ञा हो गयी। ऐसा हो जाने पर कोकिला को वृद्ध महाशय के साथ भेज दिया गया। पूर्व नियत कार्यक्रम के अनुसार अनुराधा और पद्मा की सवारी निकलनी थी। इस कारण दोनो को कपड़े पहिनने को कहा गया और उनको 'सौन्दर्य की रानी' की उपाधि देकर, रथ पर सवार कर नगर में

· ६ ·

सुन्दरी-प्रतियोगिता के दिन महाराज कुमारदेव और महारानी रेखा श्वेताग के विषय में बात कर रहे थे। महाराज का कहना था कि उसको पर्याप्त धन देकर काशी जी भेज देना चाहिये। रेखा की इच्छा यह थी कि उसको विष देकर मरवा डाला जाये। एक सैनिक प्रवृत्ति के मनुष्य के लिये किसी को चोरी-चोरी मारना रुचिकर नहीं हो सकता था। अतएव उसने कहा, "प्रिये! इस प्रकार की भीरुता करने की क्या आवश्यकता है। मैं उससे द्वन्द्व युद्ध कर उसको मार सकता हूं। बताओ, उसका दोष क्या है ?"

"अब बीती बातों को जगाने से कोई लाभ नहीं। वास्तव में वह मार देने के योग्य ही है। उसने किरण देवी को विष देने का यत्न किया था।"

"क्यों ?"

"इस कारण कि वह उससे डरता था। वह चतुर थी, नीति-निपुण थी और पढ़ी-लिखी थी। साथ ही दोनों के विचार नहीं मिलते थे। किरण का आप पर बहुत प्रभाव था।"

"यह सब कुछ तुम कैसे जानती हो ?"

"श्वेताग ने स्वयं बताया था।"

"तब तो मैं उस पर आरोप लगा कर अभियोग चला सकता हूं और राज्यपरिषद् से दंड दिलवा सकता हूं।"

"इससे भारी बदनामी होगी। मेरा आग्रह है कि उसको चुपचाप समाप्त करवा दीजिये। गंदगी उघाड़ने से बदबू फैलती है।"

कुमारदेव यद्यपि रेखा के इस आग्रह को समझ नहीं सका तो भी महारानी बनने पर पहिली ही मांग को वह अस्वीकार नहीं कर सका। इस कारण रेखा को यह कह कि मैं शीघ्र ही यह प्रबन्ध करवा दूंगा, एकान्त में आकर विचार करने लगा।

किसी को विष दे कर मरवा देने से उसकी आत्मा में ग्लानि उत्पन्न

होने लगी। वह, जो सैंकडो को युद्धक्षेत्र में तलवार के घाट उतार चुका था, विष से एक को भी मरवाने के लिये भय खाने लगा। उसने आचार्य भूदेव को बुलाया और श्वेताग के विषय में राय करने लगा, "आचार्य जी! पंडित सुखदर्शन के छूटने से प्रायः सब बन्दी छूट गये हैं और इससे मेरे मन का बोझा बहुत सीमा तक हल्का हो गया है। अब केवल श्वेतांग की समस्या रह गयी हैं। यह बहुत विकट प्रतीत होती है। उसका क्या किया जावे?"

"महाराज!" आचार्य ने कहा, "आप श्वेताग को उसके पिता से मांग कर लाये थे। आपको उसे उनके पास भेज देना चाहिये।"

"मुझको किसी ने यह सम्मति दी है कि उसको मरवादे ना चाहिये। यदि उसे छोड दिया गया तो वह भारी ववंडर खड़ा कर सकता है।"

"यह सम्मति महारानी जी ने दी प्रतीत होती है?"

महाराज विस्मय में आचार्य का मुख देखता रह गया। आचार्य भूदेव प्रश्न भरी दृष्टि से महाराज के मुख की ओर देखने लगा। विवश महाराज ने पूछा, "आचार्य जी! महारानी के लिये आपके मन में यह संदेह क्यो उत्पन्न हुआ है?"

"इतनी भयंकर वात अन्य कोई महाराज को कह ही नहीं सकता। किसका इतना साहस है कि अवन्ति महाराज को इतनी घृणित वात कहे?"

"परन्तु उनको यह कहने की आवश्यकता क्यों हुई?"

"अकारण तो कोई वात होती नहीं। परन्तु महाराज! आप इस विषय में क्यो इतने अधीर हो रहे हैं। आप वही करिये जो आपका मन कहे।"

इससे तो कुमारदेव को और भी संदेह हो गया। आचार्य के उत्तर से उसके मन को शान्ति नहीं हुई। उसने कहा, "महामात्य! मैं आज्ञा करता हू कि आप इस विषय को निर्भीकता से कहें। मै श्वेताग के विषय में आज ही कुछ निश्चय करना चाहता हूं।"

"महाराज!" आचार्य ने कुछ दृढता से कहा, "यह एक बहुत ही दुःख की वात है। यदि आप सुनना चाहते हैं तो मन के उद्‌गारो से मुक्त होकर और

ायबुद्धि होकर सुनिये। तब ही आप इस समस्या के रहस्य को समझ
केंगे।"

"हा! हा! महामात्य! बात को स्पष्ट रूप में कहिये। आपने
तो मेरे मन को और भी व्याकुल कर दिया है।"

"तो सुनिये! महारानी का लड़का श्वेतांग का लड़का है। दोनों का सम्बन्ध घना रहा है और दोनों एक दूसरे के अवगुणों को जानते हैं। महारानी नहीं चाहती कि उसके दोषों को प्रकट करने वाला कोई संसार में रहे।"

कुमारदेव आचार्य के कथन को सुन कर स्तब्ध रह गया। आचार्य ने अपना कथन चालू रखा। उसने कहा, "महाराज! आप महारानी के लड़के को ध्यान से देखें तो उसकी आकृति श्वेतांग से मिलती हुई प्रतीत होगी। इसके अतिरिक्त इस बात के अन्य प्रमाण मिल रहे हैं। यदि श्वेतांग पर अभियोग चलाया जावे तो उसका किरण के साथ दुर्व्यवहार के अतिरिक्त और कोई दोष उस पर सिद्ध नहीं हो सकता। रही राज्य की नीति, इसके लिये उस पर अभियोग नहीं चल सकता। उसने कोई भी बात आप से पूछे बिना नहीं की थी।

"इस कारण मेरा सुझाव है कि इस समस्या का उचित सुझाव उसकी हत्या नहीं, प्रत्युत उससे समझौता है।"

"क्या समझौता होना चाहिये?"

"अभी इस बात का अवसर नहीं आया। राज्याभिषेक उत्सव के पश्चात् इस विषय पर विचार कर लिया जावेगा।"

इस समय कुमारदेव को रेखा से कही एक बात याद आ गयी। उसने पूछा, "किरण को एक बार विष दिया गया था। महारानी का कहना है कि वह श्वेतांग ने दिया था।"

"महाराज! मैंने इस विषय में जाच की है। विष महारानी ने दिया था। श्वेतांग को यह बात विदित हो गयी थी। वह चाहता था कि किरण पर आत्महत्या का दोष लग जावे, परन्तु किरण की चतुराई के सामने वह कुछ कर नहीं सका। जब उसको यह विदित हो गया कि विष देने वाली

महारानी जी है, तो वह चुप कर रहा।"

"पर रेखा ने उसको विष क्यो दिया था ?"

"किरण की योग्यता से ईर्ष्या कर।"

आचार्य भूदेव जब महाराज से विदा माग चला गया तो महाराज के मन को शान्ति नहीं हुई। उसको रेखा से ग्लानि उत्पन्न होने लगी। वह महारानी से जितना अधिक प्रेम करता था उतनी ही अधिक अब उसकी प्रतिक्रिया हुई। वह श्वेतांग से शेष बात जानने के लिये चल पडा।

श्वेताग अपने आगार के गवाक्ष में से आ रही सूर्यास्त्त की किरणो का भोग कर रहा था। जब द्वार खोल कुमार श्वेताग के सामने पहुचा, तो श्वेताग ने बैठे-बैठे ही पूछा "महाराज! कैसे आना हुआ है इस समय ?"

"श्वेतांग! आज मै बहुत प्रसन्न हू। कल मेरा राज्याभिषेक सम्पन्न हो चुका है। आज तुमसे आयोजित सुन्दरी-प्रतियोगिता होने वाली है। इस सब प्रसन्नता और सौभाग्य के लाने में तुम्हारा भी हाथ है। इस कारण मै तुम्हे धन्यवाद करने आया हू।"

"राज्याभिषेक की धूम तो कुछ-कुछ इस गवाक्ष में से भी दिखाई पडती है। नदी पार का किनारा यहा से दिखाई देता है और वहा की चहल-पहल मे देख कर यही अनुमान लगा रहा था। परन्तु विस्मय का विषय तो यह है कि सुन्दरी-प्रतियोगिता का आयोजन आचार्य भूदेव ने सहन किया है।"

"हा, यह विस्मय की बात तो है। परन्तु इससे अधिक विस्मय की एक और बात है। किसी ने यह सुझाव दिया था कि तुम्हे विष देकर मरवा डाला जावे, परन्तु आचार्य भूदेव ने इसका विरोध किया है।"

"तो इस सुझाव को देने वाली महारानी रेखा देवी है ? अपने महारानी बनने की प्रसन्नता में यह इनाम बांट रही है, अपने हितचिन्तको को ?"

"महारानी रेखा पर तुम इतना घोर सदेह क्यो करते हो मित्र ?"

"ऐसा प्रस्ताव एक स्त्री के अतिरिक्त और कोई नहीं रख सकता। आज के दिन श्रीमती रेखा के अतिरिक्त और कौन हो सकती है,

जिसकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो ? राज्याभिषेक से बढ़कर पागल बनाने वाली बात किसी के लिये और क्या हो सकती है ?"

कुमारदेव को अति विस्मय हुआ। वह विचार करता था कि दोनों महामात्य रेखा के लिये इतना छोटा विचार रखते हैं और वह स्वय इतना मूर्ख है कि उसकी प्रकृति को समझ नहीं सका। क्या वह सत्य ही इतनी दुष्टा है ? अभी श्वेताग के विचारो को और अधिक गम्भीरता से जानने के लिये उसने कहा, "पर मित्र ! यह मान भी लूं कि महारानी ने तुम्हें विष देने के लिये प्रस्ताव किया है, तब भी इसमें कारण तो कुछ प्रतीत नहीं होता।"

"कारण तो है। परन्तु आप जान कर क्या करेंगे ?"

"मै इसलिये जानना चाहता हू कि तुम्हारे इस लाञ्छन को कि रेखा तुम्हें विष देना चाहती है, मिथ्या सिद्ध कर दूं।"

"सिद्ध करने से क्या होगा महाराज ! मैं रेखा देवी के विषय में बहुत बातें जानता हू और वे चाहती हैं कि उन रहस्यों के जानने वाला इस ससार में न रहे। अब वे महारानी बन गयी हैं। उनके वह रहस्य, जो केवल क्रीतदासी काल के थे, अब प्रकट नहीं होने चाहियें।"

कुमार इस भूल-भूलैया से ऊब गया था। वह श्वेताग से स्पष्ट सुनना चाहता था कि रेखा क्यों उसके विरुद्ध हो गयी है ? इस कारण उसने कहा, "देखो ! इस प्रकार की घुम-घुमाव की बातें करने से न तो मेरा सतोष होगा और न ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हारे विरुद्ध आरोप है कि तुमने किरण देवी को विष देकर मार डालने का प्रयास किया था। दूसरे तुमने उससे बलात्कार करने का अपराध किया है।"

"इन दोनो बातों में मेरा कोई दोष नहीं।"

"आचार्य भूदेव का कहना है कि आपके ऊपर अभियोग चलाया जावे और यदि आप दोषी सिद्ध हो तो आप को दड दिया जावे।"

"यही तो महाराज ! मैं चाहता हू। मुझको विश्वास है कि मेरे स्थान पर दोषी कोई दूसरा सिद्ध होगा।"

"मैं यही तो पूछ रहा हूं कि तुम बताते क्यों नहीं कि कौन दोषी है ?"

"तो आप चाहते हैं कि यहां ही बता दूं ? न्यायालय में न जाना पड़ेगा क्या ?"

"तुम्हारा मामला तो राज्य-परिषद् में ही उपस्थित होगा। वहां पर भी तो अंतिम निर्णय मेरे हाथ में ही होगा।"

"यदि आप सुनना चाहते हैं तो सुन लीजिये। रेखा देवी ने किरण को विष देने का यत्न किया था। इसके प्रमाण मेरे काग़ज़ो वाले संदूक में रखे हैं। मेरा किरण पर बलात्कार भी रेखा देवी के कहने पर और उस पर लगने वाले लांछन को छुपाने के लिये था। रेखा देवी के लड़के को देख लीजिये। वह आपको उसके जन्म के विषय में एक नवीन कथा बतायेगा। रेखा देवी आपसे अधिक मनुष्यों की पत्नी है। वह लडका आपकी सन्तान नहीं है।"

"तो किस की है ?"

"उसके नाक और आंखों की आकृति उसके पिता का परिचय देगी। यदि और प्रमाण चाहते हैं तो महारानी के योनिद्वार पर तिल का चिन्ह देख लें। मैं यह सब प्रमाण राज्य-परिषद् में दूंगा और इस पर भी यदि मुझको मृत्यु दंड दिया तो फिर मैं क्या कर सकता हूं ?"

रेखा के योनिद्वार पर तिल के चिन्ह की बात सुन कर तो कुमार सन्न रह गया। वह उसके विषय में जानता था। इससे रेखा के श्वेतांग से सम्बन्ध के विषय में उसको प्रमाण मिल गया। वह और कुछ अधिक जानना नहीं चाहता था। उसने उसको कह दिया, "अच्छी बात है, मैं तुम ने कही बातों पर विचार करूंगा और तुम्हारे विषय में आचार्य भूदेव तुमसे शीघ्र बात करेंगे।"

कुमारदेव जब भूगर्भ आगारों से बाहर आया तो उसके मन के सब संशय निवारण हो चुके थे। वह अपने मन में रेखा के विषय में कुछ निर्णय करना चाहता था। उसके मन में यह भय समा गया था कि किसी दिन भी, जब वह उससे रुष्ट हुई, तो उसको विष देकर अपने मार्ग से दूर करने का यत्न

करेगी। यह विचार कर वह कांप उठा। रेखा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह सुन्दरी-प्रतियोगिता पर जाने के लिये तैयार थी।

सुन्दरी-प्रतियोगिता से लौटने पर वह एक और विचार से प्रभावित हुआ था। अनुराधा और पद्मा के धन को ठुकरा कर विवाह के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने पर उसको आश्चर्य हुआ था। रेखा के विषय में यह विश्वास हो जाने पर कि उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार करने पर भी वह अन्य व्यक्तियों से भी भोग-विलास करती रही है, वह उससे घृणा करने लगा था। अब अनुराधा इत्यादि के व्यवहार से तो उसको रेखा अति निकृष्ट सी प्रतीत हुई। उसने मनोज को बुला कर दोनो सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियो को राज-प्रसाद में बुला लिया।

जब वे राज-प्रसाद में पहुचीं तो प्रभात हो चुका था। वे रात भर सो न सकने के कारण बहुत थकी हुई थीं। इस कारण उनके विश्राम का प्रबन्ध आचार्य भूदेव के आगारों में कर दिया गया। वहा उनकी मातायें पहिले ही उपस्थित थीं।

: ७ :

"देखो श्वेतांग!" आचार्य भूदेव कह रहा था, "जो कुछ तुमने अवन्ति के साथ किया है, वह इस राज्य के रहनेवाले शताब्दियो तक स्मरण रखेंगे। उनसे की गई भलाई का फल तो भगवान् ही तुम को देगा। इस समय तो मैं तुमसे उस भले कार्य के विषय में पूछ रहा हू, जो तुमने रेखा देवी से किया है। उस रहस्य को गुप्त रखने के लिये तुम कितना मूल्य चाहते हो?"

"बीस सहस्र स्वर्ण प्रतिवर्ष।"

"स्वीकार है। तुमको यहा से चला जाना होगा।"

"मैं काशी जी चला जाऊगा।"

"वचन भग नहीं होगा न?"

"वचन दोनों ओर से पालन होना चाहिये। जब तक धन मिलता रहेगा तब तक उसको मुझसे भय करने की आवश्यकता नहीं।"

इस प्रकार श्वेताग से महाराज कुमारदेव ने पीछा छुडाया। श्वेतांग को एक अमावस की रात के अंधेरे में रथ पर सवार कर एक वर्ष का वेतन अग्रिम देकर विदा कर दिया गया।

इससे रेखा की चिन्ता नहीं मिटी। उसको यह विदित हो गया था कि महाराज को उसके पुत्र के श्वेताग से होने का ज्ञान हो गया है। इस कारण वह महाराज से अपने को सुरक्षित करने के उपाय सोचने लगी। उसकी एक दासी मषीका थी, जो पहिले किरण की सेवा में थी। वह उससे अति अतरग हो गयी थी। इससे महाराज के अनुराधा से विवाह कर लेने पर रेखा ने मषीका से राय करना उचित समझा। मषीका का स्पष्ट कहना था "महारानी जी! राजा को बदल देना चाहिये। इससे पूर्व जनता का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। जनता से सम्पर्क तो तब ही उत्पन्न हो सकता है जब आप बार-बार ऐसे आयोजन करें, जिनसे आप जनता के सामने बार-बार आती रहे।"

जनता के सम्पर्क में आने के लिये दोनों ने यह विचार किया कि महारानी शैव सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जावें। इसके लिए उज्जयिनी में इस मतके प्रख्यात प्रचारक को महारानी से मिलाया गया। महारानी शिव-मंदिर में जाने लगीं। उनके इस कार्य की सूचना जब महाराज को मिली तो वे आचार्य भूदेव से इस विषय पर विचार करने लगे। आचार्य भूदेव ने बताया "महाराज! मुझको महारानी जी के इस काम का ज्ञान है। इस पर भी मेरा विचार है कि आपको इसमें बाधा खडी नहीं करनी चाहिये। यह ही एक बहाना बनने वाला है, जिससे आप उसका त्याग कर सकेंगे।"

महाराज कुमारदेव ने अनुराधा से विवाह कर लिया था। रेखा इससे जल भुन गयी थी। एक दिन उसने महाराज से कहा था, "महाराज! अब तो आपके दर्शन भी नहीं होते।"

"तो तुम नहीं जानती क्यों?"

"आपने नवीन विवाह कर लिया है न?"

"वह मुझको तुम्हारे पास आने से मना नहीं करती।"

"तो कौन मना करता है ?"

"मेरा मन कहता है कि अब तुम से सम्पर्क रखना ठीक नहीं है।"

"क्यों ?"

"इसका कारण तुम जानती हो। बार-बार मेरे मुख से इस नीच बात को सुन कर क्या आनन्द आता है तुमको ?"

"किरण के रहते हुए तो कभी-कभी आप उसके आगार को भी सुशोभित करते रहते थे ?"

"ठीक है, पर वह तुम्हारी भाँति हरजायी नहीं थी।"

"पर इसमें हानि ही क्या है ? आप भी तो अपने सुख-स्वाद के लिये अनेकों स्त्रियों से विनोद करते रहते है।"

"अनुराधा के आने के पश्चात् मुझको इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई।"

"पर मुझको आपसे मिलने के पश्चात् इसकी आवश्यकता अनुभव हुई थी।"

कुमारदेव यह सुन क्रोध से लाल हो गया। बहुत कठिनाई से वह अपने को रोक कर बोला, "तो अब भी तुम अपनी आवश्यकता किसी अन्य स्थान से पूरा क्यों नहीं कर लेती ?"

कुमारदेव रेखा के पास से उठ कर चला गया। रेखा को इस बात से संतोष नहीं हुआ। इससे वह यह इच्छा करने लगी कि उसके लिए एक पृथक् महल बनवा दिए जावे। उसने आचार्य भूदेव के पास आकर कहा, "महामात्य ! मैं राजकुमार की माता हूं। इस प्रासाद में, जहां राजकुमार के पिता, एक अन्य रानी से इतना अधिक प्रेम करें, जितना उसकी माता को प्राप्त न हो, तो उसके मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। इस कारण मेरी यह मांग है कि मेरे रहने के लिये एक पृथक् प्रासाद बनवा दिया जावे।"

आचार्य भूदेव इस प्रस्ताव को सुनकर हंस पड़ा। पश्चात् उसने कहा, "रानी जी, अपना भला-बुरा विचार कर लें। मैं तो महाराज को राय दे

दूंगा कि आपकी बात मान ली जावे।"

"क्या बुराई की बात हो सकती है इसमें ?"

"मैं कुछ नहीं जानता। यहा एक ही प्रासाद में रहते हुए तो महाराज आपके आगारो में आते नहीं। यदि आप दूर चली जावेंगी, तब तो यह बात सब दुनिया जानेगी और फिर इसका अर्थ अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब निकालेंगे।"

"मैं समझती हूं कि तब महाराज अपनी आन रखने के लिये अवश्य आवेंगे।"

"यह, महारानी जी ! आप विचार लें।"

"मैंने विचार कर लिया है। मैं इस महल में, जहां उनकी अनुराधा रहती है, नहीं रहना चाहती।"

"अच्छी बात है ! मैं महाराज से इस विषय में बात करूंगा।"

आचार्य की अपनी योजना इस बात से और भी भली भांति चल सकती थी। इस कारण महाराज से कह कर रेखा के लिये एक पृथक् महल बनवा दिया। रेखा उसमें गयी तो शैव मतावलम्बियो का महारानी से मेल जोल और भी बढ़ गया। शैव-मत वालो का मुख्य पुजारी एक महापाद नाम का दक्षिणी ब्राह्मण था। उसने जब यह सुना कि महारानी रेखा एक पृथक् प्रासाद पा गयी है, तो उसने प्रासाद के भीतर ही उपासना का आयोजन करने का प्रस्ताव कर दिया। महारानी भी यही चाहती थी। महापाद तो यह नहीं जानता था कि महारानी का इसमें क्या उद्देश्य है, परन्तु कुछ उपासक इस बात से परिचित थे और वे महारानी की योजना में सहायता करने लगे।

महारानी के प्रासाद में महाशिवरात्रि को उपासना की गयी और उन उपासको ने जो महारानी की योजना में सहायक थे, इस उपासना में सम्मिलित करने के लिये सेनापति सुधीर और कुछ सेनानायको को बुलाया। सेनापति महारानी के सम्पर्क में आया तो उपासना के अतिरिक्त भी कभी-कभी मिलने के लिये आने लगा।

आचार्य भूदेव मामले को इस प्रकार चलते देख चिन्ता अनुभव करने लगा। उसका विचार था कि महारानी रेखा विषयवासना में इतनी लिप्त हो जावेगी कि वह देश में बदनाम होने से अपना मान खो बैठेगी और फिर उसके लड़के को भी सिंहासन प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न हो जावेगी, परन्तु वह यह आशा नहीं करता था कि सेना के अधिकारी उसके सम्पर्क में आने लगेंगे। इस कारण उसने रेखा की दासी मधीका को बुला भेजा और उससे वहां की सूचनायें लेनी आरम्भ कर दीं। मधीका ने आचार्य के कहने पर ही रेखा की सेवा स्वीकार की थी। उनके कहने पर ही उसने रेखा के साथ उसकी पूर्ण योजनाओं में सहयोग देना आरम्भ किया था। इस प्रकार वह रेखा की सब बातों से परिचित थी। जब वह महामात्य के बुलाने पर आयी, तो आचार्य ने पूछा, "मधीका ! सुधीर जी कब आये थे, महारानी जी से मिलने के लिये ?"

"श्रीमान् ! इस समय भी वे वहा बैठे हैं।"

"क्या करने आते हैं वे इतनी जल्दी-जल्दी ?"

मधीका ने मुख नीचे कर कहा, "श्रीमान् ! एक पुरुष एक स्त्री के पास जिस कारण आता है, वही कारण यहा भी है।"

"जो कुछ तुम्हारी महारानी सुधीर से भेंट में कहती है, उसका फल उनको क्या मिलने वाला है।"

"कहना कठिन प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कुछ निश्चय नहीं हुआ। यदि हुआ है तो उस विषय की बात अभी शयनागार के बाहर नहीं आयी।"

"तो तुम कैसी दासी हो, जो शयनागार की बात बता नहीं सकती ?"

मधीका ने मुस्कराते हुए कहा, "श्रीमान् ! मेरी आंखों में वह शक्ति नहीं जो शयनागार की दीवार भेद कर देख सके अथवा कानों में शक्ति नहीं कि डेढ़ हाथ मोटी दीवार के भीतर का शब्द सुन सके।"

"तो तुम्हारे में यह शक्ति पैदा करनी चाहिये। इधर आओ।"

जब मधीका समीप आयी तो भूदेव ने उसके कान में रेखा के प्रासाद का

एक रहस्य उसको बता दिया। रेखा के प्रासाद के उस आगार में जिसमें महारानी का शयनागार था, गुप्त द्वार बना हुआ था, जिसमें से जाकर कोई भी गुप्तचर महारानी के शयनागार की भूमि के नीचे पहुच सकता था और वहा से आगार में किये जा रहे वार्तालाप को सुन सकता था।

इस रहस्य के जान जाने से मधीका रेखा और सुधीर में होने वाली गोपनीय बातो के बहुत सीमा तक सुन सकने मे समर्थ हो गयी।

: ८ :

पुखदर्शन के न्यायमन्त्री बन जाने के पश्चात् मनोज को नगर में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया गया। जब से पडित जी को यह विदित हुआ कि लोला मनोज से विवाह की इच्छा रखती है, तब से ही वह उसकी उन्नति में यत्न करने लगे थे। इस यत्न का परिणाम ही यह हुआ था कि वह उस पद पर नियुक्त किया गया।

एक दिन नगरपाल ने एक युवक उसके सामने उपस्थित किया और उस पर अपनी स्त्री की हत्या करने का आरोप लगाया। आरोप इस प्रकार था कि नगर के एक मुहल्ले में एक स्त्री, जिसका नाम कनखैया था, रहती थी। उसका पति एकाएक लापता हो गया और वह अपने पति के पाच मकानो की मालिक हो गयी। इन मकानो से अढाई-तीन सौ रजत मासिक की आय होती थी।

"लगभग एक वर्ष हुआ, यह युवक, जो अपना नाम चन्दु बताता है, उस स्त्री के पास आकर रहने लगा। तीन दिन हुए उस स्त्री का शव नदी तट पर मिला है। जब शव पहिचाना गया तो उसके घर पर खोज गयी। पता चला है कि यह युवक कनखैया के मकान पर एक अन्य स्त्री के साथ रहता है। उसका नाम मोना है। हमारा यह आरोप है कि इसने कनखैया से छुटकारा पाने के लिये उसको मार डाला है और स्वय उस की सम्पत्ति का स्वामी बन गया है और उस सम्पत्ति का भोग एक अन्य स्त्री से मिल कर कर रहा है।"

मनोज ने आरोप लिखकर, चन्दु से पूछा, "तुम क्या कहते हो?"

चन्दु ने अपनी स्त्री के राजकुमार के जन्मोत्सव के अवसर पर खो जाने की पूर्ण कथा सुना दी और कहा, "जब मैं अपना देहात का घर छोड़ कर इसके पास आकर रहने लगा, तब मुझको ज्ञात हुआ कि कनखैया देहात से पकड़ कर लायी हुई लड़कियों का व्यापार करती है। इस व्यापार में उसको एक हट्टे-कट्टे युवक पुरुष की आवश्यकता थी और मैं उसके काम आने लगा। कई बार मैंने इसकी उन लोगों से रक्षा की थी, जिनको इसने धोखा दिया था।

"कुछ दिन हुए मेरे बहनोई की बहन मीना कनखैया के पास आयी और कहने लगी कि जिसके पास उसने उसे बेचा था, वह अब उसको खाने-पीने को नहीं देता। कनखैया ने उसको कोई नया पति ढूंढ देने के लिये अपने घर में रख लिया। जब वह घर में आयी तब ही मुझको पता चला कि वह कौन है और क्यों आयी है? मीना कनखैया के घर में उसकी इच्छा से रहती थी।

"तीन दिन हुए कि कनखैया एक पुरुष को एक लड़की दिखाने गयी थी और फिर नहीं लौटी। मैं नहीं जानता कि क्या हुआ है।"

दोनों ओर से साक्षी उपस्थित किये गये। मीना भी साक्षी के रूप में आयी। उसने बताया, "जब कनखैया गांव में चन्दु के साथ आयी तो उसने कहा था कि मैं व्यर्थ में अपनी जवानी देहात में गंवा रही हूं। मैं उससे बताये प्रलोभन में फंस गयी और एक दिन घर से भाग कर उसके पास आयी। मैंने कनखैया को बता दिया था कि चन्दु मेरा सम्बन्धी है। इस कारण मेरे विषय में उसको पता न चले। उसने बहुत ही चतुराई से मेरा विवाह कलाभवन के एक मूर्तिकार से कर दिया। उसने, जैसा कि मुझको पीछे पता चला था, मेरा एक सौ रजत मूल्य प्राप्त किया था। उस मूर्त्तिकार ने मेरी बहुत सी मूर्त्तियां बना-बना कर बेचीं। उसने मेरी मूर्त्तियों से बहुत धन कमाया और मुझको पत्नी भी बना कर रखा। कुछ दिनों से वह एक और युवति को कहीं से ले आया है और उसने मुझको

रोटी-पानी देना वन्द कर दिया था। इस कारण मैं पुन: कनखैया के पास आयी थी और उसने मेरा दूसरा विवाह करने का वचन दिया था। मेरे आने के दूसरे दिन ही से वह लापता थो और अब मुझको भी वंदी वना लिया गया है।"

मनोज समाज की यह अवस्था देख अति दुःखी था। इस पर भी वह इसको रोकने की क्षमता नहीं रखता था। जहां तक चन्दु की वात थी, नगरपाल यह सिद्ध नहीं कर सका कि उसमें और कनखैया में कभी भी किसी प्राकार का झगडा, मनमुटाव अथवा कोई और कारण हुआ हो जिससे हत्या तक की नौबत आ गयी हो। इससे चन्दु हत्या के आरोप से मुक्त हो गया।

मनोज समाज में इस पतन को देख कर दुःखी मन आचार्य जी के पास जाकर कहने लगा, "यह अवस्था अति हृदय-विदारक है। इसके निवारण का कोई उपाय करिये। अन्यथा इससे छुट्टी पाने के लिये यह नगर छोड़ कहीं अन्य स्थान पर जाना पडेगा।" आचार्य ने पूर्ण कथा सुनी और कहा, "अभी अवस्था असह्य नहीं हुई। अभी पतन और चलना चाहिये। जव तक जनता त्राहि-त्राहि नहीं वोल उठती, तव तक उसको पतन की ओर फिसलने से रोका नहीं जा सकता। उसके पश्चात् ही उन्नति का मार्ग लिया जा सकेगा।

"देखो मनोज! भगवान् ने इस देश के उद्धार का काम मेरे, तुम्हारे और पंडित सुखदर्शन के सिर पर डाला है। हम एक नीति का अवलम्बन कर रहे हैं, जिससे, हमारा विचार है कि देश में विप्लव उत्पन्न हो जावेगा और जनता स्वयं ही वर्तमान अवस्था से घृणा करने लगेगी। हमारा कर्त्तव्य है कि इस अवस्था को लाने का यत्न करते जायें।"

मनोज इनसे संतुष्ट नहीं हुआ। वह इस अवस्था के सुधारने में यत्न करना चाहता था। वह यह तो जानता था कि आचार्य के मन में कोई योजना अवश्य है, जिसके पूर्ण होने पर जनता सत्य, धर्म और न्याय के पथ पर आरूढ़ हो कर कार्य करने लगेगी, परन्तु वह इसको न जानते हुए

संतोष अनुभव नहीं कर सकता था।

सायंकाल वह बहुत उदास मन पंडित सुखदर्शन जी से मिलने गया। वह उनसे भी अपने मन की बात कह कर मन हलका करना चाहता था। पंडित जी घर पर नहीं थे। लीला अपनी एक सहेली से, अपने आगार में बात-चीत कर रही थी। इस कारण मनोज बैठक में पंडित जी की प्रतीक्षा करने लगा। वह कितनी ही देर तक प्रतीक्षा करता रहा और पंडित जी नहीं आये। वह उठने लगा तो उसने लीला को नमस्कार कहला भेजा। इस पर वह भागती हुई आयी और रोष से बोली, "आपने इतनी देर से बैठे रहने पर भी सूचना नहीं भेजी। क्या अपराध हो गया है मुझ से?"

"आप की सेविका से पता चला था कि आप की कोई सहेली आयी हुई है। इस कारण मैंने आप के वार्तालाप में विघ्न डालना नहीं चाहा। अब जाते समय विचार आया कि नमस्कार तो भेज दूं।"

"ओह! वह तो कोकिला है। आप उसको जानते तो हैं। वह तो फिर अपने बूढ़े पति को केवल गालियां सुना रही थी। वास्तव में वह भी पिता जी की प्रतीक्षा कर रही है। आपने अभी और ठहरना हो तो हम यहीं आ जाते हैं।"

"यदि आपकी संगत का लाभ मिले तो मैं ठहर जाऊँगा। पंडित जी के आने का कुछ पता है?"

"आज राज्य परिषद् की बैठक में गये हैं। विचार है कि भोजन के समय आ जायेंगे।"

मनोज चुप रहा तो लीला ने सेविका को कह दिया कि उसके आगार में से उसकी सहेली को बुला लाये।

कोकिला आई और मनोज को पहिचान बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा, "यदि मुझे विदित होता कि नगर के न्यायाधीश बैठे हैं तो आपसे ही राय कर लेती।"

"हां देवी! बताइये मैं क्या सेवा कर सकता हूं?"

कोकिला ने हंस कर कहा, "मैं अपने बूढ़े पति को छोडना चाहती हूं। कैसे छोड सकती हूं ?"

"छोडना चाहती हो, क्यों ?"

उसने हसते हुए कहा, "यह क्या विचित्र प्रश्न है ? मेरी आयु अब अठारह वर्ष की हुई है और बूढे महाशय की वहत्तर वर्ष की है। शेष आपको समझ जाना चाहिये।"

मनोज ने कहा, "यह तो ठीक है, पर तुम अपनी इच्छा से विकी थीं और जब रुपया दिया जा रहा था, तुमने बूढे को देख लिया था। तुम्हारी अवस्था तो एक क्रीतदासी की है।"

"नहीं न्यायाधीश ! मुझ से बूढे ने विवाह किया है और उस विवाह का प्रमाणपत्र मेरे पास है। उसमें उसने लिखा है कि वोली की एक लक्ष स्वर्ण मुद्रायें उसने स्त्री-धन के रूप में दी है।"

"इस अवस्था में विवाह किसने कराया था ? यह विवाह कैसा है ? यदि वैदिक धर्मानुकूल विवाह हुआ है तो वह अटूट है। यदि एक सौदा है, तो हर्जाना देकर तोड़ा जा सकता है। हमारे राज्य में दोनो चलते हैं।"

"मेरा तो उससे लिखित व्यापारिक सौदा हुआ है।"

"इस अवस्था में वह वूढे महाशय तुम से अपनी हानि माग सकता है।"

"मैं दे दूंगी।"

"कैसे, और कहा से दे वोगी ? एक तो वह पूर्ण धन वापिस करना पडेगा, जो वोली में वोला गया था। साथ ही वह हानि मांगेगा। यह भी एक भारी धन राशि हो सकती है।"

"उसको क्या हानि हुई है। हानि तो मेरी हुई है। मैं कुमारी कन्या थी, उसने मुझको एक स्त्री बना दिया है।"

"पर छोड तो तुम रही हो न ? वह तो नहीं छोड़ रहा। वह कह सकता है कि उसकी स्त्री जब किसी अन्य पुरुष के पास जायेगी तो संसार में उसका अपमान होगा। उस अपमान का मूल्य वह कई लक्ष माग सकता है।"

"आप क्या समझते हैं ? उसके मान को कितना धक्का पहुंचा होगा ? आप उसकी मान-मर्यादा का क्या मूल्य आंकते हैं ?"

मनोज मन ही मन विचार कर बोला, "यदि मेरे पास तुम्हारा मामला आया, तो मैं तुम्हारे को ले जाने वाले से पांच लक्ष स्वर्ण दिलवाना चाहूंगा।"

"यह तो बहुत अधिक है। इतना तो मैं न दे सकूंगी।"

"कितना दे सकोगी ?"

"सब मिलमिला कर दो लक्ष।"

"यह कम है। वास्तव में यह उसके मान का मूल्य नहीं। यह तो तुम्हारे सौन्दर्य का मूल्य है। अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का इतना मूल्य तो होना ही चाहिये।"

"पहिले तो मैं सर्वश्रेष्ठ नहीं हूं। दूसरे मैं तो अपना मान इसी में समझती हूं कि मुझको पाने के लिये कोई नवयुवक तैयार है।"

"यह नवयुवक है कौन ?"

"कोई है, जो दो-तीन लक्ष देने को तैयार है।"

लीला हंस पड़ी। मनोज ने उसके मुख की ओर देखा तो उसने बताया, "बूढ़े महाशय के एक पुत्र हैं, जो अपनी मां को मोल लेने के लिये तैयार हैं।" मनोज यह सुन अवाक् रह गया। बहुत देर तक विचार कर बोला, "शायद अपने पिता को इस वासना से मुक्त कराने के लिये ही तुम को उनसे पृथक् कराना चाहता होगा।"

"जी नहीं। मुझको अपनी पत्नी बनायेगा। उसने वचन दिया है कि वह मुझसे राज्य में मान्य विधि के अनुसार विवाह कर लेगा।"

इस समय पण्डित सुखदर्शन आगये। वार्तालाप बंद हो गया।

· ६ ·

मनोज और पण्डित भोजन करने बैठे तो मनोज ने अपने मन में उठ रहे उद्‌गार वर्णन कर दिये। उसने वह सब बातें बतायीं, जिनके कारण

उसके मन में उदासीनता उत्पन्न हुई है। उसने लोला की सहेली कोकिला की कथा भी सुनाई। मनोज को चिन्तित देख पंडित जी ने कहा, "मनोज बेटा! यह सब बात हमारे ज्ञान में है। इससे हम घबराते नहीं। मेरी व्यवस्था अभी भी लागू है। कुमारदेव ने जिसके कहने से देश में यह अव्यवस्था की है, वह उस व्यवस्था से बच नहीं सकता। ब्राह्मण का कहा व्यर्थ नहीं जायेगा।"

"यह तो ठीक है भगवन्! परन्तु मैं तो कहता हूं कि जनता की अवस्था को सुधारने के लिये भी तो कुछ उपाय होना चाहिये। हम काठ के घर में रहते हुए आग से नहीं खेल सकते। इस घर को आग लग गयी तो हम भी अवश्य झुलस जायेंगे।"

पंडित सुखदर्शन बात का अर्थ न समझ, प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। इस पर मनोज ने अपने आशय की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "मेरा अभिप्राय यह है कि जब लोला की सहेली के मन की ऐसी भयकर अवस्था है, तो उसको आप रुई मे लपेट कर कब तक रख सकते हैं?"

समस्या का यह पक्ष देख पंडित सुखदर्शन गम्भीर विचार में पड़ गया। वह चुपचाप भोजन करता गया। अंत में उसने मनोज के मुख की ओर देखते हुए पूछा, "तो तुम्हारा यह अभिप्राय है कि उसका विवाह हो जाना चाहिये, जिससे उसका पति उसके मन में विकार उत्पन्न न होने दे?"

एकाएक लोला के विवाह का प्रश्न उत्पन्न हो जाने से मनोज प्रसन्न तो था, इस पर भी उसने किसी प्रकार से मन के भावों को प्रकट न होने देकर कहा, "पर यह तो आप अपना उत्तरदायित्व किसी दूसरे के कंधों पर डाल कर निश्चिन्त होना चाहते हैं?"

"इसमें नवीन बात कौन है? मनोज! सुनो। एक समय आचार्य जी का यह विचार था कि लोला का विवाह कुमार शतवीर से हो जावे, परन्तु मैंने यह विचार कर कि राजकुमार का उससे विवाह हो जाने पर

हम उसको राज्य दिलवाने पर वाध्य हो जावेंगे और वह राज्य के योग्य नहीं है, मैंने आचार्य जी से न कर दी थी। मैंने एक समय यह अनुमान लगाया था कि लोला तुम्हारे लिए अपने मन में कुछ कोमलता रखती है। मैंने उससे इस विषय में प्रश्न किया तो उसका कहना था कि पुरुष को स्त्री की लज्जा और मान-मर्यादा का ध्यान रख, उससे विवाह का प्रस्ताव स्वय करना चाहिये।"

"पर भगवन्! यह वात तो हमारी सस्कृति तथा सभ्यता के विपरीत प्रतीत होती है। हमने यह अधिकार स्त्रियो को दे रखा है कि अपने लिये पति स्वय ढूंढें।"

"तुम्हारी वात ठीक तो है, परन्तु लोला के कहने में भी कुछ तथ्य प्रतीत होता है। उस ने कहा था कि निर्वाचन का अधिकार लड़की को है सही, परन्तु उसके ढोल पीटने का कर्त्तव्य उसका नहीं है।"

"तो यदि लोला देवी का यह आशय है कि ढोल पीटने का काम मुझको ही करना है, तो वह मैं कर सकता हू।" मनोज ने मुस्कराते हुए कहा, "वास्तव में ढोल पीटने से पहिले मुझको यह ज्ञान होना चाहिये कि जो मुनादी मैं करने जा रहा हू, उसमें क्या उसका स्वर भी मिश्रित है? आपके कहने से तो मैं यह समझा हू कि मेरे ढोल के स्वर में उसका स्वर भी वोलेगा, इसकी मुझको प्रसन्नता है।"

"हा, मैं ऐसा ही समझता हू। शेष तुम स्वय निश्चय कर लो।"

भोजनोपरान्त जब वह लोला से विदा मागने गया तो उसने अपने मन की वात कह दी। उसने कहा, "लोला देवी! क्या अब समय नहीं आ गया कि आपके मन के भावो को विश्लेषण करने में मैं आपकी कुछ सहायता कर दूं?"

"कैसे भाव?"

"हम यौवनावस्था में पदार्पण कर चुके हैं और सृष्टि के नियमानुसार हमको अपना जीवन साथी ढूंढना है। मैंने अपने विषय में कुछ धारणा वनायी है। क्या मैं आपके विषय में भी कुछ अनुमान लगा सकता हूं?"

"तो क्या मेरे मन की बात आप समझना चाहते हैं ?"

"मैंने समझने का यत्न किया है और मेरा विचार है कि मैं जान गया हूं। मैं आपने अतिशय प्रेम करता हूं।"

"यह तो आपके मन की बात हो गयी।"

"हां, आपके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि आप अभी तक मेरे प्रेम का निरादर करने का विचार नहीं रखतीं।"

लोला ने विचार कर कहा, "मैं समझती हूं कि आप मेरे भावों को ठीक नहीं समझ सके। मैं तो किसी ऐसे की खोज में थी, जिसकी चरण रज मेरी मांग भर सके। आज वह खोज समाप्त हुई प्रतीत होती है।"

इतना कह उसने चरण-स्पर्श करने का यत्न किया, परन्तु मनोज ने उसको उठा कर अंग से लगा लिया। लोला उसकी भुजाओं में आनन्द-विभोर होती हुई, मुस्करा कर कहने लगी, "यह क्या ? पहिले ही पथच्युत करने की ठान ली है ?"

लोला का विवाह मनोज से हुआ तो उसमें शतवीर भी आमन्त्रित था। वह लोला से मिलने का अवसर पाकर कहने लगा, "लोला ! यह क्या कर दिया है तुमने ?"

लोला ने मुस्कराते हुए कहा, "राजकुमार ! ऐसा प्रतीत होता है कि आप का वशीकरण किसी दूसरी स्त्री के लिये हो गया है।"

राजकुमार अपने अभिमान की बात स्मरण कर कुछ लज्जित अवश्य हुआ, परन्तु लोला को नीचा दिखाने के लिये बोला, "कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। शायद जप करते समय कोई सुन्दरी मेरे मन में आती रही है। वह निस्सन्देह तुमसे अधिक सुन्दर रही होगी।"

"तब तो आपको मेरी बधाई स्वीकार करनी चाहिये। राजकुमारों का अधिक सुन्दर स्त्री से विवाह होना ही चाहिये।"

शतवीर इस फटकार से हतबुद्धि हो गया। लोला और मनोज को एक ही वेदी पर खड़े देख, वह जल-भुन गया और वहां से उठ अपने आगार में जा कर सो रहा। अगले दिन ही वह आश्रम को चला गया।

घोड़े से उतर सीधा महर्षि की कुटिया में पहुंचा। वे एक अति ओजस्वी लड़की से बातचीत कर रहे थे। शतवीर उसको नहीं जानता था। इस कारण वह महर्षि की कुटिया के द्वार पर ही रुक गया। महर्षि ने उसको देख लिया और भीतर से ही पुकारा, "इधर आओ राजकुमार ! तुम्हारा इनसे परिचय करायें।"

शतवीर भीतर चला गया और आदर से एक ओर बैठ गया। महर्षि ने सामने बैठी स्त्री की ओर देख कर कहा, "ये महाराज पालकदेव के पुत्र शतवीर हैं। श्वेताग ने अपनी नीति चलाने के लिये इनको यहां आश्रम में भेज दिया था। हमने इनको योग और सिद्धि के मार्ग पर ले जाने का यत्न किया है। पश्चात् उसने इसको पुनः राजगद्दी पर बैठाने के लिये बुलाया था, परन्तु इसमें वह सफल नहीं हुआ और इसको गद्दी पर बैठाने के स्थान, स्वयं पदच्युत और अनादरित हो काशी चला गया है। वर्तमान महामात्य आचार्य भूदेव ने भी इसको वहां रखा हुआ था, जिससे यह राजकार्य के योग्य हो सके। अब आज यह एकाएक यहां आ गया है।"

"भगवन् ! क्या इसमें भी आप भाग्य का हाथ नहीं देखते।" सामने बैठी लड़की ने कहा।

"भाग्य कोई वस्तु नहीं, किरण देवी ! अभी तक इसकी सहायता करने वाले उन शक्तियों को समझ नहीं सके, जिनके आश्रय इसका जीवन चल रहा है।"

शतवीर किरण का नाम सुन सन्न रह गया। उसने उज्जयिनी में सुना था कि उनका मूल्य एक लक्ष स्वर्ण देकर भी कुमारदेव समझता था कि वह धन इसके योग्य नहीं था। शतवीर ने झुककर किरण देवी को नमस्कार कर कहा, "देवी जी के विषय में बहुत सुना है। आज उनके दर्शन का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है।"

"किससे सुना है कुमार ?" किरण ने पूछा।

शतवीर ने कहा, "एक तो आपकी प्रशंसा लीला देवी से सुनी थी।"

"क्या करती है अब वह ?"

"वह उज्जयिनी के न्यायाधीश मनोज की पत्नी है। उनकी सेवा करती है।" शतवीर कह कर मुस्कराया।

किरण यह समाचार सुन कर प्रसन्न हुई। उसने कहा, "यह तो एक बहुत ही अच्छा समाचार लाये हैं आप।"

किरण की उसके लिये शुभ कामना सुन शतवीर को प्रसन्नता नहीं हुई। इस पर वह वहां आने का प्रयोजन स्मरण कर महर्षि से कहने लगा, "गुरुवर! आपका मंत्र सफल नहीं हुआ।"

"कौन मंत्र सफल नहीं हुआ ?"

"वही, जो वशीकरण का आपने दिया था।"

"कहां प्रयोग किया था उसका तुमने ?"

"वहीं गीता पर महाराज! मैं उससे विवाह करना चाहता था। एक वर्ष के जप करने पर भी उसका विवाह मनोज से हो गया, और वह अपने विवाह से अति प्रसन्न प्रतीत होती है।"

"तो इसका अर्थ यह निकला कि तुम अभी अपने मन को एकाग्र नहीं कर सके। इसके लिये अभी और अधिक अभ्यास की आवश्यकता है। जाओ अभ्यास करो।"

: १० :

विन्ध्याचल पर्वत के पार्श्व में निर्विन्ध्या नदी के तट पर एक अति रम-णीक स्थान पर महर्षि वामदेव का आश्रम था। किरण कलाभवन से निकल और एक देहाती शिव मन्दिर में लिंगायतवादियों का कटु अनुभव प्राप्त कर घूमती हुई इस आश्रम में पहुंच गयी। आचार्य भूदेव की बातों से उसके मन में इस आश्रम में पूर्ण शान्ति प्राप्त करने की आशा नहीं थी। इस पर भी वह यह समझती थी कि वहां पर कुछ काल पर्यन्त ठहर कर वह अपने लिये मार्ग विचार कर सकेगी। वहां पहुंच कर महर्षि तथा अन्य आश्रमवासियों का सामर्थ्य देख चकित रह गयी। आश्रम धन-धान्य से

भरपूर था। सहस्रों दुखियारे नित्य आते थे और अपनी मनोकामना प्राप्त कर हंसते-खेलते जाते थे। आश्रम में पुरुष और स्त्रियां दोनों रहते थे और दोनों स्वच्छन्दता से विचरते थे। इस पर भी वायुमंडल में वासना का कुछ अधिक समावेश प्रतीत नहीं होता था। जो भी प्राणी इसमें प्रवेश के लिये आता था उसको पहिले परीक्षा के लिये एक पृथक् स्थान पर रखा जाता था। वहां उसको एकान्त-वास करना पड़ता था। इस एकान्त-वास में महर्षि तथा उनसे नियुक्त दूत के अतिरिक्त और कोई उससे मिल नहीं सकता था। नवीन आने वाले व्यक्ति को इस काल में आत्मनिरूपण और आत्मशुद्धि का अवसर दिया जाता था। इस अवसर में महर्षि अभ्यागत की परीक्षा के लिये अनेक प्रकार के प्रलोभन उसके मार्ग में लाते थे। इन प्रलोभनों के होने पर भी, यदि नवीन आने वाला व्यक्ति मन के सतुलन को स्थिर रख सकता था, तब ही उसको आश्रम में प्रवेश मिलता था। कभी-कभी इस परीक्षा में महीनों ही लग जाते थे और प्राय व्यक्ति इस कठोर परीक्षा में असफल, लज्जित हो लौट जाते थे।

किरण के लिये भी परीक्षा काल आया। वह जब आश्रम के द्वार पर आयी तो उसका परिचय प्राप्त कर महर्षि को बताया गया। महर्षि से स्वीकृति प्राप्त कर उसको आश्रम के बाहरी गोल में रखा गया। जंगल में एक कुटिया उसके लिये नियत कर दी गयी। उसको कहा गया कि अपने पास का सब धन-दौलत और सांसारिक वस्तुएं आश्रम में जमा करा दे। किरण के पास कुछ स्वर्ण मुद्रायें थीं, जो उसने निकाल कर दे दीं। इस पर जो स्त्री उससे यह कहने आयी थी, बोली, "और यह वस्त्र तथा भूषण क्या सांसारिक नहीं हैं?" इस पर किरण समझ गयी। उसने भूषण उतार दिये, अपने उत्तरीय भी उतार दिये। केवल अपने वक्षोज को समेटने के लिये तथा गुह्य अंगों को ढांपने के लिये दो वस्त्र रख, शेष सब उतार कर दे दिये। महर्षि से भेजी गयी स्त्री इससे भी संतुष्ट नहीं हुई। परिणाम यह हुआ कि किरण को वे किंचित् वस्त्र भी

उतार कर उस स्त्री को देने पड़े। सर्वथा दिगम्बर हो वह कुटिया में चटाई पर बैठ गयी और महर्षि की दूती उसका सब कुछ लेकर चली गयी।

किरण इसका अर्थ नहीं समझ सकी। इस पर भी वह धीरज से किसी अधिकारी की प्रतीक्षा करने लगी। कुटिया के पास कुछ कदली वृक्ष थे, जो फल रहे थे। उसके फलों के अतिरिक्त उसको खाने को कुछ भी उपलब्ध नहीं था। वह प्रातः उठती, शौच इत्यादि से छुट्टी पा, एक प्रहर भर ध्यानावस्थित रहती। भूख लगने पर कदली फल उतार कर खाती और नींद आने पर चटाई पर सो रहती। कई दिन व्यतीत हो गये। किसी स्त्री पुरुष के दर्शन नहीं हुए। वह निर्वस्त्र एकान्त-वास करती रही। प्रारम्भ में तो उसको आश्रमवासियों के इस व्यवहार पर क्रोध आया, परन्तु धीरे-धीरे वह क्रोध शान्त होने लगा और उसके मन से निर्वस्त्र होने से उत्पन्न संकोच मिटने लगा।

एक दिन, जब वह ध्यानावस्थित बैठी हुई थी, एक जटाजूटधारी पुरुष सामने आ खड़ा हुआ। केवल कौपीन पहिने हुए, एक हाथ में कमण्डल लिये और दूसरे हाथ में बैरागन लटकाये हुए था। किरण सर्वथा निर्वस्त्र पलथी मारे आँखें मूँदे बैठी थी। कितनी ही देर तक वह साधु सामने खड़ा रहा। जब किरण की आँख नहीं खुली, तो उसने आवाज दी, "जय जगदम्बे!"

किरण का ध्यान भंग हुआ। अपने सामने एक पुरुष को खड़े देख, संकोच से सिकुड़ गयी। उसके मन के भाव को देख वह साधु मुस्कराया और बोला, "माँ भगवती! किस अर्थ इस घोर यन्त्रणा को सहने के लिये यहाँ आयी हो।"

माँ का शब्द सुन कर किरण अपने संकोच पर लज्जित हुई और पुनः उस पुरुष की ओर देख कर बोली, "किस महान् आत्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है?"

"माँ भगवती के एक तुच्छ अंश मात्र का ही दर्शन तो है।"

"फिर भी भगवन्! मेरी अभिलाषा महर्षि जी से मिलने की थी।

क्या मैं उन के दर्शन कर रही हू ?"

"क्या काम है तुम्हारा उनसे ?"

"मैं उनके आश्रम में रह कर अपना मार्ग जानने के लिये आयी हू।"

"तुम उनके आश्रम में तो हो और उनके सरक्षण में भी हो। यदि सत्य ही तुम्हारी इच्छा मार्ग-दर्शन की होगी तो वह पूरी होगी।"

"तो महाराज ! आपके आने का क्या प्रयोजन है ?"

"मैं महर्षि जी का एक क्षुद्र अनुचर हू । यह देखने आया था कि तुम को कोई कष्ट तो नहीं। यहा जीवन चलाना तो इतना सुगम है कि इसके लिए किसी की देखभाल की आवश्यकता नहीं । मा प्रकृति ने यह स्वच्छ जल की नदी बहा रखी है । यह कदली वृक्ष अनायास ही फल देता है। सूर्य ऊष्मा देता है । चन्द्र शीतलता प्रदान करता है। यह देश न तो अधिक उष्ण है और न ही अति शीतयुक्त। इस कारण यहां शारीरिक कष्ट तो होना नहीं चाहिये ।"

"वैसे तो मैं ठीक हू, परन्तु इस प्रकार निर्वस्त्र बैठे रहना, अभ्यास न होने के कारण भला प्रतीत नहीं होता।"

"इस आश्रम में इसको अस्वाभाविक नहीं माना जाता। इसको प्रकृति के अनुरूप ही माना जाता है। वस्त्र तो शरीर को ऋतु सम्बन्धी परिवर्तनो के प्रभाव से बचाने के लिये होते है। इस देश और स्थान में तो ये भार रूप ही होंगे।"

"एक बात और भी तो है । स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे को नग्न देख कर वासना में भी तो लिप्त हो सकते है।"

"वासना लुकाव-छुपाव से नहीं मरती । वस्त्रों का आविष्कार वासना से बचने के लिये नहीं किया गया। इसकी आवश्यकता तो सर्दी, गर्मी, वर्षा, सूखा इत्यादि के प्रभाव से शरीर को बचाने के लिये होती है। वस्त्र पहिनने से तो वासना को प्रोत्साहन ही मिला है।"

"महात्मन् ! आपकी युक्ति तो ठीक प्रतीत होती है, परन्तु यह अनुभव के अनुकूल नहीं है।"

"तो तुम्हारे मन में कुछ विकार उत्पन्न हो रहा है ?"

"यह बात नही है ! मैं आपसे कई बातें पूछना चाहती हू, परन्तु आपको कुटिया के भीतर आने का निमत्रण नही दे सकती। मुझको आप के मन में विकार उत्पन्न हो जाने का भय है। यदि कहीं ऐसा होगया, तो क्या होगा ?"

"प्रथम तो ऐसा होना नहीं चाहिये। हम यहा जप-तप-ध्यान के लिये आये हुए है और इस ओर ध्यान करने से अपना अमूल्य समय व्यर्थ जाने का डर है। इस पर भी यदि जीवन वासनामय हो जावे तो उसको भूल समझ कर, उसका सुधार करने का पुन. प्रयत्न होना चाहिये।"

"परन्तु भगवन्! जिससे भाग कर यहां आयी हूँ, उसको भूल स्वीकार कर ही तो आयी हू। यहां आने पर भी उसको करू और फिर भूल ही मानूं, तो यहा आने का क्या लाभ हुआ ?"

"यहा आने का लाभ यह है कि यहा रोग की चिकित्सा होती है। रोग से भाग जाने का उपाय बताने की आवश्यकता नही समझी जाती।"

"मै उस चिकित्सा कराने के लिये ही आयी हू।"

"वह चिकित्सा तो हो रही है। तुम्हारे सामने एक महान् प्रलोभन खडा कर तुम्हारे मन को सुदृढ करने का यत्न किया जा रहा है। भील, गोंड अथवा अन्य जगली जाति के लोग, स्त्री-पुरुष, सब नग्न घूमते है, परन्तु वे कहे जाने वाले सभ्य लोगो से अधिक वासनामय नहीं होते।"

"उनका यह जीवन स्वाभाविक है। उन्होने यह स्वभाव पीढियो तक एक वातावरण में रह कर बना लिया है। हम लोग जो नगरो के वातावरण में रह कर आये है, इन प्रकार की उच्छृंखलता को सहन नहीं कर सकते।"

"इसको सहन कर सकना ही इस वासना से मुक्त होने का प्रथम चरण है। इससे बच कर भागना नहीं।"

किरण इस सबका अर्थ और इस युक्ति में दोष ढूंढने में लग गयी। उसको चुप देख वह पुरुष वहां से जाने को तैयार हो गया। जाने से

पहिले उसने कहा, "देवी भगवती! जो कुछ मैंने कहा है, उस पर चिन्तन करो और मार्ग मिल जायेगा।"

इतना कह कर वह चला गया। किरण इस सब में प्रयोजन ढूंढती रही। उसकी दिनचर्या चलती रही। फिर कई दिन व्यतीत हो गये और उससे कोई मिलने नहीं आया। अब उसको आश्रम में आये एक पखवारा व्यतीत हो चुका था। उसका मन वहा अब लग रहा था। जो अपनी नग्न अवस्था में अस्वाभाविकता उसको प्रतीत हो रही थी, वह नहीं रही थी। अब उसको प्रात उठकर नदी में स्नान करना, जगल में घूमना और निश्शक हो सो रहना, बुरा मालूम नहीं होता था। इस पर भी उसको सतोष नहीं था। वह मनुष्य से पशु बनने नहीं आई थी। अब तो उसका चित्त, पेड पर बन्दरो की भाति चढ़ने और वहा से कूदने को पसन्द करने लगा था। इस कारण वह विचार करती थी, "इसमें क्या सिद्धि है?"

उसको अब अपना निर्वस्त्र होना इतना अखर नहीं रहा था, जितना निसगति में होना। एक बार उसने नग्नावस्था में ही वहा से निकल आश्रम में चले जाने का यत्न किया। वह मार्ग नहीं पा सकी। ज्यों-ज्यो वह आगे बढ़ती गयी, जगल घना ही घना होता गया। अत में वह लौट आयी। उसको इच्छा हुई कि नदी मे वह जाये। कहीं तो वह पहुच ही जायेगी। वह तैरना जानती थी, इस कारण उसको डूबने का भय नहीं था।

उसने नदी में छलाग लगा दी। इसी समय किनारे पर से किसी के खिलखिलाकर हसने का शब्द हुआ। वह वहा पानी में ही खडी हो गयी और किनारे की ओर घूम कर देखने लगी। वही महात्मा था, जो कई दिन पूर्व उसके कष्ट पूछने आया था। किरण ने पूछा, "महात्मन्! हस क्यों रहे थे? नदी में कूदना अथवा तैरना क्या स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक है तो हसने में क्या प्रयोजन है?"

"भगवती! तुम्हारे नदी में कूदने-फादने से मैं नहीं हसा। तुम्हारी चचलता देख मैं हसा हू।"

"इसमें वैचित्र्य है क्या ?"

"हा ! यह तुम्हारे मन की चचलता को प्रकट करता है।"

"तो इसका उपाय बताओ न ? मै एकान्त में रहती-रहती ऊब गयी हूं।"

"तो तुम को तुम्हारे वस्त्र वापिस भिजवा देता हू और तुम समीप के नगर में जा सकती हो, जहा तुमको बहुत सगत मिल सकेगी।"

"तो क्या समाजविहीन रहने में भी कोई गुण है ?"

"मन को मारने में गुण है। मन को नियन्त्रण में करने से ही अपने पर नियत्रण रख सकोगी ? व्यर्थ की इच्छाओ को मिटा देना ही ससार-विजय करने की ओर जाना हो सकता है।"

"सगति की इच्छा आप व्यर्थ की इच्छा मानते है ?"

"हा !"

"तो सार्थक इच्छा क्या है ?"

"ससार को जानना। प्रकृति के गूढतम रहस्यो को समझना और फिर उन पर आधिपत्य प्राप्त करना।"

इस समय किरण जल से बाहर निकल आयी। वह महात्मा मुस्कराया। किरण ने पूछा "क्या है ?"

"अब तुमको मेरे सामने इस प्रकार आने में संकोच नहीं होता न ?"

इस प्रकार सकोच का स्मरण करने पर एक क्षण के लिये वह ठिठक गयी और उसका मुख लज्जा से लाल हो गया, परन्तु अगले ही क्षण वह सभल गयी। उसने मुस्करा कर कहा "तुम बहुत ही खराब हो। मैं जो भूलना चाहती हूं, उसको तुम स्मरण कराते हो।"

"भूल जाना इस रोग की चिकित्सा नही है। ससार की बातो को तथा उनके स्वाद को स्मरण कर, फिर उनका त्याग ही उन्नति की ओर जाना है।"

अब किरण उसके समीप आकर खड़ी हो गयी थी। वह एक पत्थर पर, जो नदी के किनारे पर पड़ा था बैठ गया और किरण से बोला, "आओ !

बैठ जाओ ।"

किरण को उसके समीप बैठने में संकोच हुआ, परन्तु वह अपने पर नियंत्रण कर बैठ गयी । महात्मा मुस्कराता हुआ नदी की ओर देखता रहा। जब वह बैठ गयी तो उसने गम्भीर हो कहना आरम्भ किया, "कितना सुन्दर दृश्य है ? आंखों को कितना प्यारा प्रतीत होता है ? परन्तु यह है क्या ? प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करने पर तो परमाणु और फिर उन में सत्व, रज, तम के अतिरिक्त भी कुछ है क्या ?

"देखो ! मैं, तुम, नदी, जल, पत्थर, पेड़, अभिप्राय यह कि दीखने और न दीखने वाली प्रत्येक वस्तु प्रकृति के इन मूल तत्वों से ही तो बनी है । फिर क्या भेद है इस पत्थर में और मेरे में ? जैसे तुम इस पर निस्संकोच बैठी हो उसी प्रकार मेरे सम्पर्क में आने में संकोच क्यों है ?"

"मुझ को भय है कि जिस उद्देश्य से मैं यहां आयी हूं, उससे पतित हो संसार में भटकती न फिरूं।"

"अभी तुम में कोमलता है। इस पत्थर की भांति कठोर हो जाओ। फिर पतित होने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।"

"मैं तो यह समझती हूं कि इस पत्थर की भांति निर्जीव होने से तो उन्नति के स्थान अवनति हो जावेगी। मैं ज्ञानशून्य हो जाऊंगी।"

"यही तो तुम अभी तक समझी नहीं। कठोर तो इन्द्रियों को करना है और मन को ज्ञानयुक्त रखना है। पत्थर में और तुम में जहां तक प्रकृति के मूल तत्वों का प्रश्न है, कुछ अंतर नहीं है । तुममें इस रहस्य को समझने की शक्ति है और तुम कैसे जानती हो कि इस पत्थर में वह शक्ति नहीं है ?"

"तो यह वासना क्या है ?"

"भ्रम है, जो अभ्यास से मिट जाता है ।"

· ११ ·

इस प्रकार किरण को पग-पग पर एक निश्चित लक्ष्य की ओर

ले जाया गया। समय आया जब वह प्रत्येक प्रकार के मनोद्गार छोड़ बैठी। पुरुष-स्त्री, जड़-चेतन, कड़वा-मीठा, सब में भेद भाव समझना भूल गयी। वह भगवती प्रकृति को ही सर्वत्र व्यापक देखने लगी। वह समय आया, जब महर्षि वामदेव उसके पास आने लगे और उसका पथ-प्रदर्शन करने लगे। अब उसको उसके वस्त्र लौटा दिये गये थे। उसको अब आश्रम में आने-जाने की स्वीकृति मिल चुकी थी। इस पर भी वह कुटिया में रहती थी और अब उसको निर्वस्त्र रहना अधिक रुचिकर था। वह महर्षि की कुटिया में भी निधड़क चली जाती थी और वहां बैठी अनेकानेक विषयों पर शंका-समाधान करती थी।

महर्षि ने उसको बताया कि रज और वीर्य शरीर के सत्व हैं। इनमें अपार शक्ति है। इस शक्ति का संचय करना ही संसार में विजय प्राप्त करना है। इस संचित शक्ति के प्रयोग का ढंग ही योग-साधना है, अर्थात् सिद्धि है।

"रज और वीर्य स्नायुमंडल में ओज बन कर व्यापक रहते हैं। इनकी अपार शक्ति स्नायुमंडलों के सप्त चक्रों के द्वारों से बाहर निकाली जा सकती है। पर जिन पर जैसा इसका प्रभाव डाला जावे, वैसा ही वह करने लगता है। मनुष्य तो एक अति दुर्बल प्राणी है, जंगल के हिंसक जीव-जन्तु भी अपने अनुकूल हो जाते हैं। पत्थर और जल अपनी शक्ति उगलने लगते हैं। इन शक्ति को संचित करने का अभ्यास तो तुम को हो गया है, अब इसको प्रयोग करने का ढंग भी तुमको आना चाहिये। दूसरे शब्दों में सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। उसके लिये जप-ध्यान-योग की क्रियायें हैं, उन्हें करो।"

किरण ने समाधिस्थ हो जप करना आरम्भ कर दिया। इससे उसने अनुभव किया कि उसको अब महर्षि के पास जाने की आवश्यकता अथवा इच्छा नहीं होती। दिन-रात बैठी 'ओं श्रीं, ह्रीं, क्लीं...।' इत्यादि का निरंतर जप होने लगा। स्नान और कदली फल का भोजन करने के अतिरिक्त, आसन पर बैठे हुए जप करते रहना ही उसका कार्य हो

गया। इस अवस्था में उसको अनेकानेक बातो का ज्ञान स्वयमेव होने लगा। सामने बैठे मनुष्य के अतरतम मन की बातें वह उसके मुख पर पढने लगी और अत में उसको ऐसा अनुभव होने लगा, मानो वह स्वय वृक्षों, नदी, टीलो से बातें कर सकती है ।

इस समय महर्षि ने उसको बुला भेजा। जब वह वहा पहुची, तो उन्होने उसको कहा, "किरण ! तुमको हमारे साथ चलना होगा।"

"कहा महाराज ?"

"मल्ल राज्य की राजधानी पावा मे भगवती प्रकृति देवी का मदिर निर्माण हुआ है । उस मदिर की अधिष्ठात्री बन, तुमको ससार का कल्याण करना है । ये नागरिक अज्ञानता के घोरतम अधकार में अति दु खी हो रहे हैं। इनको मार्ग पर लाना हमारा कर्तव्य है ।"

किरण को जो रस योग और ध्यान से आ रहा था उसमें विघ्न उसको रुचिकर नहीं था। इस पर भी महर्षि की आज्ञा उल्लघन नहीं कर सकी। इस कारण उसने कहा, "गुरुवर ! वहा क्या करना होगा ?"

"वहा एक अति विशाल मदिर की स्थापना हुई है । उसमे मा भगवती की स्वर्ण मूर्त्ति रखी गयी है । उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने मै जा रहा ह । पश्चात् तुम आश्रम की अन्य पचास के लगभग उपासिकाओ के साथ रहोगी। तुम अधिष्ठात्री होगी और तुम अपने प्रकृतिवाद की प्रतिष्ठा स्थापित करोगी।"

किरण को आश्रम में आये दो वर्ष के लगभग हो चुके थे और अपने प्रयत्न से तथा पूर्व जन्म के कर्मों के फल से, वह इस काल में एक सिद्धि-प्राप्त देवी की उपाधि से विभूषित मदिर की अधिष्ठात्री के रूप में प्रसिद्ध होने लगी।

इन्हीं दिनो में एक दिन किरण, महर्षि जी के पास बैठी कुछ पूछ रही थी कि शतवीर कुटिया के बाहर आ खडा हुआ। शतवीर लोला से विवाह न कर सकने पर निराश लौटा था। जब महर्षि ने उसको कहा कि वह अभी और अभ्यास करे तो वह मुख लटकाये हुए वहा से चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात् किरण ने पूछा, "क्या करता है यह यहां आश्रम में ?"

"देखो किरण ! प्रकृति आदि रूप में सत्, रज, तम की एक साम्यावस्था है। जब ये तीन तत्व असतुलित अवस्था में होते है तो पहिले महातत्व और पीछे तीन अहंकार उत्पन्न हो जाते हैं। जब सात्विक अहकार का सयोग तैजस अहकार से होता है, तो जीवन शक्ति प्रकट होती है, जो तैजस अहकार और भूतादि अहकार के संयोग से बने, पांचभौतिक शरीर में जाकर, प्राणी का रूप धारण करती है। सात्विक अहंकार और तैजस अहकार के संयोग से बनी जीवन-शक्ति शरीर के साथ मिट नहीं जाती। एक से दूसरे शरीर में भ्रमण करती रहती है। इसको मरण और जन्म कहते है। यह जीवन-शक्ति योग, तप, जप और ध्यान से उत्तरोत्तर उन्नत होती रहती है। प्राणियो में यह अधिक उन्नत अवस्था में होती है और दूसरों में यह अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी यह शक्ति, जिसको तुम्हारी आत्मा भी कहा जा सकता है, पहले ही बहुत उन्नतावस्था में थी और इस बालक की तो अभी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। इस प्रकार जो कुछ तुम दो-अढाई वर्ष में कर सकी हो, वह यह बालक कई जन्मो में प्राप्त कर सकेगा। कुछ लोगों को हम भाग, गांजा, सुरा आदि मादक द्रव्य पिला कर उनमें एकाग्रता लाने के लिये यत्न करते हैं। तुम्हारी अवस्था में तो इसकी भी आवश्यकता नहीं पड़ी।"

इस दिन के पश्चात् शतवीर कई बार किरण से मिला। उसने इससे अनेको विषयो पर बातचीत की और उसको अनुभव हुआ कि महर्षि जी का इसके विषय में कथन सर्वथा सत्य है। कई बार शतवीर उसकी कुटिया में आया, जब वह निर्वस्त्र बैठी होती थी। किरण को अब इसमें सकोच नहीं होता था, परन्तु शतवीर को उसे इस अवस्था में देख आग लग जाती थी। वह उससे प्रेम प्रकट करने लगता, तो वह हस देती। एक दिन वह स्नान कर कुटिया में आयी ही थी और अभी ध्यानावस्थित नहीं हुई थी कि शतवीर आ गया। आज वह मद्यपान किये हुए था।

किरण ने उसको देखा तो वस्त्र पहिन लेने उचित समझे । उसके प्रेम-प्रलाप का उस पर तो कोई प्रभाव नहीं होता था, परन्तु शतवीर का विचार कर वह ऐसा करने पर तैयार हो गयी । शतवीर ने उसके कपड़े पहिनने में बाधा डाली । इस पर किरण ने एक बात मन में विचार कर, उससे पूछा, "क्या चाहते हो बालक ?"

"देवी ! तुम से सहवास ।"

"मुझसे ?" किरण ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "तनिक देखो किसको कह रहे हो । देखो !"

शतवीर को उसके स्वर मे एक ऐसी ध्वनि अनुभव हुई, जिसको वह भलीभाति पहिचानता था। उसने आश्चर्य में मुख उठा कर किरण की ओर देखा। उसे यह समझ आया कि उसकी माता, महारानी पद्मावती उसके सामने खड़ी है और वह उसका चीर खैंच कर, उसको नग्न कर रहा है । इस बात का अनुभव करते ही उसके हाथ से किरण का कपड़ा छूट गया और उसके मुख का रग विवर्ण हो गया । किरण ने तुरत कपड़े पहिन लिये और शतवीर को, जो उसके चरणों के पास अपने सिर को दोनो हाथो मे पकड़े हुए बैठा था, कहा, "उठो शतवीर ! जाओ अपने अशिष्ट कर्म के लिये प्रायश्चित्त करो ।"

शतवीर का नशा उतर चुका था। उसने पुन किरण की ओर देखा । उसको अभी भी वह अपनी माता ही प्रतीत हुई । इससे अति विक्षुब्ध हो, उसने पूछा, "भगवती ! यह क्या चमत्कार है ?"

"अब तुम जाओ और जो कुछ तुमने देखा है, उस पर मनन करो अपनी माता की पुण्य स्मृति को दूषित न करो ।"

शतवीर उठा और सिर लटकाये हुए अपनी कुटिया में चला गया।

प्रतिक्रिया

: १

कई दिनों से सायंकाल पद्मा नदी के तट पर, जब नित्य की भांति रंगरलियां मनाई जा रही थी, एक ब्राह्मण, घाट पर एक पेड़ के नीचे बैठा, पद्मासन लगाये हुए जप कर रहा था। वह केवल एक धोती पहिने था और कटि से ऊपर नंगा था। यज्ञोपवीत और सिर पर बड़ी सी चोटी दूर से दिखाई देती थी। वह ध्यानावस्थित नदी की ओर देखता हुआ भगवत् स्तोत्र पढ रहा था। उसकी ध्वनि बहुत ही मीठी, न बहुत ऊंची और न बहुत धीमी थी। वह कह रहा था,

"श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ! श्रीमन्नारायण नारायण नारायण !!"

कभी-कभी बीच में कह उठता था,

'सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं, सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ॥
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं, नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥'

फिर कभी वह गाने लगता,

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या, द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं, मम देव देव !!

प्राय 'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण' की रट लगाये हुए था।

नारायण शब्द सुनने का स्वभाव लोगों में नहीं रहा था। कई वर्षों से उज्जयिनी में इस शब्द का उच्चारण नहीं हुआ था। नदी के घाट पर तो, "छननन छननन बाजे पैंजनियां !" अथवा, "पिला दे री मधुबाला मदभरे नैन कटोरों में !" यह ध्वनि ही सुनने को उत्सुक लोग आते

थे। आज कोई ब्राह्मण देवता चन्दन के तिलक से मस्तक चित्रित किये, शिर, ग्रीवा और मेरु-दण्ड को एक रेखा में किये, 'श्रीमन्नारायण नारायण' गा रहा था। पहिले तो कुछ लोग देख विस्मय करते हुए चले गये। किसी की कोई प्रेयसी प्रतीक्षा कर रही थी अथवा किसी को अपने प्रियतम से मिलने जाने की जल्दी थी। कोई नशा लेने का समय हो जाने से, मधुशाला को जाने के लिये व्याकुल हो रहा था। इस प्रकार लोग इस ब्राह्मण को देखते थे और चले जाते थे। जब कुछ अंधेरा होने लगा, तो ऐसे लोग भी घाट पर आने लगे, जो निःशुल्क मनोरंजनार्थ वहां आते थे। वे इसको भी एक मनोरंजन समझ, इस समाधिस्थ व्यक्ति को देखने खड़े हो गये। खड़े-खड़े ये लोग उसकी चर्चा करने लगे। एक ने कहा, "कोई ढोंगी प्रतीत होता है।"

"मूर्ख है। यहां रसिकों से भला क्या पावेगा ?"

'सुन्दरी की पायलों की ध्वनि से नारायण भाग जायेंगे।"

"कायर, नारायण का भक्त, बहुत शौर्य प्रकट करने आया है। भूख सतायेगी तो भाग खड़ा होगा।"

इस पर भी यह ब्राह्मण, 'श्रीमन्नारायण नारायण' की अखण्ड रट लगाये हुए था।

एक प्रहर रात बीत गयी। वह वहीं बैठा था। लोग उसको छोड़, कभी एक नर्तकी, कभी दूसरी नर्तकी को देखने चले गये। नाच से ऊब कर जब पुनः उस ओर से निकले तो ब्राह्मण को वैसे ही निश्चल बैठे देख, चकित हो खड़े रह गये।

मध्य रात्रि से पूर्व उसको देखने वालों की भीड़ घटने लगी। लोग मनोरंजन से थक कर घरों को लौटने लगे। गाने-नाचने वालियों ने अपनी ढोल-ढमकोरी लपेटनी शुरू कर दी। सारंगी-तबले वाले नदी के तट पर बैठ, लोगों से मिले रजत गिनने लगे। दूकानदार अपना सामान और अपने बर्तन उठाने लगे। मद्य में मदमत्त पुरुष स्त्रियों की कमर में हाथ डाले हुए, उनको घने निकुंजों की ओर धकेलते हुए जाने लगे। इस पर भी

वह ब्राह्मण वैसे ही बैठा, 'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण' का जप कर रहा था।

मध्य रात्रि का घड़ियाल बज गया। लोगो ने नदी का तट छोड घरो का मार्ग पकडा। कहीं-कहीं पेड़ो के झुरमट में अथवा पुष्प-लताओं के निकुज से में किसी के अपनी प्रेयसी के मुख चूमने की चटकार कभी-कभी सुनाई देने के अतिरिक्त, नदी तट पर नीरवता छा गयी। इस पर भी वह ब्राह्मण अपने जप में लीन था। इस समय एक स्त्री नदी तट पर बैठी अपने मुख पर से शृंगार प्रसाधन धो रही थी। जब उसको विश्वास हो गया कि मुख साफ हो गया है, तो उसने अपने आंचल से मुख पूंछ डाला और नदी पार से कृष्ण अष्टमी का उगता हुआ चन्द्र देखने लगी। आभा-हीन, पीत चन्द्र देख, उसने अपने मन में विचार किया, "अमावस की ओर जा रहा है। पूर्ण काला, अंधकारमय हो जावेगा।

"यही दशा मेरी भी हो रही है। अढाई वर्ष में यह अंतर। तीन बार विवाह और फिर वेश्या वृत्ति।" वह इतना विचार कर कांप उठी। पश्चात् मन दृढ़ कर घूमी और सामने चन्द्र के धीमे प्रकाश में 'नारायण नारायण' जपते ब्राह्मण के दर्शन हुए। उसको विचार आया, "इसने कुछ खाया नहीं है। मैं तो दो बार पेट भर चुकी हूं। आज धन मिला भी बहुत है।" ऐसा विचार करते हुए उसने अपने सलूके की जेब को हाथ लगा कर टटोला। जेब भारी थी। उसके मन में आया कि इस बाबा को कुछ भोजन ला दे। वह लेगा क्या? भूखा होगा तो अवश्य ले लेगा। लेगा तो उसकी कमाई का कुछ दोष तो कम हो जावेगा।"

ऐसा विचार कर वह घाट पर देखने लगी कि कोई दूकान खुली है या नहीं। दूर एक भाग्यहीन दूकानदार अभी बैठा था। यह स्त्री उधर ही चल पडी। वहा जाकर उसने देखा कि उसके पास कुछ हलुआ, कुछ पूरी शेष बची थी। स्त्री ने आठ पूरी और उस पर हलुआ ले लिया। दोनो को पत्तो में लपेट, वह उस ब्राह्मण के सम्मुख आयी और बोली, "महाराज!"

ब्राह्मण ने आखें खोल दीं। एक स्त्री सामने देख पूछने लगा, "क्या है भगवती ?"

"महाराज मध्य रात्रि हो चुकी है। थोडा सा प्रसाद लायी हू। इसे ग्रहण कर लीजिये।"

"व्यर्थ का प्रयास किया है देवी! सूर्योदय से पूर्व भोजन नहीं करूगा। जाओ विश्राम करो। इसको ले जाओ।"

वह स्त्री इस बात को सुन चिन्तित प्रतीत हुई। वह स्वय बहुत कुछ खा चुकी थी। उससे प्रेम करने वालो ने उसको खूब खिलाया-पिलाया था। साथ ही वह यह सब कुछ उस ब्राह्मण देवता के लिये लायी थी। इस कारण बोली, "महाराज यह यहा रख कर जा रही हू। जब इच्छा हो तब ग्रहण कर लीजियेगा।"

"कुत्ते खा जायेंगे और सब व्यर्थ जायेगा।"

वह ब्राह्मण पुन अपने जप में लीन हो गया। वह कह रहा था—

"य ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत स्तुन्वन्ति दिव्यं स्तवै-
र्वेदै सागपदक्रमोपनिषदै र्गायन्ति य सामगा।
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण!!

उस स्त्री का विचार था कि महात्मा आखें खोलेगा और फिर उससे पूछेगा कि क्यो बैठी है। वह कहेगी कि इस पदार्थ को वह अगोछे में बाध कर रख जाती है, प्रातःकाल नदी घाट पर खाने को कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु उस ब्राह्मण ने आख नहीं खोली और निरतर जप करता रहा।

वह स्त्री बैठी-बैठी ऊघने लगी और फिर वहीं सो गयी। ब्राह्मण ने अपना जप ब्रह्म-मुहूर्त्त में समाप्त किया और उस स्त्री को वहा लेटे देख विस्मय करने लगा। उसके हाथ में वह दोना, जिसमें पूरी-हलुआ रखा था, पडा था और एक कुत्ता उसको बहुत शान्ति से खा रहा था। वह ब्राह्मण शौचादि के लिये धोती उतार, लगोटा बाध, नदी तैर कर पार चला गया। वहा शौचादि से निवृत्त हो पुन: तैरता हुआ और स्नान कर,

इस ओर आ कपडे पहिन, अपने आनन पर आ बैठा। वह स्त्री अभी भी सो रही थी। कुत्ता हलुआ-पूरी खा कर कहीं अन्यत्र जा चुका था। ब्राह्मण ने अपना जप पुन आरम्भ कर दिया। सूर्य क्षितिज से पर्याप्त ऊपर आ चुका था, जब उस स्त्री की जाग खुली। उसके हाथ में खाली दोना था, जो कुत्ते ने भली भाति चाट कर साफ कर रखा था। उसने महात्मा को देखा और दोने को देखा। वह सब समझ गयी और उसको बहुत शोक हुआ। पेड की डाल पर लगोटा और अगोछा सूखने के लिये लटका देख समझ गयी कि उसका पूर्ण प्रयास विफल गया है। इस समय महात्मा ने आंखे खोलीं और कहा, "बेटी! अब जाओ।"

"बहुत शोक है कि आपके लिये जो लायी थी वह.....।"

"जिसके भाग्य में था वह खा गया है।"

"अब आपका भोजन कहा होगा ?"

"मेरा प्रबन्ध है। तुम चिन्ता न करो।"

"आप नगर को जाइयेगा क्या ?"

"तुम मेरी चिन्ता न करो बेटी! तुम जाओ। तुम्हारे घर वाले चिन्ता करते होंगे।"

"कोई चिन्ता करने वाला नहीं है, महाराज! कोई ऐसा भी नहीं, जिनकी मुझको चिन्ता करनी हो। आप यदि यहीं पेड़ के नीचे रहेगे, तो मैं नदी में स्नान कर आपके लिये कुछ ले आती हूं।"

"पर तुम क्यों यह कष्ट करोगी ?"

उस स्त्री ने उत्तर नहीं दिया और चुपचाप चल दी। वह मध्याह्न तक लौटी। वह उसी पेड़ के नीचे कुछ भूमि साफ कर गाढ निद्रा में सो रहा था। वह पुन. पूरी इत्यादि लायी थी। इस बार उसको कुछ अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पडी। वह जागा और जब स्त्री ने सामने भोजन ला रखा, तो उसने विस्मय में आकाश की ओर देखा। समय का अनुमान लगा कर पूछने लगा, "कब से बैठी हो बेटी ?"

"महाराज दो मुहूर्त के लगभग हो गये हैं।"

"तब तो बहुत कष्ट किया है तुमने। पर यह सब तुम क्यो कर रही हो? मेरा भोजन एक कुम्हार के घर पर है।"

"कुम्हार ?" स्त्री ने विस्मय में पूछा, "कहा महाराज!"

"यहीं समीप एक गाव है। वहा तारा कुम्हार के घर भोजन के लिये जाना है।"

वह स्त्री तो एक दम पीली पड गयी। उसके हाथ कापने लगे और वह अवाक् ब्राह्मण का मुख देखती रह गयी। ब्राह्मण ने उसके मुख को देखा और उसके मन के भावों का अनुमान लगा कर पूछा, "क्यो बेटी! क्या विचार कर रही हो? मै समझता हू कि यह भोजन अब तुम ही कर लो।"

"मेरा दुर्भाग्य है महाराज!" स्त्री ने अपने मन के भाव को छुपा कर कहा, "मै दो बार ले कर आयी, दोनो बार यह ग्रहण नहीं हो सका।"

"आज यह तुम ही करोगी। भगवत् इच्छा हुई तो फिर किसी दिन हो सकेगा।"

इतना कह ब्राह्मण उठा। उसने अपना लगोटा पेड से उतारा और गाव की ओर चल दिया।

: २ .

वह स्त्री मन मे विचार करती हुई नगर की ओर चल दी। वह विचार कर रही थी कि इस महात्मा ने जान-बूझ कर उसका भोजन स्वीकार नहीं किया अथवा अनजाने से ऐसा हो गया है। यदि तो अनजाने में हुआ है तो कल अपने घर पर बुलायेगी, परन्तु वह तारा को जानता है। क्या यह भी एक घटना मात्र है? क्या वह मुझको भी पहिचानता होगा?

इस प्रकार रात की और अब की घटना पर विस्मय करती हुई, घर पर पहुची तो मकान की ड्योढी में एक हट्टे-कट्टे पुरुष को देख खडी हो गयी। वह मार्ग नहीं छोड रहा था। उसने कहा, "चन्दु भैया! एक ओर हो जाओ न।"

"क्यो ?"

"मैने भीतर जाना है।"

"यह जो हाथ में है। मुझको दे जाओ।"

वह स्त्री तारा की बहन मीना थी और अभी तक चन्दु के मकान में, जो कनखैया के मकान में रहता था और उसका काम करने लगा था, रहती थी। मीना जब फिर अपने पति के घर से निकाल दी गयी तो चन्दु के पास ही रह कर वेश्या-वृत्ति करने लगी थी। रात को जब वह घर आती थी तो उसके घर में रहने का भाडा दे देती थी। आज रात वह आयी ही नहीं और पिछले दिन का भाड़ा उसने नहीं दिया था। यही कारण था कि चन्दु ने मार्ग रोक लिया था। अब उसको खाने-पीने का सामान हाथ में लिये देख, उससे हंसी करने लगा। मीना उसको, जो वह एक महात्मा के लिये लायी थी, चन्दु जैसे पतित को देना नहीं चाहती थी। इस कारण उसने कह दिया, "यह तुम्हारे लिये नहीं है।"

"ओह !" चन्दु ने मुख लम्बा कर कहा, "तो यह किसी प्रेमी के लिये लायी हो। क्या कोई दिन में ही फंसा लिया है। मेरा रात का भाड़ा तो लाओ।"

"ऊपर आओ देती हू।"

"तो तुम्हारा प्रेमी नहीं है वहा ?"

"अभी नहीं है।"

"तो आने वाला है क्या ?"

"हा।"

मीना को मार्ग मिल गया, परन्तु चन्दु उसके पीछे-पीछे उसके आगार में जा पहुचा।

मीना ने पूरी-हलुआ एक ओर ऊंचे स्थान में रख दिया और अपनी जेब में से एक रजत निकाल, एक दिन का भाड़ा देने लगी। चन्दु ने रजत नहीं पकड़ी और भूमि पर बिछी चटाई पर बैठ कर कहने लगा, "मीना ! बैठो।"

मीना बैठ गयी। चन्दु ने कहा, "तुम आज बहुत सुन्दर प्रतीत हो

रही हो।"

"फिर वही बात होने लगी है ?"

"जब-जब तुम्हारे ग्राहक आते हैं, मुझको ईर्ष्या होने लगती है।"

मीना ने बात बदल दी और कहा, "कल की यह रजत ले लो। आज के लिये फिर सायंकाल दूंगी।"

"मैं कुछ कहता हू, तुम कुछ और ही कहने लगती हो। देखो मीना! मैं तुमको अपनी पत्नी बना कर रखना चाहता हू।"

"और मैं तुम्हारी पत्नी बनना नहीं चाहती। तुम मेरे भाई लगते हो।'

"और जो दूसरे तुम्हारे आते हैं, सब विवाहे पति ही होते हैं न ?"

"उनकी बात उनसे कहती हू।"

चन्दु रजत लेकर आगार से बाहर निकल गया, पर गृह की डयोढ ने मीना के प्रेमी की प्रतीक्षा में खडा रहा। वह देखना चाहता था वि किसको वह उस पर उपमा दे रही है।

चन्दु को मीना के प्रेमी की प्रतीक्षा करते हुए तीसरे से चौथा प्रहर ह गया। उसके घर में एक अन्य स्त्री भी रहती थी। वह शृंगार कर नदी तः की ओर चली गयी। मीना अपने आगार में बैठी अपने जीवन पर विचा कर रही थी। वह इससे ऊब गयी थी। आज उसके मन में बार-बार य आ रहा था कि वह यह कार्य छोड दे। फिर जीविकोपार्जन कैसे होगा जब यह प्रश्न उसके मन में आता था, तो वह देखती थी कि अनेकों मनुः अनेकों प्रकार से धन कमाते हैं। वह भी ऐसे ही कर लेगी। चन्दु स विवाह तो वह पसन्द नहीं करती थी। उसको कनखैया का अंत विदि था। वह उस प्रकार मरना नहीं चाहती थी। वह समझती थी कि यदि भूखी मरने लगी, तो पद्मा में डूब कर मर जायेगी।

जब सायंकाल होने लगा और मीना का प्रेमी नहीं आया, तो चन भीतर आकर पूछने लगा, "मीना! क्या हुआ है तुम्हारे ग्राहक का ?'

मीना ने भीतर से ही उत्तर दिया, "वह नहीं आया।"

"तो हलुआ-पूरी का क्या हुआ ?"

"मैंने स्वयं खा लिया है।"

"सब?"

"हां, बहुत भूख लग रही थी।"

"ओह मीना! मुझको ही बुला लेती।"

"देखो चन्दू भैया! मुझको ऐसी बात मत कहा करो। तुमको देख मुझको तारा भैया की याद आने लगती है।"

"अच्छा यह बताओ। आज घाट पर नहीं जा रही?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मैं कुछ दिन आराम करना चाहती हूं।"

"तो खाना-पीना कैसे चलेगा?"

"तुमको तो एक रजत नित्य चाहिये न? सो तुम को मिल जाया करेगा।"

"कौन देगा तुमको?"

"है एक।"

जब मीना बिना शृंगार किये घर से बाहर निकली तो चन्दू उसके साथ चलने को तैयार हो गया। मीना ने कहा, "मैं अकेले जाना चाहती हूं।"

"मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।"

"मुझको किसी की रक्षा की आवश्यकता नहीं।"

"तो तुम मुझ से चोरी-चोरी कोई काम करना चाहती हो?"

"हां।"

"अच्छी बात है, जाओ।"

मीना चली तो वह उसके कुछ अंतर पर पीछे-पीछे जाने लगा। मीना ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह नदी घाट पर गयी और उस पेड़ की ओर चल पड़ी, जहां पिछली रात वह ब्राह्मण 'नारायण नारायण' जप रहा था। वह आज भी वहां जप कर रहा था। बहुत लोग उसको

ख रहे थे। वह अपने ध्यान में मस्त श्रीमन्नारायण का जाप कर रहा था।

मीना वहा जा भीड के आगे ही चौकडी मार एक ओर बैठ गयी। स पर कुछ लोगो को विस्मय हुआ और कई ऊँचे स्वर से हसने लगे।

एक ने कहा, "अब रग जमा है । यह वेश्या इसकी तपस्या सफल कर देगी ।"

"ही-ही-ही" सब हसने लगे।

"यह बहुत सुन्दर नहीं है। इसकी तपस्या यह नहीं डिगा सकेगी।" एक और ने कहा "तो तुम अपनी दासी को ले आओ न। थोडा आनन्द आ जायेगा।"

"न दावा! वह मुझको बहुत प्रिय है। कहीं इस महात्मा के चंगुल में फस गयी तो वैसी और कहा से लाऊँगा।"

"हा-हा-हा" फिर सब हसने लगे।

इस प्रकार डेढ प्रहर के काल में बहुत आये और ब्राह्मण देवता पर टीका-टिप्पणी कर चल दिये। ब्राह्मण किसी की सुन नहीं रहा था। वह आखें मूंदे अपने जप में व्यस्त था।

चन्दु मीना को इस ब्राह्मण के सामने बैठा देख, विस्मय करता हुआ, भीड के पीछे खडा देख रहा था। वह समझ नहीं सका था कि इस के पास वह क्या लेने आयी है ?

मध्य रात्रि हुई। लोग विदा होने लगे। मीना उठी और नदी में से मुख हाथ धो, हलवाई की दूकान से आज फिर पूरी, शाक-भाजी और मिठाई ले आयी। महात्मा के सामने आ बोली, "महाराज! भोजन लायी हू।"

चन्दु दूर खडा यह सब कुछ देख रहा था। वह मीना को आगे आ, महात्मा से बातें करते देख उनकी बातें सुनने के लिये पेड के पीछे छुप कर खडा हो गया।

ब्राह्मण ने आखें खोलीं और सामने पिछली रात वाली स्त्री को बैठे देख कहा,

"तो तुम फिर यहा आ गयी हो ?"

"हा, महाराज ! भोजन लायी हूं।"

"मैं तो आठ प्रहर में केवल एक वार खाता हूं।"

"तो कल मध्याह्न के समय भोजन मेरे यहा करियेगा।"

"नही, अभी नहीं। फिर किसी दिन।"

"कल क्यो नहीं महाराज ?"

"देखो बेटी ! अपने मन से पूछो। उत्तर मिल जावेगा।"

मीना का साहस नहीं हुआ कि और अधिक पूछ सके। वह भोजन स्वीकार न करने का कारण विचार करती हुई वहा वैठी रह गयी। इसपर उस बाबा ने कहा, "यह तुम स्वय खा लो और जाओ विश्राम करो। तुमको इसकी बहुत आवश्यकता है।"

मीना ने झुक कर नमस्कार किया और वहा से उठ नदी के तट पर आ वैठी। वहा एक पूरी और कुछ मिठाई नदी में प्रवाह कर शेष खाने वैठ गयी। उसने पहिला ग्रास मुख में डाला ही था कि पीछे से आवाज आयी, "बहुत भूख लगी है मीना !"

यह चन्दु था। मीना ने उसको देखा और कहा, "हा !"

"मैं भी आऊ ?"

"यह लो।" उसने चार पूरी और कुछ हलुआ उसके हाथ पर रख दिया। वह भी उसके समीप वैठ खाने लगा।

खाते-खाते चन्दु ने पूछा, "यह कौन है ?"

"कौन कौन है ?"

"वह जो 'नारायण नारायण' कर रहा है ?"

मीना मुस्कराई और बोली, "उसी से जा कर पूछ लो न ?"

"तो तुन नहीं जानतीं ?"

"नहीं।"

"तो ऐसे ही उसको खिलाने के लिये हलुआ-पूरी ले गयी थी।"

"मन ने कहा और ले गयी। मन ने कहा तो तुम को दे दिया। तुम

ही बताओ न कि तुम को क्यों दिया है ?"

"मैं तुमको अपने मकान मे आश्रय दिये हुए हूँ।"

"उसका तो मैं भाडा देती हू।"

"इस पर भी मैं हू तो मालिक।"

'किस के मालिक हो ?"

'तुम लोगो का, जो मेरी रक्षा में व्यापार करते हो।"

"मैं कई बार कह चुकी हू कि मुझको तुम्हारी सरक्षा की आवश्यकता नहीं है।"

"यह आज तुमको हो क्या गया है, मीना ?"

"मन में कुछ अंतर आ गया है। एक व्यर्थ के प्रयोग से युवावस्था ढल गयी प्रतीत होती है। यौवन का उन्माद कम हो रहा है।"

"तो निर्वाह कैसे होगा ?"

"यही विचार कर रही हू।"

"विचार करने मे सहायता दूं ?"

"दे सकते हो।"

"तुम मेरी पत्नी बन जाओ और हम दोनो इस धधे को और भी उन्नति देंगे।"

"दूसरों की बहू-बेटियो को बिगाड़ने का धधा। तुम्हारी कन्हैया ने मेरा सत्यानाश किया और तुम चाहते हो कि मैं दूसरो को इसी गर्त में गिराने का यत्न करू ? मैं यह नहीं करूगी।"

"हम किसी को बिगाडते थोडे ही हैं ? बिगडती तो वे हैं समाज की अवस्था देख कर। हम तो उनके बिगडने से उत्पन्न लाभ में अपना-अपना भाग बटवा लेते हैं।"

"नहीं चन्दु देवता ! मुझसे यह नहीं हो सकेगा।"

"तो मालूम होता है कि तुमने बहुत कमा लिया है। जीवन भर खाने के लिये काफी हो गया है।"

"बहुत तो नहीं।" चन्दु को वह अपनी सम्पत्ति बढा-चढा कर

बताना नहीं चाहती थी। उसको भय था कि कहीं उसको लोभ आ गया, तो वह उसका गला घोट कर, उसका धन लूटने का यत्न करेगा। इस कारण उसने कहा, "दो मास भर खाने के लिये है।"

"तो क्या इस महात्मा ने कोई आशा दिलायी है।"

मीना ने उत्तर नहीं दिया। चन्दु सब पूरी समाप्त कर चुका था। मीना के पास अभी पाच-छै और बची थीं। उसने कहा, "मालूम होता है कि अपने महात्मा के लिए बहुत सी लायी थी।"

"हां।" इतना कह मीना ने दो और उसके दोने में फेंक दीं। वह विचार कर रही थी कि कल सब कुत्ता खा गया था। आज इसके पेट में गयी हैं। चलो ठीक हुआ। कमाई जैसी है, वैसो के पेट में जा रही है। अब उसको समझ आ गया कि क्यो महात्मा ने उसका भोजन स्वीकार नहीं किया। वह समझी कि शायद वह उसको पहिचानता है।

: २ :

दिन पर दिन व्यतीत होने लगे। सायकाल महात्मा के दर्शको की संख्या बढ़ने लगी। दर्शको के साथ-साथ, उसके भक्तो की सख्या में भी वृद्धि होने लगी। दस-बीस स्त्री-पुरुष उसके मधुर स्वर में, "सशखचक्रं सकिरीटकुण्डलम्।" उच्चारण को अथवा "श्रीमन्नारायण" के जप को रुचि-सहित सुनने वाले आने लगे। मीना इनमें सबसे आगे बैठती थी।

एक दिन इन भक्तो ने निश्चय किया कि सब उसके स्वर के साथ स्वर मिला कर 'श्रीमन्नारायण' का जाप करें। अतएव एक स्वर में बीस स्वर और मिल 'नारायण नारायण' जपने लगे। इससे तो और भी हल्ला मच गया। एक और मास व्यतीत होते-होते महात्मा तत्त्वदर्शी, जिसका नाम उज्जयिनी के नर-नारी के मुख में चढ़ गया था, घर-घर में निन्दा और प्रशंसा का विषय बन गया। वे भीरु लोग जो पहिले का अनाचार, अविचार और नास्तिकता देख-सुन चुप कर रहते थे, अब इस विचारनिष्ठ ब्राह्मण को रसिकों की उच्छृखलता के मध्य में, भगवान् के नाम का नाद

जाते देख उत्साहित हो अपने मन की बात कहने लगे, "इस नास्तिकवाद ने राज्य में घोर अनाचार फैला रखा है। भगवान् ही इससे छुटकारा दिलवायेगा।"

इस पर भी भगवान् के नाम का विरोध करने वालो की सख्या बहुत अधिक थी। वे लोग कहते थे, "यह ब्राह्मण पुन: ससार की गाडी को पीछे की ओर ले जाना चाहता है। यह सहस्रों वर्ष पूर्व का काल फिर लाना चाहता है। हमारे बच्चों को भगवान् से डरा कर, पुन भीरु बनाने का यत्न कर रहा है। हमारी लडकिया फिर घरो की चार-दीवारी में बद कर, धनिकों की सेवा करने के लिये दासिया बना दी जायेंगी। फिर धर्मपत्नी इत्यादि शब्दो की आड़ में स्त्रियों को दासता की प्रेरणा दी जावेगी।

"हम इसको सहन नहीं कर सकते।"

इस प्रकार नगर भर में घोर वाद-विवाद चल पडा था। नगर की स्त्रियों ने पडित तत्वदर्शी के आदोलन का घोर विरोध आरम्भ कर दिया। इन्होंने पद्मा के तट पर एक सभा कर पडित के व्यवहार की घोर आलोचना की। इस सभा में स्त्रियों ने कहा, "यह ब्राह्मण पुन कन्यादान, पतिभक्ति, सती-धर्म इत्यादि दासता की बातें समाज में चलाना चाहता है।" स्त्रियो का एक शिष्टमडल महामात्य भूदेव से मिला और फिर महारानी रेखा से मिला। इस शिष्टमडल की माग थी कि इस पडित को नदी के तट पर कीर्तन करने की स्वीकृति न दी जाये। आचार्य भूदेव का तो यह कहना था, "आपको इससे क्या कष्ट होता है?"

इस शिष्टमडल की नेत्री एक वेश्या थी। उसने कहा, "भगवन्! किसी कपडे वाले की दूकान के सामने कोई खडा हो कर यह कहने लगे कि इस दूकान में कपडा सडा-गला विकता है, तो यह अपराध नहीं होगा क्या?"

"तो उसने ऐसा कहा है कभी?"

"वह 'नारायण-नारायण' का नाम लेता है। इससे तो यही सिद्ध

होता है कि वह कह रहा है कि सासारिक सुख-वैभव क्षणभंगुर है। यह नृत्य-सगीत और मद्य-मास के अड्डो के सामने जाकर कहना, कपडे की दूकान के सामने कपड़े की निन्दा करने के तुल्य होता है।"

"इसको ऐसा क्यो नही समझती," महामात्य का सुझाव था, "कि दूकान के साथ ही एक दूसरी दूकान निकल आयी है। एक रेशम का कपडा वेचती है तो दूसरी सूती। तुम्हारी दूकान सासारिक-सुख बिक्री करती है और उसकी दूकान परमार्थ का आनन्द विक्रय करती है। तुम अपना माल इतना वढिया रखो कि उसके पास कोई ग्राहक ही न जाये। वह अपने आप अपनी दूकान वन्द कर चला जावेगा।"

इस प्रकार उत्तरहीन हो वह शिष्टमडल महारानी रेखा की सेवा में गया। वहा उसी नेत्री ने अपनी माग और महामात्य का उत्तर वताया। इस पर रेखा ने कहा,

"मैं आपके भय को समझती हूं। महामात्य अति दुष्ट व्यक्ति है। महाराज अपनी अनुराधा के कारण महामात्य का विरोध नहीं कर सकते। मेरी आजकल उनसे नहीं वनती। एक वात तुम कर सकती हो। महामात्य के कथनानुसार, तुम भी अपनी दूकान की सजावट वढ़ा-चढा कर रखो। वे 'नारायण नारायण' करें तो तुम उसकी दूकान के सामने कुछ ऐसा कहो न—

"अँखिया मटक-मटक क्या कहतीं
इस जीवन के सुलभ स्वाद को
मूर्ख छोड़ असत्य आशा पर
भटकत-भटकत क्यो रहतीं।
अँखिया मटक-मटक क्या कहतीं।"

महारानी रेखा के सुझाव पर इन स्त्रियो ने एक क्रियात्मक कार्यक्रम वनाया। जहां तत्त्वदर्शी का कीर्तन होता था, वहा पर उसके चारो ओर नाचने वालियो ने अपने अखाड़े लगाने आरम्भ कर दिये।

तत्त्वदर्शी नदी तट से दो सौ पग के अंतर पर एक पेड के नीचे बैठता था। इस पेड के चारो ओर तीन-चार सहस्र कीर्तन करने वाले एकत्रित होने लगे थे। महामात्य के स्त्रियो के शिष्टमडल को दिये उत्तर को सुन, तो कीर्तन करने वाले और भी अधिक सख्या मे आने लगे थे। इस कीर्तन करने वालो और नदी तट के मध्य, एक नर्तकी ने अपना अखाडा लगा दिया। कीर्तन करने वालो के उत्तर-पश्चिम-दक्षिण में भी अन्य नर्तकियो ने अपने प्रदर्शन आरम्भ कर दिये। 'नारायण नारायण' की ध्वनि को डुबोने के लिये चारो ओर से पायलों की झकार, मृदग की धमक, वीणा की स्वरलहरी गूंजने लगी। परन्तु सहस्रो नर-नारियो के कण्ठ से उठ रही 'नारायण नारायण' की ध्वनि में यह सब प्रयास विफल गया।

यह देख नगर की नर्तकियों ने एक षड्यत्र किया। प्राय साय, दिन के चौथे प्रहर के आधे व्यतीत हो जाने पर, भक्त जन एकत्रित हुआ करते थे और रात्रि के एक प्रहर व्यतीत हो जाने तक कीर्तन चलता था। नर्तकियों ने दिन के तीसरे प्रहर को ही पडित तत्त्वदर्शी के सामने, उसी पेड के नीचे जा अखाडा लगाया। और जब भक्त लोग नित्य के समय पर आये तो वहा पर एक सुन्दर नर्तकी को नृत्य करते देख चकित रह गये। महात्मा नित्य की भाति पेड के नीचे पद्मासन लगाये, आखें मूंदे 'नारायण-नारायण' जप रहा था।

नर्तकी गा रही थी—

"गोरी पनिया भरन चली पनघट में,
भारी गगरिया गरदन मुचकाये री,
पतली कमर मुड-मुड बल खाये री,
छतिया थरकत मोरी न छुपत पट में।
गोरी पनिया भरन चली पनघट में॥"

'छनन्न छन छनननन छन' पायलो की झनकार के साथ यह गाना हो रहा था। जब यह नृत्य समाप्त हुआ तो एक और नाचने वाली उठी और नाचने लगी। इस समय तक भक्तजन भारी सख्या में एकत्रित हो गये

थे। उन्होने कहना आरम्भ कर दिया, "वस करो! वस करो! नाच वन्द करो।"

नाच वन्द नहीं हुआ। दोनो ओर से आवाजें आने लगी। एक पक्ष के लोग कहते थे, "नाच वंद करो," दूसरे पक्ष के लोग कहते थे, "कीर्तन नहीं होगा।"

इस समय तत्वदर्शी ने आंखें खोलीं और हाथ खडा कर शान्ति-स्थापन करने के लिये कहा। भक्त-जन तो चुप कर गये, परन्तु नाच के पक्ष वाले लोग हल्ला करते रहे। जव हल्ला वंद नहीं हुआ, तो तत्त्वदर्शी ने, ऊचे और मीठे स्वर में, भगवत् भजन आरम्भ कर दिया, "श्री मन्नारायण नारायण।"

सहस्रो एकत्रित भक्तों ने स्वर के साथ स्वर मिला दिया। जव नाच के पक्ष वालो की मृदंग और वीणा की कोमल ध्वनि, उस नारायण की पुकार में डूव गयी, तव इन नर्तकियो के समर्थको ने लाठियां निकाल लीं और भीड पर पिल पड़े। वहुत से लोग तो भाग खड़े हुए। भागते हुए उन्होने कइयो को पावो के नीचे कुचल डाला। जो वैठे रहे, उनका नाच-गाने के पक्ष वालो ने मलीदा वना दिया।

जव लाठियो के प्रहार तत्त्वदर्शी पर होने लगे तो कई भक्त भाग कर उसके ऊपर लेट गये। इनमें मीना भी थी। चन्दू लाठी चलाने वालो में सवसे आगे था। उसकी लाठी मीना पर पडी तो मीना के मुख से 'आ, आ' की चीख निकल गयी। चन्दू पहिचान गया। उसने चिल्ला कर कहा, "अरे! ये तो मर गये।" लोग रुक गये।

कुछ ही क्षणो में यह कांड हो गया। पचास-साठ लोग कराहते हुए वहा रह गये। तीन सर्वथा मर गये। अनेकों अचेत हुए। अचेतो में मीना और तत्त्वदर्शी भी थे। शेष सव भाग गये।

चन्दू कुछ काल पश्चात् मीना को देखने वहा आया। पीड़ा से कराहते हुए भक्तों के ऊपर से कूदता हुआ, चन्दू तत्त्वदर्शी के वैठने के स्थान पर पहुंचा, तो उसने देखा कि मीना वुरी भाति घायल हो वहा वैठी थी।

उसको चेतनता हो चुकी थी और वह महात्मा के हृदय स्थान पर हाथ रख देख रही थी कि वे जीवित है अथवा नहीं। इस समय चन्द्रू वहां पहुंचा। चन्द्रू मीना को जीवित देख, प्रसन्न हो बोला, "भगवान् का धन्यवाद है कि तुम बच गयी हो। चलो घर ले चलूं।"

इस समय तक मीना यह देख चुकी थी कि तत्त्वदर्शी भी जीवित है। इस कारण वह चन्द्रू का आश्रय ले उठी और नदी से आचल भिगो, जल ले आई और उसके मुख और आखों पर लगा कर उसको सचेत करने लगी। चन्द्रू यह सब कुछ देख रहा था। उसको समझ नहीं आ रहा था कि वह क्यो उसकी सेवा कर रही है। जब तत्त्वदर्शी सचेत हो गया तो फिर उसने कहा, "अब तो चलो मीना! वह अपने नारायण से सहायता माग लेगा।"

"चन्द्रू एक रथ ले आओ। इनको भी घर ले चले।"

"क्यों ?"

"वहा इनकी सेवा कर इनको ठीक कर देंगे।"

चन्द्रू खिलखिलाकर हस पडा। वह मन में विचार कर रहा था कि उसने ही तो उसको मार डालने का यत्न किया था और अब वह ही उसकी जान बचाने का यत्न करे? कुछ विचार कर बोला, "रथ वाला दो रजत मागेगा।"

"तो दे देंगे।"

"मेरे पास नहीं है।"

"पहिले कब तुम मेरे लिये खर्चा करते हो, जो आज चिन्ता कर रहे हो ?"

"तो ठीक है। घर पर रखने का खर्चा भी पडेगा ?"

"चन्द्रू! जाओ रथ ले आओ।"

"नहीं देवी!" तत्त्वदर्शी ने धीमे स्वर में कहा, "तुम कष्ट ।" इतना कहते-कहते वह पुन अचेत हो गया। मीना का कडा स्वर सुन चन्द्रू रथ लेने चला गया। मीना ने फिर उसको सचेत करने का

यत्न किया, परन्तु इस बार वह सफल नहीं हुई। इसी अचेत अवस्था में चन्दू और मीना ने उसको रथ में डाला और घर पर ले गये।

घर पर ले जाकर, मीना ने उसको अपनी खाट पर लेटा दिया और चन्दू को उसी रथ पर भेज दिया कि वह वैद्यराज को बुला लाये। चन्दू फिर विस्मय में मुख देखने लगा।

"आओ न चन्दू!" मीना ने चन्दू का हाथ पकड़ बाहर धकेलते हुए कहा।

"पर धन?"

"इस समय के लिये है।"

"फिर कल क्या होगा?"

"मैं पैदा कर लूंगी।"

"तो फिर वेश्या-वृत्ति करोगी?"

"हां।"

"इस बूढ़े के लिये?"

"हां।"

चन्दू हंसता हुआ चला गया।

वैद्य आया। उसने नाड़ी देखी और अपनी पोटली में से एक गुटिका निकाल, एक छोटे से खरल में घिस कर, मधु में लपेट, महात्मा जी की जिह्वा पर लगा दी। ज्यों ही औषधि मुख में गयी, महात्मा जी की आंखें खुलने लगीं। एक चौथाई घड़ी में महात्मा जी को चेतना हो गयी। पश्चात् वैद्यराज ने अपने झोले में से एक तेल निकाल, घावों पर लगा, पट्टी बांध दी।

दो मात्रा औषधि देकर वैद्य जी बोले, "कल फिर आऊंगा और पट्टी बदल दूंगा। दस रजत मेरी भेंट दो और दो रजत औषधि का दाम। इतना ही कल लगेगा।"

मीना ने बारह रजत वैद्य की हथेली पर रख दिये और चार रजत रथ वाले को दे दिये। वैद्यराज से छुट्टी दो दिन में नहीं हो सकी।

पाच दिन लग गये और सब खर्चा लगभग सत्तर रजत हो गया।

सीना का सचित धन समाप्त हो गया। केवल दस रजत रह गये, ये अर्थात् दो दिन का खर्चा उसके पास और था।

· ४ ·

जिस दिन से नदी तट पर नारायणपयियों और नर्तकियों के पक्ष-पातियो में झगडा हुआ था, नगर में इसकी चर्चा होने लगी। रसिकों ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की। घर-घर में कीर्तन करने वालों के सिर फूटने के औचित्य पर वादविवाद चल पडा। इस घटना का समाचार महामात्य और महाराज को भी मिला। इसकी भीषणता का अनुमान लगा, महाराज ने इस प्रश्न को राज्य-परिषद् में विचारार्थ रख दिया।

इस घटना के दो दिन पीछे की बात थी। महाराज कुमारदेव ने राज्य-परिषद् में कहा, "यह अव्यवस्था राज्यसत्ता को हानि पहुचाने वाली है।"

न्यायमन्त्री ने कहा, "आज इस घटना को हुए दो दिन हो चुके है। किसी ने भी इसका अभियोग न्यायालय में नहीं चलाया। हमारे गुप्त-चर विभाग को यह सूचना मिली है कि वह ब्राह्मण घायल होकर, उसके घर में हो गया है, जिसने कीर्तन करने वालो पर सबसे अधिक लाठी चलायी थी। यह भी कहा जाता है कि उसको घायल करने वाला भी वही बदमाश है। हमारे एक गुप्तचर का यह भी कहना है कि चन्दू बदमाश के घर में, जहा यह ब्राह्मण रह रहा है, एक वेश्या भी रहती है और वह कीर्तन करने वालों में सब से आगे जाकर बैठती थी।"

"तो आप क्या यह समझते है कि इस वेश्या के लिये ही लाठिया चली है?"

उत्तर महामात्य ने दिया, "यह बात नहीं है। यह वेश्या और चन्दू बदमाश दोनों ही इस ब्राह्मण, जिसका नाम तत्त्वदर्शी है, के गाव के रहने वाले हैं। वह वेश्या तो इस बात को जानती है, परन्तु न तो वह ब्राह्मण

जानता है और न ही चन्दू को यह बात पता है। मीना, यह वेश्या का नाम है, अपनी वेश्या-वृत्ति छोड़ चुकी है। वह अपने मन में इस महात्मा की चेली बन चुकी है। अभियोग न तो वह ब्राह्मण चलायेगा और न ही मीना। महात्मा तो इस में रुचि नहीं रखता और मीना जानती है कि चन्दू सबसे बड़ा अपराधी है। वह अपने को और चन्दू को इस अभियोग में आने नहीं देना चाहती। इस कारण मैं समझता हूं कि इस घटना के विषय में राज्य की ओर से जांच कर अपराधियों के दंड का विधान करना चाहिये।" इस बात का समर्थन महाराज ने भी कर दिया।

अगले ही दिन नगरपाल को आज्ञा हो गयी कि दुर्व्यवस्था करने वालों को राज्य-दंड दिलवाने का आयोजन करे। यह किसने उत्पन्न की है, इसका निर्णय न्यायालय करे।

नगरपाल ने लगभग एक सौ व्यक्तियों को पकड़ने की आज्ञा कर दी। तत्त्वदर्शी के बीमार होने के कारण उसको और चन्दू और मीना को नहीं पकड़ा गया। उनके घर के चारों ओर रक्षक बैठा दिये गये, जिससे वे भाग न सकें।

तत्त्वदर्शी को जब यह पता मिला कि उसको पकड़ने के लिये नगर सुरक्षाविभाग के लोग बैठे हैं तो उसको मन में शान्ति मिली। उसने कहा कि वह देखेगा कि भगवद्-भजन के लिये उसको मृत्यु दंड दिया जाता है अथवा नहीं। मीना ने जब इस पर चिन्ता प्रकट की तो महात्मा ने कह दिया, "उसको ध्रुव की भांति कष्ट भोगने देना चाहिये, तब ही हिरण्यकश्यप के संहार के लिये नरसिंह का अवतार होगा।"

एक दिन न्यायाधीश पंडित मनोज उससे मिलने आया और तत्त्वदर्शी से प्रश्नोत्तर करने लगा। न्यायाधीश ने पूछा, "आप कहां के रहने वाले हैं?"

"आपके पूछने का इसमें प्रयोजन क्या है?"

"मैं राज्य का न्यायाधीश हूं। उस दिन की नदी के तट पर हुई मार-पीट की जांच के सम्बन्ध में यह जानने आया हूं।"

"पीटने वालों का लक्ष्य मैं था और मैं इस विषय में कोई अभियोग चलाना नहीं चाहता ।"

"अपने पीटे जाने के विषय में आप यह कह सकते हैं । परन्तु उस समय तो लगभग पचास लोग घायल हुए थे और तीन मृत्यु के ग्रास हो गये हैं । उनकी ओर से तो आपको दोषियों को क्षमा कर देने का अधिकार नहीं है । साथ ही यह बात तो अभी विचारणीय है कि दोषी कौन है ? आप भी तो अपराधी सिद्ध हो सकते हैं ?"

"यह ठीक है। आप पूछिये । क्या जानना चाहते हैं ?"

"आप कहां के रहने वाले हैं ?"

"पवार गाव का रहने वाला हूं ।"

"आपको विदित है कि यह मीना और चन्द्र किस गांव के रहने वाले हैं ?"

"नहीं, मैं नहीं जानता ।"

"तो आप इसके घर में क्यों आये हैं ?"

"मैं आया नहीं। मैं अचेत था। मुझको ये लोग यहा ले आये थे। नगर के वैद्यराज इसके साक्षी हैं कि मैं यहा अचेत था ।"

"अभी आप यहा से जाने के योग्य हैं अथवा नहीं ?"

"वैद्यराज अभी मेरे यहा से चले जाने को ठीक नहीं समझते ।"

"उनकी सम्मति में आप कब तक इस घर को छोड सकेंगे ?"

"उनके विचार में अभी दो-तीन दिन और लगेंगे ।"

"आप तब कहा जावेंगे ?"

"नदी तट पर कीर्तन करने ।"

"अपने गाव को क्यों नहीं चले जाते ?"

"भगवान् का नाम सुनाने की आवश्यकता नदी तट पर अधिक है ।"

"पर हमारा पूछना यह है कि भगवान् के भजन का तुमने ठेका ले लिया है ?"

"हा, आपने इसको अभी किसी प्रकार की आज्ञा से बन्द नहीं किया ।"

"इस पर भी यदि किसी बात को लोग पसन्द न करें तो वह नहीं करनी चाहिये।"

"मैं समझता हूं कि मैंने ऐसा करने से न तो किसी प्रकार से राज्य-नियम का भंग किया है और न ही लोगो को किसी बात के लिये विवश किया है। इसके विपरीत कुछ बदमाशो ने अकारण हम पर लाठियां चलायी हैं।"

"तो उन बदमाशो को तुम दंड दिलवाना चाहते हो?"

"हां, परन्तु उससे ही, जिसके भजन करने वालो को इन्होने पीटा है।"

"वह कैसे दंड देगा इनको?"

"यह तो मैं नहीं बता सकता। उसके ढंग न्यारे हैं। वह कौन उपाय प्रयोग करेगा, यह उसके ही विचार करने की बात है।"

"तो आपका अभिप्राय यह है कि राज्य अपने न्यायालय को बंद कर दे। वह अर्थात् भगवान् स्वयं ही अपराधियो को दंड देता रहेगा।"

"मैंने यह नहीं कहा। यह राज्य का काम है कि किसी को दंड दे अथवा न दे। मैं राज्य नहीं और मुझको किसी पर दोषारोपण नहीं करना।"

न्यायाधीश ने मीना और चन्द्र से भी पूछगीछ की। मीना ने कहा, "मैं जानती हूं कि किस-किस की लाठी से मैं और महात्मा जी घायल हुए हैं, परन्तु मैं बताना नहीं चाहती।"

"क्यों?"

"मैं नहीं चाहती कि मेरे लिये किसी को भी दंड दिया जावे।"

"यही तो पूछ रहा हूं कि क्यो?"

"मैं पापिन हूं। मैंने भारी अपराध किये हैं। शायद मेरे उन्हीं अपराधो के दंडस्वरूप मेरी पिटाई हुई है।"

"तो तुम राज्य-प्रबन्ध में विघ्न डालना चाहती हो?"

"मेरा पीटा जाना किसी प्रकार भी राज्य-प्रबन्ध को बिगाड़ने वाला

नहीं हुआ। इस पर भी यदि राज्य यह समझता है कि उस दिन के दंगे से किसी प्रकार की भी उसको हानि हुई है, तो वह अपराधी को दंड देने में स्वतन्त्र है।"

"और यदि तुम अपराधी को जानते हुए भी, उसका नाम नहीं बताना चाहती, तो तुम भी अपराधी होगी।"

"इसका अर्थ तो यह होगा कि अपने सूचनाविभाग के दोषों के लिये मुझको दंड दिया जावेगा। आप अपने कर्मचारियों के द्वारा अपराधियों का पता करिये और उनको दंड दीजिये। मुझको इसमें क्या आपत्ति हो सकती है?"

मनोज समझ गया कि ये दोनों लोग उसको कुछ नहीं बतावेंगे। चन्दू भी मीना की बात को सुन रहा था। उसके मन में मीना के, उसके विरुद्ध अभियोग चलाने से न कर देने पर, उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। जब मनोज चला गया तो उसने मीना से कह दिया, "तुमने मेरे विरुद्ध कह क्यों नहीं दिया?"

"तुमने तो मुझको पीटा नहीं, फिर मैं तुम्हारा नाम क्यों लेती?"

"तुम जानती तो हो कि मेरी लाठी से ही महात्मा जी घायल हुए थे?"

"तो महात्मा जी से जाकर कहो न कि वे तुम्हारा नाम बता दें।"

"तुम भी तो बता सकती थीं।"

"न बाबा! तुमने पीटा महात्मा जी को और तुम्हारी निन्दा करूं मैं। यह नहीं हो सकेगा।"

"तुमने मुझको बचा लिया है। मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूं।"

"व्यर्थ की बातें मत करो चन्दू! मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं।"

उसी सायं चन्दू ने महात्मा तत्त्वदर्शी से कहा, "महाराज! मैं नहीं जानता था कि आप हमारे गांव के रहने वाले हैं। मैं और यह मीना भी पवार के रहने वाले हैं। यह वहां के तारा कुम्हार की बहिन है। इसका भाई मेरा बहनोई है।"

"तारा की बहिन?" तत्त्वदर्शी ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा।

उसने मीना को बुला कर कहा, "तुमको मालूम है कि मैं तारा के यहां भोजन करने जाया करता हूं और तुमने मुझको बताया भी नहीं कि तारा तुम्हारा भाई है ?"

"महाराज ! मुझको अपने व्यवसाय पर लज्जा आ रही थी और मैं अपने भाई को बदनाम नहीं करना चाहती थी।"

"बेटी ! तुम तो मेरी अपनी हो। तारा बहुत ही अच्छा लडका है। वह तुमको पुन. अपने घर रख लेगा। तुम यह व्यवसाय छोड कर गांव में चली चलो।"

"पर मैं तो महाराज !" चन्दू ने कहा, "यह जानने आया था कि प्रातः जब न्यायाधीश आपसे पूछने आये थे कि आप अभियोग चलाते क्यों नहीं ? आपने न क्यों कर दी थी ?"

"चन्दू बेटा ! मुझको मालूम भी तो नहीं कि मुझको किसने क्यों पीटा है ?"

"पीटे जाने का कारण तो आपको विदित ही है। हम लोग आपका कीर्तन वहा पसन्द नहीं करते थे। इस कारण हमने आपको पीटा है।"

"तो बेटा ! तुम स्वयं ही वहा जाकर कह दो न कि तुमने मुझको क्यो पीटा था।"

"यदि मैं सत्य-सत्य बता दूं तो मुझको तो मृत्यु-दण्ड मिल जावेगा।"

"तो क्या तुमने इतना घोर अपराध किया है ?"

"हा महाराज ! हमने यह निश्चय किया था कि आपको मार ही डालेंगे। मैं तो मार ही डालता, यदि यह मीना बीच में न आ कूदती। जो लाठी इसकी पीठ पर पडी थी, वह आपके सिर पर पडने के लिये थी। वह लग जाती तो आपकी खोपडी अवश्य दो टूक हो जाती।"

"तब तो यह और भी आवश्यक हो गया है कि तुम जाओ और न्यायाधीश के सामने अपना अपराध स्वीकार करो, जिससे तुमको दंड मिल सके और भगवान् को दंड देने का अवसर ही न मिल सके। क्या जाने उसके यहा से मृत्यु से भी कोई अधिक कठोर दंड मिल जाये।"

"तो मृत्यु से भी कोई कठोर दंड हो सकता है ?"

"क्यों नहीं। मान लो, तुमको कुष्ठ रोग हो जावे, जिससे तुमको जीवन भर कष्ट सहन करना पड़े। दिन-दिन में तुम्हारा शरीर गल-गल कर झरता चला जावे और तुमको यह गलता देख एक निश्चित परन्तु दूर से समीप आती हुई मृत्यु दिखाई दे। कितना भयंकर दृश्य होगा यह ? और फिर दिन प्रति दिन धीरे-धीरे समीप आती हुई मृत्यु कितनी दुःखदायी होगी ?"

चन्दू इस बात को सुन कांप उठा। उसने कहा, "महाराज ! क्या इस अपराध का यह दंड हो सकता है ? मैंने तो ऐसा नहीं समझा था।"

"तो क्या समझा था तुमने ? मुझको मार डालने के अपराध में तुमको क्या दंड मिलना चाहिये, तुम्हारे विचार में ?"

"मैं तो समझता था कि मैं मार कर भाग जाऊंगा। कोई मुझको पकड़ नहीं पायेगा। किसी राज्याधिकारी को पता चलेगा नहीं और मुझको दंड मिलेगा नहीं।"

"यह तो ठीक है। किसी राज्याधिकारी ने नहीं देखा, परन्तु भगवान् तो सब को सदैव देखता रहता है। उसकी लाखों आंखों से तुम कैसे बच सकते हो ?"

"पर महाराज ! मेरा मन न्यायालय में जाने से डरता है।"

"यह तुम्हारे मन की इच्छा है। मैं तुम्हारी बात किसी से नहीं बताऊंगा। इस पर भी क्या तुम मुझको बता सकोगे कि तुमने मुझे मार डालने का निश्चय क्यों किया था ? मैंने क्या अपराध किया था ?"

"आपके उपाय से तो हम सब भूखे मर जाते ? नदी तट पर विषय-वासना में लिप्त मनुष्यों का आना-जाना बंद हो जाता। इससे हमारे व्यवसाय अर्थात् युवा-पुरुषों के पास वेश्याओं को पहुंचाने का काम कम हो जाता और हम भूखों मरने लगते।"

"यह काम तो मैं बंद कराने के लिये अभी भी वहां जाया करूंगा।"

"अब मेरी इस काम में रुचि नहीं रही।"

"तब तो ठीक है। न्यायालय में जाकर, जहां तुमको चाहिये कि अपना अपराध स्वीकार कर लो, वहा भविष्य में इस काम को न करने का वचन देते हुए, पिछले अपराध के लिये क्षमा मांग लो।"

"कौन क्षमा कर सकता है ?"

"मनुष्य तो क्षमा करता ही है। कई अपराधियो की दशा देख, कई राजे-महाराजे क्षमा करते हैं।"

चन्दू के मन में बात बैठ गयी। वह इस समस्या को इस प्रकार विचार करने लगा कि उसने अपराध तो किया है। यदि मनुष्य के सामने अपराध स्वीकार करके क्षमा याचना करेगा तो क्षमा किया भी जा सकता है। यहां लुकाव-छुपाव करके भगवान् से क्षमा-याचना करेगा तो वह क्षमा क्यो करेगा? वह तो कष्ट देगा ही। इस प्रकार वह बहुत काल तक विचार करता रहा। रात भर इन विचारो में वह सो नहीं सका। अगले दिन उसने मीना से पूछा, "मीना! तुम क्या समझती हो कि न्यायाधीश के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिये ?"

मीना ने चन्दू और महात्मा जी के भीतर हुई बात सुनी थी। इस पर भी उसने कहा, "चन्दू भैया! अपने मन में निश्चय कर लो। यह भी संभव है कि तुमको क्षमा न किया जा सके। उस अवस्था में तुम मृत्युदड पा जाओगे।"

"पर महात्मा जी तो कहते थे कि महाराज के यहां से क्षमा की आशा अधिक है।"

"यह अनुमान ठीक तो प्रतीत होता है, इस पर भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। यदि तुमने अपना अपराध इस लिये स्वीकार करना है कि तुम अवश्य ही क्षमा कर दिये जाओगे, तो मत जाओ। अपराध स्वीकार तो इस लिये करना चाहिये कि किये अपराध को छुपाना तो अपराध को और अधिक करना है। जितनी देर तक अपराध छुपा कर रखा जावेगा उतना ही दड बढ़ता चला जावेगा। इससे यह विचार

कर अपराध स्वीकार करना चाहिये कि एक बोझा उतारना है। यदि यह विचार नहीं है तो जाने मे लाभ नहीं होगा।"

५

जब नगरपाल की आज्ञा से नगर में पकड़-धकड़ आरम्भ हुई तो एक भारी हल्ला मचने लगा। पकड़े जाने वालों में कीर्तन करने वाले भी थे और नर्तकी का नाच देखने वाले भी। इस कारण दोनो पक्ष के लोग महामात्य, महाराज और रेखा देवी के पास पहुचने लगे और अपने-अपने पक्ष के समर्थन में माग करने लगे। महाराज ने यह उचित समझा कि एक सार्वजनिक स्थान पर कीर्तन करना अपराध है अथवा नहीं, इसका निर्णय राज्य-परिषद् करे। इस विषय में विधान करना चाहिये कि एक सार्वजनिक स्थान पर कौन-कौन काम किया जा सकता है।

इस वि य पर न्यायाधीश मनोज ने भी स्पष्टीकरण की मांग की थी। अतएव इस विषय पर विचार करने के लिये राज्य-परिषद् की एक विशेष बैठक की गयी।

नगरपाल का कथन यह था कि राज्य ने नदी-तट जनता के मनोरजन के लिये नियत किया है। वहा इसके अतिरिक्त कोई अन्य कार्य करना अपराध होना चाहिये। महाराज कुमारदेव का भी ऐसा ही मत था और वह इस विषय पर राज्य-सभा से व्यवस्था चाहता था। इस कारण राज्य-परिषद् की यह बैठक हुई और उसमें नगरपाल और मनोज का मत उपस्थित कर दिया गया।

महामात्य ने प्रश्न को उपस्थित करते हुए इसकी व्याख्या कर दी। उसने कहा, "विचारणीय विषय यह है कि मनोरजन किसको कहते हैं। क्या केवल नाच-गाना ही मनोरजन के साधन है अथवा कुछ और भी बातें हैं जो मनोरजन में आ सकती हैं। एक व्यक्ति नदी में तैरता है। दूसरा नदी के तट पर बालू में लेटता है। एक गाना गाता है। दूसरा नाचता है। एक तट पर के निकुजो में अपनी प्रेमिका से सहवास:

करता है और दूसरा हलवाई की दूकान पर बैठ कर हलुआ खाता है। इस कारण मनोरजन का विश्लेषण करना चाहिये।"

इस पर राघव ने कहा, "इन्द्रियो के सुख-स्वाद को मनोरजन कहना चाहिये।"

पडित सुखदर्शन ने पूछ लिया, "कविता लिखना क्या होगा? यह मनोरजन माना जावेगा अथवा नहीं? एक पुरुष नदी तट पर बैठ कर विरह-गीत गाता है। इसको आप क्या कहेंगे? एक व्यक्ति को अपनी प्रेमिका को किसी अन्य की सगत में देख, मनोरजन होगा अथवा कुछ और?"

"मनोरजन का अर्थ केवल दूसरो को सुख पहुचाना होना चाहिये।"

"परन्तु जब कोई पुरुष अपनी प्रेमिका को किसी दूसरे की सगत में देखेगा तो दूसरे के लिये सुखकारक होते हुए भी मनोरजन नहीं होगा।"

"प्रेमी को इसमें दुख नहीं मानना चाहिये।"

"तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि किसी का मनोरजन किसी दूसरे को 'चिकर न हो तो वह उससे दुःखी न हो। वह वहां पर जावे ही नहीं।"

"हा, ऐसा ही होना चाहिये।"

इस पर महामात्य ने कहा, "यदि कोई बहुत भद्दे स्वर में गा रहा हो और कुछ सुनने वालो को वह स्वर पसन्द न हो तो वे वहां सुनने न जावें। यही अभिप्राय है न आपका?"

"भद्दे स्वर में गाने वाला न गाये।" महाराज का कहना था।

"भद्दे और मीठे स्वर में भेद सुनने वाला करे अथवा गाने वाला? फिर यदि सुनने वालों में मतभेद हो जावे तो निर्णय कौन करे? इसमें एक बात और भी है। कोई गाता है, 'तोरे नैनन तीर चलावत है।' दूसरा गाता है, 'मैं रसिया तुम रस भरी।' एक और गाता है, 'मत-खेलो होरी गोरी, फगुआ निबट गया।' इसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाव के

गीत गाये जा सकते हैं। तो किसकी पसन्द चलेगी ? इस प्रकार तो काम नहीं चल सकता। हमारा कहना है निर्णय यह होना चाहिये कि यह घाट सार्वजनिक है। सब कोई वहां जाकर अपने विचार और रुचि के अनुसार अपना मनोरंजन कर सकते हैं। शर्त केवल यह है कि दूसरे के मनोरंजन में बाधा न डाले।"

"पर वहां तो एक मत का प्रचार हो रहा था। हम एक स्थान पर, जो मनोरंजन के लिये नियत किया गया है, एक मत के प्रचार के लिये प्रयोग करने नहीं दे सकते।"

"राज्य का तो कोई मत है नहीं। इस कारण हम किसी के मत में हस्तक्षेप नहीं करते। हम मत को न पसन्द तो कर सकते हैं परन्तु मत पर आचरण करने वाले के मार्ग में बाधा नहीं डाल सकते। इस कारण प्रश्न तो यह रह जाता है कि 'श्रीमन्नारायण नारायण' का जप करना किसी के भी लिये मनोरंजन हो सकता है या नहीं ? यदि हो सकता है तब वह नदी तट पर भी हो सकता है। इस कीर्तन में सहस्रों लोग सम्मिलित होते थे। इस कारण इसको मनोरंजन भी कहा जा सकता है। कम से कम यह दुःखदायी तो नहीं कहा जा सकता। यदि किसी को यह पसन्द नहीं था, तो उसको वहां जाना नहीं चाहिये था।"

"पर मैं तो कहता हूं कि यह एक पंथ का प्रचार था। इस कारण एक सार्वजनिक स्थान पर इसका आयोजन ठीक नहीं था।"

"यह प्रचार था अथवा नहीं ? इसका भी तो निर्णय होना चाहिये। भगवान् का भजन करना यदि प्रचार माना गया तो एक नर्तकी का नृत्य भी एक विचार का प्रचार हो जावेगा। और फिर दोनों को मना करना पड़ेगा।"

"यह कैसे ?" महाराज का प्रश्न था।

"नाच-रंग में जीवन व्यतीत करना भी तो एक विचार है। कुछ लोग इसको भी ठीक नहीं मानते। इस कारण यदि नाच करना मात्र एक प्रचार मान लिया गया, तब तो वे लोग इसके एक सार्वजनिक

स्थान पर होने को मना कराना चाहेंगे।"

"पर नाच-गाना भी कोई पंथ है क्या ?"

"हां! वाम मार्ग! वाम मार्ग का एक भेद नास्तिक्य है। नास्तिक इस ससार को ही-सब कुछ समझते हैं। इसमें वे अधिक से अधिक सुख भोग कर लेना चाहते हैं। इस जीवन के पश्चात् तो वे किसी बात को मानते ही नहीं। यही कारण है कि श्वेतांग नास्तिक ने इन नाच-तमाशों को चलवाया था।"

"पर नाच-रंग करना अथवा इसमें सम्मिलित होना तो वाम मार्ग का प्रचार नहीं कहा जा सकता। हा, लोगों को ऐसा करने के लिये अथवा इनमें सम्मिलित करने के लिये प्रेरणा देना तो प्रचार हो सकता है।"

"इसी प्रकार ईश्वर-भक्ति करना एक बात है और इसकी प्रेरणा दूसरी बात है। जैसे नृत्य करना प्रचार नहीं हो सकता, वैसे ही भगवद्-भजन करना प्रचार नहीं हो सकता।"

कुमारदेव को सुखदर्शन की युक्ति मन लग गयी। इस प्रकार यह निर्णय हो गया कि ऐसा कोई कार्य, जिससे किसी दूसरे के मनोरंजन में बाधा न पडे और जिसमें किसी दूसरे को करने की प्रेरणा न की जावे, वह सार्वजनिक स्थानों पर हो सकता है। साथ ही पथ के लक्षण कर दिये गये। इसमें कहा गया कि कोई विचारधारा, जिससे किसी को सुख मिलने की आशा दी जाती हो, वह पथ है, चाहे तो वह सुख, ससार में जीवन काल में हो अथवा कथित भावी जन्म में हो।

इस व्यवस्था के दिये जाने से मनोज के लिये अभियोग की कार्यवाही सुगम हो गयी। इस कारण उसने अगले ही दिन सब अभियुक्तों को न्यायालय में उपस्थित होने की आज्ञा दे दी। महात्मा तत्त्वदर्शी, मीना और चन्द्र को भी पकड़ कर वहां उपस्थित कर दिया गया।

वह नर्तकी जिसने झगड़े के दिन भक्तों के अखाड़े में नृत्य आरम्भ किया था, सबसे पहिले बुलाई गयी। उसका कहना था, "मुझको एक महाजन ने एक सौ रजत इस बात के लिये देने स्वीकार किये थे कि मैं

उस अखाडे में जाकर नाच करू।" इस पर नगरपाल ने प्रश्न किया, "वह महाजन कौन है ?"

"मैं उसका नाम नहीं जानती और न ही यह जानती हू कि वह कहा रहता है।"

"यदि तुमको कोई आदमी यह कहे कि अमुक ग्राहक को मदिरा में विष पिला दो और वह तुमको पांच सौ स्वर्ण देगा, तो क्या तुम पिला दोगी ?"

"विष देना माना हुआ अपराध है, परन्तु किसी कीर्तन-मडली में विघ्न डालना कोई अपराध नहीं।"

"किसी के कार्य में विघ्न डालना अपराध नहीं है क्या ?"

"कीर्तन करना कोई कार्य नहीं है। इससे लाभ नहीं होता और न ही विघ्न डालने से उसको हानि होने की सभावना होती है।"

"मान लो कोई नर्तकी निश्शुल्क अपना नृत्य दिखाती है तो क्या उसके कार्य में विघ्न डालना अपराध नहीं है ?"

वह नर्तकी निरुत्तर हो रही थी। उसने अपराध मानते हुए कहा, "मैं इतना ज्ञान नहीं रखती। मुझको क्षमा किया जावे।"

इस प्रकार एक-एक कर अपराधियों के विषय में बातचीत होती गयी और उनमें से प्राय अपना अपराध मानते हुए क्षमा प्रार्थना करते गये। जहा तक कीर्तन करने वालों का सम्बन्ध था, वह छोड दिये जाते रहे। यह सिद्ध नहीं हो सका कि उनमें से किसी ने भी किसी पर कोई आघात किया है। चन्दू का मामला तनिक गम्भीर हो गया। उसने आरम्भ में ही मान लिया कि उसने निरपराध लोगों को पीटा है और उसका विचार था कि महात्मा तत्त्वदर्शी को मार डाले। उसने अंत में कहा, "मैं अपराधी हू और चाहता हू कि मुझको उचित दंड दिया जावे।" मनोज की इच्छा थी कि सब अपराधियों को सचेत कर छोड़ दे, परन्तु चन्दू के वक्तव्य ने सब बात बदल दी। इस प्रकार के अपराधी को तो महाराज ही क्षमा प्रदान कर सकते थे। वह भी क्षमा मागने पर।

इस कारण मनोज ने पूछा, "तुम अपने अपराध के लिये क्षमा प्रार्थना करते हो अथवा नहीं ?"

"मैं अपने अपराध के लिये प्रायश्चित्त करना चाहता हू। जिस प्रकार भी यह हो सके होना चाहिये । मैं करने को तैयार हू।"

मनोज को अपनी अवस्था का स्मरण हो आया। उसको भी मृत्यु-दंड हुआ था, परन्तु काशीराज ने उस पर दया कर, उसको छोड़ दिया था। इससे उसके लिये मार्ग मिल गया।

मनोज ने सबको यह कह छोड दिया कि सब अपने किये पर पश्चात्ताप करते हैं, इस कारण उनको सचेत कर छोड़ दिया जाता है। चन्दू को देश से निर्वासित कर दिया गया। इस प्रकार मनोज की नम्रता पर दोनो पक्ष प्रसन्न थे। अगले दिन से ही तत्त्वदर्शी ने नदी तट पर पुन. कीर्तन आरम्भ कर दिया।

: ६ :

चन्दू को आज्ञा हो गयी कि वह दो दिन के भीतर अवन्ति छोड दे। यदि इस काल के पश्चात् वह अवन्ति में देखा गया तो आजन्म वंदीगृह में रखा जावेगा। वह घर पर आया तो मीना अपना सामान बांध महात्मा के साथ अपने गाव को जाने के लिये तैयार हो रही थी। उसको छूट गया देख मीना को बहुत प्रसन्नता हुई। जब चन्दू ने बताया कि उसको देश-निर्वासन की आज्ञा हुई है तो मीना ने पूछा, "अब कहा जाओगे चन्दू ?"

"अभी निश्चय नहीं किया। तुम कहा जा रही हो ?"

"महात्मा जी मुझको मेरे भाई के घर ले जा रहे हैं। उनका कहना है कि भाई मुझको घर पर रख लेगा।"

"कब जा रही हो ?"

"आज ही। महात्मा जी के कीर्तन से आते ही हम चल देंगे।"

"तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।"

"क्या करने चलोगे ?"

"तुम्हारे भाई से तुम को मागने।"

आज मीना ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह गम्भीर विचार मे पड गयी। उसको चुप देख चन्दू ने उत्साहित हो कहा, "मीना! अब मैं अपना व्यवसाय तो कर नहीं सकूँगा। किसी परदेश मे जाकर मेहनत-मजदूरी कर पेट भरने का विचार कर लिया है। इस कारण अब तुमको मुझसे भय नहीं करना चाहिये। चलो मेरे साथ। मैं तुमको बहुत आदर से रखूँगा।"

"महात्मा जी भी यही कह रहे थे। उनका कहना था कि वे महामात्य से मिलकर आये हैं और महामात्य तुमको छोड देने का विचार रखते हैं। ऐसी अवस्था में उनका कहना था कि मैं तुमसे विवाह कर अपना जीवन सुख और आराम से व्यतीत करू। अब जब तुमने फिर वही बात कही है, तो मैं विचार करती थी कि यहा से ही तुम्हारे साथ चली जाऊँ तो क्या ठीक न होगा?"

"तब महात्मा जी को आ जाने दो। यदि वे हमारा आज रात ही विवाह करा दें, तो कल प्रात काल ही मै और तुम दोनों अवन्ति से मल्ल राज्य की राजधानी पावा के लिये चल सकते हैं।"

महात्मा तत्त्वदर्शी के न्यायालय द्वारा छोड दिये जाने से, उसकी मान-प्रतिष्ठा में बहुत उन्नति हो गयी थी। छूटने के पीछे, पहिले ही दिन जब वह नदी के घाट पर कीर्तन के लिये गया, तो एक सेठ गोपाल ने उसके पास आकर पूछा, "महाराज! आप रात कहा सोते है?"

"यहीं नदी के तट पर। बीच में, जब तक बीमार था, चन्दू के घर पर सोता रहा हू।"

"तो महाराज मेरा एक मन्दिर है। चार साल से वह बद है। कोई ब्राह्मण वहा पूजा-पाठ के लिये मिलता ही नहीं। अब यदि आप चल कर रहना पसन्द करें तो वहा पूजा-पाठ आरम्भ किया जा सकता है। लिंगायतवादी शैव कई बार उसको अपनी उपासनाओं के लिये मांगते रहे हैं। मैंने अभी तक उनको नहीं दिया। सो आप चल कर वहां

रहिये तो मैं अपना अहोभाग्य मानूंगा।"

पंडित तत्त्वदर्शी मान गया। उसने मन्दिर देखा और उसको पसन्द कर लिया। यह प्रबन्ध कर वह चन्द्र के घर आया और वहां मीना और चन्द्र को परस्पर घुल-घुल कर बातें करते देख, प्रसन्न हो पूछने लगा, "चन्द्र भैया! छूट आये हो?"

"आप की कृपा है महाराज! मैं छूट गया हूं और देश छोड कर कहीं बाहर जाने की आज्ञा हो गयी है। साथ ही एक और सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मीना ने मेरे से विवाह करना स्वीकार कर लिया है।"

तत्त्वदर्शी ने दोनो को आशीर्वाद दिया और उनको विवाह कर लेने की राय दे दी। उसी रात दोनो का विवाह हो गया और दिन निकलते ही चन्द्र अपनी सब नकदी लेकर उज्जयिनी के पश्चिमी द्वार से बाहर निकल गया। जब वे पावा की सड़क पर जा रहे थे तो मीना ने कहा, "मैं यह आशा नही करती थी कि तुम न्यायालय में अपना अपराध स्वीकार कर लोगे।"

"मैं स्वयं यह विचार नहीं कर सकता था कि मैं अपना अपराध मान लूंगा। जब मैं न्यायालय की ओर ले जाया जा रहा था, तब भी मैं विचार करता था कि यदि मैं झूठ बोल दूं, तो कौन मेरे विपरीत साक्षी करेगा? परन्तु मैंने देखा कि सब लोग झूठ बोलकर अपने दोष को कम करने का यत्न कर रहे हैं, तो मुझको क्रोध आ गया। मैंने मन में विचार किया कि ये सब भीरु हैं? मैं सत्य बोल दूंगा। जब यह बात मेरे मन में एक बार आयी, तब फिर आगे सब कुछ स्पष्ट हो गया। भगवान् की कृपा है कि इस पर भी मैं छूट गया हूं।"

"तुम्हारी इस वीरता ने ही मेरे मन में तुम्हारे लिये मान बढ़ा दिया था और यही कारण है कि मैं तुम से विवाह करने पर तैयार हो सकी हूं।"

"तब तो यह कहना चाहिये कि अभी संसार में सत्य का मान करने वाले विद्यमान हैं।"

. ७ .

नारायणपंथियों के छूट जाने से महामात्य आचार्य भूदेव ने अपनी योजना के सफल हो जाने पर अति प्रसन्न मन से पंडित सुखदर्शन और मनोज को बुला कर बताया कि पंडित तत्त्वदर्शी का कीर्तन उसके द्वारा ही आयोजित था। वह इससे जो प्रयोजन सिद्ध करना चाहता था, वह बहुत अंशों में हो गया है। परमात्मा के भक्तों में जो उत्साहहीनता बढ़ रही थी, वह न केवल रुक गयी है, प्रत्युत अब लोगों में, कीर्तन में सम्मिलित होने के लिये साहस उत्पन्न हो गया है। गोपाल से ने अपना मंदिर उनको कथा-कीर्तन के लिये दे दिया है। आस्तिकता की ओर यह एक भारी पग है।

"पर आचार्य जी ! आपने हमको बताया तक नहीं और कहीं हम ही आप का राज्य-परिषद् में विरोध करने लगते तो क्या होता ?"

"यही तो राजनीति है। बात वही की है, जो स्पष्ट रूप में ठीक ही प्रतीत होती है। अब आगे बताता हूँ। मैं शैव-मत वालों के विरुद्ध विचार उत्पन्न करना चाहता हूं। इसमें महारानी रेखा और उसके साथ सेनापति सुधीर, सब हवा में उड़ जायेंगे। आगामी राज्य-परिषद् की बैठक में महारानी, सुधीर और अन्य कई सैनिकों का प्रश्न उपस्थित होने वाला है। मैं अभी इनके षड्यंत्र को परिषद् में बता कर, रेखा और सेनापति सुधीर को दंड दिलवाना नहीं चाहता। इस पर भी षड्यंत्र को आगे बढ़ने से रोकना आवश्यक हो गया है। इसके लिये मैं बहुत काल से प्रमाण पाने का यत्न कर रहा था। अब वह प्रमाण प्राप्त हो गया है। मैं आज सायंकाल महाराज से मिलने जा रहा हूं। राज्य-परिषद् में आपने वही कहना है जो मैं कहूं। मैं यह करना चाहता हूं कि सेनापति सुधीर को अवन्ति से बाहर किसी राज्य-कार्य के लिये भेज दूं। सुधीर के स्थान पर सेनानायक बलभद्र को सेनापति बनाने का विचार है।"

"सुधीर को हटा देने से क्या सेना में अशान्ति नहीं फैल जायेगी ?"

"अभी तो ऐसा प्रतीत नहीं होता। सेना में शैवों की संख्या अभी बहुत कम है। उनको दबाया जा सकता है। और यह बलभद्र के सेनापति बन जाने से ही हो सकेगा।"

"इस पर भी यह बात तो विचारने योग्य है ही कि शैव-मत एक पथ है। राज्य इसमें कैसे हस्तक्षेप कर सकता है ?"

"मैंने सब विचार लिया है। हम इस पथ में हस्तक्षेप नही करेंगे। 'प्रत्येक पथ को अपना कार्य करने की स्वतत्रता' की नीति का अवलम्बन करेंगे। परन्तु हम राज्य से सम्बन्ध रखने वाले अधिकारियो को इसमें रहने नहीं दे सकते। अधिकारियो के इस पथ में सम्मिलित होने से, इस पथ की मान-प्रतिष्ठा बढ गयी है। यह होता ही है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत तो सबको विदित ही है।"

"कौन-कौन अधिकारी इसमें सम्मिलित है ?"

"प्रथम तो महारानी रेखा है। द्वितीय सेनापति सुवीर और तृतीय उपसेनापति शत्रुघ्न है। इनके अतिरिक्त कुछ लोग और भी है, जो इस पंथ में सम्मिलित होकर इसकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ा रहे है। इन सब लोगो को हम उज्जयिनी से बाहर कर देना चाहते है। इनके यहा से चले जाने से इस पथ की महिमा कम हो जावेगी। पश्चात इस को वश में करना सुगम हो जावेगा।"

"और तो सब ठीक है, पर महारानी रेखा को यहा से निकालना सुगम नहीं।"

"यह आपका कहना ठीक है, इस पर भी कुछ न कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा।"

यद्यपि पडित सुखदर्शन और पडित मनोज आचार्य जी के उद्देश्य को समझ गये थे, परन्तु वह यह नहीं समझ सके कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे क्या करेंगे ?

बात राज्य-परिषद् में स्पष्ट हो गयी। इस विषय पर विचार महाराज ने स्वय ही उपस्थित किया। उन्होंने कहा, "मुझको यह सूचना

मिली हैं कि महारानी रेखा मुझको बंदी बना कर, राज्य अपने अधीन करने का यत्न कर रही है ।"

पंडित सुखदर्शन ने पूछा, "महाराज ! इस विषय में किसी सुदृढ़ प्रमाण के बिना बात करनी ठीक प्रतीत नहीं होती ।"

"प्रमाण है । महामात्य ! तनिक इनको वह पत्र, जो महारानी ने पाया के दैवयात को लिखा है, दिखा दीजिये ।"

आचार्य भद्देव ने अपने समीप रखे पत्रों के ढेर में से एक पत्र निकाल कर, पढ़ कर सुनाया। उसमें लिखा था, "श्रीमान् दैवयात ! मुझको यह जान कर अति प्रसन्नता हुई है कि आप मल्ल राज्य के गणपति निर्वाचित होने का यत्न कर रहे हैं । यदि इस कार्य के लिये धन की अथवा और किसी प्रकार की आवश्यकता हो तो लिखें । जब आप गणपति हो जायेंगे, तब मैं आप से अपना वचन पूरा करने के लिये कहूंगी। सेनापति मेरा अपना व्यक्ति है । सेना में भी मेरे पक्ष में बहुत से लोग हैं। यदि राजकुमार स राज्य का अधिकारी घोषित हो गया तो मैं उसकी मा होने से निस्संदेह भारी अधिकारों को पा जाऊंगी। तब हम इन दोनों राज्यों को एक करने की योजना बना लेंगे । अभी तो आपके गणपति निर्वाचित हो सकने की बात है । सफलता मिलते ही सूचना दें।"

महामात्य ने आगे बताया, "यह पत्र महारानी ने सेनापति के सम्मुख बैठ कर लिखा था, परन्तु इसके जाने के पूर्व यह मेरे पास आ गया और मैंने इस पत्र को तो अपने पास रख लिया और इसकी नकल उतरवा कर दैवयात के पास भेज दी है । दैवयात से जो उत्तर आया है, वह भी हमको मिल गया है । वह इस प्रकार है

"श्रद्धेय महारानी जी ! पत्र आपका मिला । मैं जब आप से उज्जयिनी में मिला था, तब जो बातचीत की थी, वह उस समय के गणपति से राय कर कही थी । इस पर भी यदि मैं गणपति बन सका तो वे सब वचन पालन करने अति सुगम हो जावेंगे । आपकी शुभकामना और सद्भावना से मैं गणपति बन सकूंगा। कठिनाई एक बात में है । वर्तमान

गणपति बहुत धनी व्यक्ति हैं। मैं तो उस जितना व्यय नहीं कर सकता। पिछली बार भी मैं धनाभाव के कारण गणपति बन नहीं सका था। अब मैंने कुछ तो प्रबन्ध किया है और अपनी ओर से पूर्ण यत्न कर रहा हूं।"

"इस पत्र के उत्तर में महारानी जी ने यहां से दस सहस्र स्वर्ण वहां भेजा है, जिसको स्वीकार करते हुए देवयात ने लिखा है, "प्रिय महारानी जी! आपका भेजा दस सहस्र स्वर्ण मिला। इससे मेरे गणपति बनने की आशा चमक उठी है। कम से कम मैं देश भर में घूम कर जनता को समझा तो सकूंगा कि मैं देश में किस प्रकार उन्नति करूंगा।"

इसके पश्चात् महाराज ने पुन यह प्रस्ताव रखा कि इस प्रकार विद्रोह करने वालों को मृत्युदण्ड मिलना चाहिये। इस पर महामात्य ने कहा, "मेरा मत यह है कि सेनापति तथा उपसेनापति को तो मार्ग से दूर कर देना चाहिये और महारानी को और आगे बढने दिया जावे। जब वह इस षड्यन्त्र में और फस जावे, तब ही उसको रगे हाथ पकडना चाहिये।"

"इसमें भय भी तो है। यदि हम से कुछ भी भूल हो गयी तो देश को हानि तो हो ही जावेगी। पीछे हम महारानी को दंड दे भी सकें तो क्या लाभ होगा?"

"आप ठीक कहते हैं, परन्तु इस बात को उस सीमा तक पहुचने ही नहीं देना चाहिये और यदि महारानी को और फसने न दिया गया तो जनता को समझाना सुगम नहीं होगा।"

पडित सुखदर्शन ने महामात्य की बात का समर्थन कर दिया। दूसरे मन्त्रियो ने भी महामात्य की बात मान ली। इस पर महाराज कुमारदेव ने पूछा, "इन सेना के अधिकारियों का क्या किया जावे?"

"इस बात के लिये ही तो मैं महारानी को अभी छूना नहीं चाहता। पहिले सेना में आ गये दोष को तो दूर कर ले। इसमें मेरा यह सुझाव है कि सेनापति सुवीर को राजगृह में अवन्ति का राजदूत बनाकर

भेज दिया जावे और उपसेनापति शत्रुघ्न को राजदूत बना कर कौशाम्बी भेज दिया जाये। बलभद्र को सेनापति नियुक्त कर दिया जावे और उपसेनापति किसी अन्य सेनानायक को बना दिया जाये।

"बलभद्र के सहयोग से सेना पर आये भय को टाल सकेंगे। वह सेना में महारानी के प्रभाव को नहीं चलने देगा।

"इस प्रकार सेना की ओर से निश्चिन्त हो, हम महारानी पर कोई कार्यवाई कर सकते हैं। बिना इस बात को किये महारानी को हाथ लगाना भयरहित नहीं होगा।"

इस विषय में महामात्य के कहने के अनुसार निर्णय किया गया और पश्चात महाराज ने शैव-मत के विषय में मत मांगा। महामात्य का उत्तर था कि जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि किसी लड़की अथवा लड़के पर बलात्कार किया गया है, तब तक राज्य इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पवार गाव के शिव-मंदिर की बात पथ के विरुद्ध नहीं चल सकी थी। उसमें प्रधान साक्षी ने साक्षी देने से न कर दी थी। यही कारण था कि अभियोग ही नहीं चल सका।"

"किरण ने साक्षी करने से अस्वीकार क्यों कर दिया था?"

"पहिले एक वर्ष तक तो उसका उत्तर ही नहीं आया। अब आया है, और उसने लिखा है "मैं किसी को फसाने में रुचि नहीं रखती।"

"यह क्या हो गया है किरण को?"

"वह पहिले भी ऐसी ही थी। उसके मन में यह बात बैठ गयी प्रतीत होती है कि उसने पिछले जन्म में कोई भारी पाप किया है जिससे वह क्रीतदासी बनी है और भावी जन्म में कोई अच्छी स्थिति प्राप्त करने के लिये उसको किसी को कष्ट नहीं देना चाहिये और जितनी भी भलाई वह दूसरों की कर सके, ठीक है।"

८

जब रेखा ने सेनापति सुधीर से षड्यन्त्र किया तो वह सेना और

शैव जनता की सहायता से राज्य पलटने के स्वप्न देखने लगी थी। उसकी योजना अभी पूर्ण नहीं हो सकी थी कि सुधीर को राजगृह में और शत्रुघ्न को कौशाम्बी भेजने का निर्णय हो गया। रेखा को इससे बहुत शोक हुआ। दोनों नवीन राजदूतो को दो दिन में ही अवन्ति मे विदा हो जाने की आज्ञा हो गयी।

दोनों महारानी रेखा से मिलने के लिये आये तो रेखा ने उनके अवन्ति से बाहर भेजे जाने पर विस्मय प्रकट किया। इस पर सुधीर ने कहा, "महाराज ने मेरी और शत्रुघ्न जी की योग्यता का विचार कर, हम दोनो को वेतन में वृद्धि कर तथा अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य पर भेजने का निश्चय किया है।"

"मैं समझती हूं कि बात इस प्रकार नहीं है। हमारे षड्यंत्र का समाचार किसी प्रकार बाहर निकल गया है। उससे महामात्य ने सतर्क हो आप दोनों को, जो हमारी योजना में मुख्य व्यक्ति हैं, अवन्ति से बाहर कर दिया है।"

"यही तो उनकी भूल है। मुख्य व्यक्ति तो आप हैं। यदि आप यहां अवन्ति में रहेंगी तो षड्यंत्र चलता रहेगा। हम तो आपकी सूचना पाते ही एक पखवारे में यहां पहुंच जावेंगे।"

रेखा ने उन लोगों से वचन लिया कि वे उसके षड्यंत्र में बने रहेंगे। ऐसा कर उन को जाने की स्वीकृति दे दी। रेखा को विश्वास हो गया था कि सेना में उसके बहुत से सहायक हैं और यदि नवीन सेनापति बलभद्र उसके पक्ष में आ जाये तो उसकी योजना और भी सुगमता से चल सकेगी।

बलभद्र आचार्य भूदेव का अपना शिष्य था। वह अभी युवक था और उसने केवल एक मल्ल युद्ध देखा था। इस पर भी वह शूरवीर, साहसी और बुद्धिमान् था। उसने सुधीर और शत्रुघ्न के चले जाने पर दो सेनानायकों को उन्नति दे दी। एक दिन सब सेनानायकों की सभा बुला कर, उसने उनको समझा दिया, "राज्य का नियम है कि राज्य

पथ-निरपेक्ष रहेगा। इस कारण हम अपने व्यक्तिगत व्यवहार में भले ही किसी पथ से सम्बन्ध रखे परन्तु सेना में कार्य करते समय हमको निष्पक्ष व्यवहार रखना होगा। हम किसी का पक्षपात नहीं कर सकते। सेना में होने पर यदि हम किसी पथ से पक्षपात करेंगे तो दड के भागी बनेंगे।

"राज्य का मस्तिष्क है राज्य-परिषद्। भुजायें है सेना। भुजायें मस्तिष्क का काम नहीं कर सकतीं। इसको मस्तिष्क अर्थात् राज्य-परिषद् का आदेश मानना पडेगा।

"सैनिक लोग जब छुट्टी पर हों तो वे स्वतत्र है। तब वे अपने व्यवहार के स्वय उत्तरदायी है, परन्तु जब वे शिविर मे हों, तब वे सेना का एक अग होने से स्वतंत्र नहीं। वे सेना के नियम मे बधे हुए है। स्वतत्र अवस्था में किये गये काम का फलाफल देना न्यायाधीश का अधिकार है, परन्तु सेना के रूप मे किये काम का फल देना मेरा कर्तव्य है।"

बलभद्र ने जो कहा, वह करना भी आरम्भ कर दिया। कई सैनिक नगर में नियम भग करते पकडे गये और उनको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया। जब वे सैनिक गणवेश में अपराध करते पकडे गये, तब तो न्यायाधीश ने उनको सेनापति के पास दड के लिये भेज दिया और जब बिना गणवेश के पकडे गये, तब उनको न्यायाधीश ने दड दे दिया।

जब इस नियम पर कठोरता से पालन किया गया तो सेना मे नियन्त्रण बहुत बढ गया। प्राय सैनिक सदा गणवेश में ही नगर में जाना पसन्द करने लगे और उस वेश में वे अपना प्रत्येक कार्य बहुत सोच-विचार कर करने लगे।

रेखा ने बलभद्र से अपना सम्पर्क उत्पन्न करने का यत्न किया। उसका विचार था कि जब वह उसके सम्मुख आवेगा तो वह उसके सम्मोहिनी प्रभाव में आकर उस के अनुकूल हो जावेगा। कुछ शैव उपासको द्वारा बलभद्र को एक कृष्ण चतुर्दशी को उपासना में सम्मिलित होने का निमं-

त्रण दिया गया। वह गया। उसमें उसने भाग भी लिया, परन्तु वह महारानी के प्रभाव में नहीं आया। उपासना के अगले दिन सायं रेखा ने उसको भोजन पर बुलाया। भोजन करते समय पिछली रात की उपासना पर बात चल पड़ी। रेखा ने पूछा, "बलभद्र जी! यह शिव उपासना आपको कैसी जची है ?"

"महारानी जी! इसने मस्तिष्क में ऐसी हलचल मचा दी है कि विचार-शक्ति कार्य ही नहीं करती।"

"यह स्वाभाविक ही है। मनुष्य के सचित संस्कार ही इस हलचल में कारण हैं। पुराने संस्कार जब अयुक्तिसगत प्रतीत होने लगते है, तब एक बार तो ऐसी घबराहट प्रतीत होती ही है। निष्पक्ष मन से विचार करिये तो स्फटिक मणि की भाति सब बात निर्मल तथा स्पष्ट हो जावेगी।"

उपासना की रात, जो कुछ युवक सेनापति ने देखा और किया वह उन्माद उत्पन्न करने वाला था। उसके प्रभाव को वह अभी तक अपने मस्तिष्क से निकाल नहीं सका था। अब रेखा देवी उस उपासना का आधारभूत सिद्धांत समझाने लगी थी। अभी बलभद्र पिछली रात की उपासना की मादकता का अनुभव कर विचार ही रहा था कि रेखा ने कहा, "सेनापति! इधर आइये। बात स्पष्ट हो जावेगी।" वह उसको अपने प्रासाद के एक आगार में ले गयी। वहा लिंग की स्थापना थी।

आगार के मध्य में लिंग बना था। पूर्ण आगार में श्वेत चिकना पत्थर लगा था। लिंग भी दूध के समान श्वेत पत्थर का था। आगार के बाहर वैसे ही श्वेत पत्थर का एक बैल बना था, जो बैठा हुआ, श्रद्धा से लिंग की ओर देख रहा प्रतीत होता था। इस बैल के ऊपर छत से, लोहे के सांकल से कांसी का एक बडा सा घंटा लटक रहा था। रेखा ने वहा पहुंच, हाथ ऊंचा कर, घटे की जिह्वा को हिला दिया। टन-टन घटा बजा और रेखा ने हाथ जोड, झुक कर लिंग को नमस्कार किया। लिंग पर पड़े जल और फूलों से प्रतीत होता था कि पूजा हो चुकी है। रेखा कुछ काल तक हाथ जोड, आखें मूंदे, आगार की ड्योढी में खड़ी

रही। बलभद्र उसके पीछे खडा था। रेखा ने देवता को प्रणाम कर बिना सेनापति की ओर देखे कहना आरम्भ कर दिया। वह अभी भी उसके पीछे खडा था।

"सेनापति! देखते हैं न? यह क्या बना है। यह पुरुष शक्ति का संकेत है और उसके नीचे स्त्री शक्ति की प्रतीक भग बनी है। दोनों के संयोग से ही संसार की पूर्ण चेतन सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। यही वास्तविक शक्ति है, जिससे इस संसार का कार्य सम्पन्न होता है। यही इष्ट देव है, जिसको भली-भांति समझने से और जिसकी उपासना से वास्तविक कल्याण की आशा की जा सकती है। यह देवन के देव महा-देव सब देवताओं अर्थात् कल्याणकारी शक्तियों के स्वामी हैं।"

रेखा इतना कह आदर और भक्ति से मूर्ति की ओर देखती रही। पश्चात् वह घूम कर बलभद्र की ओर देख बोली, "इस शक्ति-उपासना की महिमा संसार में स्थापित करने के लिये हम लोग यत्न कर रहे हैं।"

बलभद्र ने देखा कि रेखा की आंखों में विद्युत् की सी एक चमक उत्पन्न हो गयी है। उसका मुख लाल हो गया, जैसे कि पूर्ण शरीर का रक्त वहां एकत्रित हो गया हो। रेखा ने अपना हाथ बलभद्र के हाथ पर रख कर कहा, "सेनापति! इसको समझने का यत्न करो। इसको समझते ही आपको अवर्णनीय स्फूर्ति और सतर्कता उत्पन्न होती प्रतीत होगी। यही संसार में सफलता का स्रोत है।"

बलभद्र ने अनुभव किया कि रेखा का हाथ कांप रहा है और उसके स्वर में कम्पन आ गया है। वह इसका अर्थ यह समझा था कि स्त्रीत्व शक्ति का ज्वार उसमें उठ रहा है। उसने इसका मार्ग बदलने के लिये देवता को नमस्कार किया और उधर देखते हुए कहा, "श्रीमती जी! आप की शैव मत की यह व्याख्या अद्भुत है। मैं इस पर विचार करूंगा। आपने जो कुछ मुझको बताया है, उस पर मनन और चिन्तन करूंगा।"

इतना कह उसने लौटने के लिये छुट्टी मांगी। रेखा की आंखें लज्जा से झुक गयीं और वह मार्ग दिखाती हुई पुन बैठक गृह में

चली आयी ।

जब रेखा ने शैव मत के सिद्धांत की व्याख्या आरम्भ की थी, तब तो वह उसमें कोई आपत्ति अनुभव नहीं करता था, परन्तु जब रेखा के मुख पर रक्त का वेग बढ़ने लगा और उसकी वाणी में कम्पन आरम्भ हुआ, तब उसका हृदय भी धक-धक करने लगा था। जब रेखा ने अपना हाथ उसके हाथ पर रखा, तब उसने अपने पूर्ण शरीर में रोमाच होते अनुभव किया। यदि उस समय वहा कुछ काल और ठहरता तो प्राकृतिक वेग उसको अपने में बहा कर ले जाते । वह उस समय वहां से चला आया और बैठक में पहुचते-पहुंचते उसका मन स्वस्थ हो विचारशील हो गया।

इस पर भी वह तो समझ गया था कि लैंगिक आकर्षण एक अति प्रबल शक्ति है । अपने संस्कारों से प्रभावित वह समझता था कि इस शक्ति के प्रवाह में वह जाना अनुचित है । यही कारण था कि जब काम का वेग उसको वहा ले जाने वाला था, वह संभल गया। इस पर भी वह इसको अपनी और रेखा की व्यक्तिगत दुर्बलता ही समझा था। इसका अपने सेना-संबंधी कार्य पर कोई प्रभाव हो सकेगा, यह वह नहीं जान सका था।

इसका ज्ञान उसको तब हुआ, जब महामात्य ने उसको बुला कर, उसको वह सब कुछ बताया, जो कुछ रेखा से उस दिन बीती थी। महामात्य ने जब इस घटना और उसके मन के भावों का वर्णन सुनाया, तो वह चकित रह गया। उसने कहा भी, "आचार्य जी ! मैं वहां पर व्यक्तिगत रूप में गया था।"

"बलभद्र ! तुम अवन्ति राज्य के सेनापति हो । तुम्हारा व्यक्तित्व अवन्ति के हित-अहित से पृथक् नहीं हो सकता। देखो मैं तुमको एक बात बताना चाहता हूं कि इसी भ्रम के कारण सुधीर और शत्रुघ्न को देश से बाहर भेजना आवश्यक हो गया था ।"

बलभद्र समझ गया और इसके पश्चात महारानी के बुलाने पर भी

वह वहा नहीं गया। महारानी रेखा ने बलभद्र का विचार छोड सैनिको से सम्पर्क बढाना आरम्भ कर दिया।

६

तत्त्वदर्शी के अभियोग के परिणाम को जान कर तथा सुधीर और शत्रुघ्न के विद्रोहात्मक कार्य के ज्ञान से महाराज कुमारदेव घबडा उठा था। ज्यों-ज्यो विद्रोही तत्त्वों को अवन्ति से बाहर किया जाने लगा, वह भूदेव की कार्यकुशलता पर सतोष अनुभव करने लगा। जहा तक अनुराधा का सम्बन्ध था, वह उससे प्रसन्न तो था, परन्तु वह समझता था कि वह राजनीति में उसको उचित सम्मति देने के अयोग्य है। इस विषय में किरण-सी योग्य साथिन उसको नहीं मिल सकी। रेखा तो केवल मात्र उसके शरीर की एक आवश्यकता को ही पूर्ण कर सकती थी। यह आवश्यकता अनुराधा भी पूरी कर रही थी। इसके अतिरिक्त उसका व्यवहार इतना प्रत्यक्ष और सरल था कि वह रेखा की भाति उसके असती होने की आशका नहीं करता था।

अनुराधा ने भी उसको एक पुत्र दिया था। वह अपनी माता के समान सुन्दर था और कुमारदेव उससे बहुत प्रसन्न था। इस पर भी वह उससे कभी राजनीति के विषय में बात नहीं करता था। इसमें उसको सर्वथा अयोग्य मानता था। प्राय वह राज्य सम्बन्धी बातें उससे करता ही नहीं था। परन्तु एक दिन बात चल ही पडी। महाराज कई दिनो के पश्चात् प्रसन्नवदन उसके शयनागार में आये थे। वह अनराधा से विनोद कर रहे थे, तो उसने पूछ ही लिया, "आज इस सौभाग्य के लिये मैं किसका धन्यवाद करू महाराज ?"

"किस बात के लिये कह रही हो देवी !"

"श्रीमान् जी के इस आगार को सुशोभित करने के लिये ही तो कह रही हू।"

कुमारदेव ने हस कर कहा "मेरी रानी जी! परमात्मा का धन्य-

वाद करो कि मैं आ सका हूं। हमारे शत्रुओं ने तो हमारे इस ससार से विदा होने का प्रबन्ध कर ही दिया था।"

"क्यो, क्या हुआ है महाराज? आपने इस दासी को कभी कुछ बताया ही नहीं। क्या मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकती?"

"यह राज्य के झंझट ऐसे हैं कि तुम जैसी कोमलांगी के हृदय को अति दु खदायी सिद्ध होते।"

"तो महाराज। मुझको इस योग्य भी नहीं समझते कि मैं उनके सुख-दु ख की बात को जान भी सकूं?"

इतना कह अनुराधा ने रूठ कर मुख मोड़ लिया। महाराज उसको मनाने लगे। इस पर उसने कहा, "मैं इस बात को अनुभव करती थी और इसी कारण मैं आप से विवाह करना नहीं मानती थी। आप क्या भूल गये हैं कि उस समय आपने कहा था कि आपको मेरी बुद्धि पर विश्वास है। एक सुन्दर शरीर में श्रेष्ठ मस्तिष्क ही हो सकता है। मैं नहीं जानती कि मैंने कभी कोई ऐसा काम किया है, जिससे आप कह सकें कि मैं मूर्ख हू।"

"प्रिय अनुराधा! मैंने यह कब कहा है कि तुम बुद्धि नहीं रखती?'

"मैंने सुना है कि आपकी एक क्रीतदासी थी और आप उससे राज्य-कार्य में राय लेते थे। मैं यही विचार करती रहती हू कि उसमें कौन बात थी, जिससे वह आपकी विश्वासपात्र बन सकी थी। मेरे साथ तो आपका केवल शरीर का सम्बन्ध प्रतीत होता है। मन और आत्मा का सबध आप मुझसे कर ही नही सके।"

"इस पर भी अनुराधा! मैं तुमको महारानी रेखा से बहुत ही श्रेष्ठ मानता हू। किरण के विषय में तो मैं अब भी नहीं कह सकता कि मैं उसको समझ सका था। वह जब तक यहा रही, मेरे लिए एक पहेली ही रही। अब भी वह एक समस्या ही कही जा सकती है।"

"तब तो उसके दर्शन करने चाहियें। सुना है कि वह महर्षि वामदेव जी के आश्रम में रहती है।"

"राज्य की ओर से उसको कई पत्र लिखे गये। आचार्य भूदेव ने अपने हाथ से लिख कर अपने एक विशेष दूत के हाथ भी एक पत्र भेजा, परन्तु उसने उत्तर ही नहीं दिया। अंत में जब उत्तर आया तो वह भी विस्मय में डालने वाला है। उसने लिखा था, 'मैं अपने मसीपात्र में किसी प्राणी के विरुद्ध लिखने के लिये मसी नहीं पाती।'

"इस प्रकार उसने एक भयकर अपराधी को बचा ही नहीं लिया, प्रत्युत उसको और अपराध करने का अवसर दिया है।"

"पर महाराज ! किरण चाहे कैसी भी रही हो, आपने कभी अनुराधा को अपने अंतरात्मा का साथी बनाने का यत्न नहीं किया। मुझको आपने केवल एक वासनातृप्ति का साधन बना रखा है।"

"यह तो नहीं है। इस पर भी तुम मुझको बताओ क्या चाहती हो मुझसे ?"

"मै आपकी पत्नी बनना चाहती हू। एक रखेल मात्र नहीं।"

"पत्नी कैसे बनना चाहती हो और रखेल कैसे तुम अपने को समझती हो ?"

"रखेल की भाति आप मेरे पास अपनी वासनातृप्ति के लिये आते हैं और बस। इसके अतिरिक्त मेरा आपके पास प्रयोग ही क्या है ?"

"मान लो, तुम मुझसे विवाह न करतीं और देहात के किसी पुरुष से तुम्हारा विवाह हो जाता, तो तुम क्या उसकी वासनातृप्ति मात्र के लिये न होतीं ?"

"यदि यह होता तो क्या होता, और यदि अमुक बात न होती तो यह न होता क्या, इसको ही आप युक्ति कहते है क्या ? मै तो यह कहती हू कि यदि वह बुद्धिमान् व्यक्ति होता, तो मेरी बुद्धि और सद्भावना से लाभ उठाता। जैसी-जैसी किसी की आवश्यकता होती है, वैसा ही तो काम किया जा सकता है।"

कुमारदेव ने कुछ विक्षुब्ध होकर कहा, "परन्तु अनुराधा ! प्रत्येक कार्य के लिये शिक्षा अनिवार्य होनी है। राज्यकार्य गौओं के दूध

दुहने के समान नहीं है ।"

"पर महाराज ! आपने कब मेरी परीक्षा ली है, जिससे आप यह समझ गये हैं कि मैं दूध दुहने के अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकती ?"

"मुझको नहीं मालूम कि तुम किसी पाठशाला में पढ़ी भी हो ?"

"मुझको विस्मय हो रहा है कि आप राज्य-कार्य कैसे चलाते हैं। आपके पास मुझको रहते हुए दो वर्ष से ऊपर हो गये हैं और आपको यह भी मालूम नहीं कि मैं किसी पाठशाला में पढ़ी भी हूं या नहीं ? बात भी ठीक है, कि जिस प्रयोजन के लिये आपने मुझको अपने प्रासाद में रखा हुआ है, उसके लिये किसी पाठशाला में पढ़े होने की आवश्यकता नहीं। यही न ?"

"आज तुमको हो क्या गया है, अनुराधा ?"

"कुछ नहीं महाराज ! कई मास से मैं अपने मन में यह समझ रही हूं कि आपका एक और विवाह हो जावे, तो मैं अपने गांव में जाकर स्वच्छंदता से विचर सकूं ।"

"तो बिना विवाह के तुम क्यों नहीं जा सकतीं ?"

"केवल इसलिये कि आपकी एक आवश्यकता को पूर्ण तो मैं कर ही सकती हूं। यदि उसकी पूर्ति किसी और से होने लगे, तो व्यर्थ की हो जाऊंगी ।"

"तो मेरी वह आवश्यकता कोई और भी पूरी कर सकेगा ? यह तुम कैसे कह सकती हो ?"

"मुझसे पहिले आपकी वह आवश्यकता रेखा देवी पूरी करती थीं। उससे आप ऊब गये तो मैं आ गयी। अब कोई और आ जाये तो मैं व्यर्थ की हो हो जाऊंगी ?"

"हां, मिल जाये तब न ?"

"तो वह मिल जायेगी। एक सुन्दरी प्रतियोगिता फिर करवा दीजिये।"

उस रात महाराज की मनोकामना पूरी नहीं हुई। ऐसा अवसर पहिले कभी नहीं आया था। इस बात के होने पर महाराज कुमारदेव

रात भर विचार करते रहे कि अनुराधा में क्या नवीन बात आ गयी है। अगले दिन उन्होंने उसकी गतिविधि को जानने के लिये उसके पीछे गुप्तचर लगा दिये। दासियों को भारी उपहार का प्रलोभन देकर उसकी प्रत्येक बात के जानने और फिर बताने के लिये कह दिया।

कई मास की देखभाल के पश्चात् महाराज कुमारदेव केवल एक बात जान पाये। वह यह थी कि अनुराधा अपना बहुत सा समय भगवद्-भजन में व्यतीत करती है। इस सूचना पाने के पश्चात महाराज ने एक बार पुनः उससे सम्पर्क प्राप्त करने का यत्न किया। अनुराधा ने अब शृंगार करना छोड दिया था। राज-प्रासाद की कोमलताओं और सुख-सुविधाओं को छोड़ना आरम्भ कर दिया था। उसने भूषणों में से केवल मंगलसूत्र पहिन रखा हुआ था, शेष सब भूषण उतार सन्दूकची में रख दिये थे। श्वेत वस्त्र और साधारण रूप में बधी वेणी में उसको देख कुमारदेव ने एक दिन विस्मय प्रकट कर पूछा, "देवी! यह शोक किस कारण मनाया जा रहा है?"

"मेरे मुख पर देखिये महाराज! क्या उस पर शोक के लक्षण प्रतीत होते हैं?"

"तुम्हारे वस्त्रों और अभूषित शरीर को देख कर तो यही प्रतीत होता है कि तुमको किसी बात का भारी शोक है।"

"और मेरे मुख को देखकर, किसी अत्यानन्द का मेरे में व्याप्त होना विदित नहीं होता क्या?"

"मन में आनन्दित होने से भूषण उतार दिये जाते हैं क्या?"

"भूषण पहिनने का प्रयोजन मन के आनन्द को प्रकट करना है नहीं महाराज! ये तो किसी दूसरे को आनन्दित करने के लिये होते हैं।"

"तो तुम किसी दूसरे को आनन्दित करना नहीं चाहतीं?"

"संसार में केवल एक प्राणी है, जिसको प्रसन्न रखना मेरा कर्तव्य है और वह प्राणी कभी दर्शन ही नहीं देता। आज भी यदि उसके आने की आशा, अथवा सूचना होती, तो मन को इसके लिये तैयार कर लेती।"

"और उसके अतिरिक्त क्या भूषण-वसन की तुमको आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ?"

"वसन तो पहिनने ही पडते है महाराज ! परिवर्तनशील ऋतुओं की गर्मी-सर्दी से बचने के लिये ही वस्त्र होते है। सजावट तो महाराज ! आप के लिये, यदि आपको आवश्यकता अनुभव होती है, तो अभी कर लेती हूं।"

"अनुराधा तो बिना भूषणो और वस्त्रो के ही पसन्द की गयी थी। मै तो केवल यह कह रहा था कि क्या ये तुमको पसन्द नहीं है ?

"आज मै तुम्हारे आगार में निवास करूगा।"

अनुराधा चुप रही। इस पर कुमारदेव ने पूछा "तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया अनुराधा ?"

"तो आपने कुछ प्रश्न पूछा था मुझसे ? मै तो समझी थी कि आपकी इच्छा आज इस आगार को भूषित करने की है। इसमें उत्तर देने की कोई बात नहीं थी।"

"अच्छी बात है।" इतना कह कुमारदेव ने आसन ग्रहण कर लिया।

: १० :

अनुराधा को ज्यो-ज्यो विश्वास होता गया कि वह राज-प्रासाद में एक चौकी-पलंग से अधिक कुछ नहीं, त्यो-त्यो वह ससार से विरक्त होती गयी। भोजन में स्वच्छता और सरलता ग्रहण कर ली। दिन में एक बार खाना और एक बार केवल दूध पर ही निर्वाह करना आरम्भ कर दिया। अत प्रात ब्रह्ममुहूर्त में उठ स्नानादि से निवृत्त होकर आसन जमा, वह योग-ध्यान में लग जाती थी। इस अर्थ उसने एक आगार पृथक् नियत कर रखा था। दिन निकलने के एक प्रहर पश्चात् तक वह अपने पूजा कर्म में लगी रहती थी। पश्चात् वह साधारण वस्त्र पहिन, अपनी बैठक में आ जाती और वहा राजभवन की दास-दासियां एकत्रित हो जातीं। भवन के विषय में और अन्य उनके अपने विषय की बाते होतीं। किसी को

वेतन की आवश्यकता होती, किसी को घर जाने के लिये अवकाश की, किसी को किसी अन्य दासी के विरुद्ध कोई शिकायत होती और किसी को अपने विरुद्ध शिकायत की सफाई देनी होती। इस कचहरी के पश्चात भोजन का समय हो जाता। भोजन के पश्चात् वह कुछ विश्राम करने के लिये अपने शयनागार में चली जाती। मध्याह्न के उपरान्त, वह स्वाध्याय करने बैठ जाती। इस समय भी भवन की दासिया उससे कोई कथा-वार्ता सुनने आ जाती। इस प्रकार सायंकाल हो जाता और तब वह पुन. सन्ध्योपासना में लग जाती। एक प्रहर रात बीत जाने पर वह दुग्ध पान करती और सोने चली जाती।

इस प्रकार उसकी दिनचर्या चल रही थी। कभी महाराज उससे मिलने आते तो इस नियम में अतर पड़ता। महाराज से वह कभी भी अनादर की दृष्टि अथवा भाव में नहीं देखी जाती थी। इस प्रकार कुछ काल तक जीवन चलता रहा। एक दिन महाराज कुमारदेव ने कह ही दिया, "मेरी साधनी रानी जी! यह शीतल व्यवहार कब तक चलेगा ?"

"आप आज्ञा करिये। किस प्रकार मै इसमें उष्णता ले आऊ ?"

"यह बात तो प्रत्येक स्त्री जानती और समझती है।"

"तो क्या वह मै नहीं समझती हू ? मुझसे अधिक जो और समझती थी, उनकी भांति क्या मुझसे भी चाहते है ? मै वैसा कर नहीं सकूंगी।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा अनुराधा ?"

"मै आपका आदर करती हू। आपसे प्रेम-आलाप भी करती हू। यदि कुछ नहीं करती तो केवल वही नहीं करती जो महारानी रेखा करती रही थीं अथवा कर रही है।"

"इसके लिये मै तुम्हारा कृतज्ञ हू अनुराधा! परन्तु मै चाहता हू कि तुम मुझसे हसी-विनोद करो, जिससे मै राज्य-कार्य से मुक्त होकर मन बहला सकू।"

अनुराधा हस पड़ी। उसने कहा, "महाराज! आप पुन चार-पाच वर्ष के बालक बनना चाहते है क्या ? मुझको तो लज्जा आती है

आपसे एक बालक-जैसा व्यवहार करते हुए। देखिये महाराज! आपने खेल-तमाशों में जीवन का बहुत सा भाग व्यतीत किया है। अब कुछ आगे की भी सोच लेंगे तो क्या किसी प्रकार की हानि होगी? मेरा निवेदन तो यह है कि इस जीवन के प्रयोजन को समझने का यत्न करिये और तब आपको विदित हो जायेगा कि बालकपन छोड़ कर सज्ञान जीवन व्यतीत करने में कितना आनन्द आता है।"

कुमारदेव हंस पड़ा। उसने अनुराधा से आलिंगन करते हुए कहा, "देवी! जो आनन्द इसमें है, वह पुराणों में कथित स्वर्ग में भी नहीं। देवलोक में भी तो अप्सराओं के बिना कार्य नहीं चल सका।"

"मैंने आपको अप्सराओं में विचरने से कब मना किया है?"

"मेरे लिये तुम ही अप्सरा हो और मैं तुमको प्रसन्नवदन देखना चाहता हूं।"

"आपने मुझको कब रोते हुए देखा है? मैं तो आपको यह कह रही थी कि इस प्रसन्नता से भी अधिक प्रसन्नता है ज्ञान की। ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञानियों की संगत और ध्यान में। आप अपना कुछ समय निकाल कर उस ओर भी लगायें तो फिर देखिये यह विनोद आपको कितना फीका प्रतीत होने लगेगा।"

"महापंडित नाकेश कहते थे कि इन्द्रियों को कुण्ठित करने से आनन्द फीका पड़ जाता है और ईश्वरादिक परोक्ष की बातों की ओर ध्यान लगाने से इन्द्रियां कुण्ठित ही होती हैं।"

"ऐसा नहीं है महाराज! ईश्वर-ध्यान से इन्द्रियां कुण्ठित नहीं होतीं, प्रत्युत वे तीव्र और बलवान् हो जाती हैं। अन्तर केवल यह आ जाता है कि इनके नियन्त्रणकर्त्ता के मन में इन पर नियन्त्रण करने की शक्ति आ जाती है, जिससे ये इधर-उधर भाग नहीं सकतीं। इन्द्रियों के अनियमित प्रयोग से तो जहां वे दुर्बल पड़ जाती हैं, वहां वे मन के नियन्त्रण से भी बाहर हो जाती हैं। आपको तो इसका अनुभव हो चुका है। महापंडित नाकेश के सुपुत्र इन्द्रियों को इतना तीव्र कर बैठे कि उनको दासी और

महारानी में भेद भी भूल गया। वे अपने अधिकार की सीमा को भी देख नहीं सके। मुझको श्वेताग जी की प्रिय दासियों से पता चला है कि वे और उनके पूज्य पिता जी भूल जाया करते थे कि उनके पिता की सहवासिन अथवा पुत्र की सहवासिन कौन है।

"आप भी तो महापंडित जी के कथनानुसार इन्द्रियों को तीव्र करने के विचार से अविचार में विचरते रहे हैं। इस प्रसाद में ही आपकी कितनी प्रियतमा रही हैं। यहां की दासियों से क्या संतोष हुआ है आपको ?"

कुमारदेव को काशी की एक रात्रि, जो उसने नाकेश के भवन में व्यतीत की थी, स्मरण आ गयी। उसने श्वेताग को अपनी सौतेली मा से सहवास करते देखा था और उसने नाकेश को इस पर हंसते हुए देखा था। आज अनुराधा के सुझाने पर उसका इसके अनौचित्य की ओर ध्यान गया तो वह कांप उठा। उसने कहा, "मुझको तुम्हारे कहने में कुछ तथ्य तो प्रतीत होता है, परन्तु इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि कहीं कोई ईश्वर है और उसकी आराधना से इन्द्रियों पर नियंत्रण बढ़ जाता है।"

"अभ्यास कर देखिये महाराज !"

यह छोटा-सा वार्तालाप कुमारदेव के जीवन में क्रान्ति उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ। वह विचार करने लगा कि क्या ठीक है और क्या ग़लत। क्या श्वेताग का व्यवहार अनुकरणीय है अथवा किरण और पालकदेव का ? वह समाचार पा चुका था कि किरण महर्षि वामदेव के आश्रम में तपस्या का जीवन व्यतीत कर रही है। जो दूत उसका संदेश लेकर उसके पास गया था, उसने बताया था कि वह एक निर्जन वन में चटाई बिछा कर सोती है। उस वन में हिंस्र जन्तु भी रहते हैं, परन्तु उनसे उसको भय नहीं लगता। यह क्या हुआ ? अब पालकदेव को हरिद्वार गये तीन वर्ष हो चुके थे। इस पर भी उन्होंने राज्य का मोह ऐसे छोड़ रखा था जैसे फटा पुराना वस्त्र उतार कर फेंक दिया जाता है। इसके विपरीत श्वेताग और रेखा का व्यवहार था। श्वेताग का पूर्ण कार्य-क्रम स्वार्थ की धुरी पर चलता था। उसने अपने स्वार्थ के लिये अपने

परम हितचिन्तक को भी राज्यच्युत करने में संकोच नहीं किया था। किरण देवी को अपने साथ अन्याय होते दिखाई देता था। इस पर भी उसने उससे बदला लेना तो दूर रहा, उसकी सत्य हृदय से सहायता ही की थी। वह अपने मन में विचार करता था कि क्या इसमें कारण, श्वेताग का नास्तिक्य और पालकदेव इत्यादि का आस्तिक्य ही है, अथवा कुछ और बात है।

दिन प्रति दिन, जैसे वह इस समस्या पर मनन करता था, वह अनुराधा के व्यवहार से अधिक और अधिक प्रभावित होता जाता था। वह उसकी संगत में अधिक और अधिक आता जाता था। इसका प्रभाव यह हो रहा था कि उसको अपने मन में, अपने भाई के साथ किये दुर्व्यवहार पर, पश्चात्ताप लगने लगा था।

एक दिन उसने अनुराधा को कहा, "तुम्हारी बातों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुझको अपने भाई के पास जाकर, उनसे क्षमा मागकर उनको वापिस बुला लेना चाहिये और यह राजपाट उनको पुन' सौंप देना चाहिये।"

"मैंने ऐसी बात आपसे कभी नहीं कही। इस पर भी यदि आप यह सब कुछ करें तो मैं इसको आपका एक अति साहसपूर्ण कार्य ही समझूंगी। आपके इस महान् त्याग के लिये मेरा मन आपके लिये अमित श्रद्धा से भर जायेगा।"

"इस काम के परिणाम से भी तुम परिचित हो या नहीं? सम्भव है कि भैया यहा लौट आना पसन्द करें और जब यहा आ जावे तो हमको देश से निकाल दें। तब तुम महल में रहने के स्थान झोपडी में ही रह सकोगी। शायद फिर गगरी सिर पर उठा कर इधर से उधर ले जानी पड़े।"

"यह तो बहुत ही साधारण सी बात है। मान लीजिये कि मगध अथवा कौशाम्बी वाले अवन्ति पर आक्रमण कर दें और हम पराजित हो जावे। परिणामस्वरूप हमको परदेश में जाकर मेहनत-मजदूरी

कर अपना पेट भरना पडे । तब क्या होगा ? हमारे काम की अच्छाई का तो रहस्य यही है कि हम स्वेच्छा से त्याग कर रहे होंगे। हम अपना दोष मान कर, यह सब वैभव छोड रहे होंगे। आपके भाई शायद आपको दर-दर का भिखारी बनने नहीं देंगे, परन्तु वे क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे, इससे हमने अपने काम का निर्णय नहीं करना। हमको तो अपने व्यवहार का निर्णय इस बात से करना है कि क्या उचित है और क्या अनुचित।"

"मान लो, वे अपने भविष्य के विषय में निश्चिन्त होने के लिये मुझको प्राणदण्ड देते हैं, तब क्या होगा ?"

"कुछ भी हो, किसी काम का औचित्य अथवा अनौचित्य हमारे [सुख या दुःख के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। प्रत्येक काम की अच्छाई-बुराई उसके अपने न्याययुक्त अथवा अन्याययुक्त होने पर निर्भर है। वे हमारे साथ क्या व्यवहार करते हैं, यह उनके देखने की बात है।"

इस सब जीवन-मीमांसा के कथन ने कुमारदेव के मन में भारी हलचल उत्पन्न कर दी।

प्रकृतिवाद

: १ :

पावा में सेठ सुखचन्द्र सर्वश्रेष्ठ धनी व्यापारी थे। वह महर्षि वामदेव के एक मान्य शिष्य थे। इनकी उज्जयिनी में भी कारोबार की एक कोठी रही थी, जो पहिले युद्धो के कारण बद हो गयी थी। बीच में जब देवयात मल्ल राज्य की ओर से राजदूत बन कर उज्जयिनी में गया था, तब वह कोठी खुल गयी थी, परन्तु श्वेतांग के षड्यन्त्र के समय, जब मल्ल राज्य का राजदूत लौट आया तो उसके साथ ही यह व्यापार की कोठी भी बंद हो गयी। इस बार सेठ सुखचन्द्र ने बहुत बडी धनराशि लगाकर उज्जयिनी में व्यापार खोला था और मल्ल सेना के अवन्ति में घुस आने पर वह कोठी अवन्ति राज्य ने लूट ली थी।

सेठ सुखचन्द्र को इससे भारी हानि हुई, और वह इस प्रकार बार-बार दोनों राज्यों में युद्ध होने को रोकने के उपायो पर विचार करने लगा। इस विषय में उसने महर्षि वामदेव से भी राय ली और उन्होंने इस रोग का निदान कर उसकी चिकित्सा बता दी। उनका कहना था, "मल्ल राज्य में धर्म का लोप हो चुका है। क्षत्रियो ने इस देश में शुद्ध सेना का राज्य चला रखा है। यही कारण है कि इस देश में उन्नति नहीं हो सकती। जब धर्म का राज्य होगा तब यहा पर सुख, शान्ति और समृद्धि बढेगी।"

"तो गुरुदेव! धर्म की स्थापना इस देश में किस प्रकार हो?"

इस पर महर्षि ने मल्ल राज्य की राजधानी पावा मे एक विशाल भगवती देवी के मंदिर की स्थापना करने की योजना बना दी। बहुत विचारोपरान्त सेठ सुखचन्द्र ने गणपति इन्द्रमणि के सामने उपस्थित हो, मदिर बनाने की योजना उपस्थित कर दी।

था कि हमारे राज्य में सब से अधिक सतुलित बुद्धि रखने वाले व्यापारी तुम हो, परन्तु तुम्हारी योजना सुन कर तो मुझको अपनी धारणा पर सदेह होने लगा है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने पूर्वजों की सब सम्पत्ति इस व्यर्थ के कार्य में फूक दोगे और इस पर भी कुछ बनेगा नहीं।"

"महाराज! आप शायद ठीक समझते हैं। इस पर भी आपसे निवेदन है कि मुझको अवसर दीजिये। राज्य के किसी भी प्राणी की एक पाई भी इस प्रयास में नहीं जायेगी।"

२

गणपति इन्द्रमणि के आग्रह पर मल्ल राज्य की सभा ने सभाभवन के सामने की भूमि इस मन्दिर के लिये देनी स्वीकार कर ली। दैवयात, जो इन्द्रमणि का अभी भी विरोध करता था, इस मन्दिर के बनने का विरोध करने लगा। परन्तु गणसभा में उसके पक्ष में बहुमत नहीं था। इस प्रकार उसके विरोध करने पर भी सेठ सुखचन्द्र को भूमि मिल गयी।

पावा के निवासियो न जब कई सहस्र कर्मकरों को मगध और अवन्ति से आकर काम पर लग गये देखा तो वे चकित रह गये। पलक की झपक में भूमि समतल हो गयी और उसपर निर्माण कार्य आरम्भ हो गया। सैकडो मल्ल देश के काम करने वाले भी लगाये गये और सबको पर्याप्त वेतन मिलने लगा। पाच विश्वकर्मा, सेठ सुखचन्द्र के घर पर बैठे दिन-रात विचारपूर्वक उस निर्माण कार्य को चला रहे थे।

दिन-प्रति-दिन, द्रुत गति से उठ रहे इस विशाल भव्य मन्दिर को देख-देख पावा की जनता आश्चर्य कर रही थी। यह कौन कर रहा ह? यह क्यों किया जा रहा है? इसमें क्या होगा? कौन इसका सचालन करेगा? इत्यादि विषयों पर इसके गगनचुम्बी कलश की ओर सिर उठा कर देखते हुए जनता चर्चा करती थी।

गणपति और गणसभा के सदस्य भी, जब सभा का कार्य समाप्त कर सभाभवन से निकलते तो सहस्रों कलाकारों और निर्माण कला में कुशल विश्वकर्माओं को सिरतोड मेहनत करते देख घटों ही खड़े विस्मय करते थे ।

वर्ष व्यतीत होते-होते सेठ सुखचन्द्र का स्वप्न साकार हो गया। एक अद्वितीय मन्दिर बन कर तैयार हो गया। भूमि पर खड़ा हो जब कोई इसके कलश की ऊंचाई देखने लगता तो उसके सिर का मुकुट नीचे लुढ़क पड़ता । एक स्वर से लोग कहते थे, "कितना ऊंचा है ? कितना विशाल है ? कितना सुन्दर है ?"

मुख्य मन्दिर के आगे की दीवार खुली थी। इसमें मूर्त्ति स्थापित होनी थी। यह मूर्त्ति तीस हाथ ऊंची विन्ध्याचल से बन कर आ रही थी। इतनी बडी मूर्त्ति को मुख्य आगार में ले जाने के लिये पर्याप्त बड़ा द्वार बनाने के स्थान, आगे का भाग नहीं बनाया गया था। जब वह मूर्त्ति आयी और आगार में ले जायी गयी तो सामने की दीवार निर्माण की गयी । इस दीवार में पन्द्रह हाथ ऊंचा द्वार रखा गया।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को मन्दिर का उद्घाटन और मूर्त्ति में प्राणप्रतिष्ठा का समारोह मनाया जाना था। महर्षि वामदेव स्वयं इस समारोह को संवारने के लिये पधारे। इस बात की सूचना पूर्ण मल्ल राज्य में फैल गयी और लाखों की संख्या में जनता इस उद्घाटन को देखने के लिये पावा में एकत्रित हो गयी। पावा का सोया हुआ नगर सजीव हो उठा। इसके मार्ग और वीथिकायें जनता के आने-जाने से स्पन्दन करने लगीं। दर्शक लोग, मानों स्वप्न से जागे हों, इस मन्दिर की भव्यता को देख विस्मय में अवाक् मुख रह जाते थे ।

गणसभा के कई सदस्य इन्द्रमणि की निन्दा करने लगे थे। उनका कहना था, "आपने इस मन्दिर के बनने की अनुमति देकर, क्षत्रियों का अपमान करवाया है ।"

"कैसे ?" गणपति का प्रश्न था।

आपत्ति करने वालों का कहना था, "एक वैश्य का ऐसा भव्य मन्दिर बनवाना, जिसके समान हमारा पूर्ण राज्य भी अपना सभाभवन नहीं बनवा सकता, हमारा अपमान ही तो है।"

"इसमें मान अपमान की बात नहीं। अपनी विद्वत्ता के लिये भारत भर में विख्यात, महर्षि हमारे नगर में आयेंगे। इससे हमारे नगर की शोभा बढ़ेगी। लाखो लोग राज्य के बाहर से उनके दर्शन के लिये आ रहे हैं और लाखो प्रतिवर्ष इस मन्दिर के दर्शन के लिये आवेगे। इससे हमारे देश की आय बढ़ेगी।"

विरोधी लोग इन युक्तियो पर हसते थे। उनका तो कहना यह था कि क्षत्रिय वश की अयोग्यता सिद्ध हो गयी है और यह एक अपमान-जनक बात है।

इस विरोधी पक्ष का नेतृत्व भी दैवयात कर रहा था। इस बार फिर दैवयात को मल्ल राज्य की ओर से महर्षि को अभिनन्दन पत्र देने के लिये नियुक्त कर दिया। इन्द्रमणि ने गणसभा में यह प्रस्ताव कर दिया, "मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि कल जब महर्षि वामदेव इस नगर में आवें तो उनका अभिनन्दन करने के लिये गणसभा की ओर से दैवयात नेतृत्व करें।" यह प्रस्ताव दैवयात को स्वीकार हो गया। इससे गणसभा ने इस प्रस्ताव को सर्वमत से स्वीकार कर लिया। दैवयात के लिये यह दूसरा अवसर था, जब उसने इन्द्रमणि के प्रस्ताव को स्वीकार किया था। एक बार जब अवन्ति का राजदूत पावा में आया था और दोनों राज्यों में सन्धि की चर्चा चली थी और दूसरी बार अब। अन्यथा दैवयात इन्द्रमणि का विरोध ही करता रहता था।

महर्षि के नगर में आने के दिन इन्द्रमणि दैवयात को अपने रथ पर बैठा कर ले गया और वहां स्वर्ण के थाल में धूप, दीप, फल, फूल, पत्र, नैवेद्य इत्यादि पूजा की सामग्री रख, जा खड़े हुए।

एक ओर क्षत्रिय वर्ग के लोग दैवयात के नेतृत्व में और दूसरी ओर धनिक वर्ग के लोग सेठ सुकचन्द्र के साथ नगर द्वार पर खड़े थे और

महर्षि के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक प्रहर दिन व्यतीत हो जाने पर महर्षि पधारे। दूर उठ रही धूल को देख यह अनुमान लगा लिया गया कि अतिथि आ गये। नगर-द्वार के बाहर एक विशाल मैदान था। यहां बीस सहस्र लोग इस स्वागत-समारोह को देखने के लिये आये हुए थे। इनके अतिरिक्त लाखो लोग द्वार से भगवती के मन्दिर तक मार्ग तट के साथ-साथ खड़े थे।

महर्षि और उनके साथियो के रथ जब समीप आये, तो जनता ने जयघोष किया, "महर्षि वामदेव महाराज की जय हो! जय हो!" लाखों जनों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। ऊंचे स्थानो पर तथा पेड़ो पर चढ़ कर देखने वालो ने पुष्प-वर्षा की। जब रथ द्वार के समीप पहुंचा तो प्रतीक्षा करने वालों ने हाथ खड़ा कर उसको खड़ा कर लिया।

महर्षि हिमवत् श्वेत दाढ़ी, मूछें और जटा धारी थे। इन बालो के देखने वाले अनुमान लगाते थे कि महर्षि एक सौ वर्ष से ऊपर आयु रखते है। इस पर भी उनका ओज और बिना झुर्री का मुखमण्डल, उनको युवा ही प्रकट करता था।

जब रथ खड़ा हुआ तो लोगो ने जहा महर्षि के ओज और सौन्दर्य को देख विस्मय किया, वहा उनके समीप बैठी एक अति सुन्दर युवति को देख आश्चर्य प्रगट किया। सब लोग कानो-कान पूछने लगे, "यह कौन है? महर्षि की धर्मपत्नी है अथवा पुत्री?" इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं जानता था। वह युवति कोई बीस-इक्कीस वर्ष की आयु की अद्वितीय सुन्दरी, महर्षि से कुछ पीछे हट कर पलथी मारे बैठी थी। सिर पर बालो का बड़ा सा जूड़ा, उस पर जूही के फूलो का गजरा, बड़ी-बड़ी आंखें, रक्ताभ अधर, कमल-फूल के समान गुलाबी और कोमल कपोल, दृढ़ चिबुक, लम्बी ग्रीवा, उभरी हुई छाती और पतली कटि सब देखने वालो को मंत्रमुग्ध करने के लिये पर्याप्त थीं।

इस समय सेठ सुखचन्द्र ने आगे बढ़ कर महर्षि के **चरणो में**

शीश झुका दिया। पश्चात् उसने साथ बैठी युवति के चरण स्पर्श किये। तदनन्तर पुष्पमालायें दोनों के गले में डाली।

इस समय दैवयात पूजा की थाली लेकर आगे आया और महर्षि तथा उस युवति की आरती उतारने लगा। जब आरती समाप्त हुई तो वह मन्त्रमुग्ध की भांति युवति को देखता रह गया। उस देवी ने उसको खोया हुआ देख हाथ खड़ा कर आशीर्वाद दिया। इस पर पुनः असंख्य जनता ने महर्षि का जय-जयकार कहा। इस जयघोष को सुन दैवयात को चेतनता हुई और वह पीछे हट गया।

सहस्रों लोग वहां खड़े उस युवति की ओर] एकटक देख रहे थे और वह मृगनयनी अर्धमुंदी आंखों से ही सबको देख रही प्रतीत होती थी।

इस स्वागत के पश्चात् महर्षि की सवारी नगर में प्रविष्ट हुई। महर्षि के रथ के पीछे और भी कई रथ थे, जिनमें महर्षि के शिष्य-शिष्यायें बैठी थीं। लगभग सौ प्राणी थे। इन रथों के पीछे गणपति और अन्य नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों के रथ थे और पीछे सहस्रों जन पैदल महर्षि वामदेव की जय-जयकार करते हुए चल पड़े।

· ३ ·

मन्दिर के सम्मुख, लाखों जनों के गगनभेदी जय-घोष के बीच, सवारी पहुंची। महर्षि और उनके साथ बैठी युवति रथ से उतरे और मन्दिर के चौंतरे पर चढ़ गये। उनके पीछे उनकी शिष्य-शिष्यायें और अन्य मान्य नागरिक जो मंदिर में जाने के लिये आमन्त्रित थे, चौंतरे पर चले गये। इस समय महर्षि ने घूम कर सभाभवन और मन्दिर के भीतर खुले स्थान पर अपार भीड़ को देखा और हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया। पश्चात् वे अपने साथियों और आमन्त्रित अभ्यागतों के साथ मंदिर के भीतर चले गये।

मंदिर में महर्षि पुरोहित बन पश्चिमाभिमुख बैठ गये और सेठ सुखचन्द्र तथा वह देवी जो महर्षि के साथ आयी थी, पूर्वाभिमुख

यजमान बन बैठ गये। इस समय महर्षि ने मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा करने के लिये अग्निहोत्र कराना आरम्भ कर दिया।

पावा के आमन्त्रित नागरिक महर्षि के पीछे बैठे थे। देवयात गणपति इन्द्रमणि के साथ महर्षि के साथियों के पीछे बैठा था। उसने इस विशाल आगार को देखा। इसमें पांच सहस्र लोग बैठ सकते थे। इस आगार की दीवार के साथ आगार के द्वार के सामने भगवती की मूर्ति थी। यह मूर्ति तीस हाथ ऊँची सर्वथा स्वर्ण की बनी हुई, एक नग्न स्त्री की थी। मन्दिर की छत पर लगे छत्र से भेजी सूर्य किरणों द्वारा, यह मूर्ति ज्योतिर्मय हो रही थी। यह इतनी चमक रही थी कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। इससे निकल रहे प्रकाश से पूर्ण आगार जगमगा रहा था और उस आगार की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप में दिखाई दे रही थी।

देवयात ने मूर्ति को देखा और देख कर चकित रह गया। इतना स्वर्ण लगा हुआ था इस मूर्ति में, कि आश्चर्य होता था। वह विचार कर रहा था कि यह कंजूस सुखचन्द्र का स्वर्ण है अथवा मन्त्राधिकारी महर्षि का। इतना स्वर्ण और फिर इतनी सुन्दर बनी हुई मूर्ति! वह चकाचौंध हो, इसको देखता रह गया। आज उसने यह दूसरा चमत्कार देखा था। एक वह युवति थी, जो इस समय सेठ सुखचन्द के पास बैठी थी।

मूर्ति के स्वर्णिल केशों में मणि-माणिक्य जड़े थे। उसके वक्षस्थल पर नील मणि लगी थीं। उसके उदर पर पुखराज थे। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न रत्न जड़े थे। सूर्य की किरणें, इन रत्नों से टकरा कर उस मध्यवर्ती आगार के चारों ओर के आगारों में जा रही थीं। इन आगारों के द्वार इस समय बंद थे और ये किरणें, इन बंद द्वारों पर इन्द्र-धनुष के समान प्रकाश डाल रही थीं।

यह सब कुछ इतना सुन्दर और भव्य था कि अनेकों अन्य दर्शकों की भांति देवयात भी देख-देख कर चकित हो रहा था। इस सब समय

अग्निहोत्र चल रहा था। महर्षि ऊँचे स्वर में, परन्तु स्वर-ताल-लय के साथ, मंत्रोच्चारण कर रहा था और सुखचन्द्र आहुति दे रहा था।

मन्त्र-गान हो रहा था, "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैव तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरगम ज्योतिषा ज्योतिरेकन्तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु।"

यह अग्निहोत्र एक प्रहर भर चलता रहा। दर्शकों को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि ज्यों-ज्यो मन्त्रोच्चारण चलता जाता है और ज्यों-ज्यों अग्निहोत्र की अग्नि घी और सामग्री को आत्मसात् करती जाती है, भगवती की मूर्ति में ज्योति बढती जाती है। इस ज्योति के बढने से उस आगार में तापमान भी बढता जाता है। धीरे-धीरे उष्णता इतनी बढ गयी कि दर्शको के पसीना छूटने लगा। मूर्ति की ओर देखना तो दूर, उसकी ओर से दूर हटने की इच्छा होने लगी।

अत में पूर्णाहुति हुई, "पूर्णात् पूर्णमिव पूर्णमुदच्यते ।"

सब खडे हो गये और अतिम आहुति, "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।" हो गयी। कुण्ड से लपटें उठ कर मूर्ति के मस्तिष्क तक गयीं।

अब महर्षि ने अपनी तान्त्रिक भाषा में मन्त्र पढे, 'ओम श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नम।"

इन मन्त्रों के साथ मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा का कार्यक्रम समाप्त हुआ। इस समय मूर्ति में पुन स्वाभाविक शान्ति आ गयी और पुन मूर्ति का सौन्दर्य देखने योग्य हो गया। महर्षि ने आशीर्वाद दिया, "मा भगवती की अपार कृपा से आज हम इस देश में यह नया प्रयोग कर रहे हैं। सेठ सुखचंद्र इस मदिर के यजमान और देवी कमलायिनी इस मन्दिर की पुरोहितायिन नियुक्त हुई हैं। यह मन्दिर हमारी सरक्षा में है। यह तान्त्रिक मत का प्रतीक हो, ऐसी हमारी भावना है।

"सूर्य, चन्द्र, तारागण और उनमें यह हमारी पृथ्वी, मा भगवती का चमत्कार ही हैं। प्रकृति आदि रूप से लेकर इस वर्तमान रूप में सर्वत्र और सदा विद्यमान रही है। इसके वे सब रूप भी, जो कभी भविष्य में प्रकट होंगे, सदैव और सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान

रहते हैं। इन रूपों को देखने और फिर इनको प्रयोग कर सकने की क्षमता ही मनुष्य की सफलता और सार्थकता है। इसके जानने और करने की क्षमता योग, ध्यान और सिद्धि से प्राप्त होती है। इस सिद्धि का उपयोग अधिक से अधिक जनता को कराने के लिये इस मन्दिर की स्थापना की गयी है। यह अमृत सरोवर आपके मध्य में निर्माण कर दिया गया है। इसका पान करना अब आपके हाथ में है।

"इस मन्दिर पर व्यय किया गया अपार धन मा भगवती की अपनी ही देन है। इसी से यह सब कुछ हमने पाया है और इसी की सेवा में हम यह सब कुछ व्यय कर रहे हैं।

"सब देवता अथवा कहे जाने वाले परमात्मा के रूप, इस प्रकृति के रूप ही है। जैसे सोना और सीसा दोनो प्रकृति के रूप होने पर भी, समान गुण और मूल्य की वस्तुएं नहीं हैं, वैसे ही मनुष्य मनुष्य और देवता देवता में भेद है। राम और रावण में वैसा ही अंतर है, जैसे अमृत और सोमल में।

"प्रकृति के विशेष गुणो का स्वामी बनने के लिये मनुष्य को योग, ध्यान और तपस्या का आश्रय लेना चाहिये। उन्हीं गुणो को प्राप्त करने का अवसर प्रस्तुत करने के लिये इस मन्दिर की संस्थापना की गयी है।

"मैं मा भगवती से प्रार्थना करता हू कि वह अपने अपार गुणों से मल्ल राज्य की जनता को विभूषित करें, जिससे यह निर्धन, साधनहीन देश सुख-समृद्धि से सम्पन्न हो सके।"

इस प्रकार भगवती के मन्दिर की स्थापना पावा में हो गयी।

४ :

दैवयात इस सब समय मंत्रमुग्ध की भांति बैठा देखता रहा। उसको ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसका अपना कुछ भी अस्तित्व नहीं। वह विशाल संसार में एक अति सूक्ष्म कण के समान है। प्राकृतिक

शक्तियों में वह सागर में एक तृण समान भटक रहा है। मन्दिर की भव्यता, मूर्ति का विशाल रूप, कमलायिनी की अद्वितीय सौन्दर्य, मार्तण्ड की किरणो से देदीप्यमान वह विशाल आगार और अन्य सब कुछ उसको अति विस्मयजनक लगा था।

महर्षि ने उद्घाटन किया, प्राणप्रतिष्ठा की और आशीर्वाद दिया। पश्चात् अतिथि इच्छानुकूल भिन्न भिन्न आगारो में चले गये। नगर के आमंत्रित व्यक्ति उठ कर मन्दिर के बाहर जाने लगे। दैवयात भी सबको उठता देख उठा। इस समय उसकी दृष्टि पुन मूर्ति की ओर गई और वह उसके सौन्दर्य को देख स्तब्ध रह गया। वह अभी खडा देख ही रहा था कि आगार रिक्त हो गया। उसको ज्ञान ही नहीं रहा कि वह वहा अकेला रह गया है। एकाएक मन्दिर की छत पर से घडियाल ने तीसरे प्रहर का घटा बजाया। इसको सुन कर उसको चेतनता हुई कि वह भूखा है। वह प्रात काल से इस समारोह में आया हुआ था। वह घूमा और बाहर निकल आया।

मन्दिर के बाहर कुछ लोग अभी भी मन्दिर की भव्यता को देख रहे थे। प्राय सब गण्य-मान्य सदस्य अपने-अपने रथो में सवार होकर, विदा हो चुके थे। वह अपने निवासगृह पर पहुचा तो उसके मित्र बैठे हुए उस दिन के समारोह पर टीका टिप्पणी कर रहे थे। दैवयात उनमें जा बैठा। वह अभी भी मनुष्य की निस्सारता पर विचार कर रहा था। उसके मित्र आलोचना करते रहे।

"वह लडकी महर्षि की स्त्री थी क्या ?" एक ने पूछा।

सब खिलखिला कर हस पडे। एक और ने पूछा, "क्यो भैया दैवयात ! तुम तो उसके समीप बैठे थे। कुछ पता चला कि वह कौन है ?"

दैवयात दीवार के साथ ढासना लगा बैठा था। उसने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वास्तव में वह उनकी बातें सुन ही नहीं रहा था। उसे चुप देख उक्त प्रश्न पूछने वाले ने कहा, "महर्षि आये है और अपने साथ बीसियो युवा सेविकायें लाये है।"

इस पर एक व्यक्ति उज्जयिनी में प्रचलित लिंगायतवाद की व्याख्या करने लगा । वहा की उपासना का उल्लेख कर उसने बताया, "अवन्ति की पटरानी भी इन उपासनाओ में सम्मिलित होती है ।"

"अब वैसे ही व्यभिचार का प्रचार इस देश में करने के लिये यह तरुणियो का दल यहा लाया गया है ।"

"क्यो भैया देवयात ! गणसभा में इसका विरोध करोगे तुम ?"

"मै तो आज महर्षि और उनकी शिष्या कमलायिनी का स्वागत और आरती उतार चुका हू । अब इनकी निन्दा कर, हंसी का पात्र बन जाऊगा ।" देवयात ने सचेत हो कहा ।

"कल तुमको यह कहा विदित था कि यह वेश्याओ का दल महर्षि के साथ आ रहा है ?"

"मित्र ! किसी के विषय में कोई भी निन्दनीय बात बिना प्रमाण कैसे कही जा सकती है ?"

इस बात को देवयात से सुन, सब लोग हसने लगे । वह देवयात से स्त्रियो के लिये इतने आदर के उद्‌गार सुनने की आशा नहीं करते थे । अब वे देवयात पर व्यग कसने लगे । एक ने कहा, "कितना सुन्दर मन्दिर बनवाया है सेठ ने ।"

एक और बोला, "कितनी भव्यमूर्ति है महर्षि महाराज !"

तीसरा बोला, "हा ! और कितनी सुन्दर है महर्षि जी की दासी ?"

"क्या ?" देवयात ने उनके व्यग के भाव को समझ कर कहा । "मित्र चक्रायुध ! तुम समझते हो कि मैं उस लडकी के कारण गणसभा में निन्दा का प्रस्ताव करने से न कर रहा हू ? यह बात नहीं मित्र ! मै अब अनुभव कर रहा हू कि मैंने इन्द्रमणि की इतनी निन्दा की है कि अब मेरे कहने में प्रभाव नहीं रहा । यदि एक ही दिन में, मै किसी की प्रशसा से निन्दा करने लगूं तो लोग क्या कहेंगे ?"

"भैया ! पहिले तो तुमने कभी ऐसी बात नहीं विचार की थी ?"

"मै समझता हू कि अब मुझको बचपन छोड इस जीवन के

उत्तरदायित्व की ओर विचार करना चाहिये ।"

चक्रायुध ने मुख गोल कर कहा, "ओह! समझ गया भैया! क्या आयु हो गयी है तुम्हारी ?"

"हसी छोडो चक्रायुध! पावा में इस मदिर की स्थापना से एक नवीन युग का श्रीगणेश किया गया है । इस युग में हमने अपना उचित स्थान लेना है । यह स्थान इन बचपन की बातों से नहीं मिल सकता। मैंने उज्जयिनी के हृदय के स्पन्दन को देखा है । उसमें तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों को भी देखा है। वहा के नर नारी को स्वच्छदता से जीवन-सघर्ष में अग्रसर होते देखा है। वहा के इस होने वाले परिवर्तन को रोकने का यत्न महाराज पालकदेव ने किया था, परन्तु उनके सब प्रयत्न विफल गये और उनका अपना कहीं पता नहीं चला । मैं यहा का पालकदेव बनना नहीं चाहता। वेग से बहती नदी के बहाव का विरोध कर उसको पार नहीं किया जा सकता। बहाव के साथ-साथ बहना ही बुद्धिमत्ता है ।"

चक्रायुध इस उपदेश को सुन गम्भीर हो बोला, "उज्जयिनी की बात सुना कर हमको चकाचौंध मत करो देवयात! यह मत समझो कि वहा समाज में लगे घुन को हम जानते नहीं । यहा के लोग अपनी बहु-बेटियो को नगी हो रग-मच पर नाचने नहीं देंगे। उज्जयिनी एक सार्वभौमिक नगर है । वहा भाति-भाति की सस्कृतियों में सघर्ष पहिले ही हो रहा था। इस कारण वहा यह सब अनाचार भले ही न अखरता हो, परन्तु इस देश में तो ऐसी बात हो जाने से विप्लव खडा हो जावेगा।"

"तो तुम मुझसे क्या चाहते हो ?"

"यह नग्न स्त्री की मूर्ति जनता में कामुकता बढ़ायेगी। इसको गणसभा की ओर से वर्जित कर देना चाहिये।"

"मित्र! मैं तो समझता हूँ कि इसका प्रभाव तुम्हारे कहने के विपरीत होगा। लोग इस मूर्ति को देख-देख स्त्रियों के सम्पर्क में आने पर उत्तेजित होना भूल जावेगे।"

"और ये स्त्रिया जो इस मदिर में पूजा-पाठ के लिये आयी है, क्या वे सती-साध्वी वन वैठी रहेगी ?"

"विना उनमें कोई खरावी देखे कैसे उनकी निन्दा कर सकता हू ?"

"इसके अर्थ यह हुए कि जव काम विगड जावेगा तव तुम व्यवस्था दिलवाने का यत्न करोगे ! वह आग लगने पर कूआ खोदने की वात होगी।"

"यह आज क्या हो गया है हमारे नेता को ?" एक और वहा वैठे मित्र ने कहा।

देवयात का कहना था, "इसका कारण समझने के लिये भी समय की आवश्यकता है। मैं स्वयं अभी अपने मन के भावो का विश्लेषण नहीं कर सका।"

वात यहीं समाप्त हो गयी। अगले दिन गणसभा में देवयात ने मदिर की भूरि-भूरि प्रशसा की।

देवयात के मित्रो का अनुमान असत्य सिद्ध हुआ। दो मास के पश्चात् ही देवयात का मित्र चक्रायुध देवयात को कमलायिनी के विषय में वता रहा था, "देवी साक्षात् प्रकृति का रूप है। वह अति सुन्दर, स्वच्छ और निष्कलक है। नगर के लोग उसकी प्रशसा करते नहीं थकते।

"सायकाल दो घडी भर मदिर के वाहर चौतरे पर मृगछाला का आसन लगा वह वैठती है। लोग झुंड के झुंड उसके दर्शन करने आते हैं और गद्-गद् हो लौट जाते है।"

"पर मित्र !" देवयात ने पूछा, "दो मास पूर्व तुम कुछ दूसरी वात कहते थे।"

"हा, पर मेरे विचार वदल गये है। सेठ सुखचन्द्र उसको मा कह कर पुकारता है। मदिर के सव निवासी उसको मां भगवती कहते है और उसके तेज के सम्मुख व्याकुल हो उठते है।"

"तो तुम वहां जाने लगे हो ?"

"हा भैया ! वह केवल वीस-इक्कीस वर्ष की लगती है। वहुत

सुन्दर लम्बे बाल है, जो सिर पर कुछ दाहिनी ओर एक बडे से जूडे में बधे रहते है। उन पर जूही के फूलो का गजरा, जिसकी सुगन्ध दूर-दूर तक फैलती रहती है, बधा होता है। मस्तक पर त्रिपुड का चिह्न, गले में रुद्राक्ष की माला और उस पर पाटल पुष्पो की सघन गूंथी हुई मालाए होती है।

"रक्तवर्ण कौशेय साडी और उसी रग की चोली पहिन तो वह साक्षात् दुर्गा दिखाई देती है। लम्बी गर्दन, भरा हुआ लम्बा मुख, गोल नाक, ऊचा मस्तक, मोटी मोटी रसीली आखें, लता समान कोमल भुजाए, उन्नत स्तन, यह कुछ थोडा सा वर्णन है देवी का। बहुत कम बोलती है और जब बोलती है तो रक्ताभ अधरों में मोती की लडी के समान श्वेत दात दिखाई देते है।"

यह सब वर्णन सुन दैवयात में उसको देखने की कामना जाग उठी और उसी सायकाल दैवयात भगवती के मंदिर में जा पहुचा। बहुत से लोग चौतरे पर आ-जा रहे थे। इससे वह भी वहा चौतरे पर चढ गया। मदिर-द्वार के एक ओर, एक ऊचे आसन पर मृगचर्म बिछाये कमला-यिनी बैठी थी। सौ दो सौ भक्त उसके चारों ओर बैठे थे और अन्य लोग आते थे, श्रद्धा से शीश झुका नमस्कार कर चले जाते थे। वह चुप-चाप आखें मूंदे बैठी थी।

कितने ही काल तक दैवयात कमलायिनी के मुख पर देखता रहा। इस सब समय उसका हृदय धक-धक करता रहा। वह सत्य ही अति आकर्षण रखने वाली लडकी थी। दैवयात के मन में इच्छा हुई कि वह उससे एकान्त मे मिल कर, उसके रहस्य को जानने का यत्न करे। वह भक्त जनों के पीछे बैठ गया।

नियमानुसार देवी के उठ कर भीतर जाने का समय हो गया। भक्त-जन उठ खडे हुए और उसके लिये मार्ग छोड एक ओर हो गये। दैवयात भी इस मार्ग के एक ओर खडा हो उसको जाते देखने लगा।

जब कमलायिनी इस मार्ग से जाने लगी तो उसकी आखें भक्त जनों

के पावों की ओर झुकी हुई थी। इस पर भी जब वह देवयात के समीप से निकली तो रुक गयी। उसने देवयात के मुख को देखा और कहा, "भक्त देवयात! आओ। तुम्हारी चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम संशय निवारण करना चाहते हो न?"

देवयात इस बात को सुन कर चकित रह गया। वह समझ नहीं सका कि पुजारिन कैसे उसको और उसके नाम को जानती है। फिर कैसे वह उसके मन की अभिलाषा को समझ गयी है।

"आओ।" यह कह कमलायिनी भीतर चली गयी। जैसे चुम्बक के पीछे लोहा खिंच जाता है, वैसे ही कमलायिनी के पीछे देवयात खिंचा हुआ मंदिर के भीतर चला गया। जिधर वह गयी, उधर ही वह चलता गया। कमलायिनी मूर्ति वाला आगार लांघ कर, मूर्ति के बगल में, एक आगार में चली गयी और देवयात उसके पीछे-पीछे चलता गया।

कमलायिनी वह आगार भी लांघ गयी और उसमें से एक अन्य आगार में चली गयी। देवयात वहां पहुंचा तो इस आगार का द्वार बंद हो गया और वहां घटाटोप अंधेरा हो गया।

देवयात एक दम खड़ा हो गया। वह नहीं जानता था कि आगे मार्ग किधर है? उसको अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह आगार धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्ण छत जगमगा उठी है। देवयात ने देखा कि सामने एक ऊंचे आसन पर पुजारिन विराजमान है। जब पर्याप्त प्रकाश हो गया तो उसने कहा, "देवयात! बैठो।"

वह आसन के समीप नीचे बैठ गया। कमलायिनी ने कहा, "धन्यवाद है भगवती का कि उसने भक्त के मन में शीघ्र ही प्रेरणा कर दी है। उनकी प्रेरणा के बिना यहां कोई नहीं आता।"

"आप मुझको कैसे जानती हैं?"

"इसके जानने की आवश्यकता नहीं। इतना पर्याप्त मानो कि मैं

तुमको जानती हू और यह भी जानती हू कि मल्ल राज्य का भविष्य तुम्हारे साथ सम्बद्ध है । तुमको अपने में विश्वास नहीं। इसी कारण तुम इसके भाग्य के प्रेरक अभी तक नहीं बने ।"

"आत्म-विश्वास कैसे उत्पन्न होगा ?"

"योग, ध्यान और तपस्या से ।"

"कौन दीक्षा देगा मुझको इन बातो की ?"

"भगवती मा देंगी ।"

"आप दीक्षा नहीं देंगी क्या ?"

"मा की प्रेरणा होगी तो मै भी दे सकती हू ।"

"तब तो मै यह कर सकूंगा । वास्तव में भगवती इत्यादि को तो मै कुछ समझता नहीं । मै तो देवी के आकर्षण से खिचा चला आया हू ।"

"वह भी तो मा की ही कृपा है । वे मेरी मा है । उन्होने ही मेरा निर्माण किया है । उनकी दया से ही मै जीवित हू और उनकी कृपा से ही मै कुछ समझ सकी हू ।"

"क्या समझा है आपने ?"

"यह बताने की बात नहीं। वह केवल अनुभव ही किया जा सकता है। तुम यत्न करो, तुम्हें भी अनुभव होगा ।"

"परन्तु मै तो आपको ही समझना चाहता हू ।"

"पूछो, क्या पूछना चाहते हो ?"

"यह सौन्दर्य का भण्डार, जिसकी आप स्वामिनी है, कहा से पाया है आपने ?"

"किस सौन्दर्य की बात करते हो ? इस हाड-चाम के शरीर की अथवा मेरे मन और बुद्धि की ।"

"मै तो इस हाड-चाम की ही बात कर रहा हू । मन-बुद्धि तो दिखाई नहीं देती ।"

"यदि बाहरी सौन्दर्य ही देखना है, तो बाहर आगार में खडी स्वर्ण-मूर्ति को ही देख लो । मुझसे अधिक सुन्दर बनी है ।"

"वह देखी है । बहुत सुन्दर है । परन्तु कितनी देर तक देखूं उसको । वह तो इतनी विचित्र होते हुए भी एकरस, एकरूप है और इसके विपरीत आपको दो घड़ी भर में बीस बार बदलते देखा है और प्रत्येक बार आपको पहिले से अधिक सुन्दर ही देखा है ।"

कमलाथिनी मुस्कराई और पूछने लगी, "भला बताइये । अब कैसी दिखाई देती हूं ?"

"इस समय तो आपमें स्त्री-सुलभ कोमलता विराजमान प्रतीत होती है। इससे पहिले जब आप हाड-चाम के सौन्दर्य की बात कह रही थीं, तब आप तार्किक विद्वान् ही दिखाई देती थीं। उससे भी पहिले जब आप मुझको भीतर आने का आदेश दे रही थीं, तब आपमें स्वामित्व प्रधान दिखाई दिया था। उससे भी पहिले, जब आप बाहर बैठी थीं, तब एक पुजारिन के रूप में थीं।"

"यह सब स्वाभाविक ही है । मैं चेतनावस्था में हूं। मेरे में चित्त होने से अनेक विचारों अथवा कार्यों के साथ मेरा रूप बदलता रहता है। परन्तु यह मेरे बाहरी रूप से सम्बन्ध नहीं रखता ।"

"कुछ भी हो देवी ! नारी में नारीत्व ही सौन्दर्य की खान है ।"

"यह तो है ही। प्रकृति का सतोगुण नारी में अधिक मात्रा में रहने से वह अधिक चेतना की स्वामिनी होती है । यही कारण है कि हमने प्रकृति को साकार दिखाने के लिये नारी का रूप लिया है ।"

"पुरुष तथा स्त्री में आत्मा तो एक समान है न ?"

"हम मनुष्य में आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं मानते। प्रकृति का एक विशेष रूप सात्विक अहंकार है । नारी में वह अधिक मात्रा में रहता है। इसी से वह पुरुष से अधिक कोमल और चेतनायुक्त होती है ।"

"पर आप एक बात बताइये । यह नग्न मूर्ति बना कर और अपने साथ पुजारिनों की एक सेना रख कर, जनता की वासना में वृद्धि नहीं की क्या ?"

"नहीं। नग्न मूर्ति तो स्त्री को देखने का अभ्यास डालती है,

जिससे स्त्री देख कर वासना को उत्तेजना का मिलना कम होगा। आरम्भ मे जो हमारे पास आते हैं, वह प्राय इस मूर्ति को देख कर विचलित हो जाते हैं, परन्तु शीघ्र ही वह मूर्ति तो मूर्ति रही, नग्न नारी को देख कर भी विचलित नहीं होते।

"कभी तुमने ऊचे कलश को बनाने वाले राजगीरो को देखा है ? इतनी ऊचाई पर भी वे निर्भीकता से कार्य करते रहते हैं, मानो वे भूमि पर ही काम कर रहे हों। यह ऊचे स्थानों पर कार्य करने का अभ्यास हो जाने के कारण है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध की बात है। जब कोई स्त्री अथवा पुरुष पहिली बार एक-दूसरे को नग्न देखते हैं, तो देखने का अभ्यास न होने से पथभ्रष्ट हो जाते हैं। इसी बात का अभ्यास कराना सिद्धि का प्रथम चरण है।"

दैवयात इस कथन को युक्तियुक्त मानता हुआ भी सर्वथा सत्य नहीं मानता था। उसको इसके ठीक होने मे सदेह बना रहा। कमलायिनी उसके मन में सशय का आभास पा, मुस्कराई और बोली, "सदेह नहीं मिटा न ? देखो भक्त, जो बात करके देखने की है, वह युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकती। जाओ, भगवती की आराधना करो। वह मन में प्रकाश उत्पन्न करेगी।"

"देवी ! मैं यह करना जानता नहीं। क्या करू ? कैसे करू ? मैं जानना चाहता हू।"

: ५

दैवयात तीस वर्ष की आयु का युवक था। आठ वर्ष से वह गणसभा का सदस्य निर्वाचित हो रहा था और तब से ही उसके मन में यह लालसा थी कि वह गणपति बने। वह अपने को वर्तमान गणपति इन्द्रमणि से अधिक सबल, बुद्धिशील और चतुर मानता था। कभी-कभी तो गण-सभा में इन्द्रमणि की नाक में दम कर दिया करता था। इस पर भी जब गणपति के निर्वाचन का समय आता था, लोग इन्द्रमणि को ही निर्वाचित

करते थे। पिछली बार एक सौ सदस्यों में से चालीस सदस्यों ने देवयात के पक्ष में सम्मति दी थी और साठ ने इन्द्रमणि के पक्ष में। देवयात को बहुत आशा थी, परन्तु अंतिम समय में इन्द्रमणि ने ऐसा चक्र चलाया कि देवयात मुख देखता रह गया।

देवयात के विवाह के लिये कई युवतियों और उनके माता-पिताओं ने यत्न किया था, परन्तु उसकी एक धारणा थी कि गणपति बनने के पीछे ही विवाह करेगा। वह अपना सारा समय लोकसेवा में लगाता रहता था। इससे वह आशा करता था कि आगामी निर्वाचन के समय वह गणपति चुन लिया जावेगा। उसका विचार था कि विवाह हो जाने पर वह अपना पूर्ण समय लोकसेवा में नहीं लगा सकेगा।

वह रहने वाला तो देहात का था, परन्तु जब से गणसभा का सदस्य बना था, वह प्रायः पावा में रहता था। गाव में उसके माता-पिता और भाई-बन्धु रहते थे। उसने पावा में एक मकान बनवा लिया था और उसमें अपने मित्र चक्रायुध और कुछ दल के साथियों के साथ रहता था।

उस दिन देवयात मन्दिर में गया तो सर्वथा अव्यवस्थित-मन हो लौटा। गृह पर सेवक भोजन तैयार कर प्रतीक्षा कर रहा था। चक्रायुध भोजन पर बैठा हुआ था। देवयात भोजनालय में आकर बैठा, तो चक्रायुध ने पूछा, "कहा गये थे भैया?"

"भगवती के मंदिर में। तुम्हारे कथन की परीक्षा करने गया था।"

"सत्य? तो देवी से बात हुई?"

"हां।"

"तो ध्यान लगाने के लिये अभ्यास करने जाओगे?"

देवयात ने आश्चर्य में मित्र के मुख को देखते हुए पूछा, "तो तुम यह भी जानते हो?"

"हां भैया! मैं भी वहां के उपासकों में एक हूं। मैं जो कुछ आज मध्याह्न के समय कह रहा था अपने अनुभव से ही कह रहा था।"

"तो मुझको बताओ क्या होता है वहां ?"

चक्रायुध भोजन करता रहा। वह अपने सामने रखे थाल की की ओर देख रहा था। जब वह कुछ नहीं बोला तो दैवयात ने पूछा, "क्या बताना नहीं चाहते ?"

"यह बात नहीं। वास्तव में अभी बताने को कुछ है ही नहीं। जो कुछ था वह मध्याह्न के समय बता दिया था।"

"उससे तो कुछ भी पता नहीं चला। देखो, एक पृथक् आगार में वह मुझसे मिली थी। हम दोनो अकेले थे। वह बहुत सुन्दर है, इस पर भी मैं कोई ऐसी बात नहीं कर अथवा कह सका, जिससे उसका अनादर होता।"

"दैवयात! उसमें मातृभावना अति प्रबल है। जैसे बालक अपनी मा का अनादर नहीं कर सकता, वैसी ही हमारी उसके सम्मुख गणना है। अब तुम जा रहे हो। स्वयं अनुभव करोगे।"

दोनो मित्र मध्य रात्रि के समय अपने बिस्तर छोड मन्दिर की ओर चले गये। मन्दिर में दोनो भिन्न-भिन्न आगारों में ले जाये गये। प्रात काल जब दैवयात नींद से व्याकुल लौटा तो चक्रायुध अभी नहीं आया था। इस कारण वह अपने बिस्तर में जाकर सो रहा।

एक प्रहर दिन गये पर जागा, तो स्नानादि से निवृत्त हो सीधा भोजन पर जा बैठा। उसे गणसभा में जाना था। गणसभा मे साधारण कार्य ही हुआ। वहा से लौटा तो राज्य-कार्यालय में एक कार्यविशेष से जाना हो गया। वहा का कार्य समाप्त कर घर आया तो उसके गाव के कुछ लोग आये हुए थे। उनकी बातचीत सुनते-सुनते रात के भोजन का समय हो गया। भोजन के पश्चात् वह पिछली रात, कम सो सकने के कारण नींद अनुभव कर रहा था। इस कारण जा कर सो रहा।

इस पर भी वह मध्य रात्रि के समय जाग उठा और उसको उपासना में जाने की बात स्मरण हो आई। वह वस्त्र पहिन जाने लगा तो उसको चक्रायुध की याद आयी। उस दिन उसने उसको

देखा तो था, परन्तु एकान्त न मिलने के कारण वह बात नहीं कर सका था। अब उसकी याद आने पर उसने उसके पलग को देखा तो वह वहां नहीं था। उसको उपासना में गया समझ वह भी मन्दिर को चला गया।

इस प्रकार नियमपूर्वक वह नित्य रात को उपासना में जाने लगा। पहिले कुछ दिन एक उपासिका उसका हाथ पकड कर भगवती की मूर्ति के सम्मुख ले जाकर भगवती की अर्चना कराती थी। इन दिनों कभी कभी इस अर्चना के समय कमलायिनी इस मूर्ति के समीप खडी दिखाई दी। उसे देखते ही उसके मन में व्याकुलता, चचलता और वासना उत्पन्न हो जाती थी, परन्तु इस अवस्था में जब भी कमलायिनी उसकी ओर देखती, वह सर्वथा शान्त हो जाता और उसका चित्त स्थिर हो उपासना में लग जाता था।

कुछ दिन पश्चात् उसको ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह स्वर्ण-मूर्ति हाड और चाम की बनी हुई है। उसकी आखो में सजीवता और अगो में चपलता दिखाई देने लगी। एक दिन देवयात ने मूर्ति की ओर देखा। उसे उसका मुख मुस्कराता हुआ दिखाई दिया। उसने उसके हाथों की ओर देखा। वे उसको आशीर्वाद देते प्रतीत हुए। उसने समझा कि उपासिका, जो उसकी सहायतार्थ वहा रहती है, वह उसको कुछ कह रही है। इससे वह घूम कर उसकी ओर देखने लगा तो उसने देखा कि वह सदा की भाति आंखें मूदे माला फेर रही है और मत्र बोलने से उसके होठ फडक रहे हैं।

देवयात चकित रह गया। वह फुसफुसाहट अभी भी चालू थी। उसने मूर्ति के मुख की ओर देखा। उसके ओष्ठ फडक रहे थे। अब उसने ध्यान लगाकर समझने का यत्न किया। उसको फुसफुसाहट का अर्थ समझ आने लगा। कोई उसके कान में कह रहा था, "देवयात बेटा! समझो और शीघ्र तैयार हो जाओ। देश तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। यह महान् कार्य तुम्हारे हाथ से सम्पन्न होने वाला है। अन्तर्ध्यान हो

विचार करो। समय अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं करेगा।"

यह बात कई वार उसके कान में पड़ी। वह इसका अर्थ समझने में लगा रहा। एक बात उसने अनुभव की कि कई रातें लगातार जागते रहने पर और पहिले से बहुत कम सो सकने पर भी उसके शरीर में थकावट अथवा दुर्बलता नहीं आ रही। इसके विपरीत वह अपने मस्तिष्क को भलीभांति कार्य करता हुआ पाता था।

इस सबसे उसमें आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हो रही थी। कभी उसकी सहयोगिन उपासिका नहीं भी आती थी, तब भी वह उपासना, ध्यान, जप इत्यादि कर सकता था।

इसके पश्चात् उसको पृथक् आगार मे उपासना करने के लिये कहा गया। अकेले में ध्यान करने पर उसमें एक नवीन शक्ति का सचार होने लगा। अब वह गणसभा में जब भी खड़ा हो जाता और बोलता, तो पूर्ण सभा उसकी बात सुनने में चित्त लगाती और प्राय उसकी बात की प्रतिष्ठा करती। इन्द्रमणि की अनेको बातें अस्वीकार हुई। तीन-चार मास में ही देवयात को ऐसा अनुभव होने लगा कि साक्षात् सरस्वती उसकी वाणी में आ विराजमान हुई है और जो कुछ वह कहता है, उसमें रस, युक्ति और प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

पहिले भी वह अपने विचार से बात तो ठीक ही कहता था, परन्तु बोलने के समय अपने भावों को भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता था। परिणाम यह होता था कि उसके कथन के बीच में ही लोग उसको रोक, उसका खडन करने लग जाते थे। अब वह जब अपने विचारो को व्यक्त करता था तो लोग सुनते थे, समझते थे और फिर उसकी युक्ति से प्रभावित हो जाते थे।

इन्द्रमणि यह समझने लगा था कि उसका गणपति पद रह नहीं सकता। वह अपनी ओर से बहुत यत्न करता था कि गणसभा के सदस्य देवयात का कहना न मानें, परन्तु जब देवयात खड़ा होकर, अपनी बात समझाता तो सबके सशय दूर हो जाते और उसका कहना स्वीकृत हो जाता।

एक दिन वह मन्दिर के एक आगार में, उपासना में लीन, आँखें मूँदे बैठा था कि उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि आगार में उसके सामने भगवती की एक छोटी सी मूर्ति खड़ी है और एक भक्त बहुत ही छोटे से आकार में, उस मूर्ति के चरणों में बैठा उपासना कर रहा है। उसने ध्यान से देखा तो उसको भगवती की स्वर्ण-मूर्ति का छोटा रूप ही वह दिखाई दी। वह अभी देख ही रहा था कि यह क्या है कि वह मूर्ति धूँए के समान धुँधली होती प्रतीत हुई। वह धूँए का एक स्तम्भ बन गयी और धीरे-धीरे वह स्तम्भ सामने खड़े भक्त में समा गया।

दैवयात इस चमत्कार को देख चकित रह गया। उसने उस भक्त को ध्यानपूर्वक देखा। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह भक्त उसका अपना ही प्रतिरूप है। वह आश्चर्यान्वित हो अपनी ही मूर्ति की ओर देखने लगा। वह मूर्ति उसके अपने हृदयस्थल में आकर बैठ गयी। वह समझ रहा था कि वह आज पूजा करता हुआ सो गया है और यह एक स्वप्न देख रहा है, परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि उसके सामने कमलायिनी मुस्कराती हुई खड़ी है। वह उससे इस सबका अर्थ समझना चाहता था, परन्तु उसके मुख से बात नहीं निकल रही थी। उसने देखा कि कमलायिनी उसके मन में उठ रहे भावों को समझ, उसको समझाने लगी है। वह कहने लगी है, "मैं भक्त को बधाई देने आयी हूं। मा भगवती की भक्त पर अपार कृपा है। जो बात अन्य लोग वर्षों में नहीं कर पाते, वह भक्त कुछ मास में ही प्राप्त कर सका है।

"आजसे भक्त यह आराधना अपने घर पर ही कर सकता है। यद्यपि यहां आने में उसको मनाई नहीं है, तो भी यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। आगामी निर्वाचन में उसको सफलता मिलेगी और यदि मां की प्रेरणा को वह समझने का यत्न करता रहा तो जहां उसकी अपनी उन्नति होगी, वहां मल्ल राज्य भी धन-धान्य से सम्पन्न होगा।"

दैवयात इस आशीर्वाद से चकित हो कमलायिनी के मुख की ओर देख, उसका धन्यवाद करना चाहता था, परन्तु वह वहां नहीं थी। इसको

वह अपने मस्तिष्क का विकार मान, ठीक करने के लिये पुन: आराधना में लग गया।

अगले दिन जब वह सोकर उठा तो उसको चक्रायुध अपनी शय्या में सोया हुआ मिला। दैवयात ने उसको उठाया। चक्रायुध उठा तो दैवयात को अपने समीप खड़ा देख, विस्मय में पूछने लगा, "क्या बात है भैया?"

दैवयात प्रसन्नवदन उसकी ओर देख रहा था। इससे चक्रायुध बिस्तर से बाहर निकल पूछने लगा, "भैया! मां का सदेश आया है क्या?"

"हां।"

"तुम्हारा विवाह हो रहा है क्या? किससे हो रहा है?"

"तुम से। तुम गधे से। भला इसमें विवाह की कौन बात हो गयी?"

"मुझको ऐसा स्वप्न आ रहा था कि तुम्हारा कमलायिनी से विवाह हो रहा है।"

"चुप! ऐसी बात मुख से मत निकालो। उससे कोई मनुष्य विवाह नहीं कर सकता। उसका तेज सहन करने की शक्ति किसी में नहीं है।"

"तो फिर इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो?"

"यह तो मैं नहीं जानता। मैंने तो तुमको इसलिये जगाया है कि कई मास व्यतीत हो गये हैं और हमने अपने मन्दिर के अनुभव एक-दूसरे को बताये नहीं। दिन भर तो अवकाश मिलता नहीं। इस कारण आज घड़ी भर, इस समय बातचीत करना ठीक नहीं क्या?"

"क्या कोई नवीन बात हुई है?"

"हां। जब पिछली बार तुमसे बात हुई थी कि मां भगवती ने तुमको वर मांगने के लिये कहा था। तुमने वर मांगा था कि तुम्हारा विवाह उस उपासिका से हो जावे, जो तुम्हारी आराधना में तुम्हारी सहायता करती है। पश्चात् तुमने कुछ नहीं बताया।"

"हां दादा! बहुत भद्द हुई मेरी। तुम मेरे परम मित्र हो, इस कारण

तुमको बताता हूं। किसी से कहना नहीं। सब मेरी हंसी उड़ायेंगे। जब मैंने यह वर मांगा तो मां ने कहा, 'भक्त विचार कर लो। कल तक का अवसर दिया जाता है।' अगली रात पुनः मूर्ति सजीव हो उठी और पूछने लगी, 'क्या वर चाहते हो?' मैंने वही कहा, 'मेरी उपासना में सहायक मेरी सहवासिन हो।' मां भगवती हंस पड़ी और कहा, 'स्वीकार है।'

"वसुधा, वह उपासिका, मेरे समीप बैठी, विस्मय में मेरे मुख की ओर देखने लगी। मैंने उससे पूछा, 'क्या बात है वसुधा?'

'आपकी बुद्धि पर विस्मय होता है।'

'क्यों?'

'क्या देखा है आपने मुझमें?'

'स्वर्ग-सुख।'

"वह खिलखिला कर हंस पड़ी। मैंने उसका हाथ पकड़ कर अपनी छाती से लगाया। उसने न नहीं की। मैं उसको पकड़ कर, मन्दिर के दूसरे आगार में ले गया। वह चली गयी। परन्तु भैया वह स्त्री तो थी ही नहीं। वह एक युवा पुरुष सिद्ध हुई। मैं तुरत ही आगार से बाहर निकल कर आ गया और कई दिनों तक मन्दिर नहीं गया।

"कुछ दिन हुए मुझको मां भगवती स्वप्न में दिखाई दी। मैंने पूछा, "मां! यह क्या मुझसे तुमने हंसी की है?"

"मां का उत्तर था, 'जो तुमने मांगा वही पाया। मांगने से पूर्व तुमने यह जानने का भी यत्न नहीं किया कि तुम मांग क्या रहे हो? अपनी उपासना में मायिन के विषय में जानकारी प्राप्त किये बिना, तुमने उससे विवाह मांग लिया। जाओ, अपनी मूर्खता के लिये पश्चात्ताप करो। अपनी उतावली के लिये प्रायश्चित्त करो। तुमको मन-वांछित फल मिलेगा।"

"मैंने अपनी भूल मानी और अब मैं फिर उपासना करने लगा हूं। विस्मय की बात यह है कि वसुधा अब भी मेरी सहायता करती है।"

"तो तुमने उससे पूछा नहीं, कि वह स्त्री वेष में क्यों रहती है?"

"पूछा था। उसने बताया है कि उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह स्त्री हो जावे। इस कारण कमलायिनी के कहने पर वह इस वेष में रहती है और उसकी चिकित्सा कर उसको स्त्री बनाने का यत्न किया जा रहा है। मा भगवती की कृपा हुई तो वह स्त्री हो जावेगी और तब वह मुझसे विवाह कर लेगी।"

"पर वह स्त्री बनना क्यों चाहती है ?"

"उसके मन मे यह बात बैठ गयी है कि नारी में सतो-गुण अधिक होता है। इससे वह पुरुष से श्रेष्ठ है। वह अपने विचार से एक निकृष्ट योनि से श्रेष्ठ योनि मे जा रही है।"

· ६ ·

दैवयात की ख्याति दिन प्रति दिन बढने लगी। जब तक निर्वाचनो का समय आया, देश मे उसकी धूम मचने लगी। निर्वाचनो के पूर्व वह मन्दिर मे गया और भगवती के सम्मुख खडा हो प्रार्थना करने लगा। यह दिन का समय था और पूजा करने वाले तथा दर्शक आ-जा रहे थे। इस पर भी दैवयात मूर्ति के सम्मुख खडा आराधना कर रहा था। वह भगवती से कुछ सकेत पाना चाहता था।

इस प्रकार एक प्रहर से अधिक बीत गया और कुछ भी सकेत नहीं मिला। निराश हो वह जाने के लिये द्वार की ओर घूमा, तो उसको अपने पीछे कमलायिनी खडी दिखायी दी। उसने दैवयात को उदास देखा और कहा, "भक्त! उदास क्यो हो ? अपने कार्य में लग जाओ। तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी।"

"मैं मा से कुछ सकेत पाने के लिये आया था।"

"जब मा, स्वय तुममें सूक्ष्म रूप धारण कर समा गयी है, तो यह सकेत तो तुम्हारे में स्वय उत्पन्न होना चाहिये। तुमको कोई परास्त नहीं कर सकता।"

"सत्य कहती है, देवी ?"

"मैं यहीं देख रही हूं।"

दैवयात अति प्रसन्न हो मन्दिर से निकला और अपना रथ ले, पूर्ण देश में घूम गया। जहां-जहां वह गया, उसका स्वागत किया गया। उसको पुष्प-मालाओं से सुशोभित किया गया, उसकी पूजा हुई और उसकी स्थान-स्थान पर आरती उतारी गयी। परिणाम यह हुआ कि दैवयात के पक्ष वालों की भारी विजय हुई और दैवयात गणपति निर्वाचित होगया।

निर्वाचन के पश्चात् दैवयात गणसभा-भवन से निकला तो नगर की पूर्ण जनता को अपने स्वागत के लिये देख भगवती देवी के लिये श्रद्धा और भक्ति से भर गया। वह सभाभवन की सीढ़ियों से उतरा, तो जनता ने उसको कंधों पर उठा लिया और उसकी जय-जयकार करने लगी। लोग उसको नगर भर में घुमाना चाहते थे। उसने इसके लिये जाने से पूर्व, मन्दिर में जा भगवती की चरण-रज मस्तक पर चढ़ाई। उस समय कमलायिनी भगवती की मूर्ति के पास खड़ी थी। दैवयात ने उसको भी हाथ जोड़ नमस्कार किया। उसने यथावत् कह दिया, "तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

गणसभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। इन्द्रमणि गणसभा का सदस्य तो था, परन्तु वह सभा में उपस्थित नहीं था। उसको अपनी पराजय पर भारी शोक हुआ था और वह मन बहलाने के लिये तीर्थाटन के लिये चला गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दैवयात के प्रस्ताव बिना विरोध के स्वीकार होने लगे।

कई सौ वर्ष के पश्चात् मल्ल राज्य में एक वैश्य, सेठ सुखचन्द्र, अर्थमंत्री नियुक्त हुआ। दैवयात की देश को उन्नत करने की योजनाएं बिना धन के चल नहीं सकती थीं। इसके लिये सुखचन्द्र को अर्थमंत्री बनाना अनिवार्य हो गया। दैवयात का विचार था कि जो मन्दिर के लिये इतना धन पैदा कर सकता है, वह राज्य के कार्यों के लिये भी धन लाने का उपाय बता सकेगा।

"पूछा था। उसने बताया है कि उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह स्त्री हो जावे। इस कारण कमलायिनी के कहने पर वह इस वेष में रहती है और उसकी चिकित्सा कर उसको स्त्री बनाने का यत्न किया जा रहा है। मा भगवती की कृपा हुई तो वह स्त्री हो जावेगी और तब वह मुझसे विवाह कर लेगी।"

"पर वह स्त्री बनना क्यों चाहती है ?"

"उसके मन मे यह बात बैठ गयी है कि नारी में सतो-गुण अधिक होता है। इससे वह पुरुष से श्रेष्ठ है। वह अपने विचार से एक निकृष्ट योनि से श्रेष्ठ योनि मे जा रही है।"

· ६ ·

देवयात की ख्याति दिन प्रति दिन बढने लगी। जब तक निर्वाचनों का समय आया, देश में उसकी धूम मचने लगी। निर्वाचनो के पूर्व वह मन्दिर में गया और भगवती के सम्मुख खडा हो प्रार्थना करने लगा। यह दिन का समय था और पूजा करने वाले तथा दर्शक आ-जा रहे थे। इस पर भी देवयात मूर्ति के सम्मुख खडा आराधना कर रहा था। वह भगवती से कुछ संकेत पाना चाहता था।

इस प्रकार एक प्रहर से अधिक बीत गया और कुछ भी संकेत नहीं मिला। निराश हो वह जाने के लिये द्वार की ओर घूमा, तो उसको अपने पीछे कमलायिनी खडी दिखायी दी। उसने देवयात को उदास देखा और कहा, "भक्त! उदास क्यों हो ? अपने कार्य में लग जाओ। तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी।"

"मैं मा से कुछ संकेत पाने के लिये आया था।"

"जब मा, स्वयं तुममे सूक्ष्म रूप धारण कर समा गयी हैं, तो यह संकेत तो तुम्हारे में स्वयं उत्पन्न होना चाहिये। तुमको कोई परास्त नहीं कर सकता।"

"सत्य कहती है, देवी ?"

"मैं यही देख रही हूं।"

दैवयात अति प्रसन्न हो मन्दिर से निकला और अपना रथ ले, पूर्ण देश में घूम गया। जहा-जहा वह गया, उसका स्वागत किया गया। उसको पुष्प-मालाओ से सुशोभित किया गया, उसकी पूजा हुई और उसकी स्थान-स्थान पर आरती उतारी गयी। परिणाम यह हुआ कि दैवयात के पक्ष वालों की भारी विजय हुई और दैवयात गणपति निर्वाचित होगया।

निर्वाचन के पश्चात् दैवयात गणसभा-भवन से निकला तो नगर की पूर्ण जनता को अपने स्वागत के लिये देख भगवती देवी के लिये श्रद्धा और भक्ति से भर गया। वह सभाभवन की सीढियो से उतरा, तो जनता ने उसको कधो पर उठा लिया और उसकी जय-जयकार करने लगी। लोग उसको नगर भर में घुमाना चाहते थे। उसने इसके लिये जाने से पूर्व, मन्दिर में जा भगवती की चरण-रज मस्तक पर चढाई। उस समय कमलायिनी भगवती की मूर्ति के पास खडी थी। दैवयात ने उसको भी हाथ जोड नमस्कार किया। उसने यथावत् कह दिया, "तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

गणसभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। इन्द्रमणि गणसभा का सदस्य तो था, परन्तु वह सभा में उपस्थित नहीं था। उसको अपनी पराजय पर भारी शोक हुआ था और वह मन वहलाने के लिये तीर्थाटन के लिये चला गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दैवयात के प्रस्ताव विना विरोध के स्वीकार होने लगे।

कई सौ वर्ष के पश्चात् मल्ल राज्य में एक वैश्य, सेठ सुखचन्द्र, अर्थमंत्री नियुक्त हुआ। दैवयात की देश को उन्नत करने की योजनाएं विना धन के चल नहीं सकती थीं। इनके लिये सुखचन्द्र को अर्थमंत्री बनाना अनिवार्य हो गया। दैवयात का विचार था कि जो मन्दिर के लिये इतना धन पैदा कर सकता है, वह राज्य के कार्यों के लिये भी धन लाने का उपाय वता सकेगा।

यह विचार था कि विन्ध्याचल में निर्वन्ध्या नदी पर बाध बाधा जाये,

"पूछा था । उसने बताया है कि उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह स्त्री हो जावे। इस कारण कमलायिनी के कहने पर वह इस वेष में रहती है और उसकी चिकित्सा कर उसको स्त्री बनाने का यत्न किया जा रहा है। मा भगवती की कृपा हुई तो वह स्त्री हो जावेगी और तब वह मुझसे विवाह कर लेगी।"

"पर वह स्त्री बनना क्यों चाहती है ?"

"उसके मन में यह बात बैठ गयी है कि नारी में सतो-गुण अधिक होता है । इससे वह पुरुष से श्रेष्ठ है । वह अपने विचार से एक निकृष्ट योनि से श्रेष्ठ योनि में जा रही है ।"

· ६ ·

दैवयात की ख्याति दिन प्रति दिन बढने लगी। जब तक निर्वाचनो का समय आया, देश में उसकी धूम मचने लगी। निर्वाचनो के पूर्व वह मन्दिर में गया और भगवती के सम्मुख खडा हो प्रार्थना करने लगा। यह दिन का समय था और पूजा करने वाले तथा दर्शक आ-जा रहे थे। इस पर भी दैवयात मूर्ति के सामने खडा आराधना कर रहा था। वह भगवती से कुछ सकेत पाना चाहता था।

इस प्रकार एक प्रहर से अधिक बीत गया और कुछ भी सकेत नहीं मिला। निराश हो वह जाने के लिये द्वार की ओर घूमा, तो उसको अपने पीछे कमलायिनी खडी दिखायी दी। उसने दैवयात को उदास देखा और कहा, "भक्त ! उदास क्यो हो ? अपने कार्य में लग जाओ । तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी। "

"मै मा से कुछ सकेत पाने के लिये आया था।"

"जब मा, स्वय तुममें सूक्ष्म रूप धारण कर समा गयी है, तो यह सकेत तो तुम्हारे में स्वय उत्पन्न होना चाहिये । तुमको कोई परास्त नहीं कर सकता ।"

"सत्य कहती है, देवी ?"

"मैं यहीं देख रही हूं।"

दैवयात अति प्रसन्न हो मन्दिर से निकला और अपना रथ ले, पूर्ण देश में घूम गया। जहा-जहां वह गया, उसका स्वागत किया गया। उसको पुष्प-मालाओं से सुशोभित किया गया, उसकी पूजा हुई और उसकी स्थान-स्थान पर आरती उतारी गयी। परिणाम यह हुआ कि दैवयात के पक्ष वालों की भारी विजय हुई और दैवयात गणपति निर्वाचित होगया।

निर्वाचन के पश्चात् दैवयात गणसभा-भवन से निकला तो नगर की पूर्ण जनता को अपने स्वागत के लिये देख भगवती देवी के लिये श्रद्धा और भक्ति से भर गया। वह सभाभवन की सीढियों से उतरा, तो जनता ने उसको कंधो पर उठा लिया और उसकी जय-जयकार करने लगी। लोग उसको नगर भर में घुमाना चाहते थे। उसने इसके लिये जाने से पूर्व, मन्दिर में जा भगवती की चरण-रज मस्तक पर चढ़ाई। उस समय कमलायिनी भगवती की मूर्ति के पास खडी थी। दैवयात ने उसको भी हाथ जोड नमस्कार किया। उसने यथावत् कह दिया, "तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

गणसभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। इन्द्रमणि गणसभा का सदस्य तो था, परन्तु वह सभा में उपस्थित नहीं था। उसको अपनी पराजय पर भारी शोक हुआ था और वह मन बहलाने के लिये तीर्थाटन के लिये चला गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दैवयात के प्रस्ताव बिना विरोध के स्वीकार होने लगे।

कई सौ वर्ष के पश्चात् मल्ल राज्य में एक वैश्य, सेठ सुखचन्द्र, अर्थमंत्री नियुक्त हुआ। दैवयात की देश को उन्नत करने की योजनाएं बिना धन के चल नहीं सकती थीं। इसके लिये सुखचन्द्र को अर्थमन्त्री बनाना अनिवार्य हो गया। दैवयात का विचार था कि जो मन्दिर के लिये इतना धन पैदा कर सकता है, वह राज्य के कार्यों के लिये भी धन लाने का उपाय बता सकेगा।

यह विचार था कि विन्ध्याचल में निर्विन्ध्या नदी पर बांध बांधा जाये,

तो मल्ल राज्य की बहुत सी भूमि उपजाऊ हो सकती है। अस्तु, बांध लगाने के लिए विश्वकर्मा बुलाये गये और उनके कहने के अनुसार गणसभा में योजना उपस्थित की गयी। इस योजना के लिये दस कोटि स्वर्ण की आवश्यकता थी। जब गणसभा में इस धन के आने के स्रोत के विषय में पूछा गया, तो सेठ सुखचन्द्र ने कह दिया कि कौशाम्बी के सेठो से ऋण लिया जायेगा। इस पर भारी हल्ला हुआ, परन्तु देवयात के समझाने पर, कि एक बार यह बाध बन गया, तो इतना धन तो पाच वर्ष में कर के रूप में प्राप्त हो जावेगा, यह योजना स्वीकार हो गयी।

इस पर भी इस धन का प्रबन्ध नहीं हो सका। मल्ल की लडाकेपन की ख्याति थी। कोई भी महाजन मल्ल राज्य में अपना धन लगाना नहीं चाहता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब धन का प्रबन्ध न हो सका तो देवयात अधीर हो उठा। जब गणसभा में धन के विषय में बार-बार प्रश्न होने लगे और देवयात कुछ उत्तर नहीं दे सका तो वह सेठ सुखचन्द्र के घर पर पहुचा और इस विषय में विचार-विनिमय करने लगा। सेठ ने सुझाव दिया कि वह मा भगवती से मागे।

"मां भगवती से ?" विस्मय करते हुए देवयात ने सेठ जी से पूछा।

"हा। मै समझता हू कि वे आपको निराश नहीं करेंगी।"

"पर उनके पास धन आयेगा कहा से ?"

"जहा से उनके पास मदिर के लिये आया था।"

"यही तो पूछ रहा हू कि उनके पास धन आता कहा से है ?"

"यह उनसे ही पूछ लीजियेगा।"

देवयात आश्चर्य में डूबा हुआ मन्दिर में जा पहुचा और मां की मूर्ति के सम्मुख हाथ जोड निवेदन करने लगा। उसका कहना था, "मा ! जब तुमने करने को कार्य दिया है, तो उस कार्य के लिये साधन भी दो। साधनहीन मनुष्य को कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंप देना अन्याय हो जावेगा, मा !"

उसने अधीर हो मा की ओर देखने के लिये आखें खोलीं तो उसको मदा

की भांति कमलायिनी मां के चरणों में खड़ी दिखाई दी। पूर्व इसके कि दैवयात कुछ कहे कमलायिनी ने कहा, "कितना धन चाहते हो?"

दैवयात के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। वह समझ नहीं सका कि वह कैसे जान गई है कि वह धन मांगने आया है। इस पर भी उसने यह बताने के लिये कि वह, अपने निजी काम के लिये धन नहीं चाहता, उसने कहना आरम्भ किया, "निर्धन प्रजा के पालन के लिये निर्वन्ध्या पर... ....।"

कमलायिनी ने हाथ खड़ा कर उसको कहने से रोक कर कहा, "हम सब कुछ जानते हैं। हमारा प्रश्न है कितना चाहिये?"

"दस कोटि स्वर्ण लग जायेगा।"

"बस?"

"हां देवी!"

"मिल जावेगा।"

दैवयात कमलायिनी को यह इतनी सरलता से कहते देख विस्मय में डूब गया। वह उसकी ओर मुख देखता रह गया। कमलायिनी समझ गयी कि उसको विश्वास नहीं हो रहा। इस कारण उसने कहा, "विश्वास नहीं आता न?" कल सायंकाल बैल-गाड़ियां भेज, धन लाद कर ले जाना।"

दैवयात अभी भी आश्चर्य कर रहा था। कमलायिनी कह कर भीतर जाने वाली थी कि उसने धन्यवाद कर दिया। देवी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

सेठ ने जब यह वृत्तान्त सुना तो प्रसन्नता से उठ कर नाचने लगा। दैवयात ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "सेठ जी! क्या हुआ है? अभी तो वचन मात्र ही है।"

"दैवयात जी! यह वचन व्यर्थ नहीं जायेगा। मैं देवी जी को जानता हूं। उन्होंने आधी घड़ी में मन्दिर के लिये धन का ढेर लगा दिया था।"

"देवी जी ने कहा है कि कल सायंकाल धन मिलेगा। कल गणसभा में मुझको यह आश्वासन देना है कि धन मिल जायगा।"

"देखिये गणपति महोदय! धन तो मिल गया समझिये। वह योजना पूर्ण कराने के लिये कार्य किस प्रकार करना होगा, विचार करने की बात रह गई है।"

देवयात के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब अगले दिन एकाएक इन्द्रमणि ने गणसभा में उपस्थित हो, इस बाध का विरोध करना आरम्भ कर दिया। उसका कहना था कि इसके लिये इतना धन ऋण लेना पड़ेगा कि देश एक सौ वर्ष तक उऋण नहीं हो सकेगा। इन्द्रमणि को आया देख कुछ अन्य सदस्य भी उत्साहित हो इस योजना का विरोध करने लगे।

देवयात ने उत्तर में कहा, "इस बाध के बन जाने से नदी अपने राज्य में बहने लगेगी। इससे देश की दस सहस्र वर्ग की भूमि हरी-भरी हो जावेगी। इतनी भूमि में जो उपज होगी उसका मूल्य, प्रतिवर्ष दस-कोटि स्वर्ण से कम नहीं होगा। इससे भूमि-कर एक कोटि स्वर्ण मिल सकेगा। इस प्रकार हम जो कुछ व्यय करेंगे वह दस वर्ष में प्राप्त कर लेंगे। इसके अतिरिक्त हमारे भूमिपति धन-धान्य सम्पन्न हो जावेंगे।"

इस पर इन्द्रमणि ने बात बीच में ही काट कर कहा, "प्रश्न तो यह है कि यह धन आयेगा कहां से?"

"यह धन हमको भगवती की पुजारिन देवी कमलायिनी देंगी। वह धन आज सायंकाल तक हमको मिल जावेगा।"

"मैं इसका घोर विरोध करता हूं। इसके साथ ही एक रहस्य की बात बताता हूं। भगवती के मंदिर की पुजारिन, अवन्ति के महाराज कुमार-देव की क्रीतदासी, किरण है और वह यह धन अवन्ति से ला कर दे रही है। इस प्रकार हमारे गणपति देवयात महोदय अपने देश को दस कोटि स्वर्ण पर अवन्ति के पास बेच रहे हैं।"

देवयात ने इस बात को असत्य सिद्ध करने के लिये कहा, "यह कमला-यिनी किसी की क्रीतदासी है अथवा कुछ और, इससे मेरा कोई सम्बन्ध

नहीं। मैं इस स्वर्ण के लिये किसी प्रकार का उत्तरदायित्व देश पर नहीं डाल रहा। देश को किसी प्रकार का सूद इस धन पर नहीं देना पड़ेगा। धन भी जब हमारे पास होगा हम देंगे।"

"हमको इस बात का विश्वास नहीं।"

"जब धन आवेगा, श्री इन्द्रमणि स्वयं देख सकते हैं कि किसी प्रकार का बंधन हम पर नहीं होगा।"

इसके पश्चात् मत ले लिया गया और इन्द्रमणि के बहुत कहने-सुनने पर भी दैवयात की बात बहुमत से मान ली गयी।

: ७ :

उस सायंकाल भगवती के मन्दिर से बैल-गाड़ियों पर लाद-लाद कर स्वर्ण गणसभा-भवन के भूगर्भ आगारों में लाकर रख दिया गया। इन्द्रमणि का दैवयात को नीचा दिखाने का प्रयास सर्वथा विफल गया। वह गणसभा-भवन के बाहर खड़ा धन लाया जाता देखता रहा। उसने कई थैले खोल कर देखे भी और उनमें चमचमाते सोने के टुकड़े देख, निराश हो अपने घर लौट आया।

घर पर एक व्यक्ति उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह व्यक्ति काशी के महापंडित नाकेश का सुपुत्र श्वेतांग था। इन्द्रमणि देशाटन के लिये चला गया था। वहां से लौटा तो काशी में श्वेतांग उसको मिल गया। श्वेतांग को अवन्ति से वचनानुसार 'वार्षिक' मिल रहा था। इस कारण वह मल्ल राज्य में आना नहीं चाहता था, परन्तु इन्द्रमणि ने ऐसी आशायें दिलायीं कि वह गुप्त रूप में उसके पथ-प्रदर्शन के लिये चला आया। पावा में आने के दूसरे दिन ही उसने भगवती के मन्दिर की पुजारिन को चौतरे पर बैठे, भक्तों को दर्शन देते देख लिया और उसने ही किरण को पहिचान इन्द्रमणि को सुझाव दिया था, जिसके अनुसार इन्द्रमणि ने गणसभा में बांध का विरोध किया था।

जब इन्द्रमणि आया तो उसने पूछा, "क्या हुआ है ठाकुर महोदय ?"

"सब चौपट हो गया है। भगवती के मन्दिर से धन दिया जा रहा है। बिना लिखत-पढत के यह धन मिला है और इसका कोई सूद नहीं देना पडेगा।"

"भगवती के मन्दिर मे इतना धन आया कहां से ?"

"यह मै नहीं जान सका।"

"यही तो जानना आवश्यक है।"

"मै भोजन से निवृत्त होकर उस मन्दिर मे जाऊगा और यदि सम्भव हुआ तो इस बात को जानने का यत्न करूगा।"

"मै भी तनिक उस मन्दिर को देखना चाहता हू। वह मन्दिर है अथवा कुबेर का धनकोष ? दस कोटि स्वर्ण निकाल कर निस्सकोच दे दिया ! अति आश्चर्य की बात है। इस समय भरत-खण्ड में केवल दो राज्य हैं, जो इतना धन निस्सकोच दे सकते हैं—एक मगध राज्य है और दूसरा अवन्ति। इन दोनो में से किसी के साथ इस मन्दिर का सम्बन्ध अवश्य है। यह पुजारिन तो अवन्ति के साथ ही सम्बन्ध रख सकती है।"

"सभव है कि इस मन्दिर के द्वारा अवन्ति इस राज्य में कोई षड्यन्त्र करना चाहता हो। इसका पता कर हमको अपना कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिये।"

सायकाल इद्रमणि और श्वेताग मन्दिर में पहुचे। उस समय कमलायिनी चौतरे से उठ भीतर अपने आगार में जा चुकी थी। इन्द्रमणि की सूचना मिलने पर वह पुन मूर्ति वाले आगार मे लौट आयी और भूतपूर्व गणपति को बुला भेजा। वह स्वय मूर्ति के चरणो में खडी उनकी प्रतीक्षा करने लगी। श्वेताग मूर्ति के आगार को किसी अदृश्य स्थान से आरहे प्रकाश से जगमग करते देख चकित रह गया। उसने अपने सामने स्वर्ण की एक विशालकाय मूर्ति देखी और मन्दिर की धनाढ्यता पर विस्मय करने लगा। मूर्ति की भव्यता के साथ-साथ किरण के सौन्दर्य को, जो पहिले से सैकडो गुणा अधिक हो गया था, देख रहा था। श्वेताग कभी किरण को देखता था और कभी भगवती की मूर्ति को। उसको इस प्रकार

अवाक् अपनी ओर देखते रहने पर, किरण उनके आने का प्रयोजन जानने के लिये बोली, "ठाकुर! कहा पा गये हैं इस धूर्त को आप ?"

"तो देवी इनको जानती हैं ? ये महापंडित नाकेश के सुपुत्र महापंडित श्वेताग हैं। मेरे मित्र हैं। देश-भ्रमण के लिये आये थे। मेरे घर पर ही ठहरे हैं।"

कमलायिनी ने आवेश में कहा, "जहा ये जाते हैं वहा अपने साथ घोर अधकार लिये जाते हैं। आप नहीं जानते कि ये अवन्ति के महामात्य थे और जितना घोर अन्याय, अत्याचार, अनाचार इनके महामात्य-काल में वहां चला था, वह अवर्णनीय है।"

श्वेताग ने इस आलोचना पर चटपटा कर, अपना मुख खोला, "और श्रीमती जी कुमारदेव के रणवास से भागी हुई एक क्रीतदासी हैं। अब पुजारिन बन शायद कुमारदेव के लिये गुप्तचर का कार्य करती हैं। क्या जाने जो धन आज श्रीमती जी ने मल्ल राज्य को दिया है, वह अवन्ति के हाथ, इस राज्य को वेचने के लिये ही है।"

"तो ठाकुर! इस अपने मित्र की वात पर न्यायालय में अभियोग चला दो। यदि मैं दोषी हूंगी तो दंड पा जाऊंगी।"

"जनता के वडे न्यायालय में अपना अभियोग उपस्थित करने जा रहा हूं। अब तुम भाग कर, यहां से जाना चाहो तो रात-रात में भाग जाओ। कल तुम्हारे लिये जाना कठिन हो जायेगा।"

"अच्छी वात है। जनता ही इस वात का निर्णय करेगी कि यह तुम्हारा मित्र धूर्त्त है अथवा सत्यवादी। अब जाओ। विश्वास रखो कि मैं यहां हू और भाग कर नहीं जा रही। मां भगवती इसको भस्म किये विना नहीं छोड़ेंगी।"

"भगवती? यह स्वर्ण की मूर्ति? यह इस राज्य के कोष की वृद्धि में काम आयेगी।" श्वेताग ने मुस्कराते हुए कहा, "पंडित भूदेव का यह षड्यंत्र यहां चल नहीं सकेगा।"

"अब तुम जा सकते हो। मा भगवती परीक्षा लेना चाहती हैं,

"सब चौपट हो गया है। भगवती के मन्दिर से धन दिया जा रहा है। बिना लिखत-पढ़त के यह धन मिला है और इसका कोई सूद नहीं देना पड़ेगा।"

"भगवती के मन्दिर में इतना धन आया कहां से?"

"यह मैं नहीं जान सका।"

"यही तो जानना आवश्यक है।"

"मैं भोजन से निवृत्त होकर उस मन्दिर में जाऊंगा और यदि सम्भव हुआ तो इस बात को जानने का यत्न करूंगा।"

"मैं भी तनिक उस मन्दिर को देखना चाहता हूं। यह मन्दिर है अथवा कुबेर का धनकोष? दस कोटि स्वर्ण निकाल कर निस्संकोच दे दिया! अति आश्चर्य की बात है। इस समय भरत-खण्ड में केवल दो राज्य हैं, जो इतना धन निस्संकोच दे सकते हैं—एक मगध राज्य है और दूसरा अवन्ति। इन दोनों में से किसी के साथ इस मन्दिर का सम्बन्ध अवश्य है। यह पुजारिन तो अवन्ति के साथ ही सम्बन्ध रख सकती है।"

"सम्भव है कि इस मन्दिर के द्वारा अवन्ति इस राज्य में कोई षड्यन्त्र करना चाहता हो। इसका पता कर हमको अपना कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिये।"

सायंकाल इन्द्रमणि और श्वेतांग मन्दिर में पहुंचे। उस समय कमलामिनी चौंतरे से उठ भीतर अपने आगार में जा चुकी थी। इन्द्रमणि की सूचना मिलने पर वह पुनः मूर्ति वाले आगार में लौट आयी और भूतपूर्व गणपति को बुला भेजा। वह स्वयं मूर्ति के चरणों में खड़ी उनकी प्रतीक्षा करने लगी। श्वेतांग मूर्ति के आगार को किसी अदृश्य स्थान से आरहे प्रकाश से जगमग करते देख चकित रह गया। उसने अपने सामने स्वर्ण की एक विशालकाय मूर्ति देखी और मन्दिर की धनाढ्यता पर विस्मय करने लगा। मूर्ति की भव्यता के साथ-साथ किरण के सौन्दर्य को, जो पहिले से सैंकड़ों गुणा अधिक हो गया था, देख रहा था। श्वेतांग कभी किरण को देखता था और कभी भगवती की मूर्ति को। उसको इस प्रकार

अवाक् अपनी ओर देखते रहने पर, किरण उनके आने का प्रयोजन जानने के लिये बोली, "ठाकुर! कहां पा गये हैं इस धूर्त को आप ?"

"तो देवी इनको जानती हैं ? ये महापंडित नाकेश के सुपुत्र महा-पंडित श्वेतांग हैं। मेरे मित्र हैं। देश-भ्रमण के लिये आये थे। मेरे घर पर ही ठहरे हैं।"

कमलायिनी ने आवेश में कहा, "जहां ये जाते हैं वहां अपने साथ घोर अंधकार लिये जाते हैं। आप नहीं जानते कि ये अवन्ति के महामात्य थे और जितना घोर अन्याय, अत्याचार, अनाचार इनके महामात्य-काल में वहां चला था, वह अवर्णनीय है।"

श्वेतांग ने इस आलोचना पर चटपटा कर, अपना मुख खोला, "और श्रीमती जी कुमारदेव के रणवास से भागी हुई एक क्रीतदासी हैं। अब पुजारिन बन शायद कुमारदेव के लिये गुप्तचर का कार्य करती हैं। क्या जाने जो धन आज श्रीमती जी ने मल्ल राज्य को दिया है, वह अवन्ति के हाथ, इस राज्य को बेचने के लिये ही है।"

"तो ठाकुर! इस अपने मित्र की बात पर न्यायालय में अभियोग चला दो। यदि मैं दोषी हूंगी तो दंड पा जाऊंगी।"

"जनता के बड़े न्यायालय में अपना अभियोग उपस्थित करने जा रहा हूं। अब तुम भाग कर, यहां से जाना चाहो तो रात-रात में भाग जाओ। कल तुम्हारे लिये जाना कठिन हो जायेगा।"

"अच्छी बात है। जनता ही इस बात का निर्णय करेगी कि यह तुम्हारा मित्र धूर्त्त है अथवा सत्यवादी। अब जाओ। विश्वास रखो कि मैं यहां हूं और भाग कर नहीं जा रही। मां भगवती इसको भस्म किये बिना नहीं छोड़ेंगी।"

"भगवती ? यह स्वर्ण की मूर्ति ? यह इस राज्य के कोष की वृद्धि में काम आयेगी।" श्वेतांग ने मुस्कराते हुए कहा, "पंडित भूदेव का यह षड्यंत्र यहां चल नहीं सकेगा।"

"अब तुम जा सकते हो। मां भगवती परीक्षा लेना चाहती है,

तो दूँगी।"

श्वेतांग को समझ नहीं आया कि किरण कैसे इतने धन की स्वामिनी बन गयी है। बहुत विचार करने पर भी वह यही समझा कि अवश्य अवन्ति का हाथ इसमें है। वह पंडित भूदेव की चतुराई से परिचित था और उसका ही षड्यन्त्र इसमें समझता था।

उनके चले जाने के पश्चात् कमलायिनी ने मन्दिर की एक उपासिका वसुधा को देवयात के घर, उसको बुलाने भेज दिया। जब वह आया तो उसने बताया, "इन्द्रमणि काशी से श्वेतांग को अपने साथ लाया है। उसने अवन्ति में बहुत ऊधम मचाया था। राज्य में प्रत्येक प्रकार का ऊधम, अत्याचार और दुराचार उसने फैलाया था और उसने राज्य को हथियाने के लिये मल्ल राज्य के साथ जो षड्यन्त्र किया था, वह तो आप जानते ही हैं। वह अभी यहां आया था और देश में जनता को उभारने की धमकी दे गया है।"

देवयात को, गणसभा में लगाये गये आरोपों की याद आ गयी। वह समझ गया कि इन्द्रमणि से लगाये गये आरोप श्वेतांग द्वारा बताये गये हैं। इससे उसने कहा,

"देवी! चिन्ता की कोई बात नहीं है। परन्तु क्या यह सत्य है कि देवी महाराज कुमारदेव की क्रीतदासी, किरण ही है?"

"हां! मैं वही किरण हूं। परन्तु मुझ को महाराज ने मुक्त कर दिया है? मैं वहां से मुक्त होकर महर्षि जी के आश्रम में चली गयी थी और जो कुछ मैं अब हूं, वह महर्षि जी की कृपा से ही है।"

"क्या देवी को किसी प्रकार का भय है कि श्वेतांग उसका किसी प्रकार से अनिष्ट कर सकता है?"

"नहीं! मुझको उससे किसी प्रकार का भी भय नहीं। उसने अभी मां भगवती की शक्ति का चमत्कार देखा नहीं। यदि देखा होता तो वह यहां आता ही नहीं। मेरा आपको सचेत करने का प्रयोजन केवल मल्ल राज्य के विषय में है।"

दैवयात इससे एक गम्भीर विचार में पड़ गया। कमलायिनी उस को बहुत ध्यान से देखती रही। जब वह विचार में लीन चुप बैठा रहा, तब कमलायिनी ने मुस्करा कर कहा, "भक्त! मन में किसी बुरी बात को छिपा कर रखना ठीक नहीं है। तुम्हारे मुख पर देखने से यह प्रतीत हो रहा है कि कुछ अवांछित बात तुमने की है और उसको बताने में अब संकोच अनुभव कर रहे हो।"

"हां देवी! मैं छिपाने के लिये चुप नहीं था। मैं यह सोच रहा था कि अब उसको बताने में कोई लाभ है या नहीं। मैंने उस बात से अपना सम्पर्क त्याग दिया है। अब आप कहती हैं तो बताता हूं।

"जब मैं उज्जयिनी में राजदूत का काम करता था, तब मैं श्वेतांग के सम्पर्क में था और उस समय के गणपति की अनुमति से मैंने श्वेतांग की सहायता करने का वचन दिया था। उस समय ही महारानी रेखा से मेरा सम्पर्क उत्पन्न हो गया था। जब महारानी महाराज से पृथक् कर दी गयीं, तभी से वे यत्न कर रही हैं कि किसी प्रकार महाराज को मार्ग से दूर कर अपने पुत्र को महाराज घोषित करवा दें। इस बात के लिये, जहां तक मुझको विदित है, वे एक षड्यंत्र कर रही हैं। इसमें मुझको भी वे सम्मिलित समझती हैं। उन्होंने एक समय मुझको दस सहस्र स्वर्ण भी दिया था। जब से मैं अपने को मां भगवती के उपासकों में समझने लगा हूं, मैंने उन स्त्री से व्यवहार त्याग दिया है। मेरे गणपति बन जाने के पश्चात् उनके कई पत्र आये हैं, परन्तु मैंने उनका उत्तर नहीं दिया।"

कमलायिनी इस समाचार को सुन चकित रह गयी। कुछ विचार कर, उसने कहा, "मैं समझती हूं कि आपको महामात्य भूदेव से सम्पर्क उत्पन्न कर इस षड्यन्त्र के विषय में उनको बता देना चाहिये।"

"मैंने इस विषय में बहुत सोचा है, परन्तु मैं इस विषय में किसी दूसरे राज्य में अनधिकार हस्तक्षेप करना अनुचित मान चुप हूं।"

"अच्छी बात! अब आपको मैंने श्वेतांग के विषय में सचेत कर

दिया है। श्वेताग का महारानी रेखा से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। यहा तक कि रेखा का लडका श्वेताग से माना जाता है। ऐसी अवस्था मे श्वेताग का इस देश में आना, सम्भव है, उसी प्रयोजन से हो, जिसमें महारानी रेखा आपको लपेटना चाहती थीं।"

. ८ .

देवपाल ने कुछ गुप्तचर इन्द्रमणि और उसके घर में आये अतिथि के पीछे लगा दिये। वे नित्य के समाचार लाकर देते थे, परन्तु क्षत्रियों से सचालित यह राज्य बुद्धिमानों से रहित हो गया था। यही कारण था कि लाख यत्न करने पर भी देवपाल कुछ बात समझ नहीं सका। उसको यह पता चला कि इन्द्रमणि के घर से, प्रति दूसरे-तीसरे दिन अश्वारोही विदेशी को आते-जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ देहातो के लोग भी अब उसके घर में भीड डाले रहते थे, परन्तु बात इतनी गुप्त रहती थी कि इन समाचारों का कुछ सिर-पैर समझ नहीं आता था। इस प्रकार कई मास निकल गये।

एक दिन मन्दिर के पथागार में दो पथिक, स्त्री-पुरुष, एक बच्चे के साथ आये और अपना काशी मे आना लिखा कर, एक आगार में ठहर गये। रात भर विश्राम कर अगले दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर, कुछ जलपान कर वे मन्दिर देखने आये। ये यात्री मनोज और उसकी स्त्री लोला अपने बच्चे के साथ थे। जब ये चौतरे पर चढ रहे थे, तो इनको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि एक व्यक्ति उनके कुछ आगे जा रहा है, जिसको वह पहिचानते हैं। मनोज वहीं ठहर गया और उसने लोला की बाह पकड कर, उसको भी खडा कर, उस जाते हुए की ओर संकेत कर कहा, "देवी! देखो, वह कौन जा रहा है?"

"यह तो श्वेताग प्रतीत होता है।"

"हा, हमारी सूचना के अनुसार तो वह काशी जी में है।"

"आर्य! कुछ दाल में काला अवश्य है। हमको सतर्क रहना चाहिये।"

इस समय तक वह पुरुष एक स्त्री के साथ मंदिर में प्रवेश कर गया। मनोज और लोला चौतरे पर चढ़ गये और दर्शकों के एक झुंड में छिपे हुए वे मंदिर में जा पहुचे। वहां मूर्ति वाले आगार में पहुंच, उन्होंने देखा कि श्वेतांग एक बगल वाले आगार के बाहर खड़ा है और उसके साथ वाली स्त्री वहां नहीं है। मनोज ने समझा कि वह भीतर पुजारिन को श्वेतांग की सूचना देने गयी है! वे दोनों आगार के दूसरे कोने में जाकर दर्शकों की भीड़ में खड़े हो मूर्ति को देखने का बहाना करने लगे। इस समय वह स्त्री, पुजारिन के आगार से आयी और श्वेतांग को लेकर उस आगार में प्रविष्ट हो गयी।

मनोज आया तो राज्य कार्य से था, परन्तु गुप्त रूप में आने के कारण, वह यात्री बन कर विचर रहा था। इसी कारण वह लोला को साथ लाया था। लोला की गोदी में बच्चा भी था। जब श्वेतांग भीतर चला गया, तब वह निश्चिन्त हो, मन्दिर की शोभा देखने लगा। उसको भगवती की मूर्ति अति सुन्दर और प्रभावशाली प्रतीत हुई। कलश पर के छत्र से प्रतिबिम्बित प्रकाश से मूर्ति जाज्वल्यमान हो रही थी। इससे भी अधिक बात जिस पर मनोज को विस्मय हो रहा था, वह सूर्य-रश्मियों से निकली सप्त वर्ण की किरणों से चिकित्सा का आयोजन था। मंदिर के मूर्ति वाले आगार की दीवारों को इन्द्र-धनुष के रंगों में रंगा देख, वह कितनी ही देर तक इसका अर्थ समझने का यत्न करता रहा। वह किसी से इसका अर्थ समझना चाहता था। साथ ही वहां की पुजारिन से भेंट का प्रबन्ध करना चाहता था।

वह इस के प्रबन्ध के विषय में विचार कर ही रहा था कि श्वेतांग और कामलायिनी उस दासी के साथ बाहर निकले। मनोज उनकी ओर पीठ कर खड़ा हो गया। लोला उसके सामने आ गयी। इस प्रकार वे दोनों श्वेतांग की दृष्टि से ओझल हो गये।

मनोज ने कहा, "यह तो सत्य ही किरण है। हमारी सूचना ठीक है। शायद वह श्वेतांग को द्वार तक छोड़ने गयी है। वह लौट कर आये तो

तुम उसके सामने आकर मा भगवती का आशीर्वाद मागो। देखो वह तुमको पहिचानती है अथवा नहीं।"

किरण श्वेताग को द्वार पर छोड कर आयी और अपने आगार की ओर घूम पडी। लोला इस समय की प्रतीक्षा में थी। वह भीड में से आगे बढ, कमलायिनी के सामने खडी हो गयी। किरण ने पहिले तो समझा कि कोई दर्शिका उसके चरण स्पर्श करने आयी है, परन्तु अगले ही क्षण वह पहिचान गयी। फिर उसकी गोदी में बच्चे को देख हस पडी।

लोला ने सुन रखा था कि उसको मा कह कर सबोधन किया जाता है। अतएव उसने झुक कर उसके चरण स्पर्श करने चाहे, तो किरण दो पग पीछे हट गयी। इस पर लोला ने मुस्कराते हुए कहा, "मा! क्या अपराध हुआ है हम बालकों से?"

किरण ने बच्चे को गोदी में ले लिया और पूछा, "इसके पिता कहा है?"

"आपकी प्रतीक्षा मे खडे है। दर्शन दोगी मा?"

"हट! बुला लाओ उनको। मै इसको लिये जा रही हू।" इतना कह वह बच्चे को लेकर अपने आगार मे चली गयी। इस अभिनय को देखने के लिये दर्शक एकत्रित हो गये थे। सब कमलायिनी को, बच्चे को गोदी में ले, आगार में जाते देख विस्मय कर रहे थे।

"तो इसके कोई अपने भी है?" लोग कहने लगे।

"क्या वह हाड-चाम की नहीं बनी?"

"कहते है कि बडी तपस्विनी है।"

"तपस्विनी होने से मानवता मर जाती है क्या?"

इस प्रकार की बातें करते हुए लोग किरण के पीछे लोला और मनोज को जाते हुए देखते रहे।

किरण मनोज और लोला को अपने आगार मे आया देख, प्रसन्नता प्रकट कर बोली। "ये हैं तुम्हारे पतिदेव! सुनाइये मनोज जी, यहा आना कैसे हुआ है?"

"आज प्रात काल ही यहा पहुचे है। हमने पथागार में 'काशी से आने वाले' लिखाया है। इस कारण हमारा परिचय यहा एक यात्री के रूप में है। वास्तव में, मैं यहा एक विशेष कार्य से आया हू। उक्त विषय में आपसे भी मिलने का प्रयोजन था।"

"तो बताइये क्या बात है?"

"इस समय नहीं। सब भक्तो के सामने भीतर आया हू। अब शीघ्र ही बाहर चला जाना ठीक होगा। क्या पुनः गुप्त भेंट हो सकेगी?"

"यत्न करूगी। यहा कई मास से श्वेताग आया हुआ है और वह मुझको बदनाम कर यहा विप्लव उत्पन्न करना चाहता है। अभी-अभी........।"

"हमने उसको देखा है। शायद हमारी बात भी उससे ही सम्बन्ध रखती है। यो तो मैं बिना विलम्ब के बात करना चाहता हू, परन्तु मैं उसको अभी गुप्त रखना चाहता हूं।"

"आज मध्य रात्रि में वह मेरे द्वारा कुछ बात दैवयात से कहलवाना चाहता है। यदि आपकी बात उससे ही सम्बन्ध रखती है, तब तो उक्त समय से पहिले ही हो जानी चाहिये।"

"मैं भी यही चाहता हू। मैं नहीं जानता कि वह आपसे क्या चाहता है, परन्तु मैं अवन्ति राज्य की ओर से एक प्रस्ताव लेकर आया हू और उस पर बातचीत करना चाहता हू।"

"तो सायंकाल सूर्यास्त होते ही मेरी सह-उपासिका वसुधा आपके आगार में आपको बुलाने आयेगी।"

: ६ :

"हमारे गुप्तचर विभाग ने यह सूचना दी है कि महारानी रेखा और इन्द्रमणि में एक लम्बा पत्र-व्यवहार चला है। उस पत्र-व्यवहार में यह तो निश्चय हो चुका है कि दोनों राज्यों की विद्रोही सेनायें मिल कर दोनों राज्यो में विप्लव कर देंगी। यहा सेना में एक भारी सख्या

में सैनिक यह वचन दे चुके हैं कि सेठ सुखचन्द्र और कमलायिनी के चगुल से राज्य को बचाने के लिये पुन शुद्ध क्षत्रियो का राज्य स्थापित करेंगे। वहा अवन्ति में उनको विद्रोह करने के लिये यह कहना पडा है कि महारानी रेखा के पुत्र को युवराज घोषित किया जायेगा। महाराज कुमारदेव एक अनुराधा ग्वालिन के पजे में फस, महारानी का अपमान कर रहे हैं। साथ ही अवन्ति में शैव-पथियो पर हो रहे अन्याय और अत्याचारों को दूर किया जाये।

"कुछ काल हुआ है महाराज ने यह घोषणा कर दी थी कि उनके पीछे राज्याधिकारी अनुराधा का लडका होगा। इस घोषणा को आधार बना, वहा झगडा आरम्भ कर दिया है। महारानी रेखा अपने को सूर्यवशीय क्षत्रियो में से बताती है और अनुराधा को शूद्र जाति की अहीरन। इस प्रकार इन दोनों राज्यों में क्षत्रिय-विद्रोह होने जा रहे हैं।

"फाल्गुण की पूर्णिमा इस विद्रोह का अवसर नियत किया गया है। इस अवसर पर महारानी अनुराधा के पुत्र का नामकरण सस्कार होने जा रहा है और उसी दिन विद्रोह प्रारम्भ हो जावेगा।"

मनोज ने अपने यहा आने के प्रयोजन की भूमिका मे यह सब कुछ कहा। इससे कमलायिनी विस्मय में मनोज का मुख देखती रह गयी। जब उसने कुछ नहीं कहा, तो मनोज ने पूछा, "किरण देवी! क्या बात है? मै तो इस कारण आया हू कि हमारी सूचना के अनुसार आप यहा के गणपति पर भारी प्रभाव रखती हैं और आपके विषय में हमारा मत यह है कि आप उचित और अनुचित मे अतर जान सकती हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं मनोज जी! मै तो आचार्य भूदेव और महर्षि वामदेव में अतर अनुभव कर, विचार कर रही थी कि किसकी बात मानूं। मैंने महर्षि जी से यहा की परिस्थिति का वर्णन कर उनसे आदेश मागा था। उनका आदेश आया है। उनका कहना है कि मै भक्त दैवयात को कह दूं कि आत्मोन्नति के लिये, इस प्रकार के झगडों में पडना अच्छा नहीं। यदि

जनता समझाने से भी न समझे, तो हम दोनो, सब कुछ छोड-छाड़ कर, उनके आश्रम में चले आवें और अपने मोक्ष के लिये यत्नशील हो जावे।

"इसके विपरीत आचार्य जी ने आपको भेजा है। मै इन दोनो महा-पुरुषों में अतर पर विचार कर रही थी।"

"किरण देवी! यह अतर तो है ही। तांत्रिक पथ सामाजिक धर्म के विषय में कुछ मत नहीं रखता। यही कारण है कि व्यक्तिगत उन्नति पर बल देता हुआ भी, यह पंथ सामाजिक झगडो से पृथक् रहना चाहता है। वेदो में प्रतिपादित आर्य मत तो जहा एक व्यक्ति के लिये मार्ग दिखाता है, वहा समाज के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। व्यक्ति और समाज में सामजस्य रखना ही इस पथ की श्रेष्ठता है।"

"तो आप क्या चाहते है?"

"मै यहां के गणपति से विचार-विनिमय करने आया हू। मै उससे जानना चाहता हू कि दोनो राज्यो के विद्रोहात्मक तत्व तो मिल गये हैं परन्तु क्या इन दोनो राज्यो के सत्ताधीश तत्व भी मिल सकते है?"

"मै इस विषय में अपने आप तो कुछ कह नहीं सकती। यह एक अति गम्भीर राजनीतिक विषय है। इसके लिये तो गणपति से आपको मिलना ही चाहिये। आज रात इन्द्रमणि और देवयात मिलने वाले हैं। लगभग इसी विषय पर ही दोनो में बात होने वाली है। इस कारण आप की उनसे भेंट पहिले ही करा दूंगी। मै समझती हू कि आपकी बातचीत का प्रभाव उनकी अपनी बातचीत पर भी होने वाला है।"

"तो आप इसका प्रबन्ध करिये।"

"मै तो यह आश्चर्य कर रही हू कि आपके गुप्तचर यहां की बातें कैसे जानते है?"

"किरण देवी! राज्य करना एक कला है। इसको जानने के लिये समाज-धर्म का जानना अति आवश्यक है। हमारे गुप्तचरो का तो यह भी कहना है कि इन्द्रमणि के वैतनिक सहायक आपको देवयात की प्रेमिका कहते है, आपको अवन्ति का गुप्तचर कहते हैं और वह धन, जो न जाने

आपने कहा से लाकर यहा के राज्य को दिया है, अवन्ति से आया वताया जाता है। यह सव हमको मालूम है, परन्तु इसके साथ ही हमारी सूचना यह है कि न तो आपका देवयात से किसी प्रकार का सम्बन्ध है और न ही वह धन देश के वाहर से आया है।"

किरण यह बात सुन क्रोध से लाल हो गयी। उसने कहा, "मेरे विषय में यह असत्य भाषण भी किया जा रहा है क्या? यह सव श्वेताग की वदमाशी है।"

"देवी! हम भली भाति जानते है कि ऐसी कोई बात नहीं, इस पर भी यह विस्मय करने का विषय तो है ही कि इतना धन आप कहा से लाकर दे सकी है?"

"स्वर्ण तो हम यहा निर्माण करते है। प्रकृति के गूढ़तम रहस्यो को जानने से हम ऐसा कर सकते है।"

"हमको, और भी कई वातें, इस मदिर के विषय में विदित है।"

"वे भी वहुत वुरी है क्या?"

"वुरी तो नहीं। इस पर भी विस्मयजनक अवश्य है। एक बात तो हमारे आचार्य जी को पागल वना रही है। वे इस रहस्य को जानने के लिये व्याकुल हो रहे है। उनका कहना है कि यदि इस रहस्य को जान सकें तो हम पुरुष-स्त्रियों की सख्या में सतुलन रख सकते है। सुना है कि आपने एक वासुदेव को वसुधा देवी वना दिया है।"

किरण हस पडी। उसने कहा, "आपके गुप्तचर विभाग की प्रशसा तो करनी ही होगी। वे इतनी गुप्त वातों तक की टोह रखते है। वह उपासिका जो आपको वुलाने गयी थी, वही अग देश का रहने वाला एक वासुदेव था। अब वह एक स्त्री है। उसका विवाह एक ठाकुर चक्रायुध से होने वाला है। यह कैसे हो गया? यह भी प्रकृति के इस रहस्य के ज्ञान हो जाने के कारण है।"

"तो अव गणपति जी से कव भेंट हो सकेगी?"

कमलायिनी ने वसुधा को बुलाकर दैवयात को बुला लाने के लिये भेज दिया। इस समय तक दोनों अवन्ति के विषय में और महाराज कुमारदेव के विषय में बातें करते रहे। इस बातचीत में मनोज ने पूछा, "देवी ! क्या यह सत्य है कि गणपति देवी से प्रेम करते हैं ?"

"यह मैं कैसे जान सकती हूं। गणपति ने मुझसे कभी ऐसी बात नहीं कही। इतना तो मैं जानती हूं कि श्वेतांग अभी भी मुझको नहीं भूला। इसका परिणाम मुझको कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता।"

"क्या हो सकता है इसका परिणाम ?"

"यह तो आजसे कितना काल पूर्व ही हो जाता। परन्तु जीवन वृथा न गवाने के लोभ में ही मैं यहां पडी हूं।"

"क्या अभिप्राय है देवी का ? मैं समझा नहीं।"

"दो मार्ग हैं। एक तो वह जो मैं अवन्ति में स्वीकार करने वाली थी, अपने आपको स्वाहा कर देना और दूसरा मार्ग है युद्ध होने देना। इससे लाखो वीर सैनिक मृत्यु के घाट उतर जावेंगे। मैं भी आज ही इन्द्रमणि और दैवयात के परस्पर वार्तालाप के पश्चात् निर्णय करने वाली थी कि भगवती के चरणों में बैठ कर अपने को भस्म कर दूं अथवा इस देश के नगर-नगर और गांव-गाव को धू-धू करते हुए जलने दूं।"

"यह फिर आप मिथ्यावाद में फस गयी प्रतीत होती हैं। हमारा प्राचीन आर्य सिद्धात तो यह है कि एक भी भले पुरुष की रक्षा के लिये सहस्रो लोग बलिदान हो जावे तो भी हानि नहीं। भले लोगों की रक्षा होनी ही चाहिये। तुम अपनी हत्या क्यों करोगी ? यदि ऐसी परिस्थिति यहां पर है कि तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती, तो मैं अवन्ति राज्य की ओर से पूर्ण अधिकारो के साथ यहां आया हूं। मैं आज ही इस देश को युद्ध की ज्वालाओं में झोंक सकता हू।"

किरण के मन में प्रकाश होने लगा। उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न होने लगा। वह, जो श्वेतांग से बातचीत करने पर निराशा अनुभव कर रही थी, पुनः आशा में भर गयी। उसने कहा, "यह नहीं मनोज जी ! मैं तो अकेली

ही यहा पर अपनी रक्षा में समर्थ अनुभव करती हू। मुझको भय तो यहा की जनता का था।"

"देवी को भगवान् कृष्ण के कथन को स्मरण कराना ठीक प्रतीत होता है।"

इस समय देवयात आ गया। कमलायिनी ने मनोज का परिचय कराया और उनको बात करने के लिये कहते हुए, उसने कहा, "ये महाराज कुमारदेव के अति विश्वस्त दूत हैं। आपसे कुछ गोपनीय बात करने के लिये आये हैं।"

इस पर मनोज ने अपने आने का प्रयोजन, जैसा उसने कमलायिनी को बताया था, देवयात को भी बताया। उसने कहा, "दोनों राज्यो में पाप-मय शक्तिया सगठित हो रही हैं। ऐसी अवस्था में क्या दोनों राज्य बारी-बारी से इनके सम्मुख परास्त हो अथवा दोनो राज्यों की श्रेष्ठ शक्तिया भी सगठित हो जाये और पापियों को परास्त करें?"

देवयात इस षड्यन्त्र की सूचना पर विश्वास नहीं कर सका। उसने कहा, "यह तो मैं जानता हू कि हमारे राज्य में क्षत्रियो को यह कह कर भडकाया जा रहा है कि एक वैश्य को मन्त्री पद पर नियुक्त किया गया है, जो यहा की प्रथा के अनुकूल नहीं है।"

"और क्या यह नहीं कहा जा रहा," मनोज ने कहा, "कि कमलायिनी देवी अवन्ति की गुप्तचर है?"

"और आपका आकर इनके द्वारा मुझसे बातचीत करना क्या यही बात सिद्ध नहीं करता?"

"मैं आपको अधिकृत रूप से कहता हू कि इन देवी जी का हमारे राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर भी यदि आप कोई सम्बन्ध मानते हैं, तो वह सम्बन्ध आपके और आपके देश के हित में ही काम कर रहा है। आप यह बताइये कि इन देवी जी का कौन कार्य ऐसा है, जिससे आपको अथवा आपके देश को हानि पहुची है?"

"मैं तो इस बात को मानता हू कि ये देवी जी हमारे देश के साथ हित

ही कर रही हैं, परन्तु इनका महाराज कुमारदेव की क्रीतदासी होना मात्र ही जनता के मन में संदेह उत्पन्न कर रहा है ।"

मनोज इस राज्याधिकारी की मनोवृत्ति को देख निराश हुआ। इस पर भी वह अपनी ओर से पूर्ण यत्न करना चाहता था कि दैवयात को पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हो जावे। इस कारण उसने कहा, "देखिये गणपति महोदय! विद्रोहियों की योजना यह है कि होली के अवसर पर हमारे सैनिक एक भारी संख्या में इस मंदिर को देखने के लिये छुट्टी माग रहे हैं। उनकी संख्या दस सहस्र से कम नहीं। वे लोग एक निश्चित तिथि को एक नियत स्थान पर एकत्रित हो जावेंगे और उसी दिन यहा की सेना विद्रोह करेगी। परिणाम यह होगा कि उस दिन पावा को जला कर भस्म कर दिया जावेगा। यहां इन्द्रमणि राजा घोषित हो जावेंगे। पश्चात् यही सेना हमारी सेना की सहायता से हमारे देश में विप्लव खडा कर देगी। यहा की सेना हमारे यहा तब जावेगी, जब वहा झगडा हो रहा होगा। जैसे यहा के लिये इन्द्रमणि को राजा बनाने का निश्चय है, वैसे ही अवन्ति के लिये महारानी रेखा और श्वेताग महामात्य नियत किये गये हैं।"

"आपकी इस सूचना के लिये मैं आपका धन्यवाद करता हू।"

"इस सूचना के लिये मैं आपके धन्यवाद का प्रत्याशी नहीं हू। मैं इस कारण आया हू कि आप से निवेदन करू कि हम इस परिस्थिति का विरोध करने के लिये एक योजना चलाना चाहते हैं। अब आपके पास इस सूचना के पहुच जाने पर, आप भी कोई योजना प्रतिकार के लिये बनायेंगे। हम चाहते हैं कि हम दोनों अपनी योजनाओं का समन्वय कर सकें तो ठीक होगा।"

दैवयात इस प्रश्न से घबराया। फिर कुछ विचार कर कहने लगा, "मैं इस बात का वचन नहीं दे सकता। राज्यों के रहस्य कभी बताये जा सकते हैं और कभी नहीं भी बताये जा सकते। मैं इस विषय पर विचार करूगा।"

हो यहा पर अपनी रक्षा में समर्थ अनुभव क
यहा की जनता का था।"

"देवी को भगवान् कृष्ण के कथन को स्मर
होता है।"

इस समय दैवयात आ गया। कमलायिनी ने
कराया और उनको बात करने के लिये कहते हुए, उसने
कुमारदेव के प्रति विश्वस्त दूत हैं। आपसे कुछ गोपनी
लिये आये है।"

इस पर मनोज ने अपने आने का प्रयोजन, जैसा उसने द
बताया था, दैवयात को भी बताया। उसने कहा, "दोनों रा
मय शक्तिया संगठित हो रही हैं। ऐसी अवस्था में क्या दो
बारी-बारी से इनके सम्मुख परास्त हो अथवा दोनो राज्यो
शक्तिया भी संगठित हो जावे और पापियों को परास्त करें?"

दैवयात इस षडयन्त्र की सूचना पर विश्वास नहीं कर सका।
कहा, "यह तो मैं जानता हू कि हमारे राज्य में क्षत्रियों को यह कह
भडकाया जा रहा है कि एक वैश्य को मन्त्री पद पर नियुक्त किया गया
जो यहां की प्रथा के अनुकूल नही है।"

"और क्या यह नहीं कहा जा रहा," मनोज ने कहा, "कि कमलायिनी
देवी अवन्ति की गुप्तचर है?"

"और आपका आकर इनके द्वारा मुझसे बातचीत करना क्या यही
बात सिद्ध नहीं करता?"

"मैं आपको अधिकृत रूप से कहता हू कि इन देवी जी का हमारे
राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पर भी यदि आप कोई सम्बन्ध
मानते हैं, तो वह सम्बन्ध आपके और आपके देश के हित में ही काम कर
रहा है। आप यह बताइये कि इन देवी जी का कौन कार्य ऐसा है, जिससे
आपको अथवा आपके देश को हानि पहुंची है?"

"मैं तो इस बात को मानता हू कि ये देवी जी हमारे देश के साथ हित

कमलायिनी चुप रही। दैवयात उठ कर बाहर चला गया। जब वह गया तो मनोज उसके पीछे-पीछे, उसके जाने की टोह लेने गया। जब उसने देखा कि वह चौंतरे से नीचे उतर गया तो वह वापिस आकर किरण से कहने लगा, "इस मूर्ख को आपने गणपति बनवा कर कुछ अच्छा नहीं किया।"

"मैंने कुछ नहीं किया। मा भगवती ने ही किया है। शायद इसके हाथ से ही मल्ल राज्य का विध्वंस कराने के लिये ही यह सब कुछ हुआ है।"

"देखो किरण देवी! मैं तो अविलम्ब यहा से चला जाना चाहूंगा। आचार्य भूदेव जी का एक संदेश है। उनका कहना है कि यहा आपका जीवन भय में है। जब भी आप चाहें अवन्ति में आकर मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकती हैं। महर्षि जी से कहियेगा कि वे अपने वैज्ञानिक परीक्षण हमारे यहा कर सकते हैं।"

इतना कह मनोज ने कहा, "मै चाहता हू कि यहा से उसी गुप्त द्वार से जाऊं, जिससे वसुधा मुझको लायी थी।"

: १० .

दैवयात कमलायिनी से झगडा कर प्रसन्न नहीं हुआ था, परन्तु उसके गुप्तचर और साथी उसको ऐसी सूचनायें दे रहे थे कि उसके मस्तिष्क की शान्ति भंग हो गयी थी। वास्तव में उसके वे साथी, जो उसके गणपति होने के कारण लाभ उठा रहे थे, यह देख कि उसके कमलायिनी से सम्पर्क के कारण उसका गणपति रहना भय में हो गया है, उसको डरा कर अथवा झूठी बातें बता कर, उससे लड़ा देना चाहते थे। मन से वह इससे अति दुःखी हुआ था। आज वह मनोज को वहा देख यह समझ बैठा था कि वह उसका प्रेमी है। इससे उसके मन में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। वह इस ईर्ष्या में जलता हुआ ही मन्दिर से बाहर निकला और रथ पर सवार होकर अपने घर को चल पड़ा। वह अभी मदिर से बीस पग ही गया था कि उसको नगरपाल, नगर

"अच्छी बात है। आप को कष्ट देने के लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हू। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि आप अवन्ति की वर्तमान राज्य-सत्ता पर विश्वास नहीं करतीं। इसके उत्तर में मैं एक ही बात कह सकता हू कि भगवान् आपका भला करे।"

इतना कह मनोज उठ खडा हुआ। किरण ने देवयात की ओर देखा और कहा, "आप इनको अभी अतिम उत्तर न दीजिये। मा भगवती से सम्मति लीजिये। पहिले भी कई बार मा ने आपको मार्ग दिखाया है। इस विषय में भी वे आपको सम्मति देंगी।"

"मेरा विश्वास अब भगवती में नहीं रहा। वह केवल मात्र भ्रम था। अब सब कुछ समझ में आ गया है।"

"क्या समझ में आया है ?"

"यह पता चला है कि देवी जी कुमारदेव की क्रीतदासी ह और श्वेताग की अविवाहित पत्नी हैं और . ।"

"तो आप भी मुझको अवन्ति की एक गुप्तचर मानते हैं ?"

"आज इसमें भी कोई सदेह नहीं रहा।"

"तो दड का विधान कर दीजिये।"

"वह भी हो जावेगा।"

"मैं आपसे दड दिये जाने की प्रतीक्षा करूगी।"

"देवी ने रात्रि को मुझे इन्द्रमणि से बातचीत करने के लिये बुलाया है ?"

"मैं आपको बुलाने वाली कौन हू ? मैंने केवल मात्र इन्द्रमणि की इच्छा आप तक पहुचा दी है। उसमें आना अथवा न आना आपके अधीन है।"

"मैं समझता हू कि देवी जी राजनीति में हस्तक्षेप न करें तो ठीक रहेगा।"

"यदि आपकी यह आज्ञा है, तो ऐसा ही होगा।"

"मैं रात नहीं आऊगा।"

कमलायिनी चुप रही। दैवयात उठ कर बाहर चला गया। जब वह गया तो मनोज उसके पीछे-पीछे, उसके जाने की टोह लेने गया। जब उसने देखा कि वह चौंतरे से नीचे उतर गया तो वह वापिस आकर किरण से कहने लगा, "इस मूर्ख को आपने गणपति बनवा कर कुछ अच्छा नहीं किया।"

"मैंने कुछ नहीं किया। मा भगवती ने ही किया है। शायद इसके हाथ से ही मल्ल राज्य का विध्वस कराने के लिये ही यह सब कुछ हुआ है।"

"देखो किरण देवी! मै तो अविलम्ब यहां से चला जाना चाहूंगा। आचार्य भूदेव जी का एक सदेश है। उनका कहना है कि यहा आपका जीवन भय में है। जब भी आप चाहें अवन्ति में आकर मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकती है। महर्षि जी से कहियेगा कि वे अपने वैज्ञानिक परीक्षण हमारे यहां कर सकते हैं।"

इतना कह मनोज ने कहा, "मै चाहता हू कि यहां से उसी गुप्त द्वार से जाउं, जिससे वसुधा मुझको लायी थी।"

: १० :

दैवयात कमलायिनी से झगडा कर प्रसन्न नहीं हुआ था, परन्तु उसके गुप्तचर और साथी उसको ऐसी सूचनायें दे रहे थे कि उसके मस्तिष्क की शान्ति भग हो गयी थी। वास्तव में उसके वे साथी, जो उसके गणपति होने के कारण लाभ उठा रहे थे, यह देख कि उसके कमलायिनी से सम्पर्क के कारण उसका गणपति रहना भय में हो गया है, उसको डरा कर अथवा झूठी बातें बता कर, उससे लड़ा देना चाहते थे। मन मे वह इससे अति दु.खी हुआ था। आज वह मनोज को वहां देख यह समझ बैठा था कि वह उसका प्रेमी है। इससे उसके मन में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। वह इस ईर्ष्या में जलता हुआ ही मन्दिर से बाहर निकला और रथ पर सवार होकर अपने घर को चल पड़ा। वह अभी मदिर से बीस पग ही गया था कि उसको नगरपाल, नगर

"अच्छी बात है। आप को कष्ट देने के लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि आप अवन्ति की वर्तमान राज्य-सत्ता पर विश्वास नहीं करते। इसके उत्तर में मैं एक ही बात कह सकता हू कि भगवान् आपका भला करे।"

इतना कह मनोज उठ खडा हुआ। किरण ने दैवयात की ओर देखा और कहा, "आप इनको अभी अंतिम उत्तर न दीजिये। मा भगवती से सम्मति लीजिये। पहिले भी कई बार मा ने आपको मार्ग दिखाया है। इस विषय में भी वे आपको सम्मति देंगी।"

"मेरा विश्वास अब भगवती में नहीं रहा। वह केवल मात्र भ्रम था। अब सब कुछ समझ में आ गया है।"

"क्या समझ में आया है ?"

"यह पता चला है कि देवी जी कुमारदेव की क्रीतदासी हैं और श्वेतांग की अविवाहित पत्नी हैं और . ।"

"तो आप भी मुझको अवन्ति की एक गुप्तचर मानते हैं ?"

"आज इसमें भी कोई सदेह नहीं रहा।"

"तो दण्ड का विधान कर दीजिये।"

"वह भी हो जावेगा।"

"मैं आपसे दड दिये जाने की प्रतीक्षा करूंगी।"

"देवी ने रात्रि को मुझे इन्द्रमणि से वातचीत करने के लिये वुलाया है ?"

"मैं आपको वुलाने वाली कौन हू ? मैंने केवल मात्र इन्द्रमणि की इच्छा आप तक पहुचा दी है। उसमें आना अथवा न आना आपके अधीन है।"

"मैं समझता हू कि देवी जी राजनीति में हस्तक्षेप न करें तो ठीक रहेगा।"

"यदि आपकी यह आज्ञा है, तो ऐसा ही होगा।"

"मैं रात नहीं आऊगा।"

कमलायिनी चुप रही। देवयात उठ कर बाहर चला गया। जब वह गया तो मनोज उसके पीछे-पीछे, उसके जाने की टोह लेने गया। जब उसने देखा कि वह चौंतरे से नीचे उतर गया तो वह वापिस आकर किरण से कहने लगा, "इस मूर्ख को आपने गणपति बनवा कर कुछ अच्छा नहीं किया।"

"मैंने कुछ नहीं किया। मा भगवती ने ही किया है। शायद इसके हाथ से ही मल्ल राज्य का विध्वस कराने के लिये ही यह सब कुछ हुआ है।"

"देखो किरण देवी! मैं तो अविलम्ब यहां से चला जाना चाहूंगा। आचार्य भूदेव जी का एक संदेश है। उनका कहना है कि यहा आपका जीवन भय में है। जब भी आप चाहें अवन्ति में आकर मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकती हैं। महर्षि जी से कहियेगा कि वे अपने वैज्ञानिक परीक्षण हमारे यहा कर सकते हैं।"

इतना कह मनोज ने कहा, "मैं चाहता हू कि यहा से उसी गुप्त द्वार से जाऊं, जिससे वसुधा मुझको लायी थी।"

: १० .

देवयात कमलायिनी से झगडा कर प्रसन्न नहीं हुआ था, परन्तु उसके गुप्तचर और साथी उसको ऐसी सूचनायें दे रहे थे कि उसके मस्तिष्क की शान्ति भग हो गयी थी। वास्तव में उसके वे साथी, जो उसके गणपति होने के कारण लाभ उठा रहे थे, यह देख कि उसके कमलायिनी से सम्पर्क के कारण उसका गणपति रहना भय में हो गया है, उसको डरा कर अथवा झूठी बातें बता कर, उससे लड़ा देना चाहते थे। मन से वह इससे अति दुःखी हुआ था। आज वह मनोज को वहा देख यह समझ बैठा था कि वह उसका प्रेमी है। इससे उसके मन में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। वह इस ईर्ष्या में जलता हुआ ही मन्दिर से बाहर निकला और रथ पर सवार होकर अपने घर को चल पड़ा। वह अभी मदिर से बीस पग ही गया था कि उसको नगरपाल, नगर

में निरीक्षण करता हुआ मिल गया। उसके मन में एक विचार आया। इससे उसने नगरपाल को अपने पास बुला कर कहा, "देखो! मन्दिर में एक युवक, लम्बा, गोरा, तीखी नाक वाला, ब्राह्मणों के वेष में पुजारिन से मिलने गया है। वह निकले तो उसको पकड कर बंदी बना लो। शायद वह रात भर वहा ही रहेगा। तो रात भर के लिये प्रहरी बैठा रखो।"

नगरपाल ने विस्मय से गणपति का मुख देख कर पूछा, "श्रीमान्! इस विवरण के कई युवक हो सकते हैं।"

"सबको पकड लो। प्रातःकाल देख लेंगे कि वास्तविक अपराधी कौन है।"

नगरपाल ने झुक कर नमस्कार किया और दैवयात ने रथ चलवा दिया। वह घर पहुचा तो उसने सेवक भेज कर इन्द्रमणि को बुला भेजा। उसने यह कहला भेजा कि वह मन्दिर में बात करना नहीं चाहता, यदि बात करनी है तो उसके घर में आजावे। इस संदेश को पाकर इन्द्रमणि आया और अपने साथ श्वेताग को ले आया।

दैवयात ने इन्द्रमणि से पूछा, "क्या आप अपनी बात इनके सामने करना चाहते हैं?"

"इनकी अनुपस्थिति में तो अब बात हो ही नहीं सकती।"

"अच्छी बात है। बताओ, किसलिये आपने मिलने को कहा है?"

"मैं यह बताने आया हू कि देश भर में क्षत्रिय लोग भडक उठे हैं। यदि आप मल्ल राज्य में रक्त की नदियां बहाना नहीं चाहते, तो हमारे कुछ सुझाव हैं, वह आप मान जावें। हमारा विचार है कि उनके मान जाने से जनता शान्त हो जावेगी।"

"क्या सुझाव हैं आपके?"

"प्रथम, भगवती का मन्दिर राज्याधिकार में कर दिया जावे। द्वितीय, सेठ सुखचन्द्र को देश से निर्वासित कर दिया जावे। तृतीय, मन्दिर की पुजारिन हमारे अधिकार में कर दी जावे। चतुर्थ, क्षत्रियों के मनोद्गारों को शान्त करने के लिये अवन्ति पर आक्रमण की आज्ञा दे दी जावे।

पचम, इन्द्रमणि को मन्त्रिमडल में सम्मिलित कर लिया जावे।"

दैवयात इन सुझावों को सुन गम्भीर हो गया। कुछ काल तक उसने विचार कर उत्तर दिया, "मन्दिर को राज्य अपने अधिकार में क्यो ले ? यदि जनता इस मन्दिर के विरुद्ध है तो वह इसमें न जाये। जनता को यदि इसमें किसी बुराई का विश्वास है तो वह इसकी ईंट से ईंट बजा दे। अधिक से अधिक राज्य यह कर सकता है कि इस सबको देख कर, आखें मूंद ले। पुजारिन के विषय में यह हो सकता है कि वह इस समय अवन्ति के एक युवक अधिकारी से वार्तालाप कर रही है। मैंने मन्दिर द्वार पर प्रहरी बैठा दिये हैं। तुम जाकर उसको रंगे हाथ पकड लो और कल उसके विरुद्ध अभियोग चला दो। यदि अभियोग में न्यायालय का निर्णय उसके विरुद्ध हुआ, तब हम पुजारिन को दड दिलवा सकते है और मदिर पर राज्य का अधिकार कर सकते है। बिना न्यायालय के निर्णय के, मैं इस विषय में कोई कार्य नहीं करूगा। सेठ सुखचन्द्र ने अभी तक कोई गड़बड़ नहीं की। मैं उसको देश से निर्वासित कैसे कर सकता हू ? अधिक से अधिक मैं उसको निजी रूप में कह सकता हू कि एक-दो वर्ष के लिये वह किसी अन्य देश में चला जावे।"

"देश-निर्वासन की आज्ञा के साथ हम चाहते है कि उसकी सम्पत्ति को राज्याधिकार में कर लिया जाये।"

"किस अपराध में ?"

"उसने मन्त्री पद स्वीकार किया है। एक वैश्य के लिये यह ठीक नही है।"

"विधान में ऐसी कोई बात नहीं है।"

"जनता नया विधान बनाना चाहती है।"

"यह नहीं होगा। मैं अन्याय नही कर सकता। मैं अवन्ति पर आक्रमण करने के लिये पर्याप्त तैयारी नहीं समझता। हा, इन्द्रमणि जी को मन्त्री नियुक्त कर सकता हू।"

"यह तो कुछ नहीं।" श्वेताग ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर कहा।

"यह कुछ है या कुछ नहीं, मैं नहीं जानता। जो कुछ न्याय से कर सकता हूं, कर दूंगा। अन्याय का राज्य चलाने में, मैं सहायता नहीं कर सकता।"

"अच्छी बात है। हम देख लेंगे।" इतना कह इन्द्रमणि तथा श्वेतांग वहां से चले गये।

देवयात के कहने के अनुसार नगरपाल से नियुक्त सैनिक अभी तक मन्दिर के मुख्य द्वार पर बैठे थे। इस समाचार को पाकर देवयात के मन में यह विचार बैठ गया कि कमलायिनी ने मनोज को अपने पास ही रख लिया है, इस कारण वह उसको रंगे हाथ पकड़ने की इच्छा करने लगा। उसके मन में इस विचार के आते ही, वह अभी उसके शयनागार में जा धमकने का विचार करने लगा। वह जानता था कि मन्दिर के बाहर का द्वार तो खुला ही रहता है। वहां उपासक बैठे उपासना किया करते हैं। कमलायिनी का शयनागार तो बंद होगा। उसको खुलवाने के लिये वह वसुधा से सहायता लेने का विचार कर, चक्रायुध के पास गया और कहने लगा, "मित्र! मुझको यह पता मिला है कि कमलायिनी इस समय अपने एक प्रेमी के साथ विहार कर रही है। मैं उसको रंगे-हाथ पकड़ कर जनता के सामने, उसके चरित्र की घोषणा करना चाहता हूं। इससे मेरे साथ आओ और वसुधा को साथ लेकर उसके शयनागार में चलो।"

"मित्र देवयात! तुमको किसी ने बहका दिया प्रतीत होता है और फिर किसी स्त्री के शयनागार में घुस जाना, किसी भांति भी उचित नहीं। मैं इस काम के लिये नहीं जाऊंगा।"

"चक्रायुध! राज्य-कार्य में सब बातें की जाती हैं। इसमें किसी बात का औचित्य और अनौचित्य उससे होने वाले लाभ-हानि से किया जाना चाहिये।"

"मैं आपके साथ इस कार्य पर नहीं जाऊंगा।"

"मित्रता का यह प्रमाण दे रहे हो चक्रायुध?"

"मानवता मित्रता से ऊंची वस्तु है। देखो भैया! मैं तुमको सम्मति

देता हूं कि कमलायिनी से झगडा मोल लेने के स्थान, देवी के चरणो में बैठ भजन करो। वे तुमको सुबुद्धि देगी।"

"देवी सर्वथा ढोंग नहीं है क्या? मन्दिर दुराचार का अड्डा नहीं है क्या? यह कमलायिनी की इच्छाओं के चलाने के लिए एक षड्यन्त्र नही है क्या?"

चक्रायुध हंस पडा। पश्चात् कुछ गम्भीर हो कहने लगा, "एक बात मैं जानता हू। वासुदेव एक पुरुष था। वह अब सुन्दर वसुधा बन गयी है। आगामी होली के दिन मेरा उससे विवाह होने वाला है। इस बार मैंने भली प्रकार परीक्षा कर ली है और मैं धोखा नहीं खा रहा। यह भ्रम नहीं। यह कमलायिनी की इच्छाओ की पूर्ति के लिये षड्यन्त्र भी नहीं। एक और बात का मुझको ज्ञान है। सवा तीन हजार मन सीसा दो घडी भर में स्वर्ण में बदल दिया गया था। उस स्वर्ण से बन रहा निर्विन्ध्या नदी का घाट भी भ्रम नही है। बीसियो कुष्ठ के रोगी नीलवर्ण रश्मियो के प्रभाव से स्वस्थ हो चुके है। यह भ्रम नहीं है।"

"मेरे मन का सशय तो इस बात से ही निवारण होगा कि मैं देखू कि उसका अवन्ति के न्यायाधीश मनोज से क्या सम्बन्ध है?"

चक्रायुध अति दुःखी मन से मित्र का मुख देखता रह गया।

: ११ :

जब मनोज चला गया तो किरण देवयात के अपमान-युक्त वचनो को स्मरण कर विक्षुब्ध-मन हो उठी और अपने पूजा के आगार में चली गयी। वह रात के समय ही ध्यान लगाया करती थी। वह यह समझने का यत्न कर रही थी कि देवयात के मन में यह विकार क्योकर उत्पन्न हो सका है। वह महर्षि जी के कहने से उस देश में मानवता का विकास करने के लिये आयी थी। उसने सेठ सुखचन्द्र के कहने पर देवयात को ही उपयुक्त माध्यम बना कर अपनी योजना चलाने का आयोजन किया था। परन्तु श्वेताग के वहा आ टपकने से उनकी योजनाओं में

बाधा आ खड़ी हुई थी। इस पर भी वह यह नहीं समझती थी कि श्वेतांग का प्रभाव दैवयात पर हो जावेगा। दैवयात भली भांति जानता था कि वह निष्कलंक है। इस पर भी वह उसके व्यवहार पर संदेह कर बातें कर गया था। इससे वह व्याकुल हो उठी और उसकी आंखें आंसुओं से भर गयीं।

सामने पूजा का सामान जुटा कर रखा था और उसको देख, वह भगवती की उपासना के लिये लगे आसन पर बैठ गयी। जब वह ध्यानावस्थित हुई, तो उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह विह्वल हो रोने लगी। कितनी ही देर तक वह बैठी रही। इस सब समय वह अपने मन को नियंत्रण मे करने का यत्न करती रही। धीरे-धीरे उसके आंसू बहने बंद हो गये। उसके कपोलों पर ढुलके आंसू सूख गये। उसका मलिन मुख पुनः जाज्वल्यमान हो गया। उसके अंगो में स्पन्दन होने लगा। उसकी मुट्ठियाँ कस गयीं और ओष्ठ भिंच गये।

इस समय उसकी आंखें खुलीं और उनमें से चिन्गारियां निकलती प्रतीत होने लगीं। वह यह कहती हुई, उठ खड़ी हुई, "मां! तेरी इच्छा पूर्ण हो! मां! तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

ये शब्द अभी उसके मुख से निकल ही रहे थे कि उसके शयनागार का द्वार खुला और उसमें वसुधा का सिर दिखाई दिया। वह देवी को खड़े देख चिल्लाई, "देवी! श्वेतांग ।" इसके आगे वह कह नहीं सकी। श्वेतांग उसको एक ओर धकेल कर भीतर आ गया। कमलायिनी अभी भी अपने पूजा के आसन पर खड़ी थी। धूप और दीप जल रहा था। नैवेद्य-फल-फूल-पत्र सामने धरे थे। श्वेतांग ने उस सबको देखा और समझ गया कि आखेट पंजे से निकल गया है। इस पर भी उसने कड़क कर पूछा,

"तुम्हारा प्रेमी कहां गया है?"

"कौन प्रेमी?"

"मनोज।"

"चले गये हैं।"

"वह मुख्य द्वार से नहीं निकला। सैनिक उसको पकड़ने के लिये द्वार पर खड़े हैं।"

"खड़े रहने दो। तुम क्या चाहते हो ?"

"दैवयात से मेरी बात हुई है। उसने तुमको मेरे अधिकार में दे दिया है।"

"मैं उसके अधिकार में नहीं हूं।"

"वह यहां का गणपति है और उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता।"

"तो उसकी आज्ञा पालन करो। मैं उसकी प्रजा नहीं हूं। मैं उसकी आज्ञा पालन करने के लिये बाध्य नहीं हूं।"

"वह तो मैं कर लूंगा।" इतना कह वह उसको पकड़ने के लिये आगे बढ़ा। इस समय दैवयात भी आ गया और उसने देखा कि श्वेतांग कमलायिनी को दोनों भुजाओं में पकड़, आलिंगन करने का यत्न कर रहा है। दैवयात ठिठक कर द्वार में ही खड़ा रह गया। कमलायिनी ने कहा, "अरे दुष्ट, नीच, अधम, पापी ! हट।" इतना कह उसने कहा, "नहीं हटता तो........! तो ले।"

ज्यों ही उसने यह कहा, श्वेतांग भूमि पर कटे वृक्ष की भांति गिर पड़ा और अपस्मार के रोगी की भांति कम्प वायु से पीड़ित हो कांपने लगा। फिर वह अचेत हो गया।

कमलायिनी अभी भी पूजा के आसन पर खड़ी थी। इस समय दैवयात भीतर आ कर श्वेतांग को देखने लगा। कमलायिनी ने उसको देखा तो क्रोध में कहा, "मनोज के विषय में तुमने इसको बताया था और तुम ही शायद इसको यहां लेकर आये हो ?"

"हां, क्या हानि हुई है ?"

"हानि पूछते हो ? चले जाओ यहां से नीच कहीं के। चले जाओ। कहीं तुम्हारी भी यही अवस्था न हो जावे।"

"जाओ....।" इतना कह उसने हाथ से द्वार की ओर संकेत किया।

दैवयात को ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उसको पकड़ कर बाहर की ओर धकेल रहा है। उसने देखा कि कमलायिनी अभी दूर खड़ी है, इस पर भी वह किसी अदृश्य शक्ति से धकेला जा रहा है। जब वह आगार के बाहर आ गया तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उसको बाहु से पकड़ कर मंदिर से बाहर ले जा रहा है। उसने देखा कि कोई है नहीं, इस पर भी वह अपनी इच्छा के विरुद्ध बाहर ले जाया जा रहा था और जब वह सीढ़ियों से नीचे पहुंच गया, तब उसको अनुभव हुआ कि उसको पकड़ कर लाने वाला उसको छोड़ गया है।

यह क्या था, उसको समझ नहीं आया।

श्वेताग मंदिर के रुग्णालय में ले जाया गया और कई दिन की चिकित्सा के बाद वह चेतनता प्राप्त कर सका। उसको पक्षाघात हो गया था। जब उसको चेतनता हुई, तो कमलायिनी ने उसको उठवा कर इन्द्रमणि के घर, यह कहला कर भेज दिया कि इससे अधिक ठीक यह नहीं हो सकता।

उसी रात दैवयात जब अपने घर आया तो उसने चक्रायुध को अपनी प्रतीक्षा करते पाया। उसने चक्रायुध को कहा, "अभी सोये नहीं?"

"तो तुम आ गये हो? भगवान् का धन्यवाद है।"

"क्यों क्या हुआ है?"

"भैया तुम जीते आ गये। यह क्या धन्यवाद की बात नहीं?"

"तो तुमने देखा है सब कुछ?"

"नहीं। मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो तब से यहां ही बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"मित्र! बहुत ही विचित्र बात देखी है। ज्यों ही श्वेताग ने पुजारिन से आलिंगन करने का यत्न किया कि वह किसी अदृश्य शक्ति से मर गया है। मैंने उसको डाटने का यत्न किया तो मुझको ऐसा प्रतीत हुआ है कि कोई मुझको धकेल कर मन्दिर के बाहर कर गया है।"

"श्वेताग वहां किस काम से गया था?"

"यह तो मैं नहीं जानता। जब मैं वहां पहुंचा तो वह उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे आलिंगन करने का यत्न कर रहा था। इस पर क्या हुआ, कुछ समझ नहीं आया। वह ऐसे नीचे गिरा, जैसे उसको पक्षाघात मार गया हो।"

"बड़ा धूर्त्त है श्वेतांग। लोगों को कह रहा है कि वह दुराचारिन, पापिन है और स्वयं ही उसको पतित करने चल पड़ा था। तुम भले-चंगे लौट आये हो, ईश्वर का धन्यवाद है।"

"चक्रायुध ! मैं जानता हूं कि वह निर्दोष है, परन्तु इस समय पूर्ण राज्य उसके विरुद्ध हो रहा है।"

"यह भी किसी ने असत्य बात बता दी है। तुम प्रातःकाल जा कर देखो तो पता चलेगा कि कितने लोग भगवती का दर्शन करने, उसका आशीर्वाद लेने और वहां से स्वास्थ्य लाभ करने आते हैं। देखो, भैया दैवयात ! जल्दी में कुछ न कर बैठना, पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

श्वेतांग को मार डालने का अभियोग कमलायिनी पर लगाया गया, परन्तु दैवयात के अपने शपथपूर्वक दिये वक्तव्य पर अभियोग चल नहीं सका। इन्द्रमणि ने जब बहुत बल दिया तो न्यायाधीश ने कहा, "अच्छी बात है। यह अभियोग चल सकता है, परन्तु पुजारिन के विरुद्ध नहीं, श्वेतांग के विरुद्ध। उसने उस सती-साध्वी पर बलात्कार करना चाहा है।"

: १२ :

चक्रायुध नित्य रात को उपासना के लिये मन्दिर में जाने लगा था। वह कमलायिनी के विषय में दैवयात से सुनने के पश्चात् उसमें और भी अधिक श्रद्धा करने लगा था। एक रात, वह उपासना से उठ घर जाने लगा तो वसुधा उसके पास आकर बोली, "ठाकुर ! क्या विवाह की बात छोड़ दी है ?"

"नहीं तो ! होली के उत्सव पर होगा। मां ऐसा ही कहती थीं।"

"तो तुम्हारे मित्र तुमको बता नहीं रहे कि इस वर्ष होली के अवसर पर भारी झगड़ा होने वाला है ?"

"सुना तो है, परन्तु इसका हमारे विवाह से क्या सम्बन्ध है ?"

"मा कहती है कि विवाह आज ही हो जाना चाहिये। उस दिन विवाह का अवसर नहीं रहेगा।"

"तो चलो मा के पास। मैं तो अभी ही तैयार हू।"

दोनो कमलायिनी के पास चले गये और उसने उनको आज्ञा दे दी कि विवाह तुरत हो जाना चाहिये।

उसी दिन विवाह वहीं मन्दिर में हो गया। विवाह के पश्चात् कमलायिनी ने उनको एकान्त में ले जाकर कहा, "देखो चक्रायुध ! पावा विध्वस होने जा रहा है। इस कारण मैं आप से कहती हू कि आप यहा से चले जावे। यह मैं वसुधा की रक्षा के लिये कह रही हू। तुम तो ठाकुर हो और मृत्यु से नहीं डरते, परन्तु वसुधा तांत्रिक विज्ञान का प्रयोग है और इस प्रयोग की परीक्षा अभी समाप्त नहीं हुई। इसकी रक्षा विज्ञान के लिये आवश्यक है।"

"मा ! अब तो यह मेरी धर्मपत्नी है। एक क्षत्रिय की धर्मपत्नी अपने पति को समर से भाग कर जाने के लिये नहीं कह सकती।"

वसुधा ने आंखें नीचे किये हुए कह दिया, "ठाकुर ठीक कहते हैं।"

यह विवाह होलिका-उत्सव से दो दिन पूर्व ही हुआ था। इस कारण चक्रायुध का मन अभी वसुधा से भरा नहीं था कि फाल्गुन पूर्णिमा आ गयी। मध्यरात्रि में चक्रायुध सो कर उठा तो उसने देखा, दैवयात अपने शयनागार में नहीं था। वह घर से सायकाल में ही चला गया था। दैवयात, जब से उसका विवाह हुआ था, उससे बातचीत नहीं करता था। चक्रायुध ने वसुधा को जगाया और उसको दैवयात के विषय में बताया तो उसने कहा, "क्या युद्ध छिड गया है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"आपके मित्र आपको साथ नहीं ले गये ?"

वास्तव में मल्ल सेना में इन्द्रमणि का जादू चल गया था। गणपति की आज्ञा के बिना सेना एक भारी अंश में पावा के बाहर खुले मैदान में एकत्रित हो गयी थी। गणपति को सायंकाल ही पता चला था कि सेना ने अस्थायी-शिविर पावा के बाहर लगा दिया है। दैवयात उसी समय ही सेनापति से मिलने गया तो उसको पता चला कि सेना के मन में यह बात बैठा दी गयी है कि दैवयात, अवन्ति राज्य की गुप्तचर विभाग की कर्मचारिणी, भगवती के मन्दिर की पुजारिन से सम्बन्ध रखता है। इस कारण वह देश को अवन्ति राज्य के पास बेच रहा है। "सेना आपसे इस बात का उत्तर लेना चाहती है। इस कारण आज रात मध्य रात्रि के पूर्व सेना आपसे अपने संशयों का उत्तर मांगने आयी है।"

"सेनापति! देश ने मुझको गणपति चुना है और मैं गणसभा के सम्मुख उत्तरदायी हूं। सेना मेरे अधीन है। वह मुझसे उत्तर नहीं मांग सकती।"

"यदि आप आज रात उत्तर देने नहीं आये तो हम कल गणसभा को तोड देंगे और आपसे उत्तर मांगेंगे।"

इस पर दैवयात ने सेना-नायकों से पृथक्-पृथक् मिलना प्रारम्भ कर दिया। इससे उसको पता मिला कि सब नायक उसके विरुद्ध नहीं, कुछ उसके पक्ष में भी हैं। इस पर भी सबके सब यह चाहते थे कि रात को गणपति उनकी सभा में आकर बात करे और वे उसके पक्ष का समर्थन करेंगे।

इस कारण मध्य रात्रि के समय दैवयात सेना शिविर में गया और वहां सेना-नायकों की सभा में उसने अपनी बात उपस्थित कर दी। सेना में बहुत वाद-विवाद हुआ। दैवयात ने पूर्ण बात समझा दी। सेनानायक एक भारी संख्या में दैवयात के पक्ष में हो गये थे, परन्तु इस पर भी वे चाहते थे कि दैवयात सुखचन्द्र को मन्त्री पद से निकाल दे और पुजारिन को देश से निर्वासित कर दे।

दैवयात ने कहा, "मैं आपका प्रस्ताव गणसभा में रख दूंगा।"

इस पर सेना एक मत थी कि गणसभा को वे विवश कर देंगे कि वह उनका प्रस्ताव मान ले।

देवयात तीसरे प्रहर रात को घर लौट कर आया तो चक्रायुध और वसुधा उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको वहा देख, वह खडा हो गया और प्रश्नभरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। चक्रायुध ने पूछ ही लिया, "भैया ! क्या हुआ है ?"

"मैं सेना-शिविर से आ रहा हू। अभी भी सेना में बहुमत मेरे साथ है, परन्तु कमलायिनी और सेठ सुखचन्द्र के पक्ष में एक भी सेनानायक नहीं और सेनापति तो इन्द्रमणि का सम्बन्धी है ही।"

"तुमने, क्या कहा है भैया ?"

"मैंने उनसे कहा था कि मैं उनका प्रस्ताव गणसभा में रख दूगा, परन्तु वे सब कहने लगे कि गणसभा को वे विवश कर अपने पक्ष में कर लेंगे।"

"तो क्या होगा ?"

"मैं समझता हू कि वे मध्याह्नोत्तर गणसभा-भवन के बाहर एकत्रित होंगे और सदस्यों को, जो वहा आवेंगे, विवश कर उनसे मांगेंगे कि मन्दिर लूट लिया जावे और पुजारिन को देश से निर्वासित कर दिया जाये।"

"बस ?"

"साथ ही वे यह चाहते हैं कि सेठ सुखचन्द्र को मन्त्री पद से हटा दिया जावे।"

"तो तुम क्या करने जा रहे हो ?"

"मैं इसमें निष्पक्ष रहूगा। जो भी गणसभा निर्णय करेगी मैं उसके अनुसार कार्य करूगा।"

"न्याय-अन्याय का विचार नहीं होगा क्या ?"

"न्याय वही है, जो गणसभा करे।"

"देवयात भैया ! यह देश प्रलय को प्राप्त होगा। इसमें जो रहेगा वह नष्ट हो जावेगा।"

"तो तुम मुझको क्या करने को कहते हो ?"

"मेरा तो यह कहना है कि मूर्ख जनता के साथ रहने से कल्याण नहीं है। कमलायिनी को तुम जानते हो। उसकी शक्ति को तुम जान चुके हो। उसके पास चलो और उससे प्रार्थना कर, देश के उद्धार के लिये सहायता मागो।"

"मित्र! यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं देश की जनता के विरुद्ध किसी से भी सहायता स्वीकार नहीं कर सकता। देखो, मैं मल्ल हूँ। यह देश मेरा है और इस समय मैं ही देश हू। मैं अपना गला आप घोट नहीं सकता।"

"पर भैया! सत्य देश से भी ऊपर है। हमारा देश वहीं है, जहा न्यायाचरण होता हो।"

"तो?"

"हमारा मार्ग दूसरा है, मैं," उसने मन्दिर की ओर सकेत कर कहा, "उधर जा रहा हू।"

"ठीक है। मैं तो," दैवयात ने गणसभा की ओर उंगली कर कहा, "इधर ही अपना मार्ग देखता हूं।"

दोनो मित्र एक दूसरे का मुख देखते रह गये। इसके आगे और कुछ कहने को नहीं था। चक्रायुध की आखो से अश्रुधारा वह रही थी। दोनो बचपन के साथी थे। चक्रायुध जानता था कि यह अंतिम घड़ी है। दैवयात इतना निराश नहीं था। उसका अनुमान था कि जनता मन्दिर का धन-दौलत लूट कर शान्त हो जावेगी और तब वह फिर देश में शान्ति उत्पन्न कर सकेगा।

चक्रायुध उनसे गले मिला और वसुधा को लेकर मन्दिर की ओर चला गया। मार्ग में वसुधा ने कहा, "मुझको आपके मित्र पर दया आती है।"

"इस पर भी मैं उसको स्वच्छ कुन्दन ही मानता हू।"

"हा, केवल समझ का फेर है।"

"मैं उसके मनोद्गारो की प्रशसा करता हू।"

"और अपने भावों को नहीं। आपके मित्र, देश के बहुसस्यक लोगों के पीछे जाते हुए, मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, और आप, सत्य पथ के राही, अपने विचार से, मृत्यु के मुख में।"

इस पर दोनो गम्भीर विचार में लीन बिना बोले चलते गये। जब वे मन्दिर में पहुचे तो एक भीड उपासको की वहा एकत्रित हो गयी थी। सब भयभीत थे। वे यह सुनकर वहा आये थे कि दिन चढ़ने पर क्षत्रिय लोग मन्दिर को लूटने आ रहे हैं। वे इसको बचाना चाहते थे। कमलायिनी उनको समझा रही थी कि वे सब भीतर जाकर उपासना में लीन हो जावें। उनको यह बताया गया था कि मन्दिर लूटने से पहिले क्षत्रिय लोग उपासकों की हत्या करेंगे। पश्चात् इसको लूटेंगे। इससे उपासक कमलायिनी के कहने पर भीतर जाते थे और फिर भयभीत हो बाहर आ जाते थे और चौंतरे पर खडे होकर परस्पर बातें करते थे। कुछ धीरे-धीरे खिसक भी रहे थे।

इस समय चक्रायुध और वसुधा वहां पहुच गये। कमलायिनी उनको लेकर भीतर चली गयी। वह जानना चाहती थी कि दैवयात क्या करने आ रहा है।

चक्रायुध ने बताया, "मैं मित्र से लड आया हू। वह यह जानता हुआ भी कि आप निर्दोष हैं, आपके विरुद्ध गणसभा का निर्णय मानने जा रहा है। मैं यह जानता हुआ भी कि आप अकेली हैं और सत्य के पक्ष में हैं, अपनी सेवा देने आ रहा हू।"

"पर तुम यह कैसे कह सकते हो कि मैं एक हू?"

"देवी! इन उपासकों के होने पर भी मै तो आपको अकेला ही समझता हू।"

"पर भक्त! तुम एक को भूल रहे हो। भगवती प्रकृति को तो तुमने गिना ही नहीं। और वह एक होती हुई भी कोटि-कोटि जनसमूह के बराबर है।"

"उसका स्वर्ण शरीर तो सहायक होने के स्थान एक भय का कारण हो जावेगा।"

कमलायिनी हंस पड़ी। उसने कहा "भक्त! यह तो एक प्रतीकमात्र है। वास्तव में भगवती तो सर्वत्र व्यापक है! वह सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिमान् है। वह उनकी सहायता करती है जो उसको समझते है।"

: १३ :

मध्याह्न से पूर्व ही सैनिको ने गणसभा-भवन को घेर लिया। केवल सदस्यों के लिये भीतर आने को मार्ग छोड़ा हुआ था। देवयात भवन की छत पर खड़ा सदस्यो के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। समय हो रहा था, परन्तु सदस्य आ नहीं रहे थे। सभाभवन के खुलने का समय हो गया था। बीस सहस्र सेना सभाभवन के चारो ओर खड़ी थी। इन्द्रमणि के पक्ष के सदस्य भवन के भीतर बैठे थे। कुछ देवयात के पक्ष के लोग भी आ गये थे, परन्तु वे भीतर न जा कर देवयात के पास छत पर खड़े थे। समय हो जाने पर सेनापति देवयात के पास आया और कहने लगा, "चलिये, समय हो गया है।"

"कितने सदस्य उपस्थित है?"

"दस के लगभग है और बीस आप यहा खड़े है।"

"सभा का अधिवेशन होने के लिये यह सख्या बहुत कम है।"

"इस पर भी आप निर्णय को रोक नहीं सकते। देखिये पूर्ण सेना आपकी ओर देख रही है। सेना के पीछे एक लक्ष के लगभग जनता भी आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।"

"यह ठीक है। परन्तु एक सौ सदस्यो में दस के निर्णय को निर्णय नहीं माना जा सकता।"

"आपके साथी जो बीस की सख्या में यहा खड़े है।'

"तो इनको भीतर ले चलो।"

"ये आपके कहने पर जायेंगे।"

"मैं इनको कुछ नहीं कहूंगा।"

"यह तो देशद्रोह होगा।"

देवयात इस लाछन से क्रोध में भर गया और अपनी खड्ग निकाल कर बोला, "तुम गणपति का अपमान कर रहे हो। चले जाओ नीचे। नहीं तो ठीक नहीं होगा।"

सेनापति नीचे जाने के स्थान भवन की मुंडेर पर चढ गया और हाथ ऊंचा कर बाहर खडे सैनिकों को सम्बोधन करने लगा। परन्तु वह कुछ कहता, इससे पूर्व ही सेनापति का सिर धड़ से पृथक् हो भवन के नीचे जा गिरा। भवन के चारों ओर खड़ी सेना ने सेनापति की हत्या होते देखी और इसको सेना का अपमान समझा। देवयात के साथियों ने समझ लिया कि उनकी अंतिम घडी आ गयी है। इस कारण सबने अपने खड्ग निकाल लिये और अपने जीवन को बिना मूल्य के जाने न देने का निश्चय कर लिया। सेना ने नीचे से देखा था कि देवयात ने सेनापति की हत्या की है, इस कारण लगभग पाच सौ सैनिक अपने खड्ग निकाल कर भवन की छत की ओर लपके। दूसरे सैनिक गण सभाभवन के भूगर्भ आगारो की ओर लपके जिससे वे पुजारिन द्वारा दिया हुआ स्वर्ण लूट सकें। सहस्रो की भीड ने, जो भगर्भ आगारों मे नहीं जा सकी, भवन को आग लगा देना ही उचित समझा। इस प्रकार इतनी घमासान मची कि किसी को गणसभा-भवन से भाग निकलने का मार्ग ही नहीं मिला।

जब यह सब ऊधम मच रहा था, कमलायिनी मन्दिर के चौंतरे पर खड़ी यह सब कुछ देख रही थी। उसके समीप खडा चक्रायुध, भवन की छ पर सैकड़ों सैनिकों से घिरे हुए, वीरतापूर्वक लड रहे देवयात को दे रहा था। उसने एक बार कहा भी कि उसको भारी शोक है कि वह अप मित्र के कधे से कधा लगा लड नहीं रहा।

"ठीक है, परन्तु उसके लडने का स्थान यह था न कि सभाभवन वहा जा कर वह किस बात के लिये लड रहा है? उसको यह बात विदि थी कि पूर्ण जनता उससे अन्याय कराना चाहती है और वह भवन उ

जनता की भावनाओं का प्रतीक है। यदि वह अन्याय नहीं करना चाहता तो उसको भवन का आश्रय छोड़, यहां आजाना चाहिये था।"

यह युक्ति थी। परन्तु चक्रायुध मित्र के प्रति भावना से प्रेरित हो कह रहा था। इससे वह चुप रहा। इस समय भवन को आग लग गयी थी और भवन की छत पर लड़ते हुए बहादुर अग्नि के धूंए में आंखों से ओझल हो गये।

कमलायिनी ने चक्रायुध का ध्यान दूसरी ओर करने के लिये कहा, "भक्त! देखो वह इन्द्रमणि क्या कह रहा है।" चक्रायुध ने उधर देखा। वह भवन के बाहर आ सेना और जनता के बीच खड़े होकर कह रहा था, "गणसभा ने यह निर्णय कर दिया है कि वह मन्दिर देशद्रोह का अड्डा है। इस कारण उसको गिरा कर भूमि के समतल कर देना चाहिये।"

इन्द्रमणि के इस घोषणा करने पर भीड़ मन्दिर की ओर लपकी। चक्रायुध ने अपना खड्ग निकालने के लिये उसकी मूठ पर हाथ रखा ही था कि कमलायिनी ने कहा, "भक्त नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"नहीं पड़ेगी? पर देवी वे आ रहे हैं।"

"आने दो।" इतना कह उसने अपनी उंगली खड़ी कर कहा, "बस, और नहीं आयेंगे।" उमड़ती हुई भीड़ एकाएक ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे उनके सामने दीवार है। इन्द्रमणि उसी ऊंचे स्थान पर खड़ा पुकार कर लोगों को कह रहा था, "गिरा दो इस मन्दिर को। इसकी ईंट से ईंट बजा दो। यह देशद्रोहियों का अड्डा है। इसको आग लगा दो।"

इस पर भी भीड़ एक सीमा को पार नहीं कर सकी। पीछे से लोग आगे बढ़ रहे थे और आगे वाले उस सीमा से पार नहीं हो सकते थे। चक्रायुध विस्मय में देखता रह गया। उसने पूछा भी, "देवी! यह क्या हो रहा है?"

"मां भगवती की शक्ति का चमत्कार।"

सैंकड़ों उस सीमा पर, पीछे से आने वालों के पांवों के नीचे आकर

दब गये। अत में आनेवालों ने हल्ला करना आरम्भ कर दिया, "मत आओ। आगे स्थान नहीं है।" दो घडी भर के आर्तनाद के बाद लोगो को कुछ समझ आया कि क्या हो रहा है। वे खडे हो गये और एक पक्ति के बाहर सहस्रों को पांवों के नीचे कुचला देख बितर-बितर देखते रह गये। इस सबको देख इन्द्रमणि भीड को चीरता हुआ शवों के ढेर के पास आकर खडा हो गया। उसने समझा कि किसी मन्त्र के बल पर पुजारिन ने लोगों को मूर्ख बना कर मार डाला है। उसने कुछ धनुषधारियो को उस घेरे के बाहर खडा कर, कमलायिनी पर तीर चलाने के लिये कहा। तीर चलाये गये, परन्तु वे भी उसी स्थान पर ऐसे आकर गिरे, जैसे वे किसी लोहे की दीवार से टकरा कर गिर जाते है। यह चमत्कार सबने देखा और भय से कापते हुए लोग वहा से खिसकने लगे। इन्द्रमणि विवश हो अपने घर की ओर चल पडा।

जो लोग गणसभा-भवन से धन लूट कर ले गये थे, वे अपने-अपने घरों को भाग जाना चाहते थे, परन्तु दूसरो ने, जो कुछ नहीं लूट सके थे, उनसे अपना भाग मागा। इसमे झगडा हो गया। परिणाम यह हुआ कि वे लोग जो वैवयात के साथियों से लडने के लिये तैयार होकर आये थे, परस्पर लूटे स्वर्ण के लिये, लडने लगे। यह लडाई यहीं समाप्त नहीं हुई, प्रत्युत पावा के घर-घर में फैल गयी। लोग सभाभवन को छोड कर मन्दिर की ओर गये थे। वहा से भी कुछ न पा, परस्पर लडने लगे थे और इस पर भी किसी परिणाम तक न पहुँच सकने के कारण पावा के घरों को आग लगाने लग गये थे।

देखते-देखते पूर्ण पावा नगर धू-धू करता हुआ जलने लगा। नागरिक जलते मकानो से इधर उधर भागते दिखाई देने लगे। चीखते-पुकारते बच्चो को कधों पर उठाये हुए, कहीं आश्रय पाने के लिये भागते फिरते थे। लोग मदिर की ओर आश्रय पाने की आशा में आते थे परन्तु वहा शवो की दीवार खडी देख, घबडा कर भाग जाते थे।

: १४ :

मनोज, भूदेव और पंडित सुखदर्शन के अनथक प्रयत्नों से कुमार-देव को अपनी नीति में दोषों का भास होने लगा। इस भास के कराने में महारानी रेखा के षड्यन्त्रों ने भी भारी भाग लिया।

जब श्वेतांग पावा में आ गया तो इन्द्रमणि ने रेखा के पास एक दूत भेजा। उस दूत के द्वारा उसने महारानी रेखा को अपनी सहायता के लिये आमन्त्रित किया। उस दूत ने यह भी बताया कि श्वेतांग उनकी पिछली बातों को भूल कर, पुनः उसकी सहायता करने के लिये तैयार है। इस प्रकार इन्द्रमणि ने अपने षड्यन्त्र का एक सूत्र अवन्ति में चलाना आरम्भ कर दिया। यह निश्चय हो गया कि वे सैनिक, जो महारानी रेखा के पक्ष में हैं, छुट्टी लेकर पावा का मन्दिर देखने के बहाने अवन्ति राज्य से निकल मल्ल राज्य में, सीमा के समीप ही एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होकर होली के दिन पावा पर धावा बोल दें।

यह सब सूचना आचार्य भूदेव को मिल गयी थी। इससे सचेत हो उसने मनोज को पावा भेज दिया। वहां अपने प्रयोजन में असफल हो मनोज लौटा, तो राज्य-परिषद् में मनोज के अनुभवों पर विचार होने लगा। मनोज ने अपने पावा के अनुभवों को लिख कर दिया था। वह लिखित वर्णन राज्य-परिषद् में पढ़ कर सुनाया गया। इस पर पंडित भूदेव ने अपने विचार बताये। उसका कहना था, "दैवयात एक उजड्ड गंवार व्यक्ति ही प्रतीत होता है। उससे मैत्री करने से हम लाभ के स्थान हानि ही उठावेंगे। इन्द्रमणि श्वेतांग का मित्र होने से हमारे साथ मैत्री कर नहीं सकता। इस कारण हमको जो कुछ करना है, अपने बुद्धि-बल पर ही करना चाहिये।

"इस कारण मेरा प्रस्ताव यह है कि जो सैनिक छुट्टी मांगें, उनको छुट्टी दे दी जावे। जब वे मल्ल राज्य में चले जावें, तो अपनी पूरी सेना से राज्य पर आक्रमण कर दिया जावे। वहां पर दैवयात के

पक्षपातियो से जब झगडा हो रहा हो, हम जा झपटें और दोनो पक्षो को परास्त कर मल्ल राज्य का काटा सदा के लिये निकाल देवे।"

इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया और बहुत ही गुप्त रूप से इस आक्रमण की तैयारी करनी आरम्भ हो गई। सेनापति बलभद्र को सब तैयारी गुप्त रखने की बात कह कर, उसको यह भी कह दिया गया कि सब छुट्टी मागने वाले सैनिकों को छुट्टी दे दी जावे।

मल्ल राज्य और अवन्ति की सीमा के समीप रथ, अश्व और अन्य युद्ध की सामग्री, बहुत ही गुप्त रूप में एकत्रित कर दी गयी। पचास सहस्र सेना के खाने के लिये रसद भी एक और गुप्त स्थान पर जमा कर दी गयी। इस प्रकार की तैयारी कर यह घोषित कर दिया गया कि अनुराधा के पुत्र, राजकुमार का नामकरण सस्कार होली के दिन बडी धूम से किया जावेगा।

होली की शुक्ला चतुर्दशी को गणना कर देखा गया कि दस सहस्र से ऊपर सैनिक छुट्टी पर है। यह भी पता किया गया कि नीरा गाव के समीप, सीमा के पार ये सब सैनिक एकत्रित हो रहे है। आचार्य भूदेव से भेजी जाने वाली सेना कुछ घूम-घुमाव से मल्ल राजधानी पावा जानेवाली थी। इस कारण सेना रात के समय ही मल्ल राज्य में प्रवेश कर गयी और द्रुत गति से अपने-अपने लक्ष्य स्थान की ओर चल पडी। योजना के अनुसार इस सेना को पूर्णिमा के तीसरे प्रहर पावा के बाहर पहुच जाना था। अनुमान से कुछ देरी हो गयी और यह सेना सायकाल से कुछ पूर्व ही अपने निश्चित स्थान पर पहुची।

पावा पहुचने से पूर्व उस ओर से एक रथ और कुछ अश्वारोही आते दिखाई दिये। वे रोक लिये गये। सेनापति बलभद्र के पास वे सब लोग लाये गये तो पता चला कि रथ में पक्षाघात का एक रोगी और उस के सरक्षक पावा नगर से भागे हुए जा रहे है। प्रश्न करने पर पता चला कि रोगी श्वेताग है और रक्षक इन्द्रमणि के अपने निजी सेवक है।

बलभद्र ने उनको बदी बना, उज्जयिनी भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

जब सेना पावा द्वार के बाहर पहुंची तो नगर को धू-धू करते जलते देख विस्मय में खड़ी रह गयी। नगर के लोगों को पता नहीं था कि अवन्ति से कोई सेना आने वाली है। इस कारण वे इसको अपने देश की ही सेना मान, यह समझे कि यह भी नगर को लूटने आयी है। सेना के लोगों ने, भागते हुए नागरिकों को पकड़ कर सेनापति के सम्मुख उपस्थित किया और उनके भय को दूर कर उनको यह बता दिया कि अवन्ति से पावा के नागरिकों की रक्षा के लिये वह सेना आयी है। इस पर उन्होंने उस दिन की पूर्ण कथा बता दी। राजधानी में और देश में अराजकता फैली देख बलभद्र को भारी शोक हुआ। इस पर उसने सामने खड़े नागरिकों से पूछा, "इन्द्रमणि कहां है ?"

"भाग गया है। वह और काशी का पंडित श्वेतांग दोनों एक प्रहर हुए रथों में और घोड़ों पर सवार हो चले गये हैं।"

"भगवती के मंदिर की पुजारिन कहां है ?"

"अपने मंदिर में सुरक्षित विद्यमान है।"

"गणपति दैवयात कहां है ?"

"गणसभा-भवन में जल कर भस्म हो गये हैं।"

बलभद्र सेना को यह आज्ञा दे कि नगर की आग बुझाने का यत्न करें, कुछ सैनिकों को लेकर भगवती के मंदिर की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच उसने सहस्रों की संख्या में जनता के मृत शवों को देख विस्मय में पूछा, "यह कैसे हुआ ?" एक जानकार ने उस घटना का सविस्तार वर्णन कर दिया। इस पर बलभद्र ने कमलायिनी से भेंट करने के लिये एक सैनिक के हाथ संदेशा भेजा और सेनापति को अकेले में मन्दिर में आने की स्वीकृति मिल गयी। कमलायिनी ने बलभद्र को पूर्ण परिस्थिति से परिचित कर दिया तो उसने घोषणा कर दी कि मल्ल राज्य में महाराज अवन्ति का राज्य स्थापित किया जाता है।

अभी यह घोषणा हो ही रही थी कि एक अश्वारोही, सिर से पांव तक धूल से भरा हुआ, सेना शिविर में पहुंचा और सेनापति से मिलने की

इच्छा प्रकट करने लगा। उसको सेनापति के शिविर में लाया गया। अश्वारोही उज्जयिनी से आया था और एक पत्र आचार्य जी का लाया था। उस पत्र में लिखा था, "बलभद्र जी! दस सहस्र विद्रोही सेना को लेकर रेखा पावा में जाने के स्थान वापिस उज्जयिनी पर चढ़ आयी है। उसका विचार था कि हमने सब सेना पावा भेज दी है और राजधानी बिना सेना के है। ऐसा तो था नहीं, परन्तु उसका यह आक्रमण अकस्मात् होने के कारण प्रारम्भिक सफलता प्राप्त कर गया। वह एक समय तो नगर पर अधिकार कर बैठी थी। इस समय उसने महाराज के भवन पर आक्रमण कर दिया। महाराज स्वयं भवनरक्षकों को लेकर लड़ने के लिये उद्यत हो गये। घमासान युद्ध होता रहा। विद्रोही सेना भवन में घुस गयी और महाराज कुमारदेव, पग-पग पर लड़ते हुए पीछे हटने लगे। विद्रोही बहुत अधिक संख्या में थे और उनका उद्देश्य महारानी अनुराधा और उसके राजकुमार को पकड़ कर, उनकी हत्या करना था। महाराज कुमारदेव लड़ते हुए अपने आगार के सम्मुख मारे गये और उनके मरने के पश्चात महारानी अनुराधा हाथ में खड्ग लेकर निकल आयीं और कुछ देर तक लड़ती रहीं। वह बुरी भांति घायल हो गयी हैं। इस समय तक सेना-शिविर से भक्त सेना आ गयी और वह लड़ती हुई वहां पहुंच गयी। राजकुमार की जान बचायी जा सकी है। महाराज की मृत्यु तो भवन में लड़ते हुए ही हो गयी है। महारानी मरणासन्न रुग्णालय में पड़ी हैं। इस समय भक्त-सेनाओं का अधिकार महाराज के भवन पर हो चुका है। कलाभवन और अन्य मन्त्रियों के गृह सुरक्षित हो गये हैं, परन्तु नगर के मार्गों पर और नगर की वीथिकाओं में लड़ाई हो रही है।

"यह सब परिस्थिति आपको लिख कर भेज दी है, जिससे वहां का समर समाप्त कर शीघ्रातिशीघ्र चले आयें। वहां एक बलशाली सेना की टुकड़ी छोड़ आना। इस समय पांच सहस्र सैनिक पहिले भेज दो। जिससे नगर की व्यवस्था रह सके और महारानी रेखा को, जो पकड़ी गयी

हैं, दंड दिया जा सके।"

: १५ :

अवन्ति में विद्रोह उज्जयिनी तक ही सीमित रहा। इस विद्रोह में, जब तक तो रेखा के पक्षपाती सेना की जीत होती रही, तब तक रेखा अपने पक्ष वालों को प्रोत्साहन देने के लिये नगर में घूम-घूम कर सेना का नेतृत्व करती रही, परन्तु आचार्य भूदेव और मनोज के बच कर भाग जाने से उसकी पराजय हो गयी। जब सेना ने इनके गृह पर आक्रमण किया, ये दोनों घर में नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि जब इनको पता चला कि विद्रोही सेना धावा जाने के स्थान उज्जयिनी पर चढ़ आयी है, तब ये दोनो सेना-शिविर में गये और वहां से सेना को तैयार कर लाये और महाराज के भवन और अन्य मंत्रियो के गृहो की सुरक्षा का प्रबन्ध कराने लगे। विद्रोह को शान्त करने में पूर्ण दिन लग गया। विद्रोहियों को जब यह बात समझ आ गयी कि उनकी योजना असफल गयी है, तो उन्होंने भागना आरम्भ कर दिया। भागने वालों में रेखा सबसे पहिले थी, परन्तु वह नगर के द्वार से निकलती हुई पकड़ ली गयी।

आचार्य भूदेव ने ज्यो ही महाराज के भवन को आक्रमणकारियो से मुक्त कराया, महाराज के शव को और अनुराधा के घायल शरीर को रुग्णालय में पहुंचा दिया। वहां अनुराधा की तो चिकित्सा होने लगी और महाराज के शव की परीक्षा कर, उसको भवन में लौटा दिया गया।

अभी फुटकर लड़ाइयां हो ही रही थीं कि महारानी रेखा पकड़ कर आचार्य के सामने लायी गयी। आचार्य ने आज्ञा दे दी कि इसको बंदीगृह में रखा जावे। आधी रात के समय श्वेतांग और इन्द्रमणि को सैनिक ले आये। श्वेतांग को पक्षाघात मार गया था। उसका दाहिना अंग तो सर्वथा बेकार हो गया था। उसका मस्तिष्क भी ठीक रूप में काम नहीं करता था। इन्द्रमणि स्वस्थ था, परन्तु उसको अपने पक्षपातियों को अपने ही पक्ष के लोगों से लड़ते देख भारी दुःख हुआ था। इन कारण धावा

के मार्ग में जब वह श्वेताग के साथ पकडा गया, तो उसने अपना तक नहीं बताया। परन्तु जब उसको एक सैनिक ने पहिचाना तो वह अ भूलों पर रो उठा। अगले दिन बलभद्र सेना की एक सुदृढ टुकडी पावा में छोड, शेष सेना के साथ लौट आया। इस समय तक उज्जी में शान्ति स्थापित हो चुकी थी। आचार्य भूदेव ने राज्य-परिषद को बु कर राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने राज्य का उत्त धिकारी अनुराधा के लडके को घोषित कर दिया। अनुराधा के द को देख, नगर के प्रमुख भिषगाचार्य ने यह बताया कि वह बच जावेग इस कारण उसको राजमाता प्रसिद्ध कर दिया गया। महाराज कुमार का संस्कार कर, उनको वीर गति प्राप्त हुआ मान, उनका स्मारक बन का आयोजन कर दिया गया। महारानी रेखा को मृत्यु दड की आ दे दी। इन्द्रमणि को तब तक बंदी रखने की आज्ञा दे दी, जब तक म राज्य में कोई स्थायी राज्य स्थापित नहीं हो जाय। श्वेताग के विषय यही उचित समझा गया कि उसके रुग्ण शरीर को काशी में उसके पिता पास भेज दिया जावे। यह भी निश्चय हुआ कि उसके रुग्ण शरीर के स आचार्य भूदेव एक पत्र लिख दें, जिससे उसके रुग्ण होने का कारण उन प्रकट हो सके।

आचार्य भूदेव ने उस पत्र में श्वेताग के व्यवहार और कमलायिन पर बलात्कार करने के प्रयत्न का पूर्ण विवरण लिख दिया। अन्त खेद प्रकट कर लिखा, "मनुष्य तो क्षमा कर सकता है और उस किया भी था, परन्तु भगवान ने क्षमा करना उचित नहीं समझा।"

"इतना अवश्य है कि उस बेचारे का इतना दोष न हीं, जितना उसक मिथ्या जीवन-मीमासा सिखाने वालों का है। उसने तो आपकी शिक्षा प कि मनुष्य में स्वार्थ परम साध्य वस्तु है और इसके आधार पर ही ससार क इतिहास चलता है, के अनुसार ससार को चलाने का यत्न किया और उसक स्वाभाविक परिणाम आपके पास भेज रहा हू।"